CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY

Acc. No.______________

Book No.______________

UP State Museum, Lucknow

Entered
30.3-61
CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

State Museum Library
Lucknow
UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

हमारा अतीत

द्वितीय भाग

(१५२६–१७५० ई०)

लेखक

रामलखन शर्मा एम० ए० (इति० सं०) एल. टी.

शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश

State Museum, Library, Lko.
737
30.3.61

प्रकाशक

अवध पब्लिशिंग हाउस

लखनऊ

प्रथमावृत्ति] [मूल्य ६ रुपये

UP State Museum, Lucknow

Rs. 6.00
CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

प्रकाशक
अवध पब्लिशिंग हाऊस,
लखनऊ

मुद्रक
नवज्योति प्रेस, लखनऊ

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

प्रथम दो शब्द

इस पुस्तक को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए लेखक को विशेष नहीं कहना। श्रीयुत लाजपतराय ने अपनी "अनहैपी इंडिया" की भूमिका में लिखा है :--

" I claim neither originality nor literary merit for it. In my judgment it is easier to write an original thesis than to hunt up authorities, verify and quote them."

बस यही भावना अपनी है। इस के पूर्व भाग को पढ़कर पाठक यह समझ ही गये होंगे कि इस अंश की कितनी आवश्यकता थी। इसमें लेखक ने १५२६ ई० के पश्चात् से १७५० ई० तक के भारत की सभ्यता तथा संस्कृति का अंकन करने तथा यदा-कदा इस के मोड़ के प्रयासों को पाठक के समक्ष रखने का ही वस्तुतः यत्न किया है। निःसन्देह इस भाग को लिखते समय उसे कभी किसी कचोट का, कभी उल्लासदायिनी प्रेरणा का समय मिला है, क्योंकि यह अंश कहीं हमारी पतनावस्था की निम्नतम सीढ़ी, कहीं आलोक की ओर उन्मुख हुआ है, पर इतिहास लेखक को तो अन्यमनस्क होकर अपने अतीत का केवल चित्रमात्र उपस्थित करना रहता ह। अतः लेखक ने अपने को संयमित कर चेष्टा की है कि पाठक के समक्ष वस्तुस्थिति का सच्चा स्वरूप ही उपस्थित हो। विद्यार्थियों के लिए इस अंश में विशेषकर स्थल-स्थल पर पार्श्व-स्तम्भों में कुछ निर्देशक तत्व दे दिये गये हैं जिससे उन्हें इसकी पुनरावृत्ति में अधिक समय यापन न करना पड़े।

इस प्रयास में लेखक को सबसे अधिक प्रेरणा सर्व श्री चतुर्भुज शर्मा एवं भृगुराज भार्गव से प्राप्त हुई, जिनका वह सतत आभारी रहेगा। कुछ शिष्यों ने भी इसमें अपूर्व सहयोग दिया, जिसमें जयनारायण गुप्ता, जिनवर दास जैन तथा सुशील कुमार धन्यवाद के पात्र हैं।

विनीत :--

राम लखन शर्मा

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

विषय-सूची

पृष्ठ

परिच्छेद—१ मुग़ल-साम्राज्य की स्थापना .... १—२४

बाबर के आने से पूर्व का भारत, बाबर का जन्म तथा उसकी शिक्षा, भारत में बाबर पानीपत का युद्ध—बाबर की सफलता—खानवा का युद्ध—राजपूतों की हार के कारण—बक्सर तथा घाघरा का युद्ध, बाबर का चरित्र ।

परिच्छेद—२ हुमायूँ .... २५—४४

हुमायूँ का प्रारंभिक जीवन, उसकी कठिनाइयाँ—सफलताएँ, चौसा का युद्ध; कन्नौज का युद्ध, हुमायूँ का का प्रवास—उसकी असफलता, हुमायूँ की पुनः राज्य प्राप्ति, उसका चरित्र ।

परिच्छेद—३ शेरशाह तथा उसके उत्तराधिकारी .... ४५—८४

उसका प्रारंभिक जीवन, चुनार पर अधिकार, शेरशाह और हुमायूँ का प्रथम संघर्ष, हुमायूँ की हार, शेरशाह की विजयें, शेरशाह का शासन प्रबन्ध, उसका व्यक्तित्व, उसके उत्तराधिकारी, शूरवंश के पतन के कारण ।

परिच्छेद—४ अकबर महान .... ८५—१३५

उसका प्रारंभिक जीवन, उसकी प्रारंभिक कठिनाइयाँ, पानीपत का द्वितीय युद्ध, बैरम खां का उत्थान व पतन—उसके पतन के कारण, उजवेग विद्रोह, अकबर की विजयें—राजपूतों से संघर्ष—रणथंभौर—कालिंजर—मारवाड़—गुजरात—बिहार—बंगाल—मेवाड़, प्रताप

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

का चरित्र, राजपूत नीति, (काबुल--कश्मीर--सिंध--उड़ीसा--कंधार) की विजय, दक्षिण विजय, अहमद नगर, अकबर की हिन्दू नीति, अकबर का चरित्र ।

परिच्छेद—५ जहाँगीर .... १३६—१६७

जहाँगीर का प्रारंभिक जीवन--राज्याभिषेक, खुसरो का विद्रोह, कन्धार, नूरजहाँ, मेवाड़ का समर्पण, कांगड़ा विजय, शाहजहाँ का विद्रोह, महावत खां का विद्रोह, जहाँगीर का चरित्र, नूरजहाँ का चरित्र ।

परिच्छेद—६ शाहजहाँ .... १६८—२११

शाहजहाँ का प्रारंभिक जीवन, बुन्देला राजपूतों का विद्रोह, खानजहाँ लोदी का विद्रोह, मुमताजमहल, शाहजहाँ की दक्षिण नीति, मध्य-एशियाई नीति, कन्धार, शाहजहाँ तथा पुर्तगाली, उत्तराधिकार संघर्ष, शाहजहाँ के अन्तिम दिन, उसका चरित्र ।

परिच्छेद—७ औरंगज़ेब .... २१२—२४५

औरंगज़ेब का प्रारंभिक जीवन, उसका प्रारंभिक प्रबन्ध, उत्तरी पश्चिमी सीमा नीति, धार्मिक औरंगज़ेब, राजपूत संघर्ष, सतनामी विद्रोह, जाट विद्रोह, बुन्देले, सिख, मराठे, औरंगज़ेब की दक्षिण नीति, असफलता के कारण, औरंगज़ेब तथा अंग्रेज, उसके अन्तिम दिन, उसका चरित्र ।

परिच्छेद—८ मुग़ल तथा मराठे .... २४६—२७७

दक्षिण की भौगोलिक स्थिति, शिवाजी, शिवाजी के प्रारंभिक कार्य, शिवाजी तथा अफजल खां, शिवाजी तथा मुग़ल, शिवाजी का राज्याभिषेक, उनका शासन प्रबन्ध, शिवाजी का चरित्र, शिवाजी के उत्तराधिकारी । शम्भू जी--राजा राम ।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद—९ मुग़ल तथा सिख .... २७८—२९४

गुरु नानक, इतिहास में नानक का स्थान, अंगद—अमरदास—रामदास—गुरु अर्जुन—हरगोविन्द—हर-राय—हरकिशन—तेगबहादुर—गुरु गोविन्दसिंह, गुरु गोविन्दसिंह का चरित्र, बन्दा बहादुर।

परिच्छेद—१० (अ) मुग़लकालीन सभ्यता व संस्कृति ... २९५—३१४

मुग़लों का शासन और उसके सूत्र।

परिच्छेद—१० (ब) मुग़लकालीन भारतीय कला ... ३१५—३३२

बाबर की कृतियाँ, हुमायूँ की कृतियाँ, शेरशाह की कृतियाँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, ताजमहल—औरंगज़ेब, मुग़लकालीन चित्रकला—बाबर व हुमायूँ—अकबर—जहाँगीर—शाहजहाँ—औरंगज़ेब, संगीत।

परिच्छेद—१० (स) मुग़ल काल का साहित्य ... ३३३—३५४

अब्दुर रहीम खानखाना, जहाँगीर तथा शाहजहाँ के समय का साहित्य, उत्तरकालीन हिन्दी साहित्य, उर्दू साहित्य, बंगला साहित्य, गुजराती साहित्य, मराठी साहित्य, अकबर के नवरत्न,

परिच्छेद—१० (द) मुग़ल युग की धार्मिक भावना .... ३५५—३६५

दीनइलाही, अन्यधार्मिक भावनाएँ—रामभक्ति।

परिच्छेद—१० (ई) मुग़ल कालीन समाज .... ३६६—३७१

स्त्रियों की दशा—शिक्षा।

परिच्छेद—१० (छ) मुग़लकालीन आर्थिक व्यवस्था .... ३७२—३७६

नगर, यातायात, कृषि, उद्योग धन्धे, व्यापार, मुद्रा पद्धति।

परिच्छेद—११ अन्तिम मुग़लसम्राट .... ३७७—३९९

बहादुरशाह, जहाँदार शाह, फरुखसियर, रफी-उद्-दाराजत, रफी-उद्-दौला, सैयदबन्धु, मुहम्मदशाह—नादिरशाह का आक्रमण, अहमदशाह, आलमगीर द्वितीय, शाहआलमग द्वितीय, अकबर द्वितीय, बहादुरशाह द्वितीय, मुग़ल साम्राज्य के पतन के कारण।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

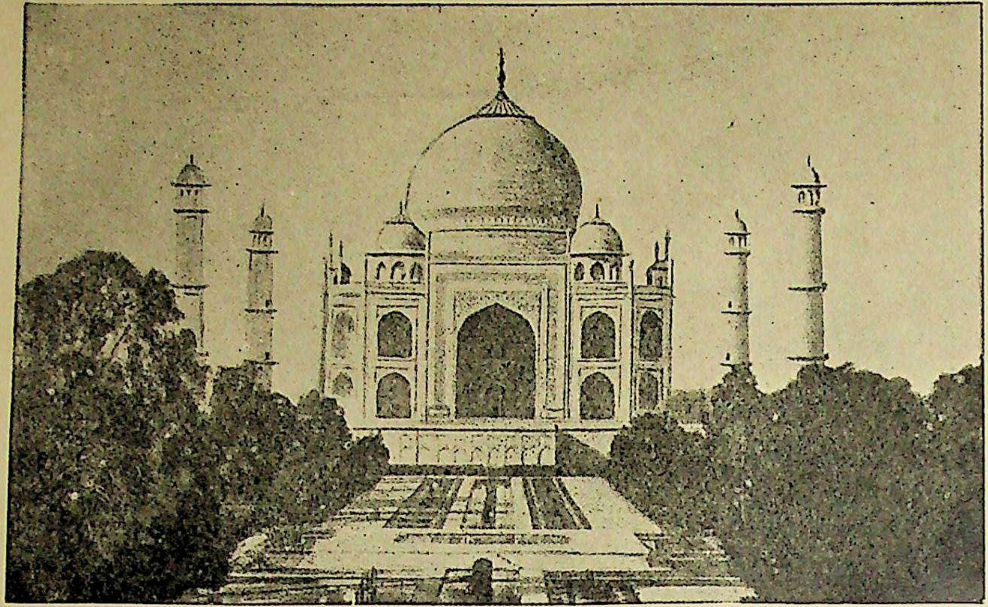

ताज—संगमरमर में एक स्वप्न

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद १

मुग़ल साम्राज्य की स्थापना

बाबर के आने से पूर्व का भारत--बाबर ने अपनी पुस्तक तुज़क-प-बाबरी में लिखा है।

"यह वस्तुतः एक अत्यन्त सुन्दर देश है, अपने देशों की तुलना में वह एक दम नया संसार है" †

यही नहीं बाबर ने भारत का विशद वर्णन किया है, जिससे हमें यहाँ की प्राकृतिक, राजनीतिक तथा सामाजिक अवस्था का पर्याप्त ज्ञान उपलब्ध होता है। उसका कथन है,--

प्राकृतिक अवस्था भारत का सुखद तथा अतुलनीय मनोनुकूल जलवायु

"भारत जलवायु की पहली, दूसरी तथा तीसरी पेटियों में बसा है। इसका कोई भी भाग चौथी पेटी में नहीं है। यह अत्यंत चित्ताकर्षक देश है। अपने देशों की तुलना में यह एक भिन्न संसार है। इसकी पहाड़ियाँ, नदियाँ, इसके वन तथा मैदान, इसके पशु तथा पौधे, इसके निवासी तथा उनकी बोलियाँ, इसका जल तथा वायु सभी भिन्न हैं, ज्योंही कोई सिन्धु नदी को पार करता है, बस इसका भूतल, इसके पेड़ पत्थर, इसकी घुमक्कड़ जातियाँ तथा यहाँ के निवासियों के आचार विचार सभी भारतीय दिखाई देते हैं।"

"वर्षा ऋतु में यहाँ का मौसम अत्यंत सुहावना होता है, किसी दिन तो दस पन्द्रह और बीस बार तक वर्षा हो जाती है, बरसात में एकाएक बाढ़ आ जाती है, और ऐसे स्थलों पर नदियाँ बन जाती हैं, जहाँ पहले पानी का नाम भी न था, और जब तक पानी बरसता रहता है, वायु इतनी मनोहर होती है कि उसके सुखद और मनोनुकूल तापक्रम की कोई तुलना नहीं कर सकता।"

"बस कमी इस बात की रह जाती है कि वायु कभी कभी नम रहती है, अतः वर्षा ऋतु में कोई अपने देश के धनुष से भी वहाँ निशाना नहीं लगा सकता, धनुष ही बेकार हो जाता है।"

---

† "It is a remarkably fine country. It is quite a different world compared with our own countries"
Tuzuk.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

"इस नमी का प्रभाव कवच, कपड़ों, पुस्तकों तथा फर्नीचर सभी पर पड़ता है। घर भी इस कारण गिर जाते हैं क्योंकि वे अच्छी सामग्री के नहीं बने होते। यहाँ पर तीनों ऋतुओं (जाड़ा, गर्मी, बरसात) में बहुत सुन्दर और सुहावना मौसम भी होता है और विशेष कर उस समय जब कि उत्तरी वायु का दौरा होता है किन्तु उस समय उसके साथ तमाम धूल धक्कड़ भी उड़ा करती है और जब बरसात आने को होती है, यह वायु दिन में बड़ी तेज़ी के साथ ५, ६ बार चलती है। इसके साथ इतनी धूल उड़ती है, कि कोई एक दूसरे को देख भी नहीं सकता। इसको वे आँधी कहते हैं।"

"यह देश वृष और मिथुन राशियों में गर्म हो जाता है, किन्तु इतना गर्म नहीं कि असह्य हो। बलख और कन्धार की गर्मी से इसकी तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि यहाँ की गर्मी इन स्थानों की गर्मी से आधी भी नहीं है।"

"हिन्दुस्तान ऐसा देश है, जिसमें सौन्दर्य कम है। यहाँ के निवासी देखने में सुन्दर नहीं होते। इनमें परस्पर व्यवहार तथा एक दूसरे के यहाँ आना जाना नहीं होता। इनमें न प्रतिभा है, न योग्यता, इनमें न सद्व्यवहार है, और न इनकी हस्तकला तथा इनके अन्य कार्यों में कोई सुडौलता ही। न इनमें कोई ढंग होना है, न कोई गुण। यहाँ के बाज़ारों में न पका भोजन, न अच्छे घोड़े, न अच्छे कुत्ते, न अंगूर न तरबूज न उत्तम फल न बर्फ अथवा ठंडा पानी, न अच्छी रोटी न गरम स्नानागार, न यहाँ बत्ती या मशाल। बड़ी-बड़ी नदियों तथा पहाड़ी झरनों के पानी को छोड़कर जो कंदराओं या खोहों में बहता है, उनके बगीचों तथा घरों के समीप जल दिखाई नहीं देता। उनके घर न हवादार होते हैं न सुन्दर। किसान तथा निम्न वर्ग के लोग इधर उधर नंगे चले जाते हैं।"

"फिर भी हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह बहुत विशाल देश है। इसमें सोना चाँदी भरा पड़ा है। दूसरी अच्छाई यहाँ यह है कि यहाँ हर पेशे के लोग बड़ी संख्या में मिल जाते हैं, क्योंकि हर काम के लिए यहाँ पर एक समुदाय तैयार रहता है और विशेष कर वे लोग ऐसे होते हैं, जिनके बाप दादाओं का भी वही व्यवसाय था।"

भारत की तत्कालीन आर्थिक दशा—बाबर का उक्त कथन ठीक ही है, क्योंकि इसी का समर्थन अन्य सूत्र भी करते हैं। उस समय भारत की आर्थिक दशा भी ऐसी थी जो बाबर जैसे भ्रमण प्रिय व्यक्ति को ललचा देती। जहाँगीर के समय में लिखी गयी "तारीख-ए-दाउदी" से हमको ज्ञात होता है कि सुल्तान इब्राहीम के समय में अनाज, कपड़ा और तमाम साधारण उपयोग की वस्तुएँ जितनी सस्ती थीं, उतनी सस्ती सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के समय को छोड़

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कर अन्य किसी के समय में नहीं रहीं । उस समय एक बहलोली का १० मन गल्ला आता था। एक ही बहलोली में १० गज़ कपड़ा भी खरीदा जा सकता था। कहने का अभिप्राय यह है कि हर चीज़ बहुतायत से थी । उस समय आवश्यकता भर वर्षा और आज से १० गुनी उपज होती थी। किसी भी व्यक्ति के लिए आगरे से दिल्ली जाने को एक बहलोली बहुत थी।

राजनीतिक दशा—भारत विभिन्न राज्यों में बँटा था, जो प्रायः परस्पर कलह में उलझे रहते थे। देश में कोई भी ऐसी सशक्त सत्ता न थी जो अपनी प्रभुता रख सकती। साथ ही सर्वोच्च शक्ति बनने के लिए परस्पर संघर्ष चल रहा था। भारत ऐसी स्थिति में न था कि किसी भी विदेशी के सम्मुख एक तथा कटिबद्ध होकर टिकता। डा० ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में **"१६ वीं सदी के आरम्भ काल में भारत कुछ राज्यों का समूह था जो किसी भी विजय की शक्ति तथा लालसा वाले आक्रमणकारी का शिकार बन सकता था।"†**

भारत राजनीतिक रूप से विश्रृंखलित था। बाबर अपने "बाबरनामे में लिखता है कि ग़ोरी के समय से लेकर फीरोजशाह के समय तक भारत दिल्ली सुल्तानों के अधीन रहा । जिस समय उसने भारत को जीता यहाँ पाँच मुसलमान बादशाह और उनके दो विरोधी अधिकारी थे। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी थे जो नगण्य थे।

(१) "इनमें प्रथम बादशाह **अफगान** था जिसका राज्य दिल्ली से बिहार तक था । बहलोल लोदी तथा उसके लड़के सिकंदर लोदी ने दिल्ली तथा जौनपुर का राज्य हस्तगत कर लिया था और उसको एक छत्र राज्य बना लिया था।" उसी के उत्तराधिकारी इब्राहीम ने बाबर से युद्ध किया था।

(२) दूसरा राज्य गुजरात का था। यहाँ मुहम्मद मुजफ़्फर शाह द्वितीय राज्य करता था। वह बहुत पढ़ा लिखा और चतुर बादशाह था। धार्मिक बुद्धि का होने के नाते वह कुरान लिखा करता था। उसके पूर्वज बड़ी शान शौकत वाले तथा युद्ध प्रिय रहे । सब से अधिक प्रसिद्ध बुगरा (Begarha) था जिसने सन् १४५८ से लेकर १५११ तक राज्य किया था। मुजफ़्फ़र शाह द्वितीय को जीवन भर युद्ध करना पड़ा और राणा सांगा के

---

† "A congeries of States at the opening of the 16th centnry and likely to be the easy prey of an invader who had the strength and the will to attempt her conquest."

Dr. Ishwari Prasad.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

हाथों हार खानी पड़ी। इसका लड़का बहादुर शाह १५२६ ई० में गद्दी पर बैठा था, जब कि बाबर ने भारत पर आक्रमण किया था।

(३) **बहमनी राज्य**--तीसरा राज्य बहमनी था। यह भी इस समय तक जर्जर हो चुका था। इसके विषय में बाबर का कथन है कि "**इस समय दक्षिण के सुल्तान सर्वथा शक्ति हीन हैं, राज्य के सभी विभिन्न प्रांत शक्तिशाली अमीरों ने दबा लिये हैं और कभी यदि बादशाह को किसी वस्तु की आवश्यकता होती है, तो उसे स्वयं अपने अमीरों से याचना करनी पड़ती है।**" †

इस राज्य के मंत्री महमूद गावाँ के सन् १४८१ में निधन के पश्चात् इस राज्य के दिन बदल चुके थे, और इसके धीरे धीरे पाँच टुकड़े हो चुके थे।

(१) अहमदनगर निज़ामशाही (१४८९--१६३३ ई०)
(२) बीजापुर आदिलशाही (१४८९--१६८६ ई०)
(३) गोलकुंडा कुतुबशाही (१५१२--१६८७ ई०)
(४) बरार इमादशाही (१४८४--१५२७ ई०)
(५) बीदर बरीदशाही (१५२६--१६०९ ई०)

(४) मालवा--मालवे का राज्य फीरोज तुगलक के समय ही स्वतंत्र हो चुका था। मेवाड़ की उन्नति के कारण मालवा की प्रभुता में धब्बा लग गया था। इस समय मालवे का शासक महमूद द्वितीय था। उसके शासन काल में मेदिनीराव का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। जिसका फल यह हुआ कि वहाँ के मुसलमानों को गुजरात के शासक की सहायता माँगनी पड़ी। यद्यपि राणाँ साँगा के कारण उसके प्रभाव को भी नष्ट न कर सके वस्तुतः यह खिल्जियों की ही एक शाखा थी जो बहुत दुर्बल हो चुकी थी।

फिरिश्ता के अनुसार सुल्तान महमूद :--

"**अत्यन्त विनम्र, वीर, न्यायप्रिय और विद्वान था, उसके शासन काल में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सुखी थे और परस्पर सद्व्यवहार से रहते थे, किन्तु उसे जीवन भर लड़ना पड़ा, युद्ध-स्थल ही उसका घर हो गया था,**

---

† "But at the present time the Sultans of the Dakhin have no authority or power left. All the different districts of their kingdom have been seized by their most powerful nobles, when the prince needs anything he is obliged to ask it of his own Amirs."

Babur

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

और उसका अवकाश का समय संसार के अन्य राजाओं का इतिवृत्त पढ़ने में ही जाता था।" †

(५) **बंगाल**---पाँचवाँ राज्य बंगाल का था। इस में नसरत शाह राज्य कर रहा था। उसका पिता भी बंगाल का शासक रह चुका था, जिसने बंगाल का राज्य अपहरण करके हस्तगत किया था। बंगाल में यह कोई नई बात न थी। उसके निवासियों का तो यह कहना था, कि हम तो सिंहासन के भक्त हैं, जो भी उसे हस्तगत करले, वही हमारा स्वामी है, किन्तु नसरत शाह को यह राज्य उत्तराधिकार रूप से ही मिला था। यह हुसेनी वंश का था। यह राज्य आसाम तक फैला हुआ था। उसके पहले शासक को सिकंदर लोदी से लड़ना भी पड़ा था। उसने अन्ततः विवश होकर बिहार के पूर्व तक सीमित रहना स्वीकार किया था।

इसके अतिरिक्त उस समय दो बड़े हिन्दू राज्य थे। सबसे प्रमुख दक्षिण में विजयनगर का हिन्दू राज्य, दूसरा उत्तर में मेवाड़ का राणा साँगा का राज्य था।

(६) **विजयनगर राज्य**---इस समय विजयनगर का शासक कृष्णदेव राय था। यह विजयनगर सम्राटों में सबसे अधिक योग्य और प्रतिभाशाली सम्राट था। इसके शासन काल में विजयनगर ने विशेष उन्नति की थी। इस का संघर्ष सदा इसके पड़ोसी बहमनी वंश से चला करता था। विजयनगर राज्य की नींव १४ वीं शताब्दी में मुहम्मद तुगलक के समय पड़ी थी। यह राज वंश दक्षिण में इस्लाम प्रसार का कट्टर विरोधी था।

एक पुर्तगाली यात्री, जो सन् १५२२ ई० में भारत आया था, कृष्णदेव के विषय में लिखता है :--

"वह एक प्रकाण्ड पण्डित तथा सर्वोत्तम राजा है, जो सदा प्रसन्नचित्त और हँसमुख रहता है, वही एक सम्राट ऐसा है जो कि विदेशियों का सम्मान

---

† "Sultan Mahmud was polite, brave, just and learned, and during his reign his subjects Mohammedans as well as Hindus were happy and maintained a friendly intercourse with each other. Scarcely a year passed that he did not take the fields of battle. His leisure hours were devoted to hearing the histories and and memoirs of different kings of earth."

Firishta.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

करता है, उनका हृदय से स्वागत कर सकता है और उनकी हर बात को पूछता है। चाहे जो भी उसकी व्यवस्था हो, वह बहुत बड़ा शासक है जो सदा न्यायप्रिय रहता है, बस उसे कभी-कभी क्रोध आ जाता है।" †

वस्तुतः विजयनगर का ऐसा कोई शासक नहीं हुआ जिसके समय में उसका बहमनी राज्य से कुछ युद्ध न हुआ हो।

(७) **मेवाड़**--भारत का दूसरा प्रमुख राज्य मेवाड़ था। इसकी राजधानी चित्तौड़ थी। इस समय के शासक का वंश गुहिल से उत्पन्न था। इस वंश में बहुत से प्रतिष्ठित शासक हुए। इनमें सबसे प्रमुख कुम्भा था (१४३३-६८)। राणा साँगा स्वयं एक बहुत बड़ा वीर था, जिसने अपनी वीरता के फलस्वरूप अपनी स्थिति को बहुत ही उच्च बना लिया था। उसने मालवा के शासक के विरुद्ध कई बार सफल प्रयाण किया था, भेलसा सारंगपुर, चंदेरी, रणथम्भौर को जीत लिया था और अपने सहायकों को दे रक्खा था। अम्बर के राजा ने उसे अपना स्वामी मान लिया था। यही नहीं, ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, कालपी, बूँदी, रामपुर तथा आबू के शासक अपने को उसका अधीनस्थ मानते हुए उसका सदैव सम्मान करते थे। टॉड (Tod) के अनुसार १८ हजार घोड़े, ७ बड़े-बड़े शासक, ९ राव, १०४ मुखिया, जो रावत और रावल कहलाते थे, और ५०० युद्ध के हाथी राणा साँगा के साथ युद्धस्थल तक जाते थे। मध्य भारत में तो राणा साँगा बहुत ही प्रबल हो गया था। बाबर तक ने इस बात को स्वीकार किया है कि राणा साँगा ने अपनी तलवार एवं वीरता के फलस्वरूप ही एक आँख, एक बाँह और एक टाँग युद्ध-स्थल में ही गवाँ दी थी। यही राणा साँगा राजपूतों का सिरमौर था।

"राजपूत भी गतिशील, वीर, युद्ध प्रिय, रक्त पिपासु और राष्ट्रीयता से (अनुप्राणित) परिपूर्ण थे। वे युद्ध-स्थल में बड़े से बड़े वीरों के विरुद्ध लड़ने को

---

† "He is the most learned and perfect king that could possibly be cheerful of disposition, and very merry. He is one that seeks to honour foreigners and receives them kindly asking about all their affairs, whatever their condition may be. He is a great rural, and a man of much justice but subject to sudden fits of rage."

Portuguese chronicler 1522.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

तत्पर रहते थे। साथ ही अपनी प्रतिष्ठा के हेतु अपने प्राणों की बाजी लगा देते थे।" †

इसके अतिरिक्त उस समय कुछ अन्य राज्य ऐसे थे जिनकी चर्चा बाबर ने न की थी, पर जो अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग अलापते थे, जैसे खान देश, मालवा, उड़ीसा, सिन्ध तथा काश्मीर।

(८) **खानदेश**--खानदेश का राज्य ताप्ती की घाटी में स्थित था। पहले यह दिल्ली सल्तनत का ही अंग था जो लगभग १४वीं शताब्दी के अंत से स्वतंत्र हो गया था। इसका संस्थापक मलिकरज़ा फारूकी था। गुजरात के शासक इस पर अधिकार करना चाहते थे, अतः उससे इसका सदा संघर्ष होता रहता था। सन् १५०८ ई० में इस राज्य में उत्तराधिकार के ऊपर परस्पर कलह हो गई जिसमें अदित खाँ तृतीय अन्ततः गद्दी पर बैठा। इसके मरने के पश्चात् सन् १५२० ई० में उत्तराधिकार के ऊपर परस्पर उसकी कलह हो गई, जिसमें अदित खाँ तृतीय अन्ततः गद्दी पर बैठा। इसके मरने के पश्चात् सन् १५२० ई० में उसका उत्तराधिकार मुहम्मद प्रथम को मिला। चूँकि यह राज्य दिल्ली से बहुत दूर था, अतः दिल्ली पर इसका प्रभाव बहुत अधिक न पड़ा।

(९) **उड़ीसा**--उड़ीसा में भी एक हिन्दू राज्य था जिस तक अभी इस्लाम का प्रसार न पहुँचा था। वस्तुतः इसने बंगाल के राज्य को दक्षिण की ओर बढ़ने से रोक रखा था किन्तु इसका भी उत्तरी भारत के लिए कोई भारी महत्त्व न था।

(१०) **सिंध**--मुहम्मद तुगलक के राजत्त्व काल में सिंध दिल्ली सल्तनत से अलग हो गया था। १६वीं शताब्दी में इस प्रदेश में दुर्व्यवस्था फैल गई। सुमरा वंश विनाश की ओर जा रहा था। साथ ही उधर कंधार का गवर्नर शाहबेग उसपर अपनी आँख लगाये था। १५२० ई० में शाहबेग ने सुबरास को हरा दिया और सूबे पर कब्जा कर लिया। उसके लड़के शाह हुसैन ने मुल्तान ले लिया। इस समय यहाँ अफ़गानों की शक्ति बहुत प्रबल थी।

---

† "The Rajputs, energetic, chivalrous, fond of battle, and bloodshed, animated by a strong national spirit were ready to meet face to face the boldest veterans of the camp and were at all times prepared to lay down their lives for their own honour."

Tod, the fragment of a soldier.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(११) **काश्मीर**—काश्मीर का राज्य वैसे तो बहुत प्राचीन है पर मध्य-काल में १३३९ ई० में इसका संगठन शाह मिर्जा ने किया था। इसका बहुत प्रमुख बादशाह ज़ैनुल आबदीन (१४२०–७०) था, जो बड़ा ही सहिष्णु था और जिसने संस्कृत तक को प्रोत्साहन दिया था। लोग उसे काश्मीर का अकबर कहते हैं। १४७० ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात् काश्मीर में दुर्व्यवस्था फैल गई जिसका अंत सन् १५४० में हुमायूँ के एक सम्बन्धी मिर्जा हैदर द्वारा किया गया।

इस प्रकार भारत का मानचित्र हमें हेनरी सप्तम के समय में इंग्लैण्ड के मानचित्र की स्मृति दिलाता है। इन खण्डों का एकमात्र निष्कर्ष यह है कि उन दिनों आंतरिक कलह, शिया, सुन्नी, मुग़ल, पठान के झगड़े, हिन्दू-मुसलमान के झगड़े आदि भारत को जर्जर कर चुके थे। दक्षिण में विदेशी जातियों में पुर्तगाली आ चुके थे और उन्होंने भारत के लिए नया मार्ग खोल कर एक नई समस्या खड़ी कर दी थी। १५१० में अल्बुकर्क ने तो बीजापुर का एक भाग गोआ ले भी लिया था। इस प्रकार भारत के इतिहास में इन लोगों ने एक नये अध्याय का सृजन कर दिया था। उत्तर भारत में मालवा तथा गुजरात के शासक राजपूतों से संघर्ष करते रहते थे, जिसकी चर्चा मालवा के साथ की जा चुकी है। १५२४ ई० में मुजफ्फरशाह ने इब्राहीम के चाचा आलम खां को दिल्ली जीतने के लिए जन धन की सहायता दी थी। उसका पुत्र बहादुरशाह अपने पिता से ही असन्तुष्ट था। जिस समय इब्राहीम असीम संकट में था, वह उससे अपने लिए पिता के विरुद्ध सहायता माँगने गया था। दैवयोग से दो ही वर्ष में मुजफ्फरशाह की मृत्यु हो गयी तो बहादुरशाह अपने प्रांत की ओर लौट गया तथा शक्ति संचय करने लगा। इब्राहीम स्वयं विशेष लोकप्रिय न था, उसके सगे सम्बन्धी तथा उप प्रांतपति उसके उग्र स्वभाव के कारण विरुद्ध थे। पूर्व में दरिया खां लोहानी के नेतृत्व में विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया गया था।

यही नहीं पंजाब के गवर्नर दौलत खां लोदी ने, इस भय से कि उसे भी दूसरे अमीरों की भांति बुरे दिन न देखने पड़ें, बाबर को निमंत्रण ही दे रखा था। उधर राणा सांगा का आमंत्रण भी बाबर को मिल चुका था। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय समाज उस समय असंयत, निर्बल तथा असहाय होने के नाते किसी भी विदेशी का प्रतिरोध न कर सकता था। अतः बाबर जैसे आक्रमणकारी को आने का पूरा सुयोग था। फलतः बाबर भारत आया। उसने एक विशाल साम्राज्य की नींव डाली, पर उसका प्रारंभिक जीवन कम संकट-मय न रहा।

बाबर का प्रारंभिक जीवन—पिता की ओर से बाबर तैमूर से ५वीं पीढ़ी में तथा माता की ओर से चंगेज़ खां से १०वीं पीढ़ी में हुआ। इस प्रकार उसकी

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri
नसों में दो पराक्रमशाली वंशों का रक्त संचार हो रहा था। अतः अपने पिता की ओर से वह तुर्क तथा माता की ओर से मंगोल था। बाबर के जीवन का अध्ययन तीन भागों में विभक्त करके किया जा सकता है।

(१) जन्म से लेकर काबुल विजय तक (१४८३ से १५०४ ई०)
(२) काबुल के शासक के रूप में (१५०४ से १५२५ ई०)
(३) भारत में बाबर (१५२५ से १५३० ई०)

बाबर का जन्म तथा उसकी शिक्षा--बाबर का जन्म १४ फरवरी सन् १४८३ ई० (मुहर्रम शुक्रवार ८८८ हिजरी) फरगाना के उमरशेख मिर्ज़ा के घर हुआ। उमर शेख मिर्ज़ा एक महत्त्वाकांक्षी सरदार था। वह फरग़ाना के पड़ोसी प्रदेशों पर अपना अधिकार करना चाहता था। अतः पड़ोसियों से उसका मनमुटाव रहता था। विशेषकर उसका भाई अहमद मिर्ज़ा, जो समरकन्द और बुखारा का स्वामी था, उसका विरोधी था। उमर शेख दुर्भाग्यवश अपने पुत्र की बहुत दिन देखरेख भी न कर सका, पर बाबर एक प्रतिभाशाली बालक था। अतः ११ वर्ष की आयु तक ही उसने फारसी और तुर्की का अध्ययन कर लिया था। यही नहीं उसने समुचित सैनिक शिक्षा भी प्राप्त करना प्रारंभ कर दिया था, साथ ही अपनी पैतृक शासन व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। एक दिन कबूतर उड़ाते समय मकान से गिर जाने के कारण सन् १४९४ ई० में उसके पिता की मृत्यु हो गयी। अतः ११ वर्ष की अल्पायु में ही बाबर पर राज्य का भार आ पड़ा।

बाबर

फरगाना की रक्षा--बाबर सिंहासन पर बैठ ही पाया था कि उसके चाचा ने फरगाना पर आक्रमण कर दिया। बालक होते हुए भी बाबर फरगाना की रक्षा के लिए निर्भीकता से तत्पर हुआ। पहले तो बाबर ने उससे संधि करनी चाही किन्तु आक्रमणकारी का आक्रमण ही विफल हुआ, अतः उसे विवश होकर घर लौटना पड़ा। इसके अनंतर १४९५ ई० में अहमद मिर्ज़ा की मृत्यु हो गई जिससे बाबर ने पूरा पूरा लाभ उठाया और अहमद मिर्ज़ा के साथी महमूद

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

खाँ को भी बाबर ने लौटने पर विवश किया। इस प्रकार उसने वीरता से अपने राज्य की रक्षा की। इस घटना के कारण वह अपने राज्य में लोकप्रिय हो गया।

समरकंद——समरकंद फरगाना से पश्चिम की ओर एक बहुत सुन्दर सा नगर था। उस पर अहमद मिर्जा का अधिकार था। उस पर बाबर के पिता की दृष्टि सदैव लगी रहती थी। अतः बाबर ने १४९६ ई० में समरकंद पर स्वयं आक्रमण किया। पर वह असफल रहा। दूसरे वर्ष उसने समरकंद की विजय का पुनः यत्न किया। वह अपने यत्न में सफल भी हुआ, किन्तु यह विजय अस्थायी रही। इसी बीच फरगाना में विद्रोह उठ खड़ा हुआ और बाबर बीमार पड़ गया। समरकंद से फरगाना पहुँचने के पहले ही उसके विद्रोही उस पर अधिकार कर चुके थे। अतः बाबर समरकंद को वापस लौटा। दुर्भाग्य की बात कि उस समय तक समरकंद भी उसके हाथों से निकल गया। यह देखकर उसने एक स्थल पर लिखा है——

"फरगाना के लिए मैंने समरकंद छोड़ा था और मैं देखता हूँ कि मैंने फरगाना तो पाया नहीं बल्कि उसके पीछे जो हाथ में था उसको भी खो दिया।" †

इस प्रकार सन् १४९८ ई० में वह कहीं का स्वामी न रहा। उसके अधिकार में बस एक छोटी सी जगह खोजेन्द रह गई थी। लगभग १ वर्ष तक उसको बे-घरबार रहना पड़ा। सन् १४९९ ई० में उसने फरगाना पर फिर से अधिकार कर लिया और १५०० ई० में समरकंद को भी ले लिया किंतु उसके ये दिन भी बहुत समय तक अच्छे न रहे। उज़बेगों ने उससे समरकंद छीन लिया। उसके उपरांत फरगाना भी पुनः ले लिया, अतः १५०२ ई० में पुनः वह कहीं का स्वामी न रहा। अन्ततः उसने अपने भाग्य को अन्यत्र आज़माने की ठानी।

काबुल की ओर——कुछ समय तक तो उसे ऐसे भयानक बीहड़ जंगलों में भटकना पड़ा, जिसमें जंगली पशु भी भय खाते थे किन्तु उसने धैर्य न छोड़ा और एक दिन उसके भाग्य ने पलटा खाया। इसी बीच उसने अपनी

---

† "Thus for the sake of Farghana I had given up Samarkand and now found I had lost the one without securing the other."

Mughal Empire in India—*by S. R. Sharma.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

चचेरी बहन आइसा से १५०१ ई० में विवाह किया जिसने आगे चल कर एक पुत्री को जन्म दिया था । इसके अनंतर उसने पुनः सेना एकत्र करना आरम्भ किया और काबुल पर आक्रमण किया। १५०४ ई० में उसे काबुल मिल गया। काबुल में अपनी शक्ति का संचय करके उसने पुनः समरकंद विजय की योजना बनाई। इस समय तक सौभाग्य से सहवानी खाँ की (१५१० ई०) मृत्यु हो चुकी थी। सहवानी खाँ पर फारस के शाह ने आक्रमण किया था। और वह इस युद्ध में मारा गया। अतः बाबर ने शीघ्र ही समरकंद पर आक्रमण किया और समरकंद, बुखारा तथा खुरासान तीनों को फारस के शाह इस्माइल की सहायता से अपने अधिकार में कर लिया । इस प्रकार बाबर को एक विस्तृत साम्राज्य मिला, जिसकी सीमा भारत को स्पर्श करने लगी, पर यह भी एक दिन स्वप्न के समान सिद्ध हुआ। उसका कारण यह था कि शाह ने उसकी जो मदद की थी, उसके लिए वह बहुत बड़ी कीमत भी चाहता था। वह चाहता था कि बाबर शिया हो जाय और उसी के अधीन रहे। बाबर जो स्वयं बादशाह बन चुका था यह कैसे सहन कर सकता था। अतः उसने अपना रुख भारत की ओर मोड़ा और लगभग १२ वर्ष तक अर्थात १५१४ ई० से लेकर १५२५ ई० तक वह काबुल का ही बादशाह रहा।

भारत में बाबर—बाबर ने भारत का सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए भारत पर चार प्रारम्भिक आक्रमण किये। पहली बार सन् १५१६ ई० में उसने आक्रमण किया । इस आक्रमण में उसने पश्चिम के युसुफ़जाइयों पर विजय प्राप्त की, तदनन्तर उसने बाजौर की ओर प्रस्थान किया और अंत में झेलम के समीप भेरा तक आया। भेरा बिना किसी यत्न के उसके अधिकार में आ गया किंतु शीघ्र ही वह वहाँ से लौट गया और उसके जीते हुए समस्त क्षेत्र पुनः स्वतंत्र हो गये । १५१६ ई० में ही पुनः उसने आक्रमण किया। लेकिन मध्य एशिया की स्थिति उस समय खराब थी। अतः उसे शीघ्र वापस जाना पड़ा। १५२० में बाबर ने तीसरी बार आक्रमण किया । इस बार वह बाजौर, भेरा आदि को जीतता हुआ सियालकोट तक आया। सियालकोट पर अधिकार करके वह सैय्यदपुर की ओर बढ़ा, पर इसी समय उसे कन्धार में एक उपद्रव की सूचना प्राप्त हुई और वह तुरंत लौट गया। चौथी बार बाबर ने १५२४ ई० में पुनः भारत पर धावा बोला । इस समय तक उसे पंजाब के गवर्नर दौलत खाँ लोदी तथा दिल्ली सुल्तान के चाचा आलम खाँ लोदी के आमंत्रण मिल चुके थे। उसने आते ही लाहौर तक के प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया। वस्तुतः अफ़ग़ानों ने दौलत खाँ को पहले ही भगा दिया था, पर बाबर ने जाकर उससे लाहौर छीन लिया, तथा उसे अलाउद्दीन को सौंप

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कर चल दिया। इसके उपरान्त वह दिपालपुर की ओर बढ़ा। उसे भी उसने शीघ्र ही अपने अधीन कर लिया। कुछ सेना को पीछे छोड़ कर वह काबुल लौट गया। इधर दौलत खाँ ने सोचा था कि विजय के पश्चात् पंजाब का सारा प्रान्त उसी को मिल जायगा, पर उसकी आशाओं पर पानी फिर गया। अतः उसने अलाउद्दीन को भगा दिया।

१५२६ ई० का भारत-आक्रमण—इस बार बाबर पूरी तैयारी करके भारत की ओर बढ़ा। सबसे पहले उसे दौलत खाँ से सुलझना था, क्योंकि उसने अलाउद्दीन को मार भगाया था। अतः उसने दौलत खाँ को पराजित किया तथा सरहिन्द होते हुए दिल्ली की ओर बढ़ा। उधर इब्राहीम लोदी भी सतर्क था। वह दिल्ली से चलकर बाहर ही बाबर से निबटना चाहता था। अतः दोनों ओर की सेनाएँ पानीपत के सुप्रसिद्ध मैदान में १२ अप्रैल १५२६ ई० को आ डटीं।

बाबर के पास १२००० घुड़सवार और ७०० तोपें थीं। स्वयं बाबर के अनुसार इब्राहीम की सेना में एक लाख व्यक्ति थे। किन्तु यह अतिशयोक्ति ज्ञात होती है। वस्तुतः इब्राहीम की सेना की संख्या ५०००० से अधिक न थी, क्योंकि विजय के पश्चात् स्वयं बाबर को यह संख्या ४०००० बतायी गयी थी। यह संख्या हताहतों की थी। लगभग १५००० पानीपत के मैदान में शेष रह गयी थी। बाबर को अपनी तोपों का बड़ा भरोसा था अतः उसने अपनी सेना के बीच अपनी स्थिति को सम्हाला। उसने बन्दूकचियों को सामने की कतार में खड़ा कर दिया। उसका दाहिना पक्ष पहले से ही पानीपत के गाँव में क्षतरि था।

कुछ दिन तो दोनों सेनाएँ निश्चेष्ट पड़ी रहीं, आखिर २० अप्रैल को युद्ध प्रारम्भ हुआ। दोनों ओर से धावे हुए, पर पहले पहल इब्राहीम की विशाल सेना के सामने बाबर के आदमी मुट्ठी भर मालूम पड़े और उसके सेनापतियों को कोई सफलता न मिली। दूसरे दिन प्रातः से ही घमासान युद्ध आरम्भ हुआ। बाबर ने तुलग़मा नीति का प्रयोग किया, जिसे उसने शैबानी से सीखा था। इस नीति में पहले सामने तथा पीछे दोनों ओर आक्रमण किया जाता है और सामने शत्रु प्रबल पड़ता है, तो तेजी से पीछे हट जाना पड़ता था, और पीछे के आक्रमण में अधिक शक्ति का प्रयोग रहता था। पुनः एक बारगी सामने से आक्रमण किया जाता है। इब्राहीम इससे परिचित न था, अतः वह इस चक्कर में आ गया, उसने आक्रमण किया, तो उसकी फौज कटती गयी, यहाँ तक कि वह भी मैदान ही में वीरगति को प्राप्त हुआ। विजयश्री बाबर

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

के हाथ लगी। कहा जाता है कि लगभग १५००० हज़ार सैनिक खेत रहे। इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

"जब धावा बोला गया तो सूर्य काफी चढ़ चुका था। यह युद्ध दोपहर तक चला, उस समय तक शत्रु का समूल नाश कर दिया गया और मेरी सेना विजयी हुई। ईश्वर की दया से मेरा कार्य सरल हो गया था, और वह शक्तिशाली सेना आधे ही दिन में धराशायी कर दी गयी थी। †

इस प्रकार डा० ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में—

"पानीपत के युद्ध ने भारत की बागडोर बाबर के हाथ सौंप दी। लोदी शक्ति चूर चूर हो गयी और भारत की प्रभुता चग़ताई तुर्कों के हाथ चली गयी।" *

इस युद्ध के पश्चात् बाबर ने तुरंत दिल्ली और आगरे पर अधिकार करने को सेनाएँ भेज दीं, और २७ अप्रैल को दिल्ली की मुख्य मस्जिद में बाबर के नाम का खुतबा पढ़ा गया जिसमें वह प्रथम मुग़ल सम्राट घोषित हुआ। यह "मुगल" शब्द वस्तुत: बड़ी भूल से बाबर को मढ़ दिया गया। वह तो तुर्क था। उसके पूर्वज तैमूर को मुग़लों से घोर युद्ध करना पड़ा था, इन्हीं मुग़लों ने बाबर को भारत की ओर खदेड़ा था।

वस्तुत: वीर लड़ाका और घटना प्रेमी को मुग़ल कहते थे। बाबर भी कम वीर और लड़ाका न था। बाबर ने इस विजय के उपलक्ष्य में अपने

---

† "The sun had mounted spear high when the onset began and the battle lasted till midday when the enemies were completely broken and routed and my people victorious and triumphant. By the grace of Almighty God this difficult affair was made easy to me, and that mighty army in the course of half a day was laid in the dust."
Mughal Empire in India Pt. I--*by S. R. Sharma*. P. 30

* [2] "The battle of Panipat placed the empire of Delhi in Babur's hands. The power of the Lodi dynasty was shattered to pieces and the sovereignty of Hindustan passed to the Chaghtai Turks."

Muslim Rule in India-P. 220

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अधिकारियों तथा सम्बन्धियों को तमाम लूट का माल बाँटा । मक्का और मदीने को भेंटें भेजी गयीं । इस विषय में उसने अपनी उदारता का परिचय यहाँ तक दिया, कि काबुल के हर प्राणी को कम से कम एक चाँदी का सिक्का प्राप्त हुआ । उधर हुमायूँ ने आगरे पर अधिकार कर लिया और बाबर का भव्य स्वागत किया ।

बाबर की सफलता के कारण

१–इब्राहीम की अनुभवहीनता
२–उसका अपने अधिकारियों के साथ दुर्व्यवहार
३–एक सप्ताह का बाबर को आराम
४–बाबर उत्तम सेनानायक
५–तुलग़मा रण नीति का प्रयोग
६–विदेश तथा विधर्मियों से युद्ध

बाबर को मनचाही सफलता प्राप्त हुई, क्योंकि उसका प्रतिद्वन्दी अनुभवहीन सेनानायक था । उसके विषय में लिखा गया है कि "वह अनुभवहीन नवयुवक था, उसकी गतिविधि असावधानी से भरी थी । वह बिना किसी क्रम के कूच कर देता था, और बिना योजना के रुक जाता था । वह बिना सोचे युद्ध आरम्भ कर देता अथवा पीछे हट जाता था ।" †

(२) उसका व्यवहार अपने ही अधिकारियों के साथ अच्छा न था, उसके सगे सम्बन्धी तक उसका पतन चाहते थे । जनता भी उससे ऊब चुकी थी ।

(३) युद्ध के पहिले जो समय मिला वह बाबर के अनुकूल पड़ा । उसमें उसके सैनिकों को अपने पर भरोसा आगया । इसके विपरीत दिल्ली की सेना एकाएक जाकर खड़ी हो गयी थी । उसमें अनुशासन न था । एक ही धक्के से उसमें गड़बड़ी फैल गई और इब्राहीम की विशाल सेना अपने को ही न सँभाल सकी ।

(४) बाबर एक कुशल, एवं अनुभवी सेनानायक था । उसके सैनिक सिद्धहस्त थे । उसने अपनी सेना का संचालन बड़ी ही वैज्ञानिक रीति से किया था । उसकी सेना में अश्वारोहियों के साथ तोपों का सुंदर संतुलन था ।

(५) साथ ही बाबर ने अपनी रणनीति में तुलग़मा नीति का प्रयोग किया, जिसका इब्राहीम को अनुभव ही न था ।

---

†"An inexperienced young man, careless in his movements, who marched without order, halted or retired without method and engaged without fore sight."
Mughal Empire in India P. 31,—*by S. R. Sharma.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(६) फिर यह युद्ध बाबर के लिए विधर्मियों के विरुद्ध था। उसे अपने देश से दूर अपनी सत्ता क़ायम करनी थी, जब कि इब्राहीम को ऐसा कोई लालच न था, न उसकी सेना को ही ऐसी कोई प्रेरणा थी।

जो भी हो, बाबर के दुर्दिन बीत गये। लोदी वंश का सूर्य अस्त हुआ। इब्राहीम के महल में बाबर रहने लगा।

बाबर तथा राजपूत—पानीपत के भीषण युद्ध में विजय पाकर भी बाबर का कार्य समाप्त न हुआ था। उसको अभी उससे भी अधिक शक्तिशाली शत्रु का सामना करना था। ये थे राजपूत। यही नहीं बाबर के सम्मुख अन्य समस्याएँ भी उठ खड़ी हुईं। उसके साथी भी उसे छोड़ना चाहते थे, क्योंकि यह देश उनके लिए गर्म था। उधर कुछ अफगान अभी भी सोचते थे कि दिल्ली सिंहासन पर बाबर से अधिक अधिकार तो उनका पहुँचता है। इधर राणा-साँगा, युद्ध की तैयारी में जुटा था। उसने भी समझ लिया था कि यदि उसे सम्मान से रहना है, तो बाबर से लोहा लेना ही होगा। फिर उसको जमने का अवसर क्यों दिया जाय। जितनी शीघ्रता से दुश्मन को उखाड़ फेंका जाय वही ठीक है। उसके साथ चन्देरी का राजा मेदिनीराय भी था। इसके अतिरिक्त अभी सम्भल में कासिम साँभली, बियाना में निजाम खाँ और मेवात में राजा हसन खाँ मेवाती था। इस प्रकार बाबर को अनेक उलझनें थीं।

आखिर बाबर ने राणा साँगा पर विश्वासघात का आरोप लगाया और कहा कि उसने भारत में उसे बुलाया, पर पानीपत के मैदान में चुपचाप खड़ा देखता रहा। राणासाँगा का कहना था कि बाबर को समझौते के अनुसार आगरे और उसके पश्चिम धौलपुर तथा बियाना पर अधिकार न करना था। अतः इसी समय राणासाँगा ने बियाना के शासक निजाम खाँ पर आक्रमण कर दिया। चूंकि निजाम खाँ स्वयं राणासाँगा से निर्बल पड़ता था, अतः उसने बाबर की सहायता चाही। बाबर ने उसकी सहायता के लिए तुरन्त एक सेना भेज दी, जिससे निजाम खाँ का अधिकार सुरक्षित रहे। इस बात को राणा कैसे सहन कर सकता था। उसने शीघ्र ही बियाना पर आक्रमण कर अपना अधिकार कर लिया। साथ ही हसन खाँ को अपनी ओर मिला लिया। पानीपत के युद्ध में बाबर ने हसन खाँ के पुत्र को बंदी बना लिया था। अतः वह भी बाबर के विरुद्ध था। अन्ततः दोनों पक्षों ने अपनी-अपनी सेनाओं का संचालन किया और खानुआ के युद्ध की पृष्ठभूमि बनने लगी। राजपूतों की एक सेना ने मुगलों पर आक्रमण किया, जबकि वे सीकरी में थे। इस में राजपूत बहुत सफल हुए। उधर बाबर के सैनिकों ने राजपूतों की वीरता की गाथाएँ सुन रखी थीं। उनके दिल वैसे ही दहल रहे थे, इसी समय एक ज्योतिषी की भविष्यवाणी ने उनके उत्साह को

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सर्वथा भंग कर दिया। अतः बाबर को अपना होश संभालना पड़ा। उसने मद्यमान के सारे बर्तन तुड़वा दिये और गजनी से आई शराब में नमक भरवा दिया, खेमे की सारी शराब फिकवा दी। साथ ही उसने एक ओज पूर्ण वक्तव्य दिया। उसने कहा–

"अमीरो और सैनिको! प्रत्येक मनुष्य जो इस संसार में आता है, नाशवान है। जब हम सब चल बसेंगे, केवल एक अनश्वर ईश्वर शेष रह जायगा। जो भी जीवन का आनन्द लेता है, उसको मृत्यु का आलिंगन करना होगा। जो इस सरायरूपी संसार म आता है उसको इस दुःखमय संसार से एक न एक दिन प्रस्थान अवश्य करना होगा। इसलिए सम्मान के साथ मृत्यु का आलिंगन करना अपमान के साथ जीवित रहने की अपेक्षा कहीं बढ़कर है। यदि मैं प्रसिद्धि के साथ मरूँ तो अति उत्तम है, शरीर तो नश्वर है। ईश्वर दयालु है, उसने हमें ऐसी स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है कि यदि हम रण भूमि में गिरे, तो शहीद होंगे और यदि बच गये तो विजयी होंगे। हम खुदा के बन्दे हैं अतः हम सबको एक स्वर से शपथ खा लेनी है, कि हम में से कोई भी युद्धस्थल से मुख मोड़ने की सोचेगा भी नहीं, न भागेगा और उस समय तक शत्रु का संहार करता रहेगा जब तक उसके तन में प्राण हैं।" †

---

† "Noble men and Soldiers! Every man that comes into the world is subject to dessolution. When we are passed away and gone God only survives unchangeable. Whoever comes to the feast of life must, before it is over, drink from the cup of death. He who arrives at the inn of mortality must one day inevitably take the departure from the house of sorrow – the world. How much better is it to die with honour than to live with infamy.

"With fame even if I die I am contented, let fame be mine since body is death's. The most high God has been propitous to us and has now placed us in such a crisis that if we fall in the field we die the death of martyr if we survive we rise victorious, the avengers of the cause of God. Let us then with one accord swear on God's holy word that none of us will even think of turning the face from the warfare, nor desert from the battle and slaughter that ensues till his soul is separated from his body."

Muslim Rule. in India P. 223

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

बाबर के इस वक्तव्य का सैनिकों पर भारी प्रभाव पड़ा। **मुग़ल सेना** में उत्साह भर गया। बाबर ने पुनः युद्ध की खूब तैयारी की और खानुआ पर युद्ध हुआ।

खानुआ का युद्ध—इस युद्ध में बाबर ने अपनी सेना को व्यूह के रूप में खड़ा किया। उसने उसे तीन भागों में विभाजित किया, जिसमें आगे जंजीरों से जकड़ी हुई गाड़ियों तथा तिपाइयों की ओट में तोप तथा बन्दूक चलाने वाले रखे। यह युद्ध १६ मार्च को पुनः प्रारम्भ हो गया।

बाबर ने इस बार बन्दूकचियों को गाड़ियों पर बिठा रखा था, जिससे उनके चलने में सरलता रहे। उधर राणासाँगा के साथ भी ऐसा कोई राजपूत वंश न रह गया था, जिसने उसका साथ न दिया हो, बल्कि मुसलमान सरदार भी साथ थे। पर विजयश्री बाबर के हाथ लगी। राणासाँगा अत्यंत घायल होकर बच सका। इसका फल यह हुआ, कि मुसलमानों के हृदय में राजपूतों से जो भय था वह निकल गया। मुग़ल साम्राज्य की नींव ठोस पड़ गयी। सुल्तान इब्राहीम के लिए जो इतने दिन से काँटा था, वह भी बाबर के मार्ग से दूर हो गया। इसके पश्चात् बाबर को फिर कभी सिंहासन के लिए हथियार न उठाने पड़े विद्रोह दबाने अथवा राज्य विस्तार की बात और थी। उसकी शक्ति का केन्द्र अब काबुल से हट कर दिल्ली होगया।

"इसके अनंतर वह अपने शेष जीवन भर दृढ़ता से भारत में रहा, जिसमें उसने युद्ध किये, राज्य भार सम्हाला, शासन किया और हर बात को पक्का करता रहा।"†

इस विजय के उपरांत भी बाबर शांति से न बैठ सका क्योंकि अभी भी राणासांगा का परममित्र और सहायक चंदेरी का राजा मेदिनीराय शेष था, और वह इस घात में था, कि कब बदला ले, अतः बाबर चन्देरी तक गया। मेदिनीराय से उसने अस्म डालने को कहा, पर वह इस बात पर प्रस्तुत न हुआ। राणासांगा भी उसकी सहायता के लिए कटिबद्ध था। उसने निश्चय किया था, कि चित्तौड़ के अंदर प्रवेश न करूँगा जब तक कि शत्रु से बदला न

---

† "He resolutely remained in India for the rest of his days fighting, governing, administering, striving to put all things upon a sound basis ere death called him away".

Rushbrooke Williams —pp. 156 - 157.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ले लूँगा, पर वह जनवरी सन् १५२८ में इस संसार से ही चल बसा । कुछ इतिहासकारों के कथनानुसार राणासांगा बड़ा चतुर राजनीतिज्ञ न था । उसने बाबर के साथ पहले तो समझौता ही गलत किया था, फिर उसे भी निभा न सका । यदि उसे समझौता तोड़ना ही था तो जिस समय बाबर पंजाब में आकर दौलत खाँ से उलझ रहा था, जिस समय इब्राहीम पानीपत में लड़ रहा था, उसी समय राणासांगा को आगरे पर अधिकार कर लेना था । यदि वह ऐसा करता तो उसे एक तो अपार धन धान्य मिलता और साथ ही उन अफ़गानों का साथ भी पा जाता जो बाबर के विरुद्ध थे । उस समय तो वह राजस्थान में पड़ा रहा और बाबर के विरोध में खड़ होने की सोच ही न सका । फिर जब बाबर ने बियाना पर अधिकार कर लिया, उसके बाद एक माह का उसे और समय न देना था । इस समय में बाबर ने अपनी पूर्ण तैयारी कर ली । राणासांगा कभी भी बाबर की दुर्बलता से लाभ न उठा पाया । उसे विरोध ही करना था तो इब्राहीम का साथ देता और उससे समझौता करता ।

बाबर के लिए इस प्रकार चन्देरी का आक्रमण भी सरल होगया । सन् १५२८ ई० में चन्देरी घेर ली गयी । उसका दुर्ग भी बहुत ऊँचा था । पहले तो राजपूतों के आगे बाबर की एक न चली, पर बाबर ने एक ओर से पहाड़ों को उड़वा दिया, इसे आज काटी घाटी कहते हैं । इसी के बीच होकर उसने दुर्ग में प्रवेश किया । शत्रु के दुर्ग में आते ही स्त्रियों ने भारी संख्या में जौहर रचा और अपने सम्मान को बचाने के लिए हज़ारों ने अग्नि का हँसते हँसते आलिंगन किया । इसका स्थल आज भी चन्देरी में पूज्य और सुरक्षित है । इस प्रकार राजपूतों की रही सही शक्ति का भी अंत हो गया और बाबर की विजय-पताका फहराने लगी ।

राजपूतों में साहस तथा शक्ति की कमी न थी, पर वे पराजित हुए, केवल इसलिए कि एक तो उनका सामना उस जन्मजात सेनानी से था, जो सदा अपने जीवन की बाजी लगा कर लड़ता रहा था, जो योजना बनाकर ही युद्ध करता था । फिर जिसके पास तोप और अश्वारोहियों का सुप्रबंध था, जिसका राजपूतों में अभाव था । बाबर की तुलग़मा की नीति भी राजपूत न समझ सके, उन्हें इब्राहीम की हार से कुछ सीख ले लेनी थी ।

राजपूतों की हार के कारण

(१) बाबर का सैनिक संगठन

दूसरे बाबर को अपने वक्तव्य तथा निजी सम्पर्क और व्यक्तित्त्व से यह लाभ था कि हर सैनिक उसकी बात पर जान देता था । इसके विपरीत भारतीय सेना थोड़ी ही गड़बड़ी में तितर बितर हो जाती थी । बाबर विदेश में पड़ा था, उसे अपने

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(२) बाबर का व्यक्तित्व तथा अनुभव
(३) मुग़ल सेना में धार्मिक भावना
(४) बाबर को समय मिलना
(५) सलादी का विश्वासघात
(६) राजपूतों की योजनाहीनता
(७) राणासाँगा व मेदिनीराय की ग्रदूरदर्शिता
(८) भारतीयता अथवा राष्ट्रीयता की भावना न होकर अपना अपना स्वार्थ

जीवन और देश की चिन्ता न थी। वह तो निश्चय कर चुका था, कि जीवित रहना है तो सम्मान के साथ। इनका उसने पूरा लाभ खानुआ के युद्ध में उठाया। तीसरे वह मुग़ल सेना को विधर्मियों के विरुद्ध लड़ा रहा था। बाबर सम्पूर्ण शक्ति लगा कर युद्ध करते हुए भी धर्म युद्ध की दुहाई दे रहा था। इस बात में इस्लाम धर्म वाले सदा कटते मरते रहे थे। चौथे बाबर को राणा साँगा ने तैयारी करने का समय दे दिया, जिसमें उसने अनेक खाइयाँ तैयार करा लीं। फिर सलादी जो राजपूतों की आंतरिक बातों को जानता था जाकर बाबर की ओर मिल गया, इसमें भी राणासाँगा ग्रौर मेदिनीराय की अदूरदर्शिता थी। वे युक्ति से समय पर काम न ले सके। उनकी अपनी कोई योजना पूर्व से निश्चत न थी। बाबर की सफलता बहुत कुछ उसकी तोपों और बन्दूकचियों पर निर्भर थी। राजपूतों के पास अच्छी तोपों और सधे बन्दूकचियों का अभाव था। अन्त में कहना न होगा कि भारतीय नरेश किसी राष्ट्रीयता की भावना को लेकर एक न हुए थे। वे कभी भी एक दूसरे की प्रभुता को न देख सके और सर्वदा अपने अपने स्वार्थ की सिद्धि में संलग्न रहे। इसके विपरीत विदेशी के सम्मुख कोई चारा न था। उसे तो दूर देश में ग्राकर ग्रपने सर्वस्व की बाज़ी लगा देना थी। बाबर ने नाटकीय ढंग से ग्रपना मद्यपान छोड़ अपना निश्चय सैनिकों को बताकर युद्ध भावना को ग्रौर भी दृढ़तर कर दिया।

वक्सर अथवा घाघरा का युद्ध (६ मई १५२६ ई०)––इन युद्धों के उपरांत भी बाबर के शत्रु भारत में शेष थे। इब्राहीम का भाई महमूद लोदी इनमें प्रमुख था। उसने बिहार में शक्ति संचय कर ली थी और उनके अमीर भी उसके साथ थें। बाबरने पहले अपने बेटे अस्करी को भेजा, थोड़े समय पश्चात् स्वयं भी उसके पीछे गया। बाबर के आने का समाचार सुनकर शत्रु तो और पूर्व की ओर चला गया और जब बाबर इलाहाबाद, चुनार तथा बनारस होकर निकला तो अनेक अफ़गान अमीरों ने उसका सम्मान किया। उधर महमूद ने जाकर बंगाल में शरण ली। बंगाल के शासक नसरत शाह ने बाबर

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

को बचन दे रखा था कि वह उससे कभी वैर न करेगा, पर उसकी सेना न लोदी का साथ दिया। आखिर दोनों का बक्सर पर युद्ध हुआ। बाबर ने अपनी तोपों से पूरा पूरा लाभ उठाया और नसरत शाह को संधि करने पर बाध्य किया। निश्चय हुआ कि दोनों एक दूसरे की स्वतंत्रता का सम्मान करेंगे।

बाबर के अंतिम दिन--इस समय तक भारत में बाबर को ४ वर्ष हो गये थे। जब कभी उसके पास अपनी जन्मभूमि की कोई चीज़ आती थी, तो वह गद्गद् हो जाता, कभी कभी रो पड़ता। उसने ख़्वाजा ख़ाँ को एकबार लिखा, कि भाई मैं वह सुन्दर देश कैसे भूल सकता हूँ। मैं शीघ्र से शीघ्र घर आना चाहता हूँ। एकबार वह लाहौर तक गया। वहाँ वह अपने पुत्र कामराँ से मिला। उसने अपने सबसे छोटे पुत्र हिन्दाल को काबुल से बुला रखा था। साथ ही हुमायूँ उज़बेगों को न दबा पा रहा था, अतः बाबर चिंतित था। इन भावनाओं में भूला बाबर यह न जानता था कि उसने विजय पर विजय प्राप्त की, पर कोई उस पर भी विजय पाना चाहता है। यह तो सर्व विदित है कि उसका प्रिय पुत्र हुमायूँ एक बार बीमार पड़ा, तो उसने उसके स्थान पर स्वयं मृत्यु का आलिंगन करना चाहा। धीरे-धीरे ईश्वर ने उसकी सुनी, उसका स्वास्थ्य गिरने लगा, हुमायूँ अच्छा होने लगा। इसी बीच उसने अपने अमीरों को बुला कर कहा--"**देखो, बहुत दिन पहले से मेरी इच्छा थी कि मैं अपना सिंहासन हुमायूं को सौंप दूं, आज उसका समय आ गया है। मेरी अन्य कामनाएँ ईश्वर ने पूरी कर दीं, यही एक कामना रह गयी है। अब मेरा समय निकट आ गया है। तुम सबको मैं आज्ञा देता हूँ कि हुमायूँ के स्वामिभक्त बने रहना, और वह भी तुम्हारे साथ भला व्यवहार करेगा।** फिर हुमायूँ की ओर मुड़ कर वह बोला,

"देखो! तुम अपने भाइयों के साथ कोई बुराई न करना, चाहे वे इसी के लायक क्यों न हों।" †

अन्ततः बाबर इस असार संसार में अपना यश छोड़ कर चल बसा।

बाबर का चरित्र--मुग़ल साम्राज्य का संस्थापक, शक्ति का स्रोत, रण-कुशल, वीर सेनानी, बाबर केवल चार वर्ष के अन्दर इतिहास का सृजन कर गया। उसमें मानसिक तथा सैनिक बल ही न था, बल्कि शारीरिक बल भी इतना था कि दो आदमी अपने अगल बगल दबा कर किले की दीवार

---

† "Do nought against your brothers even though they deserve it."

Mughal Rule in India.—P. 54.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पर दौड़ सकता था। उसने कोई नदी ऐसी पार नहीं की जिसे वह तैर कर पार न कर सकता था। गंगा के विषय में उसने लिखा है कि इसे मैं ३३ श्वास में पार कर लेता हूँ। यही नहीं कभी कभी वह ८० मील तक एक ही दिन में घोड़े की सवारी पर रहता था। **"बाबर में उच्च निर्णय शक्ति, महत्त्वाकांक्षा, विजय की कला, शासन निपुणता, लोगों को दया व दान से भरा पूरा करने का गुण, प्रजा पर नरम शासन करना, अपने सैनिकों के हृदय को जीतने की क्षमता तथा न्याय शीलता थी। †**

स्मिथ का कथन है, "बाबर अपने समय का एशिया का सबसे अधिक मेधावी शासक था। वह किसी भी समय तथा युग के राजाओं में उच्च स्थान का अधिकारी था।" *

जबकि हैवेल का कथन है :—

"अपने चित्ताकर्षक व्यक्तित्त्व, कलात्मक स्वभाव तथा रसिक चरित्र के आधार पर इस्लाम के इतिहास म वह मनोहर मूर्ति था।" ‡

यही कारण था, कि वह काबुल से बंगाल तक का स्वामी बन गया, जबकि उसको न जाने कितने दुर्दिन देखने पड़े थे। लेनपूल ने उसे मध्य एशिया और भारत, तैमूर और अकबर, आक्रान्ता शासक और प्रजारंजक साम्राज्यवादी के बीच की कड़ी कहा है।

बाबर : एक व्यक्ति—एक व्यक्ति के रूप में बाबर एक आदर्श पुत्र तथा पिता था। उसने सदा अपने पिता का आदेश माना, और अपने पुत्रों से स्नेह किया, यहाँ तक कि अपने पुत्र के लिए उसने अपना जीवन दे दिया। साथ ही वह अपने मित्रों का तथा अन्य सम्बन्धियों का पूरा पूरा ध्यान रखता था।

---

† "Lofty judgement, noble ambition, the art of victory, the art of government, the art of comferring prosperity upon his people, the talent of ruling mildly the people of God, ability to win the hearts of his soldiers, and love of justice."

Mughal Empire in India–*by S. R. Sharma*–P. 45

* "Was the most brilliant Asiatic prince of his age and worthy of a high place among the sovereigns of any age or country."

V. *A. Smith*—P. 321.

‡ "His engaging personality, artistic temperament, and romantic career make him one of the most attractive figures in the history of Islam."

Havell—Aryan rule in India—P. 420

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उसमें उच्च कोटि का नैतिक बल था। इसका प्रमाण हमें खानुआ के युद्ध से प्राप्त होता है। एक साहसी व्यक्ति होने के नाते वह भयानक से भयानक कार्य में हाथ डाल देता था। उसमें अपार बल था। कभी भी वह किसी कठिनाई से विमुख नहीं हुआ।

बाबर कला प्रेमी था। प्रत्येक वस्तु का सूक्ष्मता से निरीक्षण करता था। उसने अपनी आत्मकथा लिखकर ही अपने को अमर कर दिया। उसमें प्रकृति के अत्यंत सुंदर वर्णन हैं। उसमें हमें बाबर के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप मिलती है। इसके अतिरिक्त बाबर में सदा दया का भाव रहा। जो कुछ उसमें कर्कशता थी, वह उस युग की माँग थी। अपने अमीरों तथा भाइयों के विद्रोह में उसने सदा मनुष्यता का व्यवहार किया।

बाबर : एक विद्वान—एक विद्वान की दृष्टि से हम बाबर को उच्च स्थान पर पाते हैं। मिर्ज़ा हैदर के अनुसार तुर्की कविता में वह अमीरअली शीर के बाद आता है। उसने अत्यंत सरल और ललित तुर्की में एक दीवान लिखा था। उसने ऐसी शैली को जन्म दिया जिसे मुबैयान कहते हैं। यही नहीं उसने तुर्की में पिंगल शास्त्र का भी एक ग्रंथ लिखा। उसे ललित कलाओं में अनुराग था। प्राकृतिक सौन्दर्य का वह विशेष प्रेमी था। स्वयं एक साहित्यिक होने के नाते वह अन्य विद्वानों का बड़ा आदर करता था। उसका बाबरनामा आज भी अमर है। आशीर्बादीलाल के शब्दों में "**वैसे तो बाबर में एक विद्वान की सभी विशेषताएँ विद्यमान थीं, फिर भी उसे एक सैनिक विद्वान कहना होगा।**" इसमें सन्देह नहीं कि वह सैनिक पहले था विद्वान बाद में।

बाबर : एक धार्मिक—बाबर एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था, पर उसकी धार्मिक नीति बड़ी उदार थी। उसने कभी अपने ही धर्म के दूसरे फिरकों से शत्रुता न बर्ती। वह फारस के शाह इस्माइल का मित्र था। उसका ईश्वर में अटल विश्वास था। अपनी विजय के पश्चात् वह परमात्मा का शुक्र मनाता था, मक्का मदीने तक तुहफ़े भेजता था। उसने खानुआ के युद्ध में धार्मिक भावना से पूर्ण वक्तव्य देकर ही विजय पाई। इसके अनन्तर अयोध्या में एक मंदिर के स्थान पर मस्जिद बनवाना उसकी धार्मिक कट्टरता का ही प्रमाण है। पर अन्य दिल्ली सुल्तानों की तुलना में वह फिर भी हिन्दुओं के प्रति उदार था।

बाबर : एक सेनानायक—बाबर के चरित्र से सेनापतित्व के गुण को निकाल देने पर उसका बहुत सा इतिहास ही न रहेगा। स्वयं एक योग्य अश्वारोही (घुड़सवार), एक सही निशानेबाज, तेजी से तलवार चलाने वाला बाबर प्रत्येक सिपाही का हृदय जानता था। वह जन्मजात सेनानायक था। वह अपनी ही नहीं, अपने शत्रु की भी शक्ति का सही अनुमान लगा लेता था, फिर

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उसकी अचल इच्छा शक्ति (will power) उसकी सदा इस ओर सहायक रही। न जाने कितनी बार उसे मुँह की खानी पड़ी, पर वह कभी हताश न हुआ। उसने सदा यथा-अवसर बुद्धि और दूरदर्शिता से काम लिया। कभी भी उसने अपने सैनिकों द्वारा किसी निरपराध को सताने न दिया। बाल्यकाल से ही उसका जीवन सेना में बीता, अतः वह एक ओर अपनी सेना से स्नेह करता था, दूसरी ओर उनमें कड़ा अनुशासन रखता था। उसकी समस्त सफलता उसके सैन्यसंचालन पर ही निर्भर थी। बाबर **"युद्ध क्षेत्रों की हार, साहसी तथा घुमक्कड़ी और विभिन्न वीर जातियों से सम्बंध स्थापित करने के अनुभवों पर एक उच्च कोटि का सेनानायक बन सका था।"**

बाबर : एक शासक——बाबर का साम्राज्य वक्षु (Oxus) नदी से बंगाल तथा चन्देरी तक फैला था। वस्तुतः उसके पास इतने आदमी अपने न थे, कि हर परगने का प्रबन्धक रखता। दूसरे उसको सदा युद्ध करते ही गया; फिर भी उसकी मंशा सदा शांति और सुव्यवस्था रखना था, किंतु शेरशाह और अकबर की शासन कुशलता उसमें न थी। वह दण्ड दे सकता था। वह यातायात को ठीक रख सकता था। उसने सड़कों को एक सा रखने का विशेष ध्यान दिया। चूँकि वह कला प्रेमी था, अतः उसने अनेक उद्यान भी बनवाये। जिनमें वह बहुत सारा समय व्यतीत करता था। उसको भारत से लगभग ५२ करोड़ की आय थी। इस देश को बाबर ने सोने और चाँदी का देश कहा है। अतः उसे प्रबन्धक के रूप से वह संकट नहीं उठाने पड़े जो तुगलक को उठाने पड़े। प्रबन्धक के रूप में उसने पुरानी संस्थाओं को यथावत् रखा। उसमें कोई परिवर्तन न किया। उसने लोदियों की शासन व्यवस्था को ही बहुत कुछ अपनाया। उसका समस्त साम्राज्य सामंतों और जागीरदारों में विभक्त था, पर वह अपने कोष को कभी भर न पाया। यही कारण है कि हुमायूँ को दर-दर भटकना पड़ा।

रशब्रुक विलियम इस विषय में लिखते हैं कि——

"बाबर ने अपने पुत्र के लिए एक ऐसा साम्राज्य छोड़ा, जो केवल युद्ध-कालीन परिस्थितियों में ही सुसंगठित रह सकता था। शांति काल के लिए वह सर्वथा निर्बल और निकम्मा था।"

अंत में कहना न होगा कि इलियट के अनुसार——

"यदि उसकी शिक्षा यूरोप में हुई होती, तो वह अच्छे स्वभाव का वीर, दयालु, बुद्धिमान तथा स्पष्टवादी होने के नाते हेनरी चतुर्थ के समान होता।"

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कुछ प्रमुख तिथियाँ

(१) बाबर का जन्म	१४ फरवरी १४८३ ई०
(२) बाबर का सिंहासनारोहण (फरग़ाना)	१४६४ ई०
(३) बाबर का समरकंद लेना	१४६७ ई०
(४) शैबानी द्वारा समरकंद छीनना	१५०१ ई०
(५) फरग़ना हाथ से जाना	१५०३ ई०
(६) बाबर का काबुल लेना	१५०४ ई०
(७) हुमायूँ का जन्म	६ मार्च १५०८ ई०
(८) बाबर का भारत प्रवेश	१५१६ ई०
(९) उसका सरहिन्द और लाहौर पर आक्रमण	१५२३ ई०
(१०) पानीपत का प्रथम युद्ध	अप्रैल १५२६ ई०
(११) खानुआ का प्रथम युद्ध	मार्च १५२७ ई०
(१२) चन्देरी की प्राप्ति	१५२८ ई०
(१३) घाघरा का युद्ध	१५२९ ई०
(१४) हुमायूँ तथा बाबर अस्वस्थ	१५३० ई०
(१५) बाबर का देहावसान	२६ मार्च १५३० ई०

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) "बाबर मुग़ल राज्य का निर्माता था।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

(२) बाबर ने अपनी आत्मकथा तुज़के बाबरी में भारत की तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक दशाओं का क्या विवरण दिया है ?

(३) बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक परिस्थिति क्या थी ?

(४) "बाबर एक जन्मजात सैनिक था, पर राज्य को दृढ़ बनाने में असफल रहा।" इसकी पुष्टि कीजिये।

(५) मुगल-अफ़गान संघर्ष का वर्णन करिये।

(६) "बाबर भाग्य से एक सिपाही था, राज्य का निर्माता नहीं किन्तु उसने राज्य की नींव डाली जिसे उसके नाती अकबर ने दृढ़ किया।" इसकी विवेचना कीजिये।

(७) भारत में बाबर की उपलब्धियों (achievements) का वर्णन कीजिये।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद २

हुमायूँ (१५३०–५६ ई०)

हुमायूँ

हुमायूँ का प्रारंभिक जीवन–"भाग्यशील" हुमायूँ बाबर का सबसे बड़ा लड़का था। उसका जन्म ६ मार्च सन् १५०८ ई० को काबुल में हुआ था। उसके तीन भाई और थे कामराँ, अस्करी तथा हिन्दाल। हुमायूँ की माता का नाम महिम बेगम था, जो सम्भवत: शिया थी। बाबर ने हुमायूँ की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया, उसको शीघ्र ही तुर्की, अरबी और फारसी भाषा का अच्छा ज्ञान हो गया। यही नहीं उसने गणित, दर्शन तथा ज्योतिष शास्त्रों का भी अध्ययन किया था। बाबर ने उसे सैनिक शिक्षा भी दिलवाई। हुमायूँ ने युद्धों में अपने पिता का सदा साथ दिया। कम से कम भारत के तो सभी युद्धों में वह सम्मिलित रहा। पानीपत के युद्ध में वह मुग़ल सेना के दक्षिण भाग को सम्हाले था, उसके पश्चात् यह आगरे की विजय के लिए भेजा गया। उसी ने ग्वालियर के राजा विक्रमादित्य को पराजित किया। बाबर इसीलिए उससे अत्यंत प्रसन्न था। उसने हुमायूँ को कोहनूर हीरा, अपार धन और सम्भल की जागीर दे रखी थी। किंतु हुमायूँ बदख्शाँ के विद्रोहों में सफल न हो सका था। वहाँ से वह बाबर के बीमार पड़ने पर भारत लौटने को विवश हुआ। इस विषय में इतिहासकारों में विवाद है। एर्सकाइन तथा श्रीमती बेवरेज के अनुसार हुमायूँ अपनी माँ के कहने के अनुसार चला आया था। वह चाहती थी कि उसके पति की बीमारी में उसका पुत्र राजधानी में रहे। डा० एस० के० बनर्जी के कथनानुसार बाबर तीस साल तक युद्ध करते करते थकित हो गया था। वह चाहता था कि अपने जीवनकाल में ही हुमायूँ को सिंहासन देकर छुट्टी ले ले। जो हो जिस समय वह सम्भल की जागीर का प्रबन्ध कर रहा था बीमार हो गया, पर बाबर की पुकार में बल था, ईश्वर ने, कहते हैं, उसे बुला लिया और हुमायूँ को छोड़ दिया। इस घटना में कहाँ तक ऐतिहासिकता है इसका निर्णय भविष्य की खोज पर निर्भर है।

हुमायूँ का राज्यारोहण––बाबर का हुमायूँ से कहना था कि––**"यह उचित अवसर है, जब तुम्हें कठिनाइयों का सामना करना है, वीरता दिखानी**

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

है, अपना उत्तरदायित्व निभाने में चूक मत करो, आलस्य और आराम राजत्व के शत्रु हैं।" †

घरेलू षड्यंत्र के भय से ही हुमायूँ राजधानी लौटा था । षड्यंत्र का कारण यह था कि कुछ लोग मेंहदी ख्वाज़ा को गद्दी पर बिठाना चाहते थे। क्योंकि प्र० मंत्री खलीफ़ा निजामुद्दीन अली के अनुसार राज्यभार सम्हालने के लिए किसी शक्तिशाली व्यक्ति की आवश्यकता थी । मेंहदी ख्वाजा बाबर का बहनोई था। वह वस्तुतः बहुत योग्य शासक तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति था। दूसरी ओर हुयायूँ में बड़प्पन के लक्षण ही न थे । पर मेंहदी ख्वाज़ा के मुँह से कहीं बात ही बात में ये शब्द निकल पड़े, कि यदि मैं राजा बना तो धोकेबाज़ों की खाल खिचवा लूंगा। बस षड़तंत्र का भंडा फूट गया और हुमायूँ को सिंहासन मिला। वह ३० दिसम्बर १५३० को (बाबर की मृत्यु के चार दिन पश्चात्) गद्दी पर बैठा।

हुमायूँ की प्रारंभिक कठिनाइयाँ

हुमायूँ की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ
(१) साम्राज्य में अनेकता
(२) असंगठित शासन व्यवस्था
(३) रिक्त राजकोष
(४) अफ़गानों का विद्रोह

(१) हुमयूँ के लिए यह राजसिंहासन फूलों की शय्या न था । बाबर को अपनी सत्ता पूर्णतया संगठित करने का अवसर ही न मिला था । अतः हुमायूँ **"एक अजनवी तथा घातक की भाँति देश में आया था, उसने सेनाओं को हरा कर शासक राजवंश की शक्ति ही क्षीण करदी थी, किंतु फिर भी जो कुछ अधिकार उसका अथवा उसके राजवंश का था, वह केवल सैनिक था।" !**

† " This is the time for you to court danger and hardship and show your valour in arms. Fail not to quit yourself strenuously to meet every emergency. Indolence and ease agree ill with Kingship."

Mughal Empire in India. P. 60

! "Had entered the country as a stranger and spoiler, he had defeated the armies and broken the power of the reigning dynasty but the only hold which he or his race had upon the people of India was military force."

Erskine.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(५) राजदूतों का पुनर्गठन
(६) सगे सम्बंधियों का विश्वासघात
(७) हुमायूँ की दुर्बलताएँ
(८) बहादुरशाह के षड्यंत्र
(९) उत्तराधिकार नियम का अभाव

अभी राजपूतों में शक्ति शेष थी। भाइयों में परस्पर गद्दी के लिए ही संघर्ष था और तलवार की धार पर ही इसका निर्णय होना था। फिर हुमायूँ की सेना भी तो विश्वसनीय न थी। इसमें अनेक जाति और स्वार्थ के लोग भरे थे। कुछ उज़वेग थे, कुछ मुग़ल, कुछ चग़ताई, तुर्क तथा अन्य भारतीय थे। अनेक अमीर ऐसे थे जिनसे हुमायूँ को सुलझना था।

(२) सबसे बड़ी बात तो यह थी कि यद्यपि अफ़ग़ानों को पानीपत तथा घाघरा के युद्धों में हराया जा चुका था। पर वे अभी यह न भूले थे कि वे इस देश के स्वामी थे, और पुनः स्वामी बन सकते हैं। फिर वे इतने अधिक थे, कि अनेक मारे जाने पर भी कमी का अनुभव न करते थे। वे इस युद्ध और संघर्ष को राष्ट्रीयता का स्वरूप देने की चेष्टा कर रहे थे। इस पर उन्हें शेरखाँ जैसे योग्य पुरुष का सेनापतित्व प्राप्त हो चुका था। अन्ततः वही मुगलों को एक बार भारत से भगा भी सका।

(३) **रिक्तराजकोष** :—बाबर तथा हुमायूँ दोनों ने मनमाने पुरस्कार बाँटे पर वे आय प्राप्त करने के साधन न जुटा सके, क्योंकि दोनों सदा किसी न किसी उलझन में पड़े रहे। उसका फल राजकोष का रिक्त होना था।

(४) **राजपूतों का पुनर्संगठन** :—यद्यपि राणासांगा की पराजय तथा मृत्यु से राजपूत-शक्ति को बड़ा धक्का लगा था, पर वे अभी समूल नष्ट न हुए थे।

(५) **बन्धु विरोध**—बाबर की मृत्यु के समय कामराँ काबुल में था। उसने काबुल का भार अस्करी को देकर भारत की ओर कूच किया। उसने घोषित किया कि वह अपने भाई को बधाई देने आ रहा है। हुमायूँ उसकी मंशा समझ गया। उसने कामराँ के पास खबर भेजी कि उसको आने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं तो पहले ही पेशावर और लमग़ान काबुल की जागीर में मिलाने को तै कर चुका हूँ। पर कामरान उसकी बात से संतुष्ट न हुआ। वह चला आया और उसने लाहौर पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार समस्त पंजाब उसके अधिकार में आ गया। हुमायूँ इस पर भी शांत रहा, उसने यह भारी भूल की कि कामराँ की शक्ति बढ़ जाने दी। पर हुमायूँ अपने पिता की आज्ञा का पालन करना अधिक श्रेयस्कर समझता था। इसके अतिरिक्त उसने

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अस्करी को सम्भल और हिन्दाल को अलवर के प्रदेश दे दिये थे। इन दोनों ने हुमायूँ के सामने कोई समस्या उत्पन्न नहीं की। पर प्रसिद्ध इतिहासकार लेनपूल के शब्दों में **"सदैव दुर्बल तथा कपटी अस्करी तथा हिन्दाल केवल इस दृष्टिकोण से आपत्तिजनक थे कि कोई महत्वाकांक्षी उनको अपना अस्त्र बना कर हुमायूँ के विरुद्ध प्रयोग कर सकता था।"**

(६) हुमायूँ की दुर्बलताएँ—हुमायूँ स्वयं अपना शत्रु था। उसमें किसी परिस्थिति को अध्ययन करने की क्षमता न थी। न उसमें भारी सैनिक योग्यता अथवा नीति निपुणता ही थी। फिर वह नशे का दास था। उसमें अपने पिता की भाँति प्रबल इच्छा शक्ति न थी। लेनपूल के शब्दों में—

"वह लगातार यत्न करने में असमर्थ था। जिस समय उसका शत्रु दरवाजे पर दहाड़ता था, वह थोड़ी सी विजय के पश्चात् ही अपने हरम में आनन्द मग्न हो जाता, अथवा कुछ अफ़ीमचियों के बीच अपना बहुमूल्य समय नष्ट करता था। अपने स्वभाव से दयालु होनें के नाते दण्ड के भागी को जब उसे दण्ड देना था तो वह मुक्त कर देता था। फिर वह इतना हृदय का हल्का तथा समाज प्रिय था कि जब उसे लड़ना था, तो मौज करता था। †

(७) बहादुरशाह का षड्यंत्र—हुमायूँ का सब से बड़ा शत्रु गुजरात का शासक बहादुरशाह था। वह तीव्र गति से अपनी शक्ति का संचय कर रहा था। १५३१ में उसने मालवे पर चढ़ाई कर दी थी और मालवा जीत लिया गया था। खानदेश, अहमद नगर और बरार के शासकों को उसने दबा रखा था। पुर्तगाली भी उससे भय खाते थे। उसे कर दान करते थे। यही नहीं एक बार वह चित्तौड़ के राणा के विरुद्ध भी लड़ पड़ा और राणा को नीचा देखना पड़ा था। इसके अतिरिक्त इब्राहीम लोदी का चाचा आलम खाँ उसकी शरण में पड़ा था। वह चाहता था कि बहादुर शाह की सहायता से चग़ताइयों को भारत के बाहर भगा दे। कुछ मुग़ल भी भाग कर उसकी शरण में जा चुके थे, वे दिल्ली की सभी खबर उसे दे देते थे।

(८) अंत में कहना न होगा, कि मुगलों में उत्तराधिकार का कोई

† "He was incapable of sustained effort and a moment of triumph would busy himself in his harem and dream away the precious hours in the opium eaters paradise whilst his enemies were thundering at the gate, Naturally kind he forgave when he should have punished, light hearted and sociable he revelled at the table when he ought to have been in the saddle."

Lane Poole.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

नियम न था। अतः आये दिन परस्पर कलह होती थी। बस तलवार ही अधिकारों की निर्णायक थी। हुमायूँ जैसे व्यक्ति के लिए इस प्रकार चारों ओर आपत्तियाँ ही आपत्तियाँ थीं।

हुमायूँ की प्रारम्भिक सफलताएँ

(१) **कालिंजर आक्रमण १५३१ ई०**—हुमायूँ का पहला लक्ष्य कालिंजर का दुर्ग बना। यह दुर्ग बुन्देलखण्ड के जिला बाँदा में है। कहा जाता है कि कालिंजर का राजा अफ़गानों का मित्र था। यद्यपि किले का घेरा कई महीनों तक चला पर हुमायूँ को अपार धन धान्य लेकर ही संतोष करना पड़ा। यह भी कहा जाता है कि इस आक्रमण में ही हुमायूँ की मूर्खता थी, क्योंकि वह वहाँ के राजा को हराने में असमर्थ था। उस पर विजय की जा सकती थी यदि हुमायूँ किसी कूटनीति से काम लेता।

(२) **अफगानों पर विजय १५३२ ई०**—अफ़गान पूर्व में इतने प्रबल हो गये थे कि हुमायूँ को कालिंजर का दुर्ग छोड़ कर आना पड़ा। महमूद लोदी के नेतृत्व में बिहार के अफ़गान जौनपुर की ओर चल पड़े थे। वे बाराबंकी जिले तक आ चुके थे। उन्होंने जौनपुर के समीप का प्रदेश अपने अधीन कर लिया। हुमायूँ ने उनको दोरहा के युद्ध में पराजित किया था, अतः वे बिहार की ओर पुनः भाग गये।

(३) **चुनार का घेरा १५३३ ई०**—अफ़गानों को पराजित करने के पश्चात् हुमायूँ ने चुनार का दुर्ग जा घेरा। यह दुर्ग शेरखाँ के अधिकार में था। इसका घेरा सितम्बर से दिसम्बर सन् १५३३ ई० तक रहा। इसके अनन्तर शेरखाँ ने एक चाल चली। वह यह जानता था कि हुमायूँ अधिक समय तक उसकी ओर नहीं रह सकता, क्योंकि उसने सुन रखा था कि पश्चिम में बहादुरशाह ने माण्डू पर अधिकार कर लिया है और आगरे पर आक्रमण करने का विचार कर रहा है। अतः शेर खाँ ने हुमायूँ के पास प्रस्ताव भेजा कि मैं आपका परम सेवक हूँ। आप दुर्ग लेकर भी किसी को देंगे ही, अतः मेरे ही पास इसे बना रहने दीजिये। मैं अपनी सच्चाई के प्रमाण स्वरूप अपने पुत्र कुतुब खाँ को आपके समीप भेजता हूँ। हुमायूँ को भी इस समय तक पश्चिम में अशांति के समाचार मिल चुके थे। अतः उसने खुशी-खुशी उसका प्रस्ताव मान लिया और आगरे लौट गया। इस प्रकार शेरखाँ को अपनी शक्ति संगठित करने का पूरा-पूरा अवसर मिला। हुमायूँ के हक में उसे इस प्रकार छोड़ना महान् भूल थी।

(४) **मुहम्मद जमां तथा सुल्तान मिर्जा**—मुहम्मद जमां बाबर के साथ बल्ख से आया था, पर इस समय उसने भी विद्रोह का झंडा खड़ा किया।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उसको शीघ्र ही दबा दिया गया और बियाना के किले में बन्दी कर दिया गया। उसको अन्धा करने की आज्ञा हुई। पर सेवकों की दया से (यादगार तघई) वह बच गया। कुछ ही काल के उपरान्त वह भाग निकला और उसने गुजरात में जा कर शरण ली।

(५) गुजरात का घेरा—गुजरात के शासक बहादुरशाह को हुमायूँ ने लिखा कि वह फौरन मुहम्मद जमां को समर्पित कर दे। पर बहादुरशाह के कान पर जूँ भी न रेंगी। हुमायूँ को क्रोध तो बहुत आया, पर वह चल कर ग्वालियर में दो माह शिकार आदि के चक्कर में पड़ा रहा। उधर बहादुरशाह चित्तौड़ तक हाथ मार रहा था। उसने मालवा पर अधिकार कर लिया था। वह भारत का सम्राट् बनने के स्वप्न देख रहा था। उसके दरबार में इस समय आलम खाँ, मुहम्मद जमां तथा मेहदी ख्वाजा जैसे लोग थे। अतः उससे हुमायूँ का संघर्ष अवश्यम्भावी था। जिस समय बहादुर शाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था, तो रानी कर्णवती ने हुमायूँ से सहायता माँगी थी। उसने एक राखी भिजवाई थी और हुमायूँ को भाई की दृष्टि से देखती थी। राखी पाकर हुमायूँ चित्तौड़ की ओर बढ़ा, पर मार्ग में ही रुक गया। बहादुर शाह भी समझता था कि हुमायूँ उससे उस समय तक कुछ न बोलेगा जब तक कि वह इस्लाम के विरोधी के खिलाफ लड़ रहा है, ठीक यही हुआ भी। हुमायूँ उस समय शांत रहा पर जब बहादुरशाह अपने घर की ओर बढ़ा तो हुमायूँ ने जाकर घेर लिया। अंत में उसकी रसद कम हो गई। तब वह भाग कर मांडू चला गया। इस पर हुमायूँ ने मांडू पर अधिकार करना चाहा, पर बहादुरशाह वहाँ से भी भाग खड़ा हुआ और चम्पानेर होता हुआ वह पुर्तगालियों की शरण डयू चला गया। हुमायूँ ने माँडू और चम्पानेर के दुर्ग ले लिये। इसके अनन्तर वह आनन्द मग्न होकर शांत हो गया। उधर बहादुर शाह ने इमामुलमुल्क के द्वारा अहमदाबाद से रुपया वसूल कराया और फौज इकट्ठी की। इसके बाद हुमायूँ ने अहमदाबाद भी ले लिया तथा अस्करीं को गुजरात का गवर्नर बना दिया। पर अस्करी ठीक प्रबन्ध न कर पाया और बहादुरशाह को पुनः कई नगर मिल गये। इसका फल यह हुआ कि दूसरे ही वर्ष (१५३६ ई०) गुजरात हुमायूँ के हाथ से पुनः निकल गया।

शेर खाँ से युद्ध १५३७-३९ ई०—गुजरात हाथ से निकल जाने के पश्चात् हुमायूँ एक साल आगरे में रहा। यहाँ उसे समाचार मिला कि शेर खाँ बिहार और बंगाल में संगठन कर रहा है, पर उसने उसके प्रतिरोध का कोई उपाय नहीं किया। शेर खाँ ने लगभग सम्पूर्ण बिहार पर अधिकार कर लिया था। इसके पूर्व एक बार शेर खाँ ने हुमायूँ की अधीनता स्वीकार कर ली थी

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

किन्तु उसका हृदय स्वच्छ न था। उसने मुगलों से लोहा लेने की ठान रखी थी। पर वह बहुत चतुर था। जब हुमायूँ गुजरात की ओर से लौटा, उसने हिन्दू बेग को जौनपुर का गवर्नर बना कर भेजा और उसको आज्ञा दी कि शेर खाँ का हाल ठीक-ठीक लिखे। यह जानकर शेरखाँ ने हिन्दूबेग को अनेक उपहार दिये और कहला भेजा कि वह हुमायूँ को समझा कर लिख दे कि मैं तो उसका ही सेवक और शुभचिंतक हूँ। न मैंने सम्राट् के किसी भू भाग पर आक्रमण ही किया है। मैंने जो बचन दिया था, उसका आज भी पालन कर रहा हूँ। वह स्वयं इधर आने का कष्ट न करें। हुमायूँ को जब यह ज्ञात हुआ तो वह निश्चिंत हो गया, इस प्रकार हुमायूँ की विलासप्रियता के कारण शेर-शाह को और भी अवसर मिल गया।

१५३७ ई० में हुमायूँ की नींद टूटी। वह शेरखाँ के दमन के लिए चुनार की ओर चला। मुगलों ने चुनार के दुर्ग को जाकर घेर लिया। लगभग ६ माह तक हुमायूँ को इसमें सफलता न मिली। अन्त में एक कूटनीति से काम लेकर मुगलों ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया, क्योंकि इस समय दुर्ग का रक्षक शेरखाँ का पुत्र कुतुब खाँ था। शेर खाँ को इस हानि से कोई चिन्ता न हुई। उसने इस समय तक बंगाल विजय कर रखा था और रोहतास का धन-धान्य पूर्ण दुर्ग उसने अपने अधिकार में कर लिया था। चुनार को जीत कर हुमायूँ बनारस आया। उसने शेर खाँ से संधि की वार्ता की। हुमायूँ उससे बिहार का प्रांत चाहता था। शेर खाँ ने बिहार का प्रांत इस शर्त पर देना स्वीकार किया कि वह बंगाल का अधिकारी मान लिया जाय। साथ ही वचन दिया कि प्रतिवर्ष वह दस लाख रुपये कर के रूप में देता रहेगा। हुमायूँ शेर खाँ की इन शर्तों को मानने को तैयार था, पर इसी समय बंगाल का शासक महमूद जो नसरत शाह का उत्तराधिकारी था, उसके पास आया। उसने बताया कि शेर खाँ का अधिकार पूरे बंगाल पर नहीं है। अभी भी बंगाल का बहुत सा भाग उसी के पास है। यदि हुमायूँ उसकी सहायता करे तो वह शेर खाँ को भगा सकता है। उसने हुमायूँ को शेर खाँ की बातों में आने से भड़काया। हुमायूँ ने महमूद की बात मान ली और बंगाल की ओर चल दिया। मार्ग में उसे शेर खाँ के पुत्र जलाल खाँ ने रोका, पर थोड़े से युद्ध के पश्चात् जलाल खाँ हट गया क्योंकि उसे ज्ञात हो गया था कि उसके पिता सारा कोष रोहतास दुर्ग भेज चुके हैं। अगस्त सन् १५३८ में हुमायूँ गौड़ पहुँचा। बिना प्रयास के ही उसे गौड़ पर अधिकार मिल गया, और अफ़ग़ान भाग खड़े हुए। अतः हुमायूँ ने यहाँ भी आठ माह तक आमोद-प्रमोद किया। इस बीच शेरखाँ ने अपनी पूरी तैयारी की और बंगाल तथा दिल्ली के बीच की कड़ियाँ काट दीं। उसने

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कड़ा, कन्नौज तथा सम्भल ले लिये । जनवरी १५३६ ई० में कोसी से लेकर गंगा तक का सारा भू-भाग शेरखाँ के अधिकार में आगया । उधर हिन्दाल ने इस परिस्थिति से लाभ उठा कर विद्रोह करना चाहा तथा विहार से चल कर वह आगरा की ओर आया । साथ ही जब हुमायूँ को विदित हुआ कि शेरखाँ ने ७०० मुग़लों का बध कर दिया है, तो वह आगरा की ओर चल पड़ा । हुमायूँ ने आगरा लौटने का मार्ग ग्रांड ट्रंक सड़क से अपनाया । उसने शेरखाँ के समीप शेख खलील को सुलह की अथवा युद्ध की बात करने भेजा ! शेरखाँ बहुत चतुर था । उसने शेख खलील का स्वागत कर, उसको भेंट आदि देकर अपनी ओर करके पूछा कि वह क्या करे । शेख खलील ने स्पष्ट कह दिया कि हुमायूँ इस समय बड़े संकट में है, उसका भाई स्वयं उसके विरुद्ध है, उसकी सेना में फूट है, इस समय उसे तुम से संधि मजबूरन करनी पड़ रही है । तुम्हारे लिए उससे संधि करना लाभकर न होगा क्योंकि जब उसका समय होगा वह तुम्हारी संधि की चिंता न करेगा । शेरखाँ की समझ में बात आगयी । उसने युद्ध करने का निश्चय किया और कहला भेजा कि मैं तो सदा सम्राट् का सेवक रहा, पर सम्राट् स्वयं मुझ से बैर-भाव मानते हैं । उनको गौड़ पर अधिकार न करना था । मैं उन्हें बिहार दे देता, जिसे वह चाहते थे, पर बंगाल पर मेरा अधिकार होना चाहिये था । ऐसा कह कर उसने अपने सैनिकों से कहा कि यह सर्वोत्तम समय है जब हम को हिन्दुस्तान की बादशाहत मिल सकती है । निश्चय करलो कि सम्राट को न निकलने दोगे और अपने सम्मान की रक्षा करोगे । अतः चौसा का युद्ध हुआ ।

चौसा का युद्ध १५३६ ई०—शेरखाँ युद्ध की पूरी योजना जानता था । वह अपने उत्थान और पतन में युद्ध आरम्भ करना तथा अंत करना खूब समझ चुका था । अतः उसने आगरा जाने का हुमायूँ का मार्ग रोक दिया । चौसा के स्थान पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ । तीन माह तक (अप्रैल से जून १५३६ ई०) किसी ने आक्रमण न किया । पर इस बिलम्ब से शेरखाँ का भला हुआ । थोड़े ही समय में वर्षा प्रारम्भ हो गयी और मुग़लों का शिविर पानी से भर गया । सेना में खलबली हुई । इसी समय शेरखाँ की सेना ने धावा किया । अनेक मुग़ल मारे गये । एक व्यक्ति ने तीर मार कर हुमायूँ की भुजा को घायल कर दिया । हुमायूँ ने अपनी सेना को लड़ने के लिए प्रेरित किया किंतु किसी ने चिंता न की । यह देखकर उसने समझ लिया कि स्थिति संकटमय है और धोखा दिया गया, अतः वह अपने प्राण बचाने के लिए अपने घोड़े को ही लेकर नदी में कूद पड़ा । दैवयोग से घोड़ा तो डूब गया पर हुमायूँ को एक भिश्ती ने अपनी मशक में वायु भर कर बचा लिया । हुमायूँ ने राजधानी पहुँच

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कर भिश्ती को आधे दिन राज्य करने का पारितोषिक दिया । इस विजय से शेरखाँ की प्रतिष्ठा बढ़ गयी ।

कन्नौज का युद्ध १५४०—चौसा के युद्ध में हार कर हुमायूँ बहुत दुःखी हुआ । उसने भाइयों से विचार-विमर्श किया, पर किसी ने कोई सहायता देने का बचन न दिया । यही नहीं उन्होंने हुमायूँ की तैयारी में और अड़चनें डाल दीं । उधर शेरखाँ ने चौसा की विजय के पश्चात् शेर शाह की उपाधि धारण की और बड़ी तैयारी करके आगरे की ओर बढ़ा । उसने बिहार से लेकर कन्नौज तक के प्रदेश पर अधिकार कर लिया ।

धीरे-धीरे वह आगरे की ओर बढ़ा तथा अपनी कन्नौज वाली सेना में आ कर मिल गया । हुमायूँ ने अपने मन का भाव छिपा कर अपने भाइयों से पुनः सलाह की । इसमें कामराँ ने उसकी बात का स्वागत किया और यहाँ तक कहा कि यदि आज्ञा हो तो मैं आगे चलूँ और शेरखाँ को देखूँ । हुमायूँ के सामने टेढ़ी समस्या थी । यदि कामराँ लड़ने गया और हार गया तो फिर वह किसका सहारा लेगा, साथ ही यदि वह जीत गया तो उसका (कामराँ का) दिमाग़ स्वयं खराब हो सकता है, वह सोचेगा कि विजय तो मैंने की है, राज्य भी मैं करूँगा । अतः वह इस प्रस्ताव को न मान सका । हुमायूँ ने नई सेना की योजना की और कन्नौज की ओर बढ़ा । उसके पास ४०००० की सैनिक शक्ति थी । दोनों सेनाएँ कन्नौज के समीप मई १५४० ई० की आमने सामने आ डटीं । उधर कामराँ को आगरे का जलवायु अनुकूल न पड़ा, वह तीन माह तक बीमार पड़ा रहा । कुछ बदमाशों ने तो यह अफ़वाह उड़ा दी कि हुमायूँ ने उसे विष (Slow poison) दिया है । कामराँ को स्वयं इस पर विश्वास हो रहा था, क्योंकि हुमायूँ ने उसके अस्वस्थ होते हुए भी उससे भिश्ती निज़ाम के दरबार में उपस्थित होने को कहा था (यह वही भिश्ती था जिसने हुमायूँ की जान बचाई थी) । अतः अपने भाई के लिए कामराँ की रही सही सहानुभूति भी समाप्त होगयी । उधर वह लाहौर लगभग १ वर्ष से न गया था । उज़बेग उबैदुल्ला मर चुका था और शाह तहमास्प लाहौर की ओर आ सकता था । अतः कामराँ थोड़ी सी सेना हुमायूँ की रक्षा के लिए छोड़कर स्वयं लाहौर को चल दिया । शेर खाँ ने इधर अपने बेटे कुतब खाँ को आगरे की ओर बढ़ने को कहा और मालवा तथा गुजरात के शासकों को उसका साथ देने के लिए आमंत्रित किया । कुतुब खाँ को इसमें सफलता न मिली । वह मुग़लों से कालपी के समीप लड़ा और युद्ध में मारा गया, पर कन्नौज के युद्ध में हुमायूँ ने निचली भूमि में शिविर बना रखा था । अतः वर्षा आरम्भ होते ही उसके शिविर में जल ही जल होगया ।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शेरशाह ने यह देखकर उसपर आक्रमण कर दिया जिसे मुग़ल न सह सके, यद्यपि मिर्जा हिन्दाल ने अपनी ओर से जलाल खाँ को (शेरशाह का पुत्र) खदेड़ दिया; पर अस्करी (हुमायूँ का भाई जो कुछ ही पूर्व शेरशाह के पुत्र कुतुब खाँ को हरा कर आया था) ऐसा भाग्यशाली न था। उसके पार्श्व पर अफ़गानों का ऐसा दबाव पड़ा कि उसे भागते ही बना, जिससे शेष फौज में भी गड़बड़ी पड़ गयी। उधर शेर शाह के एक अंश ने पीछे से आक्रमण कर दिया जिससे मुग़ल सेना अस्तव्यस्त होगयी। **अन्ततः हुमायूँ की आशाओं पर तुषार-पात हुआ, उसे भी भागना पड़ा।** अनेक कठिनाइयों को सहनकर किसी प्रकार हुमायूँ आगरे पहुँच सका। दूसरे दिन वह वहाँ से दिल्ली चला गया। रोहतक में उसे हिन्दाल मिला जो हुमायूँ को साथ लेकर लाहौर गया। ऐसी स्थिति में तीनों भाइयों ने विचार-विमर्श किया कि किस प्रकार वे अफ़गानों से बचें। अनेक बातों के बीच यह निश्चय हुआ कि शेर शाह से संधि कर ली जाय। आखिर संधि प्रस्ताव भेजा गया, पर कामराँ ने अलग से वही शर्तें भेजीं (यह सोचकर कि उसका शेरशाह से युद्ध नहीं हुआ अतः मान ली जायगी) इनमें यह कहा था कि सरहिंद को सीमा मान लिया जाय, जो भाग पानीपत के युद्ध के पहले बाबर के पास था, वह मुग़लों के अधीन रहे। उसके पूर्व का भाग अफ़गान रखें किंतु शेरशाह इन बातों में आने वाला न था। उसने विचार किया कि मुग़ल परस्पर लड़ रहे हैं, मुझ से क्या लड़ेंगे, और किसी एक से संधि करने का कोई अर्थ नहीं। अतः संधि वार्ता असफल होगयी।

अब हुमायूँ के सामने प्रश्न उपस्थित हुआ कि कहाँ शरण ली जाय। अधिक से अधिक चार स्थल थे।

हुमायूँ का प्रवास १५४०–५५ ई०
(१) बदख़शाँ सुलेमान मिर्ज़ा
(२) अफ़गानिस्तान कामराँ

(१) **बदख़शाँ**––जहाँ उसे सुलेमान मिर्ज़ा से निबटना पड़ता, क्योंकि उसका अधिकार बाबर भी मान चुका था।

(२) **अफ़गानिस्तान**––जहाँ कामराँ का अधिपत्य था।

(३) **कश्मीर**––पर यह निर्धन देश था, जिस से पुनः उठ खड़े होना सम्भव न था।

(४) **सिंध**––जो एक ही स्थल बचा जहाँ जाया जा सकता था।

अतः उसने अपने कुटुम्ब को कामरां के सुपुर्द कर दिया और सिंध की ओर मुड़ा। उस समय सिन्ध में शाह हुसेन अरगुन राज्य कर रहा था। हुमायूँ के वहाँ पहुँचने से शाहहुसेन भयभीत हुआ। हुमायूँ को रोहरी, भक्कर, पतार आदि स्थानों पर भटकना पड़ा। थट्टा का शाह (सिन्ध) उसे ६ माह रख

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सका। जिसके अनन्तर वहाँ से उसे चलना पड़ा। इस बीच हुमायूँ का मरियम हमीदा बानू बेगम से प्रेम हो गया, जो दूसरे ही वर्ष भावी सम्राट अकबर की माँ बनी। हमीदा बानू हिन्दाल के गुरू की कन्या थी। अतः हिन्दाल ने हुमायूँ से अप्रसन्न होकर उसका साथ छोड़ दिया और वह कन्दहार की ओर चला गया।

इसके पश्चात् हुमायूँ ने थट्टा की विजय की योजना बनायी, किन्तु शाह हुसेन ने कूटनीति से उसके परम सहायक यादगार मिर्जा को अपनी ओर मिला लिया। हुमायूँ को उसमें भी असफलता हाथ लगी। वह अब मक्का जाने का विचार करने लगा कि उसको मारवाड़ के राजा मालदेव का निमंत्रण मिला। हुमायूँ जोधपुर की ओर चल पड़ा। जब वह वहाँ पहुँचने को हुआ तो उसे ज्ञात हुआ कि राजा मालदेव तो शेरशाह के पक्ष में है। उसने हुमायूँ को पकड़ने का बचन दिया है। इसी कारण निमंत्रण दिया गया है। उसके पुराने पुस्तकाध्यक्ष ने उसे लिखा—

"आप जहाँ भी हों तुरत वहाँ से चल दें, क्योंकि मालदेव आपको बंदी बनाना चाहता है। उसके ऊपर आप जरा भी भरोसा न करें।"† अतः हुमायूँ अमर कोट की ओर लौट पड़ा। अमरकोट तक पहुँचने में उसे अनेक कष्ट उठाने पड़े, पर वहाँ के राणा ने उस का स्वागत किया। इसी स्थान पर १५ अक्टूबर सन् १५४२, को अकबर का जन्म हुआ। इसके अनन्तर हुमायूँ ने काबुल की ओर प्रस्थान करना चाहा पर उसका भाई कामरां उसे वहाँ न चाहता था। सिन्ध का शासक शाह हुसेन उसे यह बतलाता रहता था कि हुमायूँ अब क्या कर रहा है। उस पर मिर्जा अस्करी और कामराँ का कहना था कि उसे वहीं रोके रहो, अथवा बन्दी बना लो। हुमायूँ के ये वे भाई थे, जिसके लिए बाबर हुमायूँ से बचन ले गया था कि सद्व्ययहार करेगा और जिसे हुमायूँ ने यथा-सम्भव निभाया। अतः वह एक वर्ष के अकबर को कन्दहार में छोड़कर अनिश्चित मार्ग पर चल दिया। यह मार्ग खुरासान और ईराक का था।

हुमायूँ की असफलता के कारण

(१) साम्राज्य विभाजन
(२) प्रजा का असहयोग

हुमापूँ को अपते जीवन में असफमता पर असफलता का वरण करना पड़ा। इसके लिए अनेक कारण उत्तरदायी थे।

(१) साम्राज्य विभाजन—सर्वप्रथम उसने अपने पिता के आदेशानुसार साम्राज्य का विभाजन कर दिया था, जो उसको सदा घातक सिद्ध हुआ।

† "His old Librarian wrote to him "March at once from whereever you are for Maldeva intends to make you a prisoner, put no trust in his words.
Muslim Rule by Ishwari Prasad. P. 247.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(३) शेरशाह के प्रति हुमायूँ की नीति
(४) बहादुरशाह के प्रति हुमायूँ की नीति
(५) बन्धुओं का विश्वासघात
(६) धन तथा समय का अपव्यय
(७) शेरखाँ के विरुद्ध युद्ध
(८) कन्नौज के युद्ध की भूलें
(९) कूटनीति की कमी
(१०) हुमायूँ का दुर्बल चरित्र

उसे प्रभुता एक ही रखनी चाहिये थी। सद्व्यवहार का अर्थ कभी भी शक्ति का बटवारा नहीं होता। उसके भाई उसका साथ न देते थे, यही नहीं बल्कि वे उल्टा उसका प्रतिरोध भी करते थे। वे साम्राज्य शक्ति अपने लिए चाहते थे। साथ ही इस विभाजन के कारण उसका सम्बन्ध उत्तरी पश्चिमी देशों से न रहा। अतः उसे सुयोग्य सैनिकों का मिलना भी बंद हो गया।

"इस प्रकार की रियायत करना हुमायूँ के हक में भूल थी, क्योंकि उनसे उसका अफ़गानिस्तान के उस ओर से नाता टूट गया।" † उसके भाइयों ने उसके संकट में भी उसका साथ नहीं दिया, बल्कि उससे अनुचित लाभ उठाया। किसी सीमा तक इसमें हुमायूँ की भी जिम्मेवारी थी। यदि कामराँ उसका साथ देता तो उसके हाथ से काबुल भी चला जाता। फिर अस्करी ने तो कभी विद्रोह नहीं किया। उसने अपने भाई के लिए सदा युद्ध किया। काल्पी पर वही कुतुब खाँ से लड़ा था। यदि कभी उसे सफलता न मिली तो अस्करी का दोष क्या? इसी प्रकार हिन्दाल भी उसकी भूलों के कारण ही उससे असन्तुष्ट रहा, अन्यथा वह विद्रोह न चाहता था। उसको भी कुछ अमीरों ने बहका रखा था। हाँ यदि कामरां और हिन्दाल दोनों हुमायूँ का साथ चौसा के युद्ध में देते तो निर्णय सम्भवतः कुछ और ही होता। इस प्रकार डा० त्रिपाठी के कथनानुसार हुमायूँ की असफलता में उसे भाइयों का उत्तरदायित्व बहुत कम था।

(२) प्रजाहित न करना :—हुमायूँ भारतीयों की चिंता न कर सका, उसके कार्य कभी भी प्रजापालक न थे, वह सदा अपनी शक्ति संचय के चक्कर में रहा। इसका फल यह हुआ कि वह कभी भी प्रजा का सहयोग न पा सका। उसने १५३०–४० तक राज्य किया। बाबर जो ४ वर्ष में कर गया, उसे हुमायूँ १० वर्ष में भी न कर सका।

† "It was a mistake on Humayun's part to make these concessions, because they created a barrier between him and the lands beyond the Afghan hills."

Dr. Ishwari Prasad.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(३) **शेरशाह के प्रति नीति** :—शेरखाँ की सही शक्ति का हुमायूँ को कभी अनुमान न हो सका । उसको वह कड़ाई की दृष्टि से न देखता था। आपत्तियों को समूल नष्ट न करना हुमायूँ की सर्वोच्च दुर्बलता थी । शेरखां के साथ दयालुता के व्यवहार का परिणाम यह हुआ कि शेरखाँ की शक्ति बढ़ गयी। हुमायूँ समझता रहा कि शेरशाह कुछ भी नहीं है, कभी भी दबा दिया जायगा। वह गौड़ देश तक गया, मगर वहाँ भी पड़ा चैन करता रहा । राजत्व आराम नहीं चाहता । हुमायूँ को चाहिये था, कि चुनारगढ़ के प्रथम अभियान में ही सन् १५३२ ई० में उसकी शक्ति नष्ट कर देता और अमीरों को अपने वशीभूत करता ।

(४) **बहादुरशाह के प्रति हुमायूँ की नीति** :—हुमायूँ के लिए उचित था कि बहादुरशाह को उसी समय समाप्त कर देता, जब वह चित्तौड़ की ओर आया था । उसने बहादुरशाह को इतने दिन का अवकाश देने में मूर्खता की । फिर उसे गुजरात के झमेले में इतने दिन न लगाने थे । बहादुरशाह को उसे समूल नष्ट कर देना उचित था, जिससे कोई भावी संकट न रहता । क्या बाबर पानीपत के युद्ध के पश्चात् शांति से बैठकर काम चला सकता था ? बाबर ने समझ लिया था कि वह अभी सुरक्षित नहीं है । इसीलिए राणासांगा से वह पूर्ण तैयारी के साथ लड़ा था। पानीपत से भी अधिक निर्णायक युद्ध खानुआ का था । इसी प्रकार हुमायूँ को भी बहादुरशाह तथा नसरतशाह से अच्छी तरह सुलझने के पश्चात् ही विश्राम करना था । फिर जब हुमायूँ का गुजरात पर अधिकार था तो उसे वहाँ कुछ प्रशासकीय सुधार (Administr-alue Reforws) करने उचित थे, जिससे जनता की सहानुभूति उसके साथ होती । सुधार तो नहीं ही हुए इसके विपरीत उसके सैनिक शासकों के कारण वहाँ असन्तोष ही रहा ।

(५) **समय का सदुपयोग** :—चौसा के युद्ध में हारने के पश्चात् हुमायूँ ने कन्नौज से बनारस तक के भूभाग को जीतने के लिए कोई यत्न न किया । वह सदा अपनी सुरक्षा के लिए सोचता रहा। कभी भी उसने उग्र नीति का अनुसरण न किया । अधिक समय तो उसका आमोद-प्रमोद में बीता । यदि हुमायूँ प्रयत्नशील होता तो स्थिति इतनी न बिगड़ती ।
(*i.e.* & He always remained defensive was never offensive)

(६) **कन्नौज के युद्ध की भूलें** :—हुमायूँ ने कन्नौज के युद्ध में अनेक भूलें कीं । उसने अपने शिविर के लिए नीची भूमि को चुना, फिर दो माह वह बेकार पड़ा रहा । वह अपनी तोपों का प्रयोग ही न कर सका ।

(७) **कूटनीति की कमी** :—हुमायूँ कूटनीतिज्ञ न था । उसने उन लोगों

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

को बार बार क्षमा किया, जिन्हें एक बार भी न करना था । इस कोटि में मुहम्मद ज़माँ तथा कामराँ दोनों ही आते हैं। इससे प्रत्येक के मस्तिष्क में यह भावना बन गयी कि वह मूर्ख है । अपने अपराधी को कभी भी क्षमा कर देगा चाहे जो अपराध कर लिया जाय ।

(८) **हुमायूँ का दुर्बल चरित्र :**—वह कभी एक काम में तन्मय न हो सकता था । उसमें चरित्र की दृढ़ता न थी । कभी कुछ करता था, कभी कुछ । अतः कोई भी कार्य पूरा न होता था । इस प्रकार कहीं किसी को सफलता नहीं मिली । फिर उसमें नेतृत्व का सर्वथा अभाव था। डा० त्रिपाठी के अनुसार हुमायूँ के चरित्र की दुर्बलता इसके लिए उत्तरदायी न थी। उनके अनुसार हुमायूँ वीर, शाँत और गम्भीर था। उसमें बड़े-बड़े कार्य करने की क्षमता थी और वह उदार, विशाल हृदय, सभ्य, चतुर तथा एक भला व्यक्ति था। वही अफ़ीम का शिकार न था, अफ़ीम तो बाबर भी खाता था। आपका कहना है कि कहीं यदि बाबर को भी शेरशाह से लड़ना पड़ता तो पता चल जाता। वस्तुतः हुमायूँ को बहादुरशाह तथा शेरशाह, दो बड़े योग्य शासकों से निबटना पड़ा । फिर बाबर के पास सेना अच्छी थी, और हुमायूँ की यही सर्वोपरि दुर्बलता थी । दूसरे इस समय तक अफ़गान भी बन्दूकों का प्रयोग सीख चुके थे, पर हुमायूँ की सबसे बड़ी भूल थी कि उसने कभी किसी पर सन्देह ही न किया बल्कि सभी पर भरोसा रखा। वह कभी भी अपने को परिस्थिति के अनुसार मोड़ न पाया।

(९) **धन का अपव्यय :**—दानशीलता के कारण बाबर राजकोष खाली कर गया था। हुमायूँ ने भी उसी नीति का अनुसरण किया । धन के अभाव में शासन कैसा ?

(१०) **भाग्य का फेर :**—डा० त्रिपाठी के अनुसार हुमायूँ दुर्भाग्य का शिकार था। अस्करी टाडी बेग से उसे सहायता न दिला सका, उधर महमूद शाह ने शीघ्र ही अस्त्र डाल दिये। उसके युद्ध में (१५४०–कन्नौज) जल की वर्षा अत्यधिक हुई। सभी परिस्थितियाँ दुर्भाग्यवश हुमायूँ के विपरीत रहीं।

हुमायूँ फारस में :—इसके पश्चात् हुमायूँ फारस गया । वहाँ के शाह (तहमाष्प) ने उसका स्वागत किया। उसकी बदौलत उसे पुनः सम्मान मिलने लगा, पर उसने हुमायूँ को कुछ शर्तों पर सहायता देने का वचन दिया, अर्थात्

(१) हुमायूँ शिया धर्म को स्वीकार करे।

(२) वह अपने राज्य में भी शिया धर्म का प्रचार करे।

(३) कन्दहार का प्रांत शाह को दे दे।

हुमायूँ ने इन शर्तों को स्वीकार किया तथा शाह से १४००० की एक

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सेना ली। इसको लेकर वह कन्दहार की ओर चला। इस समय कन्दहार अस्करी के, काबुल कामरां के तथा गज़नी हिन्दाल के अधिकार में थे। कन्दहार का घेरा डाल दिया गया, जो तीन माह तक चला। कामराँ तथा हिन्दाल ने कोशिश की कि परस्पर मैत्री भाव रहे, पर अस्करी लड़ने को प्रस्तुत था। कुछ ही समय में अस्करी की समझ में आ गया कि वह न जीत सकेगा। अतः उसने आत्म-समर्पण करने का निश्चय किया। आखिर अस्करी भाग निकला, पर पकड़ कर बंदी बनाया गया। कन्दहार का अधिकार हुमायूँ के लिए बड़ा लाभकर सिद्ध न हुआ, क्योंकि उसे पुनः फारस वालों को देना पड़ा। फिर भी इससे उसकी स्थिति कुछ बदल गयी और वह काबुल की ओर बढ़ा। इसी समय हिन्दाल भी काबुल से चल कर हुमायूँ के साथ आकर मिल गया।

हुमायूँ के अच्छे दिन :—कामराँ के अन्य अनेक साथी भी उससे ऊब चुके थे। वे भी हुमायूँ के काबुल पहुँचने पर उसी से जा मिले। कामराँ के पास हुमायूँ से कहीं अधिक सेना थी, पर भयवश उसने अपने को किले में बंद कर लिया। इस पर उसके सभी साथी चले गये। अतः कामराँ के सामने भागने के अतिरिक्त कोई चारा न रह गया था। वह गजनी भाग गया, जिसका पीछा करने हिन्दाल भेजा गया। हुमायूँ ने बड़ी सजधज से काबुल में प्रवेश किया (१५४५ ई०)। यहाँ उसे अपना प्रिय पुत्र अकबर भी मिल गया। जो अब ४ वर्ष का हो गया था। दूसरे वर्ष हुमायूँ बदखशाँ गया क्योंकि मिर्ज़ा सुलेमान ने उसकी अधीनता स्वीकार न की थी। इस बीच कामराँ ने धोखे से काबुल पर अधिकार कर लिया। जब हुमायूँ लौटा तो कामराँ ने बड़ी निर्दयता का परिचय दिया। उसने राजकुमार अकबर को किले की दीवाल पर बिठला दिया जहाँ कि तोपों की मार सब से घनी गिरती थी। पर महम अंका ने बुद्धि से काम लिया कि राजकुमार को अपनी गोद में छिपा कर अपने को शत्रु की ओर कर दिया, अन्ततः ईश्वर रक्षक था, अकबर बच गया। उधर कन्धार से हुमायूँ के अन्य सहायक आ गये। हुमायूँ की विजय हुई। कामराँ ने पुनः उजबेगों की सहायता ली और भागने की चेष्टा की पर उसे पकड़कर सामने लाया गया। हुमायूँ ने फिर भी उसे क्षमा कर दिया। साथ ही उसे कोलाब का प्रदेश दे दिया। अब हुमायूँ ने काबुल से बलख की ओर प्रस्थान किया, किंतु जब उसने कामरां और अस्करी को बुलवाया तो वे फिर से अवज्ञा करने लगे। हुमायूँ को पुनः लौटना पड़ा। अब की बार कामराँ सिंध में अपने श्वशुर शाह हुसेन के पास गया। उसने पुनः काबुल लेना चाहा, किंतु असफल रहा। इस युद्ध में हिन्दाल मारा गया। अस्करी इससे पहले ही मक्का जाते समय मर चुका था। अब कामराँ ने सूर वंशीय शाह सलीम शाह के यहाँ शरण

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ली । सलीमशाह के व्यवहार से भी वह बहुत प्रसन्न न हुआ और सियालकोट की पहाड़ियों की ओर चला गया । यहाँ से पुनः वह पकड़ कर हुमायूँ के समीप भेज दिया गया । हुमायूँ इस बार भी उसे क्षमा करने को उद्यत था, पर उसके अधिकारियों के बहुत कुछ कहने पर उसे अंधा करवा दिया गया। इसके अनन्तर उसकी इच्छानुसार उसको मक्का भेज दिया गया जहाँ चार वर्ष पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी ।

हुमायूँ की पुनः राज्य प्राप्ति १५५५ ई०––थोड़े ही समय पश्चात् हुमायूँ को समाचार मिला कि सुल्तान सलीमशाह सूर की मृत्यु हो चुकी है और अफ़गानों में परस्पर कलह हो रहा है। अतः सन् १५५४ में हुमायूँ ने भारत की ओर पुनः कूच किया। सिंध को पारकर वह बेखटके लाहौर तक चला गया । लाहौर, सरहिन्द तथा हिसार आदि पंजाब के सभी जिले उसके अधिकार में आ गये । दिपालपुर में अफ़गानों का छुटपुट सामना हुआ, पर वे टिक न सके । सिकंदर अफ़गान ने, जिसके अधिकार में दिल्ली थी, एक विशाल वाहिनी खड़ी की और मुगल सेना से युद्ध करने को सरहिद भेजा, पर मुगलों ने बात की बात में उन्हें हरा दिया । सिकन्दर मैदान छोड़कर भाग गया । हुमायूँ के सामने फिर कोई विरोध करने वाला न रह गया था और हुमायूँ का अधिकार दिल्ली पर हो गया । हुमायूँ ने जुलाई सन् १५५५ में ठीक १५ वर्ष पश्चात् दिल्ली में प्रवेश किया । उसने अपने पुत्र अकबर को सिकन्दर सूर का पीछा करने को कहा । सिकन्दर पहले मनकोट की ओर और वहाँ से उत्तरी पश्चिमी पंजाब की ओर चला गया । शीघ्र ही आगरे पर भी अधिकार हो गया और एकबार पुनः मुग़ल साम्राज्य का सूत्रपात भारत-भूमि में हो गया, जो सदियों तक टिका रहा ।

हुमायूँ का अंत २४, जनवरी १५५६ ई०––हुमायूँ अप ि विजय का सुख अधिक दिन न भोग सका । वह अपनी मनःकामना पूर्ण न कर पाया था कि एक दिन उसकी पुकार हो गयी। वह अपने पुस्तकालय "दीनपनाह" की छतपर बैठा था, उसने अज़ान की ध्वनि सुनी । वह तुरंत चल पड़ा और उसके ज़ीने की सीढ़ियों से वह उतर रहा था कि उसका पैर फिसल गया और वह गिर गया । तुरंत महल में ले जाया गया, पर कोई सफलता नहीं मिली। आखिर २४ जनवरी सन् १५५६ ई० में वह इस संसार से चल बसा ।

हुमायूँ का चरित्र––लेन पूल के शब्दों में "**वह सारे जीवन लुढ़कता रहा और अंत में लुढ़क कर ही चल बसा**† उसका कथन ठीक भी है कि हुमायूँ ने पहले सब कुछ खो दिया, और जब खोया हुआ साम्राज्य पाया तो स्वयं चल

†"Humayun tumbled through life and he tumbled out of it" Lanepoole

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

दिया । उसे अपने सिंहासनारोहण से लेकर आजीवन अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ा । पर उसके चरित्र को इन आपत्तियों ने कभी धूमिल न किया ।

(१) **व्यक्ति के रूप में**--हुमायूँ हमें एक आदर्श पुत्र, पिता तथा पति के रूप में मिलता है । यही नहीं वह एक आदर्श बंधु भी था । अपने बंधुओं के द्वारा बार बार धोखा देने पर भी उसमें इतनी उदारता बनी रही, कि वह सदा क्षमा कर सका । यद्यपि कभी-कभी उसे अपनी इस उदारता का कड़ुआ फल भी चखना पड़ा, पर अपने चारित्रिक गुण को उसने न छोड़ा । उसने सदा इस बात का ध्यान रखा कि पिता से किसी बात का बचन दिया है ; अतः कष्ट उठा कर भी वह उससे विचलित न हुआ । एक स्थल पर जब उसके अमीरों ने उसे वाध्य किया कि वह विद्रोही कामराँ का वध कर दे तो उसने कहा--"**यद्यपि मेरा मस्तिष्क आपकी बात मानने को उद्यत है किंतु मेरा हृदय साथ नहीं देता ।**"† और अपने बंधु का वध करने से इन्कार कर दिया । हुमायूँ में दयालुता के साथ साथ स्नेह सदा ही रहा । साथ ही उसमें शारीरिक बल था, साहस था । पर उसकी कुछ निजी दुर्बलताएँ ऐसी थीं जिनके कारण उसकी विजय भी पराजय में परिणत हो जाती थी । अनेक बार उसने अपनी असावधानी के कारण तथा आमोद प्रमोद के चक्कर में राज्य का कार्य बिगाड़ लिया । वह अपने पिता से उसकी अचल इच्छा-शक्ति का उत्तराधिकार न पा सका था । अन्यथा वह अपने व्यवहार तथा वार्तालाप में अत्यंत सभ्य व विनम्र था ।

(२) **धार्मिक के रूप में**--हुमायूँ धर्म का नियम से पालन करता था । पर धर्मान्ध न था । उसकी प्रधान रानी हमीदा बानू बेगम शिया थी । बैरम खाँ शिया था, पर बैरम खाँ हुमायूँ का परम भक्त था और हुमायूँ उसका सदा ध्यान रखता था । वस्तुतः हुमायूँ विभिन्न धर्म वालों से व्यवहार करना भली भाँति जानता था । जहाँ तक हिन्दू यवन सम्बंधों का विषय है, वह अपने युग की मांग से ऊपर नहीं उठ पाया । उसने भी हिन्दू मंदिर नष्ट किये और उनके साथ क्रूरता का व्यवहार किया । चित्तौड़ के राणा पर जब बहादुरशाह ने आक्रमण किया तो हुमायूँ केवल इसीलिए शांत रहा कि विरोधी इस्लाम धर्मी न था, यद्यपि इस प्रकार के आचरण से उसी की हानि हुई । यही कारण रहा कि हिदुओं से उसे सहायता नहीं मिली ।

(३) **सैनिक के रूप में**--हुमायूँ को युद्ध से कभी भय नहीं लगा । शरीर से भी वह हृष्टपुष्ट था । उसने इतने युद्धों में भाग लिया कि युद्ध करना

---

† II "Though my head inclines to your words my heart does not" *Humayun*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उसके लिए एक साधारण वस्तु होगयी। उसको जीवन में अनुकूल परिस्थितियाँ मिल सकीं, दूसरे वह वीर सैनिक तो था पर कुशल सेनानायक न था। उसको युद्ध योजनाओं का इतना अच्छा ज्ञान न था जैसा उसके पिता को था। वही सेना बाबर के नेतृत्व में सफल हुई, पर हुमायूँ के साथ उसे मुँह की खानी पड़ी। इसके अतिरिक्त वह बाबर की भाँति खोयी हुई शक्ति को संगठित करना भलीभाँति न जानता था। उसका भाग्य था कि १५ वर्ष पश्चात् पाँसा पलट गया, अन्यथा उसे दूसरी बार भारत में प्रवेश करने को न मिलता। सूर-वंश की दुर्बलताएँ इसका अधिक कारण थीं। हुमायूँ की सबलता नहीं। हाँ हुमायूँ अपने को भयानक से भयानक परिस्थिति में डाल देता था। इससे उसे कोई भय न था। नदी में कूद पड़ना उसके लिए सरल काम था। एक बार हार कर पुनः धैर्य से लड़ने में भी उसे लज्जा न थी। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वह अपने शत्रु के बल का सही अनुमान न कर पाता था। उसे उसकी दुर्बलता से कभी लाभ न उठा आया। जब कि उसकी दुर्बलता से शत्रु सदा लाभ उठाता रहा। सैनिक के रूप से उसने समय का कभी सदुपयोग न किया, फिर भी निस्सन्देह वह एक वीर और साहसी लड़ाका था।

४--**शासक के रूप में**--श्री वी० डी०महाजन का कथन है कि "**शासक के रूप में हुमायूँ कुशल न था, उसने अपने १० वर्ष के शासन काल में कोई भी प्रशासकीय सुधार करके न दिखाया। इसमें अत्युक्ति न होगी कि हुमायूँ में शासन की कामना ही न थी और इसीलिए वह काम से घबड़ाता था।**" वस्तुतः उसकी अतिशय उदारता उसी को खल गयी। उसने कभी भी जनता की नैतिक तथा आर्थिक स्थिति को सुधारने का कोई उपाय नहीं किया। कुछ विद्वानों का कथन है कि उसे इतना अवकाश ही नहीं मिला कि वह यह सब कर सकता, पर यह नितांत निर्मूल है। उसमें रचनात्मक प्रतिभा ही न थी।

(५) **विद्वान के रूप में**--बाबर को स्वयं पढ़ने लिखने का बहुत अवसर न मिला था पर उसने हुमायूँ की शिक्षा का बहुत ध्यान रखा था। उसे तुर्की तथा फारसी का अच्छा ज्ञान था। उसे साहित्य तथा धार्मिक ग्रंथों की चर्चा में आनन्द आता था। गणित, ज्योतिष तथा दर्शन में उसकी रुचि थी, वह विद्वानों का समादर करता था। अंत समय भी वह पुस्तकालय से ही गिर कर मरा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि हुमायूँ कुछ तो अपनी परिस्थिति का शिकार था, कुछ अपनी दुर्बलता का। उसमें अध्यवसाय अधिक था, जिसके बल पर वह कुछ कर सका। बहुधा उसकी पहली विजय अन्तिम पराजय में परिणत हो गयी। उसके हाथ से मालवा, गुजरात, बंगाल, बिहार, दोआब, पंजाब आदि सभी प्रांत खसकते चले गये और उसे दूसरे देश में शरण लेनी

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पड़ी । बाबर की भाँति उसे भी अपने प्रारम्भिक काल में अनेक कष्ट उठाने पड़े, पर अन्त में सफलता ही हाथ लगी । यद्यपि यह सफलता उसके किये का फल न थी, वरन् उसके स्वामिभक्त वैरम खाँ जैसे सेवकों की महनत तथा फारस के शाह की अथवा अफ़गानों की दुर्बलता की बदौलत थी ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) सिंहासन पाने के पूर्व हुमायूँ की क्या-क्या कठिनाइयाँ थीं ? वह उनसे कैसे सुलझ सका ?

(२) "वह जीवन भर लुढ़कता रहा और अंत में लुढ़क कर चल बसा" कहाँ तक युक्तिसंगत है ?

(३) हुमायूँ के राज्यकाल में मुगलों की शक्ति ने एकाएक पलटा खाया, इसकी विवेचना करिये ।

(४) बहादुरशाह तथा शेरशाह के साथ हुमायूँ की लड़ाइयों का वर्णन करते हुए हुमायूँ की असफलता के कारण बताइये ।

उत्तर प्रदेश बोर्ड

(५) अफ़गान और मुगलों में १५३० और १५४० ई० के बीच भारतवर्ष का राज्य प्राप्त करने के लिए जो संघर्ष हुआ उसका वर्णन कीजिये । हुमायूँ की असफलता के कारण भी बताइये । (१९५२ ई०)

(६) शेरशाह के विरुद्ध हुमायूँ की हार के कारण बताइये । (१९५७)

राजपूताना बोर्ड

(७) एसा कहा जा सकता है कि हुमायूँ ने अपनी विजयों का पूर्ण प्रयोग नहीं किया । क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? सकारण बताइये ?

(८) क्या हुमायूँ असफल रहा ? हुमायूँ के शासन काल की घटनाओं का उल्लेख करते हुए अपने कथन को स्पष्ट कीजिये । (१९५६)

मध्य प्रदेश बोर्ड

(९) शेरशाह के हुमायूँ के साथ झगड़े का वर्णन कीजिए । हुमायूँ की असफलता के कारण बताइये । (१९५१)

(१०) मुगल अफ़गान संघर्ष का वर्णन करो । (१९५३)

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कुछ प्रमुख तिथियाँ

(१) शेरशाह के विरुद्ध हुमायूँ का अभियान	१५३७ ई०
(२) चुनार का घेरा	१५३० ई० १५३७ ई०
(३) चौसा का युद्ध	२६ जून १५३६ ई०
(४) कन्नौज का युद्ध	१७ मई १५४० ई०
(५) हुमायूँ का भारत से पलायन	१५४० ई०
(६) शेरशाह भारत का नृपति	१५४०–४५ ई०
(७) हिन्दाल की मृत्यु	१५५१ ई०
(८) कामराँ को अंधा करना	१५५३ ई०
(९) सरहिन्द का युद्ध	२२ जून १५५५ ई०
(१०) हुमायूँ का दिल्ली प्रवेश	२० जुलाई १५५५ ई०
(११) हुमायूँ का देहावसान	२४ जनवरी १५५६ ई०
(१२) कामराँ की मृत्यु (मक्का में)	१५५७ ई०
(१३) शेरशाह की मृत्यु	१५४५ ई०

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद ३

शेरशाह तथा उसके उत्तराधिकारी

डा० त्रिपाठी के शब्दों में "शेरशाह इतिहास के उन महान पुरुषों में है जो धूल से एकाएक पुष्पित और सम्मानित हुए और अपनी योग्यता, अपने साहस, अपनी कार्य कुशलता व सूझ तथा तलवार के बल पर ऊँचे से ऊँचे उठ गये।"†

शेरशाह न तो उच्च वंश में उत्पन्न था और न वह किसी धार्मिक अथवा राजनीतिक नेता का अनुयायी था। उसका बाबा इब्राहीम एक साधारण अश्व-विक्रेता था। समय भी उसका अत्यंत अशांत था, क्योंकि उसे अपने परिवार में भी कम शांति मिली। उसे परिस्थितियों वश दर-दर भटकना पड़ा, पर अपने साहस तथा पौरुष के बल पर वह मुग़लों से भारत का सिंहासन छीन सका। इसके लिए जहाँ अन्य अनेक कारण उत्तरदायी हैं वहाँ उसके शब्द स्मरणीय हैं। वह कहा करता था कि **"बड़े को सदा कार्य करना ही शोभा देता है।** *

उसका प्रारम्भिक जीवन–शेरशाह का पितामह बहलोल लोदी के काल में नौकरी की तलाश में भारत आया था। उसने पंजाब में नौकरी प्रारम्भ की। जब शेरशाह का जन्म हुआ, तब उसका पिता हसन भी पंजाब में ही था। शेरशाह का बचपन का नाम फरीद था। फरीद के बचपन में हसन ने पंजाब में जमाल खाँ के यहाँ नौकरी की। जब जमाल खाँ सिकन्दर लोदी के समय में जौनपुर भेजा गया तो उसने हसन को बिहार में सहसराम की जागीर दे दी। हसन के चार पत्नियाँ थीं और उनसे आठ पुत्र। सबसे बड़ी पत्नी का पुत्र फरीद था। उसका जन्म १४७२ ई० अथवा १४८६ ई०‡ में माना जाता है। फरीद अपने छोटे भाई सुलेमान की तरह भाग्यशाली न था क्योंकि हसन अपनी सबसे छोटी पत्नी को बहुत चाहता था जिसका पुत्र सुलेमान

---

† "Shershah is one of those great men of history who blossomed out of dust into glory and rose to the highest pinnacle by dint their courage' of ability, and resourcefulness as also by the strength of their sword."

Rise and fall of the Mughal Empire. P. 115

Dr. Tripathi

* "It behoues the great to be always active."

Sher Shah.

‡ डा० कानून गो का मत।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

था, पर फरीद योग्यता में सुलेमान से कहीं अधिक था। अतः यह एक कलह की जड़ बन गयी। धीरे-धीरे फरीद और उसकी माँ के कष्ट बढ़ गये। अंत में, १४९४ में फरीद को घर छोड़कर जौनपुर जाना पड़ा।

उस समय जौनपुर पूर्वी सूबे की राजधानी और शिक्षा का एक बड़ा केन्द्र था। जौनपुर में फ़रीद ने परिश्रम से अध्ययन किया और अनेक अरबी तथा फ़ारसी की पुस्तकें कंठ कर डालीं। उसको गुलिस्तां, बोस्तां तथा सिकन्दरनामा याद थे। अपनी अपूर्व प्रतिभा के कारण फ़रीद जमाल खाँ की दृष्टि पर चढ़ गया। फ़रीद ने जौनपुर के अनेक विद्वानों को भी प्रभावित किया। आखिर एक दिन जमाल खाँ के कहने सुनने पर हसन इस बात पर राज़ी हो गया कि वह अपनी जागीर का प्रवंध फ़रीद के हाथ में दे दे जमाल खाँ ने ही फ़रीद को घर लौट जाने को वाध्य किया।

फ़रीद ने घर पहुँच कर जागीर सम्हाली, और उसका प्रबंध ठीक किया। प्रारम्भ से ही वह दृढ़ एवं कठोर शासक था। उसने जौनपुर में प्रबंध करने की निपुणता प्राप्त कर ली थी। अतः बहुत ही शीघ्र सहसराम की जागीर फूलने फलने लगी। डा० आर० पी० त्रिपाठी के शब्दों में—"**वहाँ हसन के परगनों का प्रबंध कभी इतना सुंदर न हुआ था, जैसा कि फरीद के समय हुआ। विद्रोह और अशांति को सख्ती से दबा दिया गया। अधिकारियों के अत्याचार समाप्त हो गये तथा हसन की जागीर में सर्वत्र शांति तथा सुख का साम्राज्य हो गया।** †

फरीद ने लगभग २१ वर्ष तक पिता की जागीर का प्रबंध सम्हाला। पर उससे भी उसका कष्ट बढ़ गया। उसकी सौतेली माँ तथा उसका भाई उससे अप्रसन्न रहने लगे। अन्ततः एक दिन उसको सन् १५१८ ई० में पुनः सहसराम छोड़ने को बाध्य होना पड़ा। वह इब्राहीम लोदी के पास गया। उसने उससे (इब्राहीम से) अपने पिता की जागीर कौ अपने नाम करने को निवेदन किया। पहले तो इब्राहीम ने स्पष्ट इन्कार कर दिया, पर शीघ्र ही हसन की मृत्यु हो गयी। अतः फरीद को अपनी पैतृक जागीर मिल गयी। इससे फरीद के कष्ट का अंत न हुआ, क्योंकि उसके भाई ने उस पर अपना अधिकार बताया, साथ

† "The parganas of Hasan were never so well administered as under the regime of Farid. Lawlessness and anarchy were sternly put down, official tyranny was rigorously stamped out. Peace and prosperity began to smile upon lands of Hasan.''

Dr. R. P. Tripathi.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ही फरीद के हक़ को गलत बतलाया। उसने बिहार के मुहम्मद खां सूर से भी इस विषय में हस्तक्षेप करने को कहा, किन्तु फरीद इस बात पर राज़ी न हुआ कि वह जागीर के किसी हिस्से का स्वामी बने। फलतः उसने दरिया खां लोहानी के पुत्र, बिहार के शासक बहार खां के यहाँ जाकर नौकरी कर ली। थोड़े ही काल में फरीद ने अपनी सेवाओं से उसे प्रसन्न कर लिया। एक दिन उसने शेर का शिकार किया, जिससे प्रसन्न होकर बहार खाँ ने फरीद को शेरखाँ की उपाधि प्रदान की। साथ ही शेर खाँ को अपने पुत्र जलाल का अध्यापक नियुक्त किया। कुछ काल पश्चात् फरीद की यहाँ भी न बनी। बहार खाँ से मतभेद होने के कारण उसे यह नौकरी भी छोड़नी पड़ी। कारण यह था कि शेरखाँ के उदय को लोहानी सरदार न देख सकते थे। अतः उन्होंने बहार खाँ के कान भरना प्रारम्भ किये। कहा गया कि शेरखाँ तो मुहम्मद लोदी से मिलकर अफ़गानों का राज्य स्थापित करना चाहता है। इस पर बहार खाँ ने उससे जागीर के हिस्से करने को कहा। शेर खाँ जब राजी न हुआ, तो उसे हटना पड़ा किन्तु इस बीच बाबर भारत आ चुका था। शेरखाँ आगरे गया और बाबर से मिला तथा १५२७ ई० में उसके यहाँ नौकरी कर ली। जिस समय बाबर पूर्व की ओर अफगानों से युद्ध करने निकला तो शेरखाँ ने उसकी बड़ी सहायता की। इसी के उपलक्ष में बाबर ने उसको उसकी जागीर पुनः दे दी। इस सम्पर्क से शेरखाँ ने अनेक लाभ उठाये। उसे यह ज्ञात हो गया कि मुग़लों में क्या कमजोरियाँ हैं। उसने अनुभव किया कि मुग़ल कितने अभिमानी हैं और लगभग १५२८ ई० में उसने नौकरी भी छोड़ दी। पुनः वह दक्षिण बिहार गया और जलाल का अध्यापक बना। सन् १५२८ ई० में बिहार के शासक का देहांत हो गया। अतः शेरखाँ राज्यपाल (गवर्नर) नियुक्त किया गया। अपनी नई स्थिति में उसने बिहार की सारी व्यवस्था को उलट दिया। उसके इस समय कुछ ऐसे सहायक भी उठ खड़े हुए जो उसके लिए सर्वस्व दे सकते थे।

सन् १५२९ ई० में शेर खाँ को दूसरा संकट आ पड़ा। कुछ अफ़गान अमीरों के बुलाने पर इब्राहीम का छोटा भाई महमूद लोदी बिहार में आया। सभी अफग़ान उसके झंडे के नीचे आ गये, और महमूद के नेतृत्व में एक सेना का संगठन किया गया, जो मुग़लों के विरुद्ध लड़े। पहले तो शेरखाँ इससे अलग रहा क्योंकि वह बाबर को अप्रसन्न न करना चाहता था। पर बाद में स्वयं भी विद्रोहियों से मिल गया। पहले पहल इस सेना को बड़ी सफ़लता प्राप्त हुई, किंतु जब युद्ध के विरोधी मुग़ल हो गये तो कष्टकर हुआ। मुहम्मद युद्ध क्षेत्र से भाग खड़ा हुआ। दक्षिणी बिहार पुनः जलाल खाँ को मिल गया; जो मुग़लों को वार्षिक कर देने लगा। शेर खाँ को जलाल खाँ ने एक बार पुनः बुलाया

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

और जलाल खाँ के अधीन वह उप गवर्नर हो गया। जलाल खाँ की माता का भी देहांत हो चुका था था और जलाल खाँ स्वयं नाबालिग था, अतः बिहार की सारी शक्ति शेर खाँ के अधिकार में आ गयी।

बंगाल से सम्बन्ध---इस समय बंगाल और बिहार के सम्बन्ध अच्छे न थे। बंगाल में इस समय नसरत शाह राज्य कर रहा था। उसकी भी दृष्टि बिहार पर लगी थी। शेर खाँ ने नसरत शाह के एक सम्बन्धी से मैत्री कर ली। सन् १५२९ ई० में नसरत शाह ने बिहार पर आक्रमण किया, पर शेर खाँ ने उसे बुरी तरह हराया। इस विजय से शेर खाँ की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी। पर साथ ही उसके शत्रुओं की संख्या भी बढ़ने लगी। अभी तक शेर खाँ राज्य का सारा कार्य करता था, किन्तु अपने नाम पर नहीं। उसने अपनी स्थिति से कभी अनुचित लाभ न उठाया था।

चुनार पर अधिकार–सन् १५३० ई० में शेर खाँ को चुनार पर अधिकार करने का अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ के शासक तथा उसके पुत्र में कलह हो गया।

इसमें पुत्र ने अपने पिता ताज खां का वध कर दिया था। बात यह थी कि ताज खां अपनी एक पत्नी लाड़ मलिका को बहुत चाहता था, और वस्तुतः वह महिला बड़ी ही चतुर थी। एक दिन कहीं उसके (ताज खां) दूसरी पत्नी से पुत्र ने क्रोध में आकर लाड़ मलिका के चाकू मार दिया, जिससे लाड़ मलिका के कुछ चोट आ गयी। लाड़ मलिका ने इस बात की शिकायत पति से की। ताज खां अपने पुत्र को मारने दौड़ा, पर जब बेटे ने देखा कि पत्नी का पक्ष लेकर पिता उसे मार देना चाहते हैं, तो उसने उसका वध कर दिया। इस झगड़े से शेरखां ने खूब लाभ उठाया। लाड़ मलिका को अपनी ओर मिला लिया और उससे विवाह कर लिया। पिता को मारने के पश्चात् पुत्र भाग खड़ा हुआ। शेर खां को पत्नी मिली, कोष मिला और मिला वह दुर्ग जिसकी उसे आवश्यकता थी। इस प्रकार शरखां अपने प्रथम अभियान में सफल हुआ।

शेरखां और हुमायूँ का प्रथम संघर्ष १५३१ ई०---हुमायूँ ने जब महमूद लोदीको हरा दिया तथा अनेक अफ़ग़ान मृत्यु के घाट उतार दिये तो उसने हिन्दू बेग को शेरखां से चुनार का दुर्ग लेने को कहा। हिन्दू वेग दल बल सहित चुनार पर चढ़ आया। इस समय दुर्ग में शेरखां का पुत्र जलाल खां तथा अन्य अमीर उसकी रक्षा में सन्नद्ध थे। चार माह के घेरे के पश्चात् जब शेरखां ने देखा कि दुर्ग मुग़लों के हाथ चला जायगा तो उसने हुमायूँ को लिखा कि मैं "सन्धि के लिए प्रस्तुत हूँ, मैं तो आपका सेवक हूँ, अपनी सत्यता के लिए अपने पुत्र कुतुब खां को भेजता हूँ। आप दुर्ग तो किसी न किसी को देंगे ही। मेरे

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पास ही बना रहने दीजिये।" हुमायूँ इन बातों में आ गया। उसने शेरखाँ से सन्धि कर ली और पश्चिम की अशान्ति के कारण लौट पड़ा। पर हुमायू ने यह एक ऐसी भूल की जिसका फल उसे बाद को स्वयं भुगतना पड़ा। वही शेरखाँ उसके लिए काँटा बन गया। उसीने कुछ समय पश्चात् हुमायूँ से दिल्ली का सिंहासन छीन कर उसको भारत के बाहर खदेड़ दिया। हुमायूँ निश्चिन्त था कि पूर्व तो शान्त है और उसके साथ है।

बिहार और बंगाल १५३४–३७––अब शेरखाँ का मस्तिष्क ऊँचा उठा, उसने अनेक अफगान अपनी सेना में भर्ती किये। उधर गुजरात में बहादुरशाह के हुमायूँ से हारने के कारण बचे हुए अफगान सैनिक भी उससे आ मिले। शेरशाह ने गेरुये वस्त्र धारण करने वाले अफगान को भी एक फौजी बना दिया। इस समय तक बंगाल का शासक नासिरखाँ (नसरत शाह) मर चुका था, उसके स्थान पर उसका लड़का सुल्तान महमूद बादशाह हुआ। सुल्तान महमूद बहुत योग्य न था पर बिहार तक के प्रदेश पर अपना अधिकार चाहता था। उसने कुतुब खाँ को बिहार की ओर भेजा। शेरखाँ भी उसे खूब समझ चुका था। वह जिस समय हुमायूँ से उलझ रहा था महमूद ने अनेक अड़चनें डाली थीं। अतः शेरखाँ भी उसे समाप्त करना चाहता था। शेरखाँ ने बड़ी वीरता से कुतुब खाँ का सामना किया और उसे पराजित कर दिया। लूट का जो माल मिला, उसे शेरखाँ ने लोहानियों को न दिया। लोहानी अमीर पहले से ही शेरखाँ से द्वेष रखते थे। यह देख कर वे और जल गये। लोहानियों ने अब शेरखाँ को गिराने का प्रयास किया। उन्होंने शेरखाँ की हत्या करनी चाही, पर वे असफल हुए। अतः इन लोगों ने सुलतान जलालुद्दीन के कान भरे, जलाल को अभी कोई अनुभव न था। वह इन लोगों की बातों में आकर बंगाल के शासक से जा मिला। शेरखाँ को इससे भी लाभ ही हुआ क्योंकि वह अब बिहार का स्वतन्त्र शासक होगया, उसने बिहार से लोहानियों को भगा दिया। साथ ही उसने अपनी सेना को और संगठित किया और बंगाल की ओर चल दिया।

सूरज गढ़ का युद्ध––(१५३४ ई०) बंगाल और बिहार की सेनाओं का सूरजगढ़ के स्थान पर भीषण संग्राम हुआ। शेरखां ने अपनी सेना का एक भाग छिपा दिया और एक छोटी सी सेना को सामने रखा। जब बंगाल की सेना ने आक्रमण किया तो उसकी छोटी सी सेना पीछे हटने लगी। इस प्रकार उसने बंगाल की सेना को बहुत दूर खींच लिया। इसी समय उसकी छिपी हुई सेना ने आक्रमण कर दिया और बंगाल की सेना को बुरी तरह परास्त किया। इस युद्ध का परिणाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हुआ। शेरखाँ के अधिकार में बहुत सा

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पूर्वी प्रदेश आ गया, और वह अब बिहार का स्वतंत्र शासक बन गया।

कानूनगो महोदय का कथन है कि "इस विजय का सैनिक महत्त्व तो अधिक है ही, इसका राजनीतिक प्रतिफल भी बहुत अधिक था। यदि सूरजगढ़ की विजय न होती तो ससराम का जागीरदार भारत के राजनीतिक क्षेत्र में अनजान से जान बन कर न उतरता, न राज्य कर पाता क्योंकि उसके अतिरिक्त राज्य करने के लिए साम्राज्यशाही के उत्तराधिकारी बहादुर शाह और हुमायूँ विद्यमान थे।* फिर क्या था, शेरखाँ ने अपना राज्य विस्तार प्रारम्भ किया, उसने दूसरे ही वर्ष (१५३५ ई०) महमूद पर आक्रमण किया। महमूद ने उसे अतुल धन देकर† अपनी रक्षा की। इस प्रकार महमूद ने हुसेनशाह और नसरतशाह जैसे शक्तिशाली शासकों का नाम डुबो दिया।

रोहतास गढ़ पर अधिकार--चुनार पर हुमायूँ का अधिकार हो गया था। हुमायूँ शेरखाँ के कार्य को देखकर दुःखी तथा आश्चर्यान्वित था। शेरखाँ भी दंग था कि हुमायूँ से कैसे टक्कर ले। रोहतास के दुर्ग में इस समय एक हिन्दू राजा था। शेरखाँ ने इस दुर्ग को भी बड़े कौशल से ले लिया। इस विषय में दो मत हैं। एक मत के अनुसार शेर खाँ ने हिन्दू राजा से विनय की कि वह उसकी महिलाओं को शरण दे दे। राजा उदार था। इसके लिए राजी हो गया। शेरखाँ ने छद्म भेष में किले में फौज भेज दी। उन्होंने हिन्दू राजा को निकाल बाहर किया और दुर्ग पर अधिकार कर लिया। दूसरा मत यह है कि शेरखाँ ने हिन्दू राजा के मंत्री को रिश्वत दी और उससे अपने लिए शरण माँगी। राजा के मना करने पर भी मन्त्री ने अफ़गान सैनिक किले में आ जाने दिये। जैसे ही उन्होंने किले में प्रवेश किया किले को अपने हाथ में ले लिया। जिस समय हुमायूँ चुनार के किले में व्यस्त था। शेर खाँ ने गौड़ पर पूरा अधिकार कर लिया। जब तक हुमायूँ उधर गया वह कोष लेकर चला आया।

मुग़लों का बंगाल पर अधिकार--सबसे पहले हुमायूँ ने शेरखाँ से सुलह करनी चाही। उसने शेरखाँ से कहा कि अपना सारा राज्य दे दे और अपने

---

* "But for the victory of Surajgarh the Jagirdar of Sasram would never have emerged from his obscurity into the arena of Hindustan politics to reign, in spite of himself, a race for the empire with hereditary heads like Bahadur Shah and Humayun Padshah."
Prof. Qanungo.

† १३००००० सुर्वण मुद्राएं – मुग़ल एम्पायर इन इण्डिया।
by S. R. Sharma.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

लिए एक जागीर ले ले। शेरखाँ ने जब यह न माना तो हुमायूँ ने कहलाया कि वह बंगाल अपने पास रखे और बिहार को समर्पण कर दे तथा सालाना १० लाख का कर दान करे। इस बात को शेरखाँ ने मान लिया और बात लगभग समाप्त हो गयी, पर बाद को हुमायूँ का मन बदल गया। उसने गौड़ स्वयं लेना चाहा। जब शेरखाँ ने देखा कि हुमायूँ आ रहा है, वह सारा कोष लेकर रोहतास के किले में चला गया, जिसकी चर्चा की जा चुकी है। इस प्रकार शेरखाँ को हुमायूँ का बंगाल की ओर आना खटक गया। उसकी दृष्टि से यह विश्वासघात था, पर उसने हुमायूँ को बंगाल जाने से रोकना उचित न समझा। हुमायूँ ने शीघ्र ही जाकर बंगाल पर अधिकार कर लिया और वहीं मौज करने लगा। इस बीच शेरखाँ ने बिहार से दिल्ली के बीच के भाग पर अपना अधिकार जमा लिया। उसने दिल्ली और बंगाल का सम्पर्क भी समाप्त कर दिया। उधर हुमायूँ बंगाल से दिल्ली की ओर की सुध ही मानों भूल गया, धीरे-धीरे समय बीता, वर्षा के दिन भी समीप आ गये। यह पहले कहा जा चुका है कि किस प्रकार लौटते समय हुमायूँ का चौसा के स्थान पर शेरखाँ से युद्ध हुआ, जिसमें हुमायूँ को मुँह की खानी पड़ी और बड़ी मुसीबत से उसने अपने प्राण भी बचा पाये। शेरखाँ बहुत सतर्क था, जब कि हुमायूँ की सेना चैन कर रही थी। युद्ध में भी शेरखाँ ने एकाएक आक्रमण करके मुग़लों को धर दबाया। इस विजय से शेरखाँ का तो भाग्य ही पलट गया। उसकी किस्मत खुल गयी। "एक ही बार में उसने", जैसा कि डा० कानूनगो ने लिखा है "बिहार व बंगाल के अतिरिक्त जौनपुर भी ले लिया और अब वह नियम पूर्वक हुमायूं की समानता करने का अधिकारी हो गया।"† इसके पश्चात् शेरखाँ दिल्ली पर अधिकार करने के स्वप्न देखने लगा।

चौसा में हुमायूँ की हार के कारण

१. हुमायूँ ने शेर खाँ को सन्धि वार्ता करने का समय दे दिया, जिसमें शेर खाँ ने पूरी तैयारी कर ली। शेर खाँ की सेना जिस समय थकी हुई थी, उसी समय हुमायूँ को उस पर आक्रमण करना चाहिये था।

२. शेख खलील ने बादशाह को धोखा दिया और शेरखाँ को आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। अफ़ग़ान इतिहासकार भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि शेर खाँ ने धोखे से आक्रमण किया।

† "Now he won by a single stroke Jaunpur in addition to Bengal and Behar in independent sovereignty and could legitimately claim equality with the emperor." *Dr. Qanungo.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

३. शेरखाँ के सेनानायक खवासखाँ के एकाएक आ जाने से सेना में इतनी हलचल हो गयी थी कि बादशाह जो गुसल को जा रहा था, बड़ी मुश्किल से अपने हरम को सुरक्षित स्थान तक ले जा सका। इसका उत्तरदायित्व मुहम्मद ज़माँ मिर्ज़ा पर था, जिसके ऊपर सुरक्षा का भार था, वह शिविर को अरक्षित छोड़कर सोने चला गया था। अतः शाही फौजें युद्ध के लिए बिल्कुल तैयार न थीं।

४. बंगाल की मलेरिया युक्त जलवायु के कारण हुमायूँ की सेना की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। उसमें युद्ध करने का न तो बल था न जोश।

५. हुमायूँ को शेरखाँ की शक्ति का ठीक ठीक अनुमान न था। वह उससे युद्ध करना एक मज़ाक समझता था, जबकि शेर खाँ ने मुग़लों की शक्ति को तौल कर ही तैयारी की थी। शेर खाँ तो जीवन की एक नयी सीढ़ी पर चढ़ने जा रहा था। वह खूब समझ चुका था कि उस युद्ध में हार का अर्थ उसके जीवन की समाप्ति ही होगी। फिर वह युद्ध करने की कला में भी दक्ष था।

६. हुमायूँ शेर खाँ की तुलना में सैन्य संचालन में भी कुशल न था। शेर खाँ उससे कहीं अधिक परिस्थितियों के अनुकूल चलना जानता था।

७. अन्त में यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि इन सब कमजोरियों के साथ भी हुमायूँ में भलमनसाहत थी, धोखेबाज़ी नहीं; जबकि शेर खाँ युद्ध काल में इन बातों की चिन्ता न करता था। शेर खाँ की दृष्टि में शत्रु को समय देना, छोड़ना अथवा उससे भलमनसाहत दिखाना मूर्खता थी। जब शत्रु है तो रियायत का कोई अर्थ ही नहीं होता।

इसके अनन्तर शेरशाह ने, मुग़लों से पुनः कन्नौज के समीप लोहा लिया। उसमें भी विजयश्री शेरशाह के हाथ लगी। इसकी चर्चा भी पहले की जा चुकी है कि किस प्रकार हुमायूँ का पीछा किया और उसे भारत से बाहर भागने को बाध्य किया। कन्नौज के युद्ध ने तो डा० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार **"एक ऐसा भारी अनर्थ किया जैसा कि चौसा में भी न हुआ था, इसने तो मुग़लों के पुनः उठ खड़े होने की आशाओं पर पानी फेर दिया।"**† उसका फल तो हुमायूँ को अपने भाइयों के साथ सलाह करके ही जान लेना चाहिये था। वस्तुतः हुमायूँ को पश्चिम की ओर से पूर्व को कुछ समय तक मुँह ही न करना था। फिर हुमायूँ ने कुछ ऐसी भूलें की थीं, (युद्ध स्थल आदि चुनने में), कि जिनका निराकरण न किया

† "The battle of Ganges turned out a greater disaster than the rout of Chausa and shattered for the time being the hopes of a Mughal revival."

Dr. Ishwari Prasad.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

जा सका। इधर अफ़ग़ान विजय का नगाड़ा लेकर गये थे, उधर मुग़ल हार खा कर। दूसरे इस समय तक बाबर के सामने के सभी सेनानायक मर चुके थे। अतः हुमायूँ को एक नयी सेना से काम लेना पड़ा। हुमायूँ का सहायक भी उस समय कोई न रह गया था। उसे स्वयं कभी भी योजना बनाना न आया। वह बिना सोचे समझे प्रत्येक कार्य करता रहा। कभी दूरदर्शिता से काम न ले सका। अतः जो फल अवश्यम्भावी था, वही हुआ।

शेरशाह की अन्य विजयें--शेरशाह सन् १५४० ई० में उत्तर भारत का स्वामी बन गया, पर अभी उसकी रण लिप्सा शान्त न हुई थी। कुछ परि-स्थितियाँ भी ऐसी ही थीं कि वह शान्ति से बैठना चाहता तो भी न बैठने दिया जाता। अतः उसने कुछ अन्य स्थानों की ओर अभियान किया। अब उसे भय किस बात का था, अब तो खुतबा उसी के नाम पढ़ा जाने लगा था। उसे किसी का स्वामित्व न मानना था। उसे अपने पर भरोसा था। वह दूसरों की शक्ति भी पहचानता था।

शेरशाह की विजयें

शेरशाह की विजयें

(१) खोखरों पर विजय
(२) बंगाल विजय
(३) रणथम्भौर विजय
(४) रायसिन विजय (१५४३)
(५) सिन्ध व मुल्तान विजय (१५४३)
(६) मालवा विजय (१५४२)
(७) राजपूताना विजय (मारवाड़ व मेवाड़)
(८) कालिंजर विजय

(१) **खोखरों पर विजय**--चौसा और कन्नौज जैसे युद्धों के पश्चात् शेरशाह को अन्य युद्धों का कोई महत्त्व न था। खोखर प्रदेश झेलम और सिन्धु के बीच का था, जिसमें आज हज़ारा, रावलपिण्डी और झेलम के ज़िले हैं। इसमें कुछ अर्द्ध सभ्य जातियाँ रहती थीं, पर उनका ऐसी सीमा के स्थल पर होने के नाते बड़ा महत्त्व था। मुग़लों के लौटने में वे ही सहायक हो सकते थे। इन लोगों को जब शेरशाह ने अधीनता स्वीकार करने को लिखा तो उन्होंने उत्तर दिया कि "**हम तो शेर और सिपाही हैं, हम से आप शेर और तीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं माँग सकते।**" † इस पर शेरशाह क्रोध से से उबल पड़ा और बोला कि मैं '**इन दुष्ट जानवरों में ऐसी पच्चड़ लगाऊंगा कि क़यामत तक याद**

† "We are tigers and soldiers, from us you cannot demand anything except tigers and arrows."
Rise and fall of the Mughal Empire. P. 120,
R.P. Tripathi

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

रहेगी'। आखिर युद्ध अवश्यम्भावी था, शेरशाह ने आक्रमण किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके प्रदेश ने उनकी बड़ी रक्षा की, पर शेरशाह के सामने वे न टिक सके। शेरशाह ने उनके प्रदेश को उजाड़ दिया और अनेक व्यक्तियों को बन्दी बना लिया। भविष्य में वे पुनः कुछ गड़बड़ी न कर सकें, इस लिए शेरशाह ने एक दुर्ग बनवाया जिसका नाम उसने रोहतास रखा। इसके बनानें में भी यहाँ के निवासियों ने आपत्ति की, रोड़े अटकाये, पर शेरशाह ने उसे पूर्ण कराया, और सुरक्षा के लिए ५००० सैनिकों को वहीं रख दिया। शेर शाह का यह कार्य अत्यन्त सराहनीय था, क्योंकि इस ओर से उसे आये दिन अशान्ति का संदेश सुनना पड़ता था और उसे साम्राज्य की सीमा सम्हालना अत्यन्त आवश्यक था।

(२) **बंगाल विजय १५४१ ई०**--पंजाब का कार्य पूरा न हुआ था कि शेरशाह को बंगाल की ओर मुड़ना पड़ा। कारण यह था कि बंगाल के शासक महमूद शाह की मृत्यु हो चुकी थी, वहाँ के गवर्नर खिज्र खां ने महमूद शाह की कन्या से विवाह कर लिया था, साथ ही वह स्वतन्त्र होने की चेष्टा कर रहा था। अतः शेरशाह तुरन्त बंगाल गया। यद्यपि खिज्र खां ने भय के मारे उसका स्वागत किया पर शेरशाह ने उसको बन्दी बना लिया तथा बंगाल का सूबा छोटा कर दिया। साथ ही उसकी जगह कमिश्नर नियुक्त किया जो सीधा उसके प्रति उत्तरदायी रहता था। इस प्रकार शेरशाह ने सैनिक शासन के स्थान पर एक नयी शासन व्यवस्था को जन्म दिया।

(३) **मालवा विजय १५४२ ई०**--बंगाल से निश्चित होकर शेरशाह मालवा की ओर गया। वहाँ इस समय दो शासक थे, एक मल्लू खां जो स्वतन्त्र शासक हो रहा था, और दूसरा कादिर शाह जो अपने को किसी से कम न गिनता था। कादिर शाह ने तो शेरशाह के भेजे हुए फ़रमान मानने से ही इन्कार कर दिया था। इसके अतिरिक्त हुमायूँ अभी सिन्ध की ओर इस आशा के साथ घूम रहा था कि कहीं पुनः अवसर मिल जाय तो राज्य वापस ले लिया जाय। तीसरे काल्पी के युद्ध में कुतुब खां की मृत्यु कादिर शाह की लापरवाही के ही कारण हुई थी। मालवा जैसे दुर्बल राज्य से एक नहीं अनेक ख़तरे थे। उधर मालदेव अपनी विजय कामना कर रहा था। यदि मालदेव कहीं सफल हो जाता तो सब किया कराया मिट्टी हो जाता। अतः शेरशाह ने मालवा पर आक्रमण किया। मार्ग में उसने ग्वालियर का दुर्ग भी ले लिया। इस समय यह दुर्ग अब्दुल कासिम के अधीन था, जो हुमायूँ के नाम पर शासन कर रहा था। इसके बाद शेरशाह आगे बढ़ा तो भय

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

से कादिर शाह ने भी आत्म समर्पण कर दिया। मल्लू खां तो शेरशाह का लोहा पहले से ही मानता था। अतः शेरशाह के सारंगपुर पहुँचते ही उसने आत्म समर्पण कर दिया। इस प्रकार सारा मालवा शेरशाह के हाथ आ गया। मालवे का शासन प्रबन्ध ठीक करके शेरशाह ने सुजात खां को उसका सूबेदार बना दिया। क़ादिर शाह को शेरशाह काल्पी अथवा बंगाल में कोई जागीर देना चाहता था, पर कादिर इसे क्यों चाहने लगा, अतः एक दिन चोरी से गुजरात भाग गया। काल्पी लौटते समय रण थम्भौर का दुर्ग भी शेरशाह के हाथ आ गया। वहां के गवर्नर उसमान खां ने बिना किसी आनाकानी के दुर्ग का अधिकार शेर शाह को सौंप दिया।

(४) रायसीन १५४३ ई०—रायसीन और चन्देरी जैसी रियासतों को मालवा, गुजरात अथवा दिल्ली के शासक कभी भी सहन न कर सके, क्योंकि इन रियासतों को चित्तौड़ के राणा का सहयोग प्राप्त था। चन्देरी को तो बाबर ले चुका था, पर रायसीन पर बहादुर शाह का अधिकार था। जब बहादुर शाह की मृत्यु हुई तो रायसीन और चन्देरी पर राजपूत पूरनमल का अधिकार हो गया। वैसे तो जब शेरशाह मालवा गया था तो पूरनमल उसके सामने उपस्थित किया गया था। शेरशाह ने उसे भेंट आदि लेकर रायसीन लौट जाने दिया था, पर जब शेरशाह बिहार में अस्वस्थ था, तो उसने सुना कि पूरनमल मुसलमानों पर अत्याचार करता है। उनकी लड़कियों को नचाता है उनके साथ दुर्व्यवहार करता है, तो उसने पूरनमल को दण्ड देने का निश्चय किया। अन्त में १५४३ ई० में रायसीन पर आक्रमण किया गया। शेरशाह स्वयं गया। वह ६ महीने तक दुर्ग को घेरे रहा पर राजपूत विचलित न हुए। इस पर शेरशाह ने कुरान की शपथ खा कर कहा कि यदि राजा और उसका परिवार उसके शिविर में आ जाय तो वह सन्धि कर लेगा। साथ ही पूरनमल को बनारस का गवर्नर बनाने को तैयार है। पहले तो राजा तैयार न हुआ। उसने कहा कि मैं अपने स्वामी से पूछ कर ही बताऊँगा, पर आखिर वह गया और वह तथा उसका परिवार शेरशाह के खेमे में ठहराये गये। शेरशाह ने अपनी प्रतिज्ञा को ताक में रख आक्रमण करा दिया। अनेक राजपूत मृत्यु के घाट उतार दिये गये, अनेक स्त्री-बच्चे जौहर करके अपना सम्मान बचा ले गये, पर जो बचे वे बन्दी बनाये गये। गुलाम बनाये गये, तथा उनके साथ भी दुर्व्यवहार किया गया। कहते हैं कि राजपूत इतनी वीरता से लड़े कि लोगों को रुस्तम और अस्फन्दयार की कृति भूल गयी और शेरशाह ने समझ लिया कि उनको सीधे-सीधे वश में नहीं किया जा सकता। अतः उसने यह चाल चली। शेरशाह जैसे वीर को यह शोभा नहीं देता था कि वह पूरनमल के मरने पर

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उसकी कन्या को बाजार में नचाता। "**शेरशाह के चरित्र पर यह एक भारी कालिख है।**"† कुतुब ने तो इसे देखकर आत्म हत्या कर ली थी।

(५) सिन्ध तथा मुल्तान १५४३ ई०--इसी समय के लगभग सिन्ध और मुल्तान पर अधिकार किया गया। पर इसका श्रेय उसके सेनापति हैवत खाँ नियाज़ी को है। इस प्रदेश पर कामराँ का अधिकार था, पर उसके काबुल चले जाने पर यह परम आवश्यक था कि इस प्रान्त पर शेरशाह अपनी दृष्टि रखे।

(६) राजपूताना (मारवाड़ तथा मेवाड़)--जब तक शेरशाह इधर-उधर उलझा रहा तब तक उसने राजपूतों को न छेड़ा था। जब उसने समझ लिया कि अब उसकी गति को रोकने वाला अन्य कोई नहीं रहा तो उसकी दृष्टि राजपूताने पर पड़ी। बाबर से पराजित होकर राणा साँगा इस संसार से चल बसा था। उसके साथ उसका साम्राज्य भी न रहा। अब राजपूतों ने मेवाड़ के स्थान पर मारवाड़ राज्य का निर्माण किया। इस समय मारवाड़ का शासक मालदेव था। मालदेव ने १५४१ ई० में हुमायूँ को भी बुलाया था, कि वह पुनः दिल्ली विजय कर ले। शेरशाह ने जब मालदेव को लिखा कि वह हुमायूँ को शरण न दे बल्कि बन्दी बनाकर उसके पास भेज दे, तो मालदेव मौन हो गया। वह किस ओर चले, यह निश्चित न कर सका। इतनी सशक्त सत्ता को शेरशाह अपने साम्राज्य के बीच कैसे देख सकता था। अतः बड़ी तैयारी के साथ आक्रमण किया गया। मालदेव भी उसका सामना करने के लिए आगे बढ़ा। शेरशाह ने देखा कि सीधी उँगली घी न निकलेगा। अतः उसने एक पत्र इस आशय का लिखवा कर राजपूतों के खेमे में डलवा दिया कि हम राजपूत मालदेव की स्वतन्त्र नीति से असन्तुष्ट हैं। वचन देते हैं कि उस को पकड़ कर आपके (शेरशाह) हवाले कर देंगे‡ मालदेव इस पत्र को देख

† "Left the deepest blot on Sher Shah's memory."
Rise and fall of the Mughal Empire. P. 124,
Dr. R. P. Tripathi

‡ "Let not the King permit any anxiety or doubt to find its way to the heart. During the battle we will seize Maldeo and bring him to you."

History of India since 1526, P. 36.
by V. D. Mahajan.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कर बहुत खिन्न हुआ। वह आगे लड़ना ही न चाहता था, कुछ राजपूतों ने शपथ पूर्वक कहा कि वह पत्र जाली है, आप हम सब पर विश्वास रखिये। यह कह कर वे शेरशाह की फौज पर टूट पड़े पर कम संख्या में होने के कारण उन्हें हारना पड़ा।

यद्यपि राजपूत इतनी भीषणता से लड़े थे कि स्वयं शेरशाह ने एक बार कहा **"युद्ध इतना भीषण था और विजय इतनी कठिन थी कि मुट्ठी भर बाजरे के लिए मेरा समस्त साम्राज्य चला गया होता।"†**

शेरशाह ने मारवाड़ को अपने साम्राज्य में मिला लिया और इसार खाँ नियाज़ी को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया। शेरशाह की मृत्यु के उपरान्त इसे मालदेव ने पुनः छीन लिया था। इधर से निश्चिन्त होकर शेरशाह ने मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ को भी अपने अधीन कर लिया। पर ये भू भाग भी उसके अधीन बहुत दिन तक न रहे। शेरशाह की वस्तुतः राजपूत नीति विशिष्ट थी, वह स्वयं उनसे डरता था, वह उनको सर्वथा अधीन न करता था, बस उनकी राजनीतिक स्वतन्त्रता का अपहरण कर लेता था। **डा० कानूनगो** ने इस विषय में ठीक ही कहा है, **"शेरशाह ने भारत के अन्य भागों की भाँति राजस्थान में वहाँ के स्थानीय सरदारों को न तो समूल नष्ट किया और न उनके स्वामित्व का ही पूर्णतया अपहरण किया। उसे यह कार्य भयानक तथा निरर्थक लगता था। विजितों की स्वतन्त्रता का पूर्ण अपहरण उसका लक्ष्य ही न था, बल्कि एक दूसरे में राजनीतिक तथा भौगोलिक पृथक्ता बनाये रखना उसका लक्ष्य था, जिससे साम्राज्य में विद्रोह तथा अशान्ति न हो जाय। संक्षेप में शेरशाह का यह कार्य वैसे ही था जैसा कि अंग्रेज़ों का उत्तरी-पश्चिमी सीमावर्ती प्रदेशों पर अधिकार करना, जो केवल साम्राज्य की सुरक्षा के लिए अधिक था लाभ के लिए कम।***

---

† "I had nearly lost the empire of Hindustan for a handful of Bajra." *Sher Shah.*

* In Rajasthan Sher Shah made no attempt to uproot the local chiefs or to reduce them to thorough subjection as he had done in other parts of Hindustan. He found the task dangerous as well as fruitless. He did not aim at the complete subversion of their independence but their political and geographical isolation from one another so as to make any general upheaval against the empire impossible. In short it was something like a British occupation in the North West Frontier tribal territories which is meant less for gain than for the safety of the Indian Empire. *Dr. Qanungo.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(७) कालिंजर विजय और शेरशाह की मृत्यु (१५४४ ई०)––राजस्थान के पश्चात् शेरशाह का ध्यान कालिंजर की ओर गया। कालिंजर का दुर्ग बुन्देल खण्ड में अजेय दुर्ग समझा जाता था। इस समय वहाँ का शासक कीर्तिसिंह था। रीवा के राजा ने कालिजर में शरण ले रखी थी। शेरशाह ने उसको माँगा, किन्तु उसने उसे देने से इनकार कर दिया। इस पर शेरशाह ने युद्ध की घोषणा की और जाकर घेरा डाला। यह दुर्ग १२३० फीट (समुद्र की सतह से) ऊँचा है। इसकी दीवालों की मैदान से तिरछी ऊँचाई १५०' तक है और एक चौड़ी खाई चारों ओर है। इसकी दीवाल की मोटाई बिना सीमेन्ट के ३५' है। अतः इस किले को तोड़ना सरल न शा। शेरशाह ने इस किले को तोप से न उड़ाकर दूर से बन्दूकों से काम लिया। आखिर जब एक साल तक शेरशाह सफल न हुआ तो उसने उसे बारूद से उड़वाया। उससे किले का फाटक तो उड़ गया पर साथ ही शेरशाह उससे जल गया और उसके प्राण भी उसी के साथ उड़ गये। (२२ मई १५४५ ई०)

शेरशाह का शासन-प्रबंध

शेरशाह, एक अनुभवी शासक––शेरशाह के शासन प्रबन्ध के विषय में इतिहासकारों में परस्पर मतभेत है। कुछ विद्वानों का कथन है कि वह तो केवल एक वीर लड़ाका था। उसमें शासन प्रबन्ध करने की कोई क्षमता ही न थी। पर दूसरे पक्ष में डा० कानूनगो, व सरन हैं जिनका मत है कि शेरशाह एक अत्यन्त कुशल प्रबंधक था। त्रिपाठी जी का कथन है कि वह सुधारक तो था, पर किसी नवीन पद्धति का अगुआ न था, उसका शासन प्रबन्ध कोई नवीन कदम न था, बल्कि उसके पहिले अलाउद्दीन का प्रबन्ध हो चुका था, जिसको शेरशाह ने पुनर्जीवित कर दिया था। पर त्रिपाठी जी शेरशाह की क्षमता में सन्देह नहीं करते। आपका कथन ह कि शेरशाह ने हर प्रकार की परिस्थिति का अनुभव किया था। उसने प्रबन्ध के हर पहलू को देख रखा था। आपका कथन है कि **"दिल्ली के सुल्तानों में केवल शेरशाह ही ऐसा था जिसे प्रबन्ध के हर पहलू का प्रत्यक्ष अनुभव था।"†** ठीक भी है, क्योंकि उसने अपने पिता की जागीर का प्रबन्ध करते समय परगना और गाँव का प्रबन्ध देखा था। जब वह जौनपुर में था तो उसने अनेक राजनीतिक गुत्थियाँ तथा शासन-व्यवस्था की विभिन्न समस्याओं का बड़ी चतुरता से अध्ययन किया था। फिर एक राजकुमार के संरक्षक की हैसियत से

† "Of all the Muslim rulers of Delhi Sher Shah was the only one who possessed first hand experience of the details of administration at all levels."
P. 128. Rise and fall of the Mughal Empire.
Dr. R. P. Tripathi

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उसने प्रान्तीय शासन समझा था। यही नहीं उसने मुग़ल शासन पद्धति को भी नज़दीक से देखा था। उसकी बुद्धि तीव्र तथा अनुभव विभिन्न थे। भारत में ही वह जन्मा था, अतः उसे भारत की समस्याओं का अच्छा अध्ययन था। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वह अत्यधिक परिश्रमी, गतिशील और सूक्ष्मदर्शी था। उसका कहना था कि ––

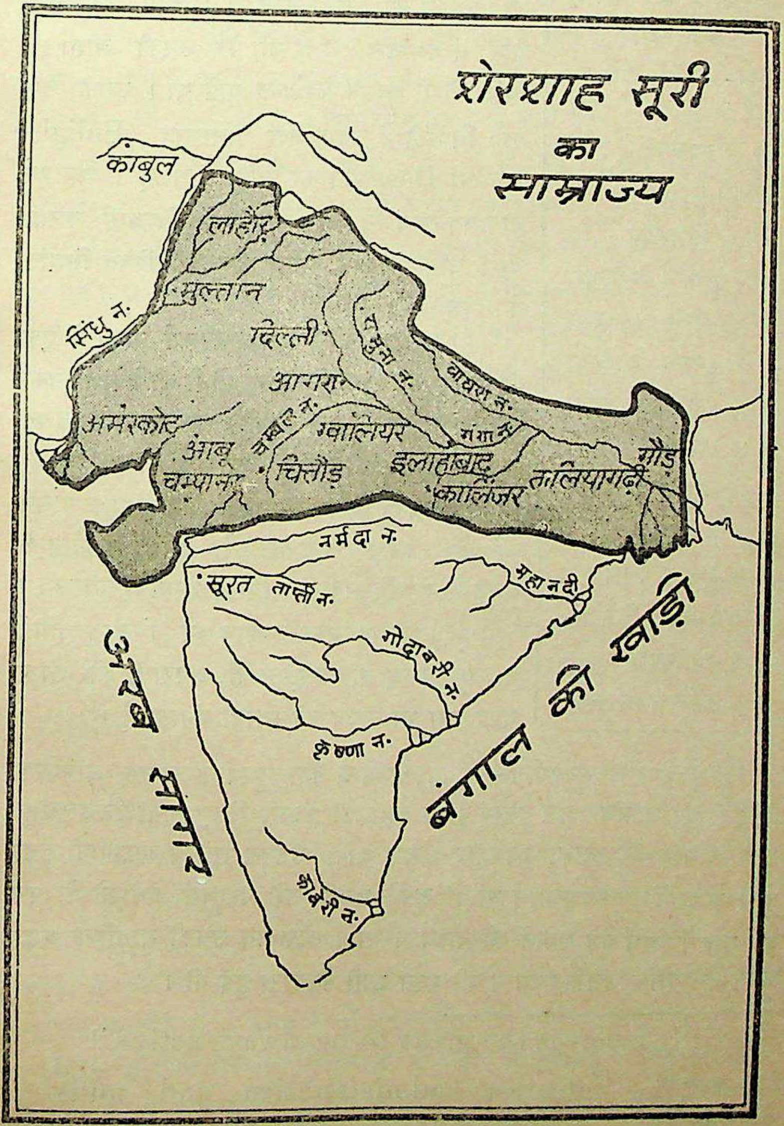

(१५४०–४५ ई०)

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

"बड़े को सदा कार्यरत रहना ही शोभा देता है।"† यही कारण है कि प्रो० कानूनगो ने उसे **"शासन तथा सैनिक प्रबन्ध में एक अभूतपूर्व व्यक्ति कहा है।"***

शेरशाह की शासन व्यवस्था

- (१) राज्य का स्वरूप
- (२) साम्राज्य का विभाजन
- (३) भूमि व्यवस्था, आय व्यवस्था न्याय व्यवस्था
- (४) सैनिकव्यवस्था
- (५) पुलिस तथा गुप्तचर विभाग
- (६) यातायात
- (७) डाक विभाग
- (८) भवन निर्माण
- (९) सामाजिक कार्य
- (१०) सिंहावलोकन

उसका राजत्व (His kingship)--शेरशाह एक अनियन्त्रित शासक था, पर उदार प्रवृत्ति का। उसने कभी भी उलेमा की चिन्ता न की। यद्यपि वह चार चार मन्त्रिमण्डल रखता था, पर उसकी आज्ञा ही विधि थी। शासन का केन्द्र वही था। उसके लिए डा० त्रिपाठी ने उदारचित्त तानाशाह (Enlightened Despot) का प्रयोग किया है। वह हर बात का स्वयं निरीक्षण करने में विश्वास करता था। उसके शासन प्रबन्ध के कुछ निश्चित सिद्धांत थे। यथा--

(१) **राज्य की एकता**--सम्पूर्ण राज्य में एक ही प्रकार की शासन व्यवस्था होनी चाहिये, जिसका अनुभव हम आज कर रहे हैं। इस सिद्धान्त पालन के लिए शासन की शक्ति केन्द्र में होनी चाहिये।

(२) **प्रजा पालन**--राजा को सदा प्रजा पालन का ध्येय सम्मुख रखना चाहिये, इसी सिद्धान्त के अनुसार वह किसानों का विशेष ध्यान रखता था।

(३) **शीघ्र न्याय**--न्याय में विलम्ब होना राज्य के लिए घातक होता है, अपराधी को शीघ्र दण्ड देना भी राज्य को स्थायी बनाता है।

(४) **आय का सदुपयोग**--राज्य की आय का सदुपयोग अत्यन्त आवश्यक है, इसी का उल्लंघन कर हुमायूँ दुःखी हुआ था। इसी लिए अपनी गैर इस्लामी प्रजा के साथ भी उसका व्यवहार अच्छा था। उसका राजत्व अफागानी तथा तुर्की राजत्वों का मध्य मार्ग था। उसके मन्त्री उसे परामर्श देने को थे, पर वह उस परामर्श को मानने को बाध्य न था। अफगान उसकी अत्यधिक श्रद्धा करते थे क्योंकि उनके सम्मान की रक्षा उसी के द्वारा हुई थी।

† "It behoves the great to be always active."

* "The greatest administrative and military genius."

Dr. Qanungo.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

२--उसके मंत्री--शेरशाह के पास चार मन्त्रि मण्डल थे। **१--दीवान-ए-विज़ारत, २--दीवान-ए-आरिज, ३--दीवान-ए-रसालत ४--दीवान-ए-इंशा।** दीवान-ए-विज़ारत का प्रधान वज़ीर होता था। यही देश के आय व्यय का अधिकारी था। साथ ही इसका नियन्त्रण अन्य मन्त्रियों पर भी रहता था। दीवान-ए-आरिज़ आरज़ी-ए-ममालिक की अधीनता में रहता था।यह आराजी-ए-ममालिक भरती करने, सेना का अनुशासन देखने तथा उसके वेतन भत्ते निश्चित करने का अधिकारी था। पर चूँकि सैनिक कार्य में शेरशाह स्वयं बहुत रुचि रखता था अतः वह इस विभाग में हस्तक्षेप बहुत करता था। दीवाने रिसालत एक वैदेशिक मन्त्री की अध्यक्षता में रहता था। उसका कार्य बाहर से आये दूतों का प्रबन्ध करना था। वही उनसे पत्र व्यवहार भी करता था। दान आदि का कार्य भी उसी के हाथ रहता था। दीवान-ए-इंशा का काम था कि शाही फरमान की घोषणा करे। वही सरकारी कागज़ों का भी अधिकारी था। उसका सबसे बड़ा कार्य गवर्नर आदि अन्य अधिकारियों से सम्पर्क रखना था। इन मंत्रियों के अतिरिक्त दीवान-ए-काज़ी तथा दीवान-ए-बरीद भी रहते थे। दीवान-ए-काज़ी प्रधान काज़ी की अध्यक्षता में रहता था। प्रधान काज़ी का कार्य न्याय का कार्य देखना था जब कि दीवान-ए-बरीद का काम गुप्तचर विभाग देखना था। शाही दरबार की देख रेख भी एक पृथक अधिकारी करता था।

(३) उसका राज्य--शेरशाह के राज्य का स्वरूप धार्मिक न था। उसमें धार्मिक सहिष्णुता थी, उसने धर्म को राजनीति में कभी न आने दिया। उसने दण्डनीति इतनी निष्पक्ष बना रखी थी कि कभी वह किसी अपराधी को छोड़ता न था। उसका राज्य इस प्रकार केन्द्रित और एकतन्त्रात्मक था। उसकी शासन पद्धति को ही आधारशिला मान कर अकबर ने आगे चलकर इतनी बड़ी भित्ति खड़ी की थी।

साम्राज्य विभाजन--यह निर्विवाद है कि शेरशाह ने अपना साम्राज्य ४७ भागों में बाँट रखा था। प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष एक अफ़ग़ान सरदार था। प्रान्तीय शासन के विषय में दो मत हैं। डा० कानूनगो के मतानुसार देश की सबसे बड़ी इकाई सरकार थी और प्रान्तों का निर्माण अकबर महान ने किया था। डा० शरण के अनुसार प्रान्त अकबर के पहले से ही थे, और राज्य की सबसे बड़ी इकाई सरकार न थी। पर इन दोनों में भ्रम है। यह निश्चित है कि उसकी शासन की बड़ी इकाई प्रान्त के ही सदृश थी। हाँ उनके आकार प्रकार में कोई साम्य न था। उनको इकतस कहते थे। बंगाल में शेरशाह ने एक नये ढंग के विभाग बनाये थे, जो आज की चीफ कमिश्नरी के तुल्य थे। इन विभागों के अधिकारी जागीरदार थे। इनके बीच संघर्ष न हो, अतः उसने उनके ऊपर

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अलग से एक अधिकारी नियुक्त कर रखा था। वस्तुत: शेरशाह के मस्तिष्क में कोई निश्चित योजना न थी। ये विभाग सरकारों में बँटे थे। हर सरकार परगनों में बँटी थी और हर परगना कुछ गाँवों में बँटा होता था।

(४) इन विभागों के अधिकारी--प्रान्त की भाँति विभाग का अधिकारी अमीन अथवा फौजदार कहलाता था। वह सीधे शेरशाह के प्रति उत्तरदायी था। इसको शान्ति तथा सुरक्षा के लिए छोटी सी सेना दे दी जाती थी। वह सरकारों के विभिन्न अधिकारियों की देख रेख करता था, तथा उनके बीच के झगड़ों का भी फैसला करता था। सरकार के दो प्रमुख अधिकारी होते थे, मुंसिफ-ए-मुंसिफान अर्थात् मुख्यमुंसिफ, तथा शिकदार-ए-शिकदरान अर्थात् मुख्य शिकदर। मुख्य मुंसिफ न्याय का अधिकारी था जो व्यवहार के मुकद्दमे करता था। वह अमीनों का काम भी देखता था। मुख्य शिकदार का कार्य सरकार में, जो आज के जिले के बराबर थी शान्ति स्थापित रखना था। विद्रोह आदि दबाना उसका प्रथम कर्त्तव्य था। साथ ही वह परगने के शिकदारों का कार्य भी देखता था। प्रत्येक परगने में एक शिकदार एक अमीन, एक खजांची, तथा एक हिन्दी और एक फारसी में हिसाब लिखने के लिए लेखक होता था। इनके अतिरिक्त कुछ पटवारी, चौधरी तथा मुकद्दम रहते थे, जो प्रबन्ध में सहायता देते थे। मुकद्दम आज का मुखिया था जो ग्राम तथा सरकार की मध्यस्थता करता था। वह राजकीय सेवक न था, पर ग्राम में शान्ति रखना उसी का कार्य था। इसी प्रकार पटवारी राज्य का कर्मचारी न होकर गाँव वालों का सेवक था। वह कृषि सम्बन्धी कागज़ात रखता था। अमीन, अमील, अथवा अमीर एक ही बात है, इसका कार्य भूमि लगान का निश्चित करना था। शिकदर एक सिपाही था, जो पुलिस या फौज से सम्बन्ध रखता था, और अमीन की लगान वसूल करने में सहायता करता था। वह शाही फरमान को बतलाया करता था। शेरशाह इन पदाधिकारियों को साल या दो साल में स्थानान्तरित कर देता था, जिससे कोई अपने प्रभाव से अनुचित लाभ न उठा सके। कर्मचारियों के प्रति शेरशाह का रुख सदा कड़ा रहता था। यदि किसी मुकद्दम के क्षेत्र में कोई चोरी या डाका पड़ता था, तो उसका धर्म था कि उसका पता लगावे, अन्यथा उसी को हानि पूरी करनी पड़ती थी। शेरशाह का कहना था कि वह चाहे राज्य में रहे, चाहे राज्य के बाहर, पर उसके राज्य में सदा सुख और शान्ति रहनी चाहिये।

(५) भूमि व्यवस्था-- शासन सम्बन्धी कार्यों में शेरशाह का भूमि-प्रबन्ध अत्यन्त सराहनीय है। शेरशाह के पहले भूमि की ठीक नाप ही न होती थी, लगान अनुमान से लगाया जाता था। शेरशाह ने उसकी उचित

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

माप करायी। राजकीय आय अनुमानित उपज का $\frac{1}{3}$ होती थी। इसकी अदायगी धन या धान्य में से किसी में की जा सकती थी। यह लगान मुकद्दमों की सहायता से वसूल किया जाता था। मुकद्दमों को भी उपज का एक भाग दे दिया जाता था। शेरशाह का कहना था कि लगान लगाते समय तो रियायत की जाय, पर एक बार जो निश्चित हो गया उसकी वसूली में कोई रियायत नहीं की जानी चाहिये। फ़सल खराब होने पर किसान कर से मुक्ति भी पा जाते थे। कभी-कभी तो किसानों को राज-कोष से सहायता भी दी जाती थी। किसानों के प्रति शेरशाह का व्यवहार बहुत उत्तम था। उसका सैनिकों को आदेश था कि फ़सल खराब न करें, यदि फिर भी किसी कारण वश उनकी हानि हो जाती थी तो उसकी पूर्ति राज्य से होती थी। प्रत्येक किसान एक क़बूलियत लिखकर अमीन को दे देता था, जो किसान का स्वीकृतिपत्र होता था। इस स्वीकृतिपत्र के बदले उसे सरकार की ओर से पट्टा मिल जाता था। इसी पट्टे में सरकारी माल-गुज़ारी लिखी रहती थी, जिसके अनुसार उससे वसूली की जाती थी। किसान इस लगान को स्वयं भी सीधे राजकोष में जमा कर सकते थे। शेरशाह ने अवैधानिक कर स्थगित कर दिये गये थे, अतः उसके समय में किसान सुखी था। साथ ही सरकारी आय में कोई कमी न आयी थी। फिर भी इस प्रबन्ध में कुछ दोष थे। यथा लगान उपज का सदा $\frac{1}{3}$ भाग लिया जाता था, चाहे भूमि कैसी ही हो अच्छी, बुरी अथवा औसत। इस प्रकार खराब भूमि पर तो यह लगान अधिक हुआ और अच्छी भूमि के हिसाब से कम। दूसरे यह प्रबन्ध केवल एक वर्ष के लिए होता था, अतः किसानों तथा राज्य दोनों को असुविधा होती थी। तीसरे अधिकारियों का भ्रष्टाचार इसे और दुःखद बनाता था। कहीं तो जागीरदारी प्रबन्ध था जिसमें जागीरदार मनमानी करता था। डा० त्रिपाठी के अनुसार शेरशाह के राजस्व विभाग में दो प्रमुख दोष थे। पहला यह, कि बुरी तथा औसत भूमि वालों को अधिक लगान देना पड़ता था और अच्छी वाले को कम, दूसरे यह निश्चय सही पूछताछ पर निर्भर होता है, जो सर्वथा सम्भव न थी; कभी-कभी उसमें विलम्ब हो जाया करता था। पर मोरलैन्ड के कथनानुसार **"शेरशाह के प्रबन्ध की ऐतिहासिक मुख्यता इस बात में है, कि उसकी पद्धति ने उन अनुभवों की रूप-रेखा का प्रारम्भ कर दिया था जो अकबर के शासन के पूर्वार्ध तक रहे"**†

† "The historical importance of Sher Shah's methods lies in the fact that they formed the starting

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(६) **न्याय व्यवस्था**--शेरशाह न्यायप्रियता के लिए बहुत प्रसिद्ध है। उसके शासन में अपने उच्च स्थान के बल पर भी कोई अपराधी दण्ड से न बच सका। उसकी न्याय व्यवस्था अत्यन्त कठोर न थी, पर सदा सत्य पर आधारित थी। इसमें किसी प्रकार का पक्षपात सम्भव न था। उसका कथन था कि **"न्याय धार्मिककृत्यों में सर्वोत्तम कृत्य है और इस कृत्य में तो हिन्दू व मुसलमान सभी के बादशाहों का विश्वास है।"***

वैसे व्यवहार के मुकदमे मुसलमानों के लिए कुरान के अनुसार काज़ी निर्णय करता था किन्तु फौजदारी के मुकद्दमे मुख्य शिकदार करता था। दीवानी कचहरी में मीर आदिल और काज़ी रहते थे। अन्यथा फौजदारी के मुकद्दमे में प्रधान शिकदार तथा मालगुज़ारी के मुकद्दमे प्रधान मुंसिफ करते थे। शेरशाह ने अमीलों और शिकदारों को आज्ञा दे रखी थी कि यदि उनके क्षेत्र में कोई डाका या चोरी हो जाय और यदि उस चोरी या डाके के अपराधी का पता न लग सके तो पास पड़ोस के गाँव से मुकद्दमों को बन्दी कर लें और जब तक वे या तो उनका पता न बतला दें या उसकी क्षति-पूर्ति न कर दें तब तक उन्हें न छोड़ें। शेरशाह के दण्ड देने का उद्देश्य अपराधी को दण्ड देना तो था ही साथ ही एक आदर्श भी उपस्थित करना था। हिन्दुओं में अब भी पंचायत प्रथा थी। पर उसका अधिकार क्षेत्र दीवानी के उत्तराधिकार आदि का निर्णय करना ही था। अपील का सबसे बड़ा अधिकारी वह स्वयं था। इस प्रकार शेरशाह की न्याय व्यवस्था के कारण उस युग में शान्ति का साम्राज्य था। कहा जाता है कि **"एक तिनहा भी बड़े से बड़े रुस्तम से न डरता था।"** †

(७) **पुलिस तथा गुप्तचर**--शेरशाह ने आन्तरिक सुरक्षा के लिए पुलिस तथा गुप्तचर विभाग को ठीक किया। अपराधों को रोकना तथा अपराधियों का पता

---

point of the series of experiments in administration which marked the first half of Akbar's reign.

Moreland.

* "Justice is the most excellent of the religious rites and it is approved both by the Kings of the infidels and of the faithful.

Sher Shah.

† "Not a fickle was afraid of Rustam."

Lane Poole.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

लगाना स्थानीय अधिकारियों के जिम्मे था। हर सराय पर दो घोड़े रहते थे, जिससे कि खबर देनेवाला सूचना पहुँचा सके। इस तरह कुल ३४०० घोड़े रहते थे। ये नित्य हर क्षेत्र से सूचना लाते थे। वस्तुतः पुलिस का कार्य भी शेरशाह के समय में फौजी सिपाही ही करते थे। सरकार के अन्तर्गत प्रधान शिकदार का कर्तव्य था कि वह शान्ति व सुरक्षा रखे। इसी प्रकार एक परगने में शिकदार का यह काम था। यही अधिकारी चोर व डाकुओं की निगरानी करते थे। अपराध की खोज में ऊपर कहा जा चुका है कि यदि स्थानीय अधिकारी किसी कातिल का पता नहीं लगा सकता था तो उसी के लिए फाँसी का तख्ता निश्चित था। शेरशाह के पुलिस प्रबन्ध के विषय में श्री अब्बास शरवानी का कहना है' 'शेरशाह के समय में यात्रियों और राहगीरों को अपनी सुरक्षा की कोई चिन्ता न थी। उन्हें रेगिस्तान में भी लुटने का भय न था। वीरान या बस्ती कहीं भी वे बिना भय के रात को टिक सकते थे। वे अपने सामान को मैदान में छोड़ देते थे। अपनी सवारियों को चरने के लिए हाँक देते थे और वे इतने बेखटके सोते थे जैसे कि अपने ही घर में हों। उनकी रखवाली वे जमींदार करते थे, जिनको यह भय था कि यदि यात्री को कुछ हानि हो गयी तो उनकी (जमींदारों की) मुसीबत आयेगी। उस समय कहना न होगा कि एक निर्बल बुढ़िया भी एक स्वर्ण के आभूषणों से भरी टोकरी सर पर रख कर यात्रा करने जा सकती थी। पर कोई चोर या डाकू उसके समीप न आता था केवल इसलिए कि वे जानते थे कि शेरशाह कितनी कड़ी सजा देता है। †

† "Travellers and way-farers during the time of Sher Shah's reign, were relieved from the trouble of keeping watch nor did they fear to be robbed in the midst of a desert.

They encamped at night at every place desert or inhabited without any fear; they placed their goods and turned out their mules to graze, and they slept with mind at ease and free from care as if in their own houses, and the Zamindars for fear any mischief should occur to the travellers and that they should suffer to be arrested on account of it keep watch over them. And in the time of Sher Shah's rule a decrepit old woman might place a basket full of gold ornaments on her head and go on a journey and no thief or robber would come near her for fear of punishment which Sher Shah inflicted."

Abbas Sarwani.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(८) **सैनिक प्रबन्ध**--सबसे अधिक ध्यान शेरशाह ने अपनी फौज़ के प्रबन्ध में दिया। यह फौज ही उसकी एक मात्र सहायक थी। उसका अधिक जीवन रणस्थल में ही बीता था। उसने इतना विशाल साम्राज्य किसी विरासत या उत्तराधिकार में न पाया था। वह उसी के बाहुबल तथा सैन्यबल के पराक्रम का फल था। वह अलाउद्दीन के सैनिक संगठन से बहुत प्रभावित हुआ था, अतः उसी के आधार पर उसने अपनी सेना का संगठन किया था। उसके समय में मनसबदारी प्रथा न थी, अतः उसने सैनिकों से सीधा सम्पर्क स्थापित किया। वह स्वयं सिपाहियों को भरती करता था, और स्वयं ही उनका वेतन निश्चित करता था। उनको सैनिक शिक्षा देना अथवा उनके स्थान परिवर्तन भी वह अपने अधीन रखता था। उसने अफगानों के (फिरकेपन) जातिवाद से लाभ उठाया। सैनिक टुकड़ियों का एक अफ़ग़ान सरदार सर्वोच्च पद पर रखा जाता था। शेरशाह ने समस्त देश के अफ़गानी अपने समीप बुलाये थे, वे सब उसके परम भक्त थे। उनकी सैनिक शक्ति के अतिरिक्त अपने पास एक व्यक्तिगत सेना रखता था, जिसमें १५०००० घोड़े और २५००० पैदल तथा ५००० हाथी रहते थे। कुछ जागीरदारों पर भी सेना रहती थी। इस प्रकार कुल सेना लगभग ४ लाख थी।† शेरशाह ने इस सम्बन्ध में प्रान्तीय सूबेदारों के अधिकारों को सीमित कर दिया था। इस प्रकार उसकी सेना में एक प्रकार का राष्ट्रीयकरण था। वह स्वयं सैनिकों के दुःख सुख का भी ध्यान रखता था। साम्राज्य में विभिन्न स्थानों पर उसने छावनियों की स्थापना कर दी थी, जहाँ सेना रहती थी। प्रत्येक छावनी में एक फौजदार था, जो उसका सबसे बड़ा अधिकारी था। इसके अधीन टुकड़ी को फौज कहते थे। शेरशाह की अश्वारोही टुकड़ी अत्यन्त दक्ष थी, क्योंकि वह स्वयं उसकी देख-रेख करता था। उसका अनुशासन, दगाना आदि सब बड़ी कड़ाई से किया जाता था। उसकी आज्ञाओं का उचित पालन कराने के लिए मुंसिफ नियुक्त किये गये थे। जैसा संकेत किया जा चुका है शेरशाह अपनी फौज़ के संचालन से कृषि की हानि न होने देता था। यदि कभी ऐसा होता तो उसकी क्षतिपूर्ति की जाती थी।

(९) **यातायात प्रबन्ध**--शेरशाह के समय सड़कों का समुचित प्रबन्ध किया गया। उसने ४ बड़ी बड़ी सड़कें बनवायीं। इनमें से पहली बंगाल में सोनार गाँव से लेकर सिन्धु के दुर्ग तक थी। इस सड़क को सड़क-ए-आज़म कहते

† यह गणना डा० त्रिपाठी के आधार पर दी गयी है। देखो पृष्ठ १३६ राइज़ एण्ड फाल आफ दी मुग़ल एम्पायर।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

थे। यह १५०० कोस लम्बी थी। आजकल की ग्रांऽट्रंक सड़क उसी की स्थानापन्न है। दूसरी सड़क आगरा से बुरहानपुर तक थी। तीसरी आगरा से जोधपुर तथा चित्तौड़ तक थी। चौथी लाहौर से मुल्तान तक थी। शेरशाह ने हर दो कोस पर एक सराय बनवा दी थी और इस प्रकार की १७०० सरायें बनवायी गयी थीं जो इन चार सड़कों पर थीं। हर सराय में हिन्दू तथा मुसलमानों के लिए पृथक्-पृथक् प्रबन्ध था। इनमें हिन्दुओं का ध्यान रख कर उसने ब्राह्मणों की नियुक्ति की थी। हर सराय में एक कूप तथा मस्जिद का भी प्रबन्ध था। इन सब प्रबन्धकों के लिए सराय के निकट की भूमि उस सराय से लगा दी जाती थी। डा० कानूनगो के शब्दों में "**ये सरायें साम्राज्य की धमनी थीं जो कि उसके इधर-उधर फैले आज तक के शक्तिहीन अंगों को जीवन दान देती थी।**"† इन सड़कों के दोनों ओर उसने फलदार वृक्ष लगवाये। शेरशाह ने डाक के शीघ्र भेजने का भी प्रबन्ध किया। उस समय डाक घोड़ों तथा हरकारों द्वारा भेजी जाती थी। सरायें ही डाक की चौकियाँ थीं।

(१०) **दान आदि कार्य**--दान आदि देने में शेरशाह बहुत उदार था। वह इमाम और अन्य धार्मिक लोगों को दान देता था। वह कला तथा साहित्य को प्रश्रय देता था। शेरशाह ने पुरानी सनदें पुनः देखीं, और उनको ठीक करके शिकदारों के पास भेज दिया। इस प्रकार के धन आदि के प्रदान में वह योग्य को ही श्रेयस्कर समझता था। मदरसे तथा मस्जिदों को विशेष धन दिये जाते थे। छात्रों को छात्रवृत्तियाँ भी मिलती थीं। राज्य की ओर से भोजन (लंगर) का भी प्रबन्ध रहता था। सराय के अध्यक्ष को यह आज्ञा थी कि कोई भूखा पथिक विना भोजन के न रहे। इस प्रकार उसके भोजनालय का व्यय प्रति दिन ५०० अशर्फी था।

(११) **भवन निर्माण**--भवन निर्माण में भी शेरशाह की अभिरुचि कम न थी। उसने झेलम के समीप रोहतास गढ़ किले का निर्माण कराया। दिल्ली का पुराना किला भी फरग्यूसन के मतानुसार उसकी सर्वोत्तम कृति है। इससे भी बढ़कर उसका अपना मकबरा है। स्मिथ के शब्द इस स्थल पर अत्यन्त उपयुक्त हैं, उसका कहना है कि "**थोड़े समय तक रहने वाला, तथा अस्थिर सूर वंश जिसका सर्वोत्तम सदस्य शेरशाह था, अपनी स्थिति के निमित्त इतना अधिक संघर्ष करता रहा कि उससे किसी भवन के निर्माण की आशा न करनी चाहिये। पर फिर भी उसकी बदौलत अनेक भवन बने, जिनमें सर्वोत्तम उसका**

---

† "The Sarais became the veritable arteries of the empire, diffusing a new life among its hitherto benumbed limbs." *Dr. Qanungo.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अपना ही मकबरा है, जो ससराम में एक झील के बीच ऊँचे उठान पर बना है। वह भारत का अत्यन्त सुन्दर भवन है जो उत्तर भारत में अपनी शान व शौकत में अद्वितीय है, कनिंघम तो इसके समक्ष ताज को ही भूल जाता था, इसकी पद्धति तुगलकों की सादगी तथा शाहजहाँ की फैशनेबुल, मनमोहक अनुपम कला के बीच की कड़ी है।†

*डा० कानूनगो का कहना भी उपयुक्त ही है। "शेरशाह ने केवल उपयोगी बातों पर ही नहीं बल्कि शाही भवन की कलात्मकता पर भी अपने व्यक्तित्व का अमिट प्रभाव छोड़ दिया है।"

सिंहावलोकन—इस प्रकार शेरशाह ने अपने थोड़े से समय में अनेक युद्धों में भाग लेते हुए भी वह कर के दिखा दिया जो दूसरा बादशाह आसानी से न कर सकता था। शेरशाह में वस्तुतः प्रतिभा थी, उसमें हर कार्य को समझने की क्षमता थी, साथ ही उसमें वह दूरदर्शिता थी जिसके फल-स्वरूप उसने अपने पिता की जागीर का प्रबन्ध करने से लेकर अपने विशाल साम्राज्य तक सदा सफलता का वरण किया। फिर वह प्रजा के हित का इतना ध्यान रखता था, कि राजत्व के मद में कभी न भूला। अतः हर क्षेत्र में हर कदम ठोस पड़ा। हुमायूँ की भाँति कभी उसने समय को व्यर्थ नहीं गँवाया। उसकी दृष्टि छोटी से छोटी चीज से लेकर बड़ी चीजों तक सभी पर रहती थी। अपने

---

† The short lived and unstable Sur dynasty of which Sher Shah was the most distinguished member had such a hard fight for existence that it could not have been expected to pay much attention to architecture. Neverthele's several meritorious buildings are due to the Sur dynasty and the Mausoleum of Sher Shah at Sasram built on a lofty plinth in the midst of a lake is one of the best designed and most beautiful buildings in India unequalled among the early buildings in the northern provinces for grandeur and dignity. Cunningham was half inclined to prefer it to even the Taj—The style may be described as intermediate between the austerity of the Tughlak buildings and the feminine grace of Shahjahan's master piece.

V. A. Smith

*"Sher Shah left indelible inpression of his personality not only upon the useful but also on the ornamental side of the imperial edifice.

Qanungo

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शासन प्रबन्ध में उसने कभी पक्षपात नहीं जाना। कभी किसी पद के कारण किसी को बिना दण्ड के नहीं छोड़ा, काश ! वह कुछ दिन और रहता।

"शेरशाह ने सैनिक तथा व्यावहारिक दोनों ही क्षेत्रों में एक संगठन कर्त्ता के रूप में अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया। उसने अपने अथक परिश्रम से तथा शासन प्रबन्ध की हर छोटी से छोटी कड़ी पर व्यक्तिगत ध्यान देकर समस्त भारत में केवल ५ वर्ष के थोड़े से काल में शान्ति और सुरक्षा स्थापित कर दी।"*

शेरशाह का व्यक्तित्व

शेरशाह के व्यक्तित्व की समीक्षा करते हुए, डा० त्रिपाठी के निम्नलिखित शब्द अनायास हमारे ध्यान में आ जाते हैं :—

शेरशाह

"दिल्ली सुल्तानों में शेरशाह एक बहुत बड़ा शासक था। वह भाग्यशाली सम्राट था। अपनी अटल कामना के फलस्वरूप वह एक विशाल साम्राज्य बनाने में सफल हुआ। एक वीर योद्धा, एक कुशल सेना नायक, साधन जुटाने में अपूर्व, राजनीति का पण्डित, वह भारतीय इतिहास में एक महान व्यक्ति था।"†

अफगानों के उस अन्धकारमय युग में वही भावी प्रकाश का सूचक था। किसी असफलता से भी वह कभी न घबराता था।

व्यक्ति के रूप में—किसी भी कार्य को करते समय उसे सदा सफलता की आशा रहती थी। निःसन्देह उसने अफग़ान साम्राज्य की स्थापना की

---

* "Sher Shah showed brilliant capacity as an organizer both in military and civil affairs. By dint of indefatigable industry and personal attention to the smallest details of administration he restored law and order throughout Hindustan in the short space of five years." *E. B. Hauell.*

† "Sher Shah was one of the greatest rulers of Delhi. He was a prince of destiny. By his will he succeeded in creating an empire. A gallant soldier, a consumate general a wonderful man of resources, a master of State craft, Sher Shah stands as a great personality in Indian History." *Dr. R. P. Tripathi.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

थी। उसके निश्चय सदा पक्के होते थे। अपने कार्य में वह सदा राजनीति पटुता से काम लेता रहा। वह अपनी स्थिति का तुरन्त अध्ययन कर लेता था और उससे पूरा लाभ उठाता था। शेरशाह को जन्म से ही अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उसके पिता का व्यवहार भी उसके साथ भला न था, पर अपनी तीव्र बुद्धि के सहारे वह बचपन से ही स्वावलम्बी बना, उसने जौनपुर जाकर गहन अध्ययन किया। जिसके फलस्वरूप वह अरबी तथा फारसी का अच्छा ज्ञाता बन गया। इसी के साथ उसने वहाँ की राजनीति भी खूब समझ ली। वह एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था, पर अपने कर्त्तव्य पालन में वह उतना ही उत्कृष्ट था। एक कुटुम्ब के सदस्य के रूप से उसे स्नेह का अभाव था। वह अपने पिता को कभी प्रसन्न न कर सका। अपनी पत्नी तथा पुत्रों से उसे कितना अनुराग था यह नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक कार्य करने का सम्बन्ध है, वह सदा कार्य में लगा रहना ही पसन्द करता था। उसका स्वयं कथन है, **"बड़े को कार्य करना ही सदा शोभा देता है"**† उसने सेना के निरीक्षण, अमीनों की सूचनाएँ सुनने, हिसाब देखने, तथा कुरान पढ़ने के समय को अलग-अलग निश्चित कर रखा था। उसे अपने समय का बड़ा ध्यान था। बहुधा वह १६ घंटे से भी अधिक कार्य करता था। प्रारम्भ से ही उसमें अनुशासन की भावना रही जिसे उसने दूसरों को भी भली-भाँति सिखा दिया। इतना होते हुए भी वह उदारचित्त था, जिसका परिचय उसने अपने शत्रुओं को भी दिया। अनेक निर्धन और असहाय उससे भोजन पाते थे। अनेक विद्याव्यसनी भी उससे धन की सहायता प्राप्त करते थे। राहगीर को उसके समय से अधिक सुख मध्यकाल में फिर कभी न मिल सका। सचमुच एक व्यक्ति के रूप में वह हर बात का समुचित ध्यान रखता था। कीन महोदय के अनुसार **"किसी भी सरकार ने, यहाँ तक कि आंग्ल सरकार ने भी इतनी बुद्धिमत्ता से काम नहीं लिया जितना उस पठान ने।"*** उसकी दिनचर्या बड़ी ही नियमित थी। वह प्रातः सूर्योदय से पूर्व उठता था, स्नान ध्यान करता था, इसके अनन्तर ४ घंटे राज्य का कार्य देखता था, इसके पश्चात् स्वयं घोड़े के दाग़वाने को देखता था। तथा सैनिकों की भर्ती करता था। प्रातः जलपान के अनन्तर ही पुनः राज्य कार्य

† "It behoves the great to be always active."
Sher Shah.

* "No Government, not even the British showed so much of wisdom as this Pathan."
Keene.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

में लग जाता था। उसकी संध्या कुरान पढ़ने तथा सार्वजनिक प्रार्थना सभा में बीतती थी।"

एक सैनिक के रूप में--शेरशाह बाबर की भाँति जन्मजात सेनानायक तो न था, पर वह यह भलीभाँति जानता था कि युद्ध की योजना कैसे बनायी जाय, किस समय कहाँ युद्ध करना ठीक है। अपनी अदम्य वीरता और इस सूझ-बूझ के फलस्वरूप ही वह हुमायूँ को भारत के बाहर खदेड़ सका। शेरशाह का जीवन तो संघर्ष का जीवन था ही, उसने अपने बचपन से शान्त बैठना तो सीखा ही न था। वह कहता था कि **"यदि ईश्वर मेरे अनुकूल हो और भाग्य मेरा साथ दे; तो मैं मुग़लों को सरलता से भारत से बाहर कर सकता हूँ।"**† उस युग में बिना सैनिक शक्ति के राज्य टिक ही न सकता था, अतः शेरशाह ने अपनी सेना का संगठन भी बड़े चाव से किया। वह स्वयं सेना की भरती करता, उनके वेतन भत्ते निश्चित करता, तथा उनके स्थानान्तरण करता था। वह उनके अन्दर जितनी उत्कृष्टता से अनुशासन की भावना चाहता था, उतनी ही उदार भावना से उनके सुख दुःख का ध्यान रखता था। उसके पहले के सुल्तानों ने कभी सेना से सीधा सम्बन्ध न रख पाया था। पर शेरशाह ने प्रान्तपति व जागीरदारों के अधिकार इस दिशा में बहुत सीमित कर दिये थे। इसी का फल था कि उस समय सेना की भक्ति उसको प्राप्त हो सकी और आये दिन विद्रोह की अग्नि न भड़की। उसने हिंदुओं को भी सैनिक सेवा करने का अवसर प्रदान किया। उसने अनेक छावनियां स्थापित कीं, दुर्गों का पुनरुद्धार किया, एक नया दुर्ग निर्माण कराया और उस स्थल पर जहाँ अत्यन्त असम्भव था। इस प्रकार वह सैनिक के रूप में महान था। यद्यपि वह व्यवसाय से सैनिक न था। वह बड़ा वीर और साहसी था। भयानक से भयानक परिस्थिति का सामना दृढ़ता से करता था। डॉ० ईश्वरी प्रसाद का कथन है कि एक सिपाही के रूप में वह उत्कृष्ट था। **उसके छल और युक्ति को मुग़ल भी न पा सके। उसके योद्धा उसके ऊपर भरोसा रखते थे, और उसकी श्रद्धा तथा भक्ति से सेवा करते थे।"***

विजेता के रूप में--विजेता के रूप से पहले तो शेरशाह यह जानता था

† "If luck aided me and fortune stood me friend I could easily oust the mughals from Hindustan"
Sher Shah.

*As a soldier he was superb. In strategy and tactics he outgenralled the Mughals. His soldiers reposed confidence in him and served him with devotion and loyalty. Dr. Ishwari Pd. Muslim Rule p. 246

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कि कब युद्ध करना उचित है, कब नहीं। फिर वह बड़ी युक्ति के साथ अपनी सेना का संचालन करता था। शत्रु की दुर्बलता से लाभ उठाना वही जानता था। उसे किसी भी युद्ध में मुँह की नहीं खानी पड़ी। इसके अतिरिक्त शेरशाह अपने विजित प्रदेश की सुख शान्ति का भी ध्यान रखता था। वह कभी भी उसे न तो इतना अव्यवस्थित छोड़ता था कि फिर विद्रोही सर उठा सके, और न कभी इतना चूस ही लेता था कि जनता उसे न चाहे। अपनी सैनिक प्रतिभा के आधार पर ही उसे सदा विजयश्री हाथ लगी। उसने न तो घोर से घोर संकट में उत्साह छोड़ा और न किसी कार्य को अधूरा छोड़ा। साथ ही न वह व्यर्थ सैनिकों का ही संहार करता था, न कृषकों की फसल को नष्ट होने देता।

शासक के रूप में--शासक की दृष्टि से शेरशाह और भी कुशल था। उसमें रचनात्मक प्रतिभा थी। उसने अपने थोड़े से समय में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित कर दी थी। इतिहासकारों ने उसके शासन प्रबन्ध की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। डा० कानूनगो का कथन है--

"शेरशाह राष्ट्र निर्माण की दृष्टि से अकबर का सानी है, क्योंकि वह इस प्रतिभा पूर्ण भावना को पहले जगा सका, उसके शासन का कार्य उसके वंश के साथ समाप्त नहीं हुआ, बल्कि कुछ अनिवार्य हेर फेर के साथ वह सारे मुग़ल काल चलता रहा, क्योंकि मुगल काल में साम्राज्य विस्तृत हो गया था।†
उसके भूमि सम्बन्धी सुधारों से किसानों का बहुत लाभ हुआ। उसने यातायात के साधन ठीक किये, सुरक्षा के लिए पुलिस तथा गुप्तचर विभाग को ठीक किया। अपराधों का उत्तरदायित्व उसने स्थानीय कर्मचारियों पर रखा, जो सदा सफल रहा। फसल खराब होने पर किसानों को तकावी तथा मुआवजा मिलता था। वह मुसलमान था पर उसने इस्लाम का भूत शासन में न आने दिया था।

शासक के रूप में वह पक्षपात न करता था। ऊँचे से ऊंचे अधिकारी को दण्ड देना तथा हिन्दुओं के लिए सरायों में अलग प्रबन्ध करना उसकी शासकीय भली प्रवृत्ति के प्रमाण हैं। उसकी कर नीति, उसका सैनिक संगठन उसकी सद्बुद्धि के समर्थक हैं। इस प्रकार शेरशाह का मध्यकाल के शासकों में एक प्रमुख स्थान है। एर्सकायन के अनुसार वह **"अपनी प्रतिभा के बल से राज्य-**

---

†"Sher Shah may justly dispute with Akbar the claim of being the first who attempted to build up an Indian nation The work of Sher Shah's administrative genius did not perish with his dynasty, but lasted throughout the Mughal period with some inevitable changes due to the greater expansion of the empire."

Dr. Qanungo.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सिंहासन पर आसीन हुआ और जिस उच्च पद पर वह आसीन हुआ उसने अपने आपको उसके योग्य सिद्ध किया। बुद्धिमत्ता तथा अनुभव में, व्यावहारिक तथा आर्थिक प्रबन्धों में, सामरिक कौशल में, अपने सभी सजातीयों में सर्व-प्रथम था।"† वह निस्सन्देह बहुमुखी प्रतिभा का मनुष्य था।

उसकी सफलता के कारण—जिस व्यक्ति में इतनी क्षमता हो, सफलता तो सदा उसके समीप ही खड़ी रहेगी। फिर भी संक्षेप में यह बताया जा सकता है कि उसकी सफलता की कुंजी क्या थी।

१. सैनिक प्रतिभा
२. राजनीतिक पटुता
३. लक्ष्य की प्रधानता
४. संगठन शक्ति
५. अनुशासनशीलता
६. उसकी दूरदर्शिता
७. शत्रु की दुर्बलता का ज्ञान
८. अवसर से सही और गलत लाभ उठाना
९. उदार प्रवृत्ति
१०. समय अनुकूल

शेरशाह की अपूर्व सैनिक प्रतिभा तो उसका साथ देती ही थी, साथ ही उसकी राजनीतिक पटुता उसे दूना योग देती थी। उसके समक्ष सदा एक ही लक्ष्य रहता था, जिसे पूरा बिना किये वह दूसरी ओर न देखता था। उसके निश्चय सदा विचार के उपरांत ही बनते थे। वह भलीभाँति स्थिति का अध्ययन करके ही किसी निश्चय पर पहुँचता था। इसके अतिरिक्त उसको कभी भी लक्ष्य को समझने में देर न लगती थी। शेरशाह में बेजोड़ संगठन शक्ति थी। उसकी दूरदर्शिता उसे संकट आने से पूर्व उसको चेतना दे देती थी। यही कारण है कि वह अपनी विषम से विषम स्थिति में भी अपने को सम्हाल सका, जबकि हुमायूँ नहीं। शेरशाह को वस्तुतः अपने शत्रुदल का भी इतना अच्छा ज्ञान रहता था जितना शत्रु को स्वयं न होता था। वह उससे अच्छे बुरे सभी ढंगों से लाभ उठाने में संकोच न करता था। राजपूतों के साथ युद्ध करने में उसने अपनी नीति की मर्यादा का कोई ध्यान न रखा। एक मात्र लक्ष्य पूर्ति ही उसका दृष्टिकोण था। कहा जाता है कि जो अपनी सहायता करता है, ईश्वर भी उसकी सहायता करता है, शेरशाह के साथ यह कहावत चरितार्थ होती थी। समय ने सदा उसका साथ दिया, एक ओर यदि वह अपने अनुशासन और सैन्यबल पर

† "He rose to the throne by his own talents and showed himself worthy of the high elevation which he attained. In intelligence, in sound sense and experience, in his civil and financial arrangements and in military skill he is acknowleged to have been by far the most eminent of his nation."

William Erskine.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

भरोसा करता था, तो दूसरी ओर समय उसके अनुकूल पड़ता था और उसे एक के पश्चात् दूसरी सफलता हाथ लग जाती थी । अन्तःकरण से वह उदारचेता था, अतः अपने विजित भूभाग का उचित प्रबंध करता था। वह प्रजा के सुख दुःख का सदा ध्यान रखता था, इससे वे ही लोग उसका साथ देते थे । यदि उनका दमन करके उनको रखना चाहता तो उसके अफगान ही उसे निकाल बाहर कर देते । इसमें सन्देह नहीं कि उसकी सफलता उसके पौरुष का फल था, किसी के साथ विश्वासघात का नहीं । कभी-कभी कुछ इतिहासकार उसको अलाउद्दीन के तुल्य ठहराते हैं, पर वे यह भूल जाते हैं, कि अलाउद्दीन ने धोके से राज्य प्राप्त किया था, जबकि शेरशाह ने संग्राम जीत कर ।

शेरशाह की बाबर से तुलना--(१) बाबर और शेरशाह दोनों महान व्यक्ति थे, क्योंकि दोनों ने अपने दृढ़ संकल्प तथा असीम बाहुबल के आधार पर ही साम्राज्यों की स्थापना की । दोनों ही सैनिक प्रतिभा से पूर्ण थे ।

(२) दोनों को बचपन से ही अनेक आपदाओं का सामना करना पड़ा, पर दोनों ने अपने धैर्य से काम लिया और उन आपदाओं को पार कर विजयी हुए । इस निमित्त दोनों को अपने-अपने घर का त्याग करना पड़ा, पर दोनों ने बाहर जाकर भी यश कमाया ।

(३) दोनों में लक्ष्य की प्राप्ति सर्वोपरि थी, तथा उसकी प्राप्ति के लिए हर यत्न में वे विश्वास करते थे । इस प्रकार लक्ष्य की प्राप्ति में वे नैतिकता व अनैतिकता को न गिनते थे ।

(४) दोनों पक्के मुसलमान थे। इस्लाम के लिए दोनों ने धन व्यय किया। बाबर ने मक्का तक धन भेजा, शेरशाह ने नमाज़ और कुरान को सदा माना, पर वे मुल्लाओं के पचड़े में कभी न पड़े ।

(५) दोनों को शिक्षा बहुत काल तक न मिल सकी, पर उन्हें विद्या तथा कला से अनुराग था । दोनों ने कला की कृतियों को प्रोत्साहन दिया । स्वयं भी दोनों विद्याभ्यासी रहे । बाबर का भारत चित्रण तथा शेरशाह का जौनपुर में ख्याति पाना इसका समर्थन करते हैं ।

(६) दोनों ही न्याय प्रिय थे । कभी भी न्याय की दृष्टि से अपने सगे-सम्बन्धियों को भी न छोड़ा, जिसके फलस्वरूप दोनों लोकप्रिय शासक बने ।

(७) दोनों ने थोड़े ही समय तक शासन किया, पर उसी में प्रशासकीय सुधार किये, प्रजा के हित की चिन्तना की ।

पर जहाँ उनमें इतनी समानताएँ थीं, वहीं उनमें अनेक बातों में असमानताएँ थीं । यथा--

(१) बाबर राज्य वंश का था, उसमें दो महान् विजेताओं का रक्त था,

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

जब कि शेरशाह एक साधारण स्थिति से ऊपर उठा था। बाबर को उसके पिता ने हर प्रकार से योग्य बनाने की चेष्टा की थी, जब कि शेरशाह की अपने पिता से कभी नहीं बनी। शेरशाह को पारिवारिक कष्ट के कारण ही कई बार गृह त्याग करना पड़ा। बाबर के उन्नति के साधन शेरशाह के साधनों से कहीं अधिक थे।

(२) बाबर एक विजेता पहले था, शासन सुधारक बाद में; जब कि शेरशाह शासन सुधारक पहिले था, विजेता बाद में। शेरशाह ने अपने विजित भभाग की उचित व्यवस्था कर ली थी, जब कि बाबर न कर सका था। शेरशाह का दृष्टिकोण बाबर की अपेक्षा अधिक व्यापक था।

(३) बाबर का हिन्दुओं के साथ कट्टरता पूर्ण व्यवहार था। उसने अपने सैनिकों में जिहाद बोल कर उत्साह भरा था। शेरशाह में ऐसी प्रवृत्ति न थी, वह अवसर से लाभ उठाता था, पर इस प्रकार की जेहाद उसने कभी न की।

(४) बाबर की अपेक्षा शेरशाह का चरित्र भी अधिक उज्ज्वल था, बाबर कई व्यसनों का दास था, जब कि शेरशाह नहीं।

(५) बाबर में वात्सल्य प्रेम अधिक था, जब कि शेरशाह में नहीं। बाबर ने अपने पुत्र तथा अपनी पत्नियों का बड़ा ध्यान रखा, शेरशाह में वह न था।

(६) बाबर उच्च कोटि का लेखक था, शेरशाह नहीं। यों तो दोनों में अपूर्व प्रतिभा थी, अपने-अपने क्षेत्रों में अद्वितीय थे। शर्मा जी के कथनानुसार यद्यपि बाबर की भाँति शेरशाह भी थोड़े ही समय के लिए दिल्ली के सिंहासन पर रहा, पर उसने अपने पश्चात् केवल छोटा सा राज्य ही नहीं छोड़ा, अपितु उसने अपने राज्य को सुदृढ़ कर उसमें एकात्मकता पैदा कर दी। उस के पूर्व शक्ति केन्द्रीभूत ही न होती थी। इसके आधार पर ही बाद में अकबर एक बड़ा वृहत् साम्राज्य बना कर महल खड़ा कर सका। वह इससे राज्य को राजनीतिक एकता दे गया।

शेरशाह तथा हुमायूँ की तुलना—शेरशाह और हुमायूँ एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे, जिसमें हुमायूँ को शेरशाह के सामने मुँह की खानी पड़ी और शेरशाह सदा विजयी हुआ। इन दोनों में कोई भारी समानता न थी, बस दोनों वीर तथा विद्यानुरागी थे, पर उनमें असमानताएँ अनेक थीं। यथा—

(१) हुमायूँ राज्य वंश का उत्तराधिकारी था, जब कि शेरशाह एक साधारण स्थिति का मनुष्य था। हुमायूँ को पैतृक स्नेह मिला था, जबकि शेरशाह को पिता की ओर से कोई सहानुभूति भी नहीं मिल सकी। हुमायूँ को अनेक साधन प्राप्त हुए थे, जब कि शेरशाह को यदा-कदा एक छोटी सी जागीर।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(२) दूसरी निश्चित बात यह थी कि शेरशाह कर्तव्यपरायण, दूरदर्शी, तथा नियम से काम करने वाला था, जब कि हुमायूँ विलासी था और समय का कभी सदुपयोग ही न कर सका। वस्तुतः हुमायूँ के विचारों में परिवर्तन-शीलता बहुत रहती थी।

(३) शेरशाह ने अपने बाहुबल के आधार पर एक साम्राज्य खड़ा कर लिया, जब कि हुमायूँ ने अपने पिता से प्राप्त राज्य को भी अपने आलस्य और प्रमाद के वश खो दिया।

(४) शेरशाह में उच्च कोटि की शासन प्रतिभा थी। उसने शासन व्यवस्था को संगठित कर देश में शान्ति स्थापित की थी। हुमायूँ उससे दूने समय में भी कुछ न कर पाया था।

(५) शेरशाह उच्च कोटि का सेना नायक था, हुमायूँ में वह क्षमता न थी।

(६) शेरशाह का चरित्र उज्ज्वल था, जब कि हुमायूँ विलास प्रिय और शराबी था। शेरशाह की विजय स्थायी थी, फिर भी वह आगे बढ़ने के लिए उद्योग करता था, जब कि हुमायूँ एक छोटी सी विजय पर ही आमोद-प्रमोद में जुट जाता था।

(७) वस्तुतः शेरशाह में लक्ष्य की प्रधानता सर्वोपरि रहती थी, वह हुमायूँ से अधिक चालाक और होशियार था, हैवेल के शब्द इस की पुष्टि कर देंगे।

"शेरशाह और हुमायूँ की विभिन्नता उनके स्मारकों से अधिक कोई नहीं दिखा सकता। दिल्ली में हुमायूँ का मकबरा सिद्ध करता है कि वह बनाव-चुनाव वाले कृत्रिम पारसी ढंग का पोषक था। उसकी सब से बड़ी प्रशंसा यही है, कि वह अकबर महान का पिता था। शेरशाह का स्मारक बतलाता है कि वह कठोर, शक्तिशाली तथा स्वाभिमानी साम्राज्यवादी था, जिसने अपने समस्त शत्रुओं को कुचल कर लौह शक्ति से शासन किया।"†

---

‡ "The contract between Sher Shah and Humayun could not be better illustrated than it is in the two great monuments which perpetuate their memory, Humayun's Mansoleum at Delhi portrays in its polished elegance the facile charmeur and rather superficial de·lettante of the Persian School whose best title to fame is that he was the father of Akbar. Sher Shah is at Sahsram,, the Stern, strong man, egoist, and empire builder, who trampled all his enemies underfoot and ruled Hindustan with a rod of iron."

E. B. Havell: In Aryan Rule in India.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शेरशाह के उत्तराधिकारी

(१) **इस्लामशाह**--शेरशाह २२ मई १५४५ ई० को इस संसार से चल बसा। उसकी मृत्यु कालिंजर में हुई। अमीरों ने उसकी मृत्यु का समाचार छिपाकर उसके दोनों लड़कों को बुलाया। इनमें बड़ा लड़का आदिल खाँ उस समय रणथम्भौर में था और छोटा जलाल खाँ रीवा के समीप। अतः छोटा समीप होने के कारण पहले पहुँच गया। अमीरों ने आवश्यकता का ध्यान कर उसी को राजा बना दिया। जलाल खाँ ने इस्लामशाह की उपाधि धारण की। इस पर उसका बड़ा भाई असन्तुष्ट हो गया। जलाल खाँ भी उससे सदा सशंकित रहने लगा।

गद्दी पर बैठते ही इस्लाम शाह ने सर्वप्रथम दो माह का वेतन सैनिकों को बँटवा दिया, जागीरदारों की जागीरें बनी रहने दीं, उनको भी धन बाँटा, कालिंजर के राजा को मृत्यु के घाट उतार दिया। इस्लाम शाह ने अपने पिता की सरायों के बीच हर मील पर सरायें बनवायीं। इन्हीं सरायों में दो घोड़े और एक सिपाही इस हेतु नियुक्त कर दिये, कि बंगाल तक की सूचना तुरन्त मिले। गरीब यात्रियों को विशेष सुविधाएँ प्रदान की गयीं। इस्लामशाह ने शासन की कड़ियाँ भी मजबूत कीं। उसने पुनः सेना का संगठन किया और उसमें अनुशासन ठीक किया। गुप्तचर विभाग ठीक कर दिया गया तथा अपराधियों को यथा समय दण्ड दिया गया।

एक बार इस्लामशाह ने अपने बड़े भाई को आगरा बुलवाया। आदिल खाँ आश्वासन पाकर आगरा आया, पर उसके साथ विश्वासघात किया गया। उसको मारने का पूरा षडयन्त्र रचा गया, किन्तु उसके आने का कारण यह था कि खवाँस खाँ जैसे एक अमीर ने उसकी रक्षा का भार लिया था। उसके अनन्तर दोनों भाइयों में समझौता कराने की चेष्टा की गई, पर उसमें भी सफलता न मिली, क्योंकि आदिल खाँ अपनी जागीर में दो माह भी न रह पाया था, कि बन्दी कर लिया गया। इस पर खवाँस खाँ की सहायता से विद्रोह कर दिया गया।

इस्लामशाह के विरुद्ध षडयन्त्र रचा गया, इसमें अनेक अफगान अमीर सम्मिलित हुए। इसका कारण यह था, कि इस्लाम उनका विश्वासपात्र न बन सका था। जो अमीर इसके पिता के बड़े भक्त थे, वे ही इसके विरुद्ध हो गये थे। इसका फल यह हुआ कि वे अपने पदों से हटा दिये गये। यही विद्रोह आगे चलकर इस राजवंश के पतन का कारण बना। आदिलशाह के पीछे खवास खाँ को भी मुँह की खानी पड़ी। उसे पराजित होकर भागना पड़ा तथा वह आजन्म विद्रोही ही रहा। इस्लामशाह ने उन सभी को दण्ड दिया जिनका षडयन्त्र में हाथ था। इस विषय में बदाऊनी के शब्द स्मरणीय हैं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

"इस्लामशाह ने गद्दी पर बैठते ही आदिलशाह के दल को समाप्त करने के लिए उनके प्रति द्वेष करके उनसे सुलझने की खूब तैयारी की। साथ ही उनको शतरंज की गोटों की भाँति एक-एक करके इस संसार के परदे से ही हटा दिया।"* वे सभी बन्दी होकर किसी न किसी रूप से जेल में ही मर गये। इस्लामशाह ने राज्य के प्रबन्ध का भी ध्यान रखा। उसने सुजात खाँ जैसे स्वामिभक्त को भी, जिसे शेरशाह ने मालवा का सूबेदार बनाया था, हटा दिया होता, पर सुजात खाँ बहुत होशियार था। उसने इस्लामशाह के मनसूबों को समझा तथा उसकी अधीनता मान ली। वस्तुतः इस्लामशाह अविश्वासी व्यक्ति था। उसने पंजाब के गवर्नर हैवत खाँ पर भी अविश्वास किया। इसका फल यह हुआ कि उसने खवाँस खाँ के साथ गुट बना कर विद्रोह कर दिया। पर इस्लामशाह का भाग्य ऊँचा था। कुछ ही समय में खवास खाँ तथा हैवत खाँ में ही फूट हो गयी। अतः दोनों को हारना पड़ा, साथ ही जान बचाने के लिए भागना भी पड़ा। धीरे-धीरे सुजात खाँ से भी इस्लामशाह की अनबन हो गयी।

अतः सुजात खाँ ने विद्रोह किया, किन्तु जब इस्लामशाह ने उसका पीछा किया तो उसने कहा, मैं अपने स्वामी के पुत्र के विरुद्ध अस्त्र न उठाऊँगा। इस पर इस्लामशाह भी पिघल गया और उसने उसकी सारी जागीर लौटा दी।

इधर इस्लाम शाह अपने राज्य को संगठित कर रहा था, उधर हुमायूँ काबुल तक आ गया था। उसने सिन्धु नदी पार की। पर जैसे ही इस्लामशाह उससे मुकाबला करने चला कि हुमायूँ वापस लौट गया। इस्लामशाह लगभग ८ वर्ष के शासन के पश्चात् ३० अक्तूबर १५५३ ई० को संसार से चल बसा।

(२) **फीरोजशाह**—इस्लामशाह की मृत्यु के बाद अमीरों ने उसके १२ वर्षीय पुत्र फीरोज़ को गद्दी पर बिठाया, पर तीन ही दिन के पश्चात् उसके मामा मुबारिज़ ने उसका वध करा दिया और स्वयं मुहम्मद आदिलशाह की उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठा।

(३) **मुहम्मद आदिल १५५३–५७ ई०**—मुहम्मद आदिल चरित्रहीन था। वह राजा होने पर भी अन्धली (आदिल का बिगड़ा हुआ रूप—अन्धा) कहलाता था। उसे विलासिता के सामने राजकाज से कोई सरोकार न था।

---

*Setting himself to stay and eradicate a party, who were favourable to Adil Shah he girded up his loins in enmity against them and swept them one by one from the board of the world like so many pieces in the game of chess. *Badauni*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इसका फल यह हुआ कि, उसके विरुद्ध भी षडयन्त्र होने लगे। उसे निम्न श्रेणी के लोग जितना चाहते थे उतना ही उच्च श्रेणी के लोग घृणा करते थे। लोगों को उसका अपने भांजे को वध करना खटक गया था। उसके समय में एक हिन्दू मंत्री का विशेष उत्थान हुआ। यह था हेमू। हेमू को आदिल ने ही अपना प्रधान मंत्री नियुक्त किया था। हेमू **रेवाड़ी** का निवासी था। वह अत्यन्त निर्भीक तथा प्रबन्ध कुशल था। इसी के फलस्वरूप उसे विक्रमाजित की उपाधि मिल गयी थी।

‡**टिप्पणी**—सलीशशाह और इस्लामशाह दोनों एक ही व्यक्ति थे। डा० ईश्वरी प्रसाद ने सलीमशाह लिखा है, जबकि डा० त्रिपाठी तथा महाजन ने इस्लामशाह लिखा है।

इस्लाम शाह के समय की एक विचित्र घटना है, जिसका राजनीतिक इतिहास से कम सम्बन्ध है, अतः उसे केवल टिप्पणी में ही स्थान दिया जा रहा है। यह घटना **मेंहदी घटना** कहलाती है। यह एक धार्मिक आन्दोलन था, जिसे शेख अलई ने चलाया था। शेख अलई शेख हसन के लड़के थे जो बयाना के नामी पूतात्मा थे। शेख अलई ही उनके उत्तराधिकारी हुए। वे वक्तृता तथा विद्या में अद्वितीय थे। उन्होंने सैय्यद मुहम्मद जौनपुरी के मेंहदी सिद्धान्त अपना लिये थे।

उन्होंने इन सिद्धान्तों का इतना प्रबल प्रचार किया, कि उनके अनेक अनुगामी बन गये। शेख अलई की वक्तृता में इतना बल था कि लोग अपना घर द्वार छोड़कर उनके समीप चले आते थे। वे अपना धन अर्पण करते तथा उन्हीं के सिद्धान्तों पर चलते थे। यही नहीं वे भिक्षा माँग कर भोजन करते, जो कुछ पाते सभी आपस में बाँटकर खाते थे। यदि कभी कुछ न मिलता तो भूखे ही सो जाते थे। इसके साथ वे एक विचित्र कार्य करते थे कि अपने सिद्धान्तों का पालन दूसरों से भी कराते थे, यदि कोई न करता तो उसे सुरलोक भेज देते। धीरे-धीरे यह घटना इस्लामशाह के कान तक पहुँची। उसने शेख को बुलाया। शेख से बात करने तथा उनके सिद्धान्तों की आलोचना करने को अन्य मुल्ला इकट्ठा किये गये, पर शेख ने उन्हें हरा दिया। इस पर इस्लामशाह ने शेख से कहा "तुम जो कुछ करना चाहते हो करो पर मेरी अधीनता मान लो। अभी तक तुम जिस कार्य को करते हो वह अपराध है, फिर तुम उसके अधिकारी हो जाओगे। शेख ने एक न सुनी, अतः उन्हें बिहार भेज दिया गया। वहाँ भी शेख का काम बन्द न हुआ, पर शेख बीमार हो गये। इस्लाम शाह ने पुनः शेख को बुलवाया—और पूछा कि मेरी अधीनता मानते हो। पर शेख जिसे बोलने का भी दम न था, इस बात पर राजी न हुए। अन्ततः

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

आदिल का सारा काम हेमू ही करता था। इस दुर्दशा से अमीरों तथा प्रान्तीय शासकों ने पूरा लाभ उठाया। स्थान-स्थान पर अपना स्वार्थ सिद्ध किया जाने लगा। ताज खाँ जो ग्वालियर में था खुले रूप से विद्रोही बन गया। उसका साथ और लोगों ने भी दिया, पर हेमू ने उनका दमन किया। ताज खां को विहार की ओर भागना पड़ा।

एक बार जब आदिल दरबार कर रहा था, उसने एक जागीर जो शाह मुहम्मद फारमूली की थी, सरमस्त खाँ शरवानी के नाम घोषित की। इस पर शाह मुहम्मद के पुत्र सिकन्दर खां ने क्रुद्ध होकर सरमस्त खां का दरबार में ही काम तमाम कर दिया। वस्तुतः सिकन्दर को इतना क्रोध आ गया था कि यदि आदिल शाह भाग न जाता तो वह उसको भी समाप्त कर देता। इस प्रकार की घटना से दरबार की प्रतिष्ठा सर्वथा समाप्त हो गयी। हालाँकि सिकन्दर और उसके वृद्ध पिता को भी सुरलोक जाना पड़ा।

इस वातावरण को देखकर इब्राहीम खां सूर ने जो आदिल का बहनोई था, दिल्ली पर अधिकार कर लिया। थोड़े ही समय में उसने आगरा को भी अपने हाथ में कर लिया। मालवा तथा पंजाब के सभी प्रान्तीय सूबेदार अपनी अपनी स्वतन्त्रता घोषित करने लगे। इस प्रकार पाँच अफ़ग़ान थे जो शक्ति के लिए लड़ने लगे।

१. मुहम्मद आदिलशाह पर विहार, जौनपुर तथा आसपास का भूभाग था।

२. इब्राहिम सूर पर दिल्ली और आगरा था। इसमें दोआब का लगभग पूरा भाग था।

३. अहमद खां सूर ने अपने को पंजाब में स्वतन्त्र घोषित कर दिया था। उसने सिकन्दर शाह की उपाधि धारण कर रखी थी।

४. मुहम्मद खां ने अपने को बंगाल में जमा लिया था। उसने सुल्तान मुहम्मद की उपाधि धारण कर ली थी।

५. सुजात खां का लड़का दौलत खां मालवे का अधिकारी था।

इनमें से पंजाब के अधिकारी सिकन्दरशाह ने अपना क्षेत्र बढ़ाया। उसने इब्राहीम से दिल्ली और आगरा छीन लिए और इस प्रकार गंगा से लेकर सिन्ध

इस्लामशाह को क्रोध आ गया, उसने उन्हें स्वर्गलोक भिजवा दिया। कहते हैं कि मरते समय भी शेख उससे कह गये कि मैं सच्चा हूँ--मेरी आत्मा और उसकी आत्मा एक है। ये शरीर अनेक हैं, यदि तुम मेरे सिद्धान्त समझना चाहते हो तो इस पर विचार करना।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

तक का स्वामी बन गया। फिर भी इब्राहीम इस कोशिश में था कि सिकन्दर से अपना राज्य वापस ले ले। आदिल इस चक्कर में था कि इब्राहीम को मार भगाये। उधर मुहम्मदशाह आदिल पर चढ़ आना चाहता था। अतः हुमायूँ ने इसका लाभ उठाया।

हुमायूँ गक्खर देश से कश्मीर जाना चाहता था, पर न गया। उसके विरुद्ध अब उसका कोई भाई न रह गया था। उसकी सैनिक शक्ति भी ठीक थी। अफगानों के परस्पर कलह ने उसे प्रेरित किया कि वह अपना खोया हुआ राज्य पुनः लौटा ले। आदिल शाह ने अपने ही हाथों अपने राज्य की जड़ें उखाड़ रखी थीं। आखिर दिसम्बर १५५४ ई० में हुमायूँ सिन्ध तक आ गया। इस समय पंजाब में बनाया हुआ नया रोहतास दुर्ग तातार खाँ के अधिकार में था। हुमायूँ का आना सुनकर वह भयभीत हो गया और पीछे हट गया, हुमायूँ ने बेखटके उस पर अधिकार किया और वह फरवरी १५५५ ई० में लाहौर आ धमका। जब सिकन्दर शाह ने यह स्थिति देखी तो वह मुकाबले के लिए प्रस्तुत हुआ। मच्छी वाड़ा नामक स्थान पर मुगलों से उसकी मुठभेड़ हुई, जिसमें हुमायूँ की विजय हुई। मुगलों ने शीघ्र ही दिल्ली के आसपास भूभाग पर अधिकार कर लिया। इस पर भी अफगानों का परस्पर संघर्ष समाप्त न हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि हुमायूँ ने बिना कठिनाई के दिल्ली पर अधिकार कर लिया और सदा के लिए अफगान साम्राज्य के स्वप्न मिटा दिये।

सूरवंश के पतन के कारण

(१) शेरशाह की असमय में मृत्यु
(२) उसके दुर्बल उत्तराधिकारी
(३) उत्तराधिकार के नियम का अभाव
(४) अमीरों के साथ दुर्व्यवहार
(५) हेमू का अफगानों के साथ दुर्व्यवहार
(६) हुमायूँ का लौटना

(१) सूर वंश का सितारा अत्यंत अल्पकाल तक चमक सका, क्योंकि उसके प्रकाश को धूमिल करने के लिए अनेक कारण उपस्थित हो गये थे। सर्वप्रथम बात यह थी कि शेरशाह का सूर्य ही अस्त हो गया, जिसके सहारे इस वंश का उदय हुआ था। शेरशाह केवल पाँच वर्ष राज्य कर पाया था। इस अल्पकाल में यह सम्भव नहीं था कि वह नये पौधे को सभी शत्रुकीटाणुओं से मुक्त कर देता। उसके पश्चात् उसके शत्रु उठ खड़े हुए।

(२) उसके उत्तराधिकारियों में इतना बल न था कि नई मिलाई कड़ियों को एक सूत्र में रख सकें। यही नहीं कि उन्होंने एक सूत्र में नहीं बाँधा बल्कि वे परस्पर वैमनस्य फैलाने लगे। शेर-शाह के अनेक परम भक्त अमीरों को इस्लामशाह

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(७) अफगानअमीरों में परस्पर कलह
(८) हुमायूँ को फारस से सहायता
(९) हुमायूँ के विरोधियों की समाप्ति
(१०) राज कोष का रिक्त होना

ने कहीं का न रखा, जो शेरशाह के स्तम्भ थे। इस्लामशाह ने उन्हीं को गिरा दिया। मुहम्मद आदिल उससे भी बुरा सिद्ध हुआ। उसके लिए तो महाजन के शब्द बड़े उपयुक्त हैं; वे कहते हैं—

"बजाय इसके कि वह राज्य को सम्हालता उसने पूर्व से स्थित कटुता को बढ़ा दिया। हेमू के अभ्युदय ने उन्हें और भी ईर्ष्यालु बना दिया।"*

डा० त्रिपाठी के अनुसार--**देशभक्ति का जो उत्तम भाव शेरशाह न अफग़ानों में भर दिया था, और जिसके फलस्वरूप वह उन्हें एक सूत्र में बाँध सका था, उस भावना को इस्लामशाह के कारण इतना भारी धक्का लगा कि वह नष्ट प्राय हो गयी। जैसे ही उसका प्रशासकीय व्यक्तित्व हटा कि अफग़ानों की अभिलाषाएँ तथा दबी हुई भावनाएँ जग गयीं।†**

दूसरे स्थल पर आप कहते हैं—**"आदिलशाह ने अपने ही हाथ साम्राज्य की जड़ें उखाड़ दीं।‡** शेरशाह ने गिरते हुए अफगानों को उठाकर बराबरी के स्तर पर खड़ा कर दिया था। महाजन महोदय का कथन है कि शेरशाह के पश्चात् उनका चरित्र इतना गिर गया कि जब हेमू उन्हें डाँटता था तो **वे उसका मीठी वस्तु के समान स्वागत करते थे।$** फिर शेरशाह के

---

* "Instead of setting the house in order he added to the discontentment prevailing among the Afghan chiefs. The rise of Hemu made them bitter and jealous.

V. D. Mahajan's History of Indias ince 1526, P. 49

† "The noble sentiment of patrotism with which Sher Shah had been able to inspire and unite the Afghan nobles received such a shock at the hands of Islam Shah that it was practically destroyed. As soon as his commanding personality was removed, the pant-up-feelings and ambitions of the Afghan nobles were let loose.

Rise and Fall of Mughal Empire. P. 157,

‡ "Pulled up the root of his empire with his own hands."

Rise and Fall of Mughal Empire., P. 159

$"Swallowed the insults like sweetmeats"

Mahajan's History of India since 1526, P. 50

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उत्तराधिकारियों ने किसानों की कोई चिन्ता न की, जिनके बदौलत वे जीवित थे। अतः वे भी उस राजवंश से अन्यमनस्क होगये। अमीर लोगों ने अत्याचार करके उनको और भी विरुद्ध कर दिया। उसके उत्तराधिकारियों के समय में शेरशाह के बनाये दुर्ग भी षडयन्त्र के अड्डे बन गये थे। फिर प्रजा के साथ दुर्व्यवहार होता था, उसके न्याय की चिन्ता किसी को न थी।

(३) इसके अतिरिक्त उस समय तक उत्तराधिकार के नियम का अभाव था। शेरशाह ने आदिल खाँ को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था, पर अमीरों ने उसके स्थान पर जलाल खां को बिठा दिया। यही काम अमीरों के आपसी वैमनस्य की जड़ बन गया।

(४) अमीरों के साथ स्वयं शासकों ने ऐसा दुर्व्यवहार किया कि परम भक्त से भक्त भी विद्रोही सिद्ध हो गये। इस्लामशाह और मुहम्मद आदिल इसी बात की चेष्टा करते रहे कि उनके पक्ष के लोग पदाधिकारी बनें, पर उनके किये कुछ न हुआ, भरे दरबार में हत्याएँ हुईं।

(५) उधर हुमायूँ अपने संकटों से मुक्त हो चुका था। उसे इस स्थिति से लाभ उठाने का पूरा-पूरा अवसर मिला, जिसे उसने हाथ से न जाने दिया। उसे फारस से इतनी पर्याप्त सहायता मिल गयी थी कि उसने अपने खोए हुए साम्राज्य को लौटा लिया।

(६) इधर साम्राज्य अनेक टुकड़ों में बट गया था। कोष रिक्त हो चुका था। हेमू का अमीरों के साथ इतना बुरा बर्ताव था कि वे प्रतिशोध की भावना से जल उठे थे। अतः १५ वर्ष की आयु का राज्य आखिर कितने दिन टिक सकता था। हुमायूँ के पश्चात् भी अकबर जैसी महान् आत्मा का अवतरण हुआ, जिसने हेमू के स्वप्नों पर सदा के लिए पानी फेर दिया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

उत्तर प्रदेश बोर्ड—(१) शेरशाह के शासन का संक्षिप्त विवरण दीजिये। उसने क्या सुधार योजनाएँ चलाईं। (१९५१)

(२) शेरशाह सूरी को अपना राज्याधिकार स्थापित करने में क्या-क्या कारण सहायक हुए—सविस्तार बताइये। (१९५४)

(३) शेरशाह के उत्तराधिकारी सूरी साम्राज्य को सुरक्षित रखने में क्यों असफल हुए ? (१९५५)

(४) शेरशाह सूरी के शासन प्रबन्ध के गुण और दोष बताइये। (१९५६)

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

राजस्थान बोर्ड—(१) शेरशाह ने अनजाने अकबर की महत्ता की नींव स्थापना की विवेचना करो। (१६५३)

(२) शेरशाह कई बातों में अकबर का अग्रगामी था, किन्तु भारतीय राष्ट्र के निर्माण में नहीं—विवेचना कीजिये। (१६५५)

मध्यप्रदेश बोर्ड—(१) शेरशाह ने अकबर महान के मार्ग का निर्देशन कर दिया था। इस कथन पर प्रकाश डालिए। (१६५५)

(२) शेरशाह की जीवनी तथा शासन प्रबन्ध का वर्णन कीजिये। (१६५७)

सूर वंश के शासकों की वंशावली

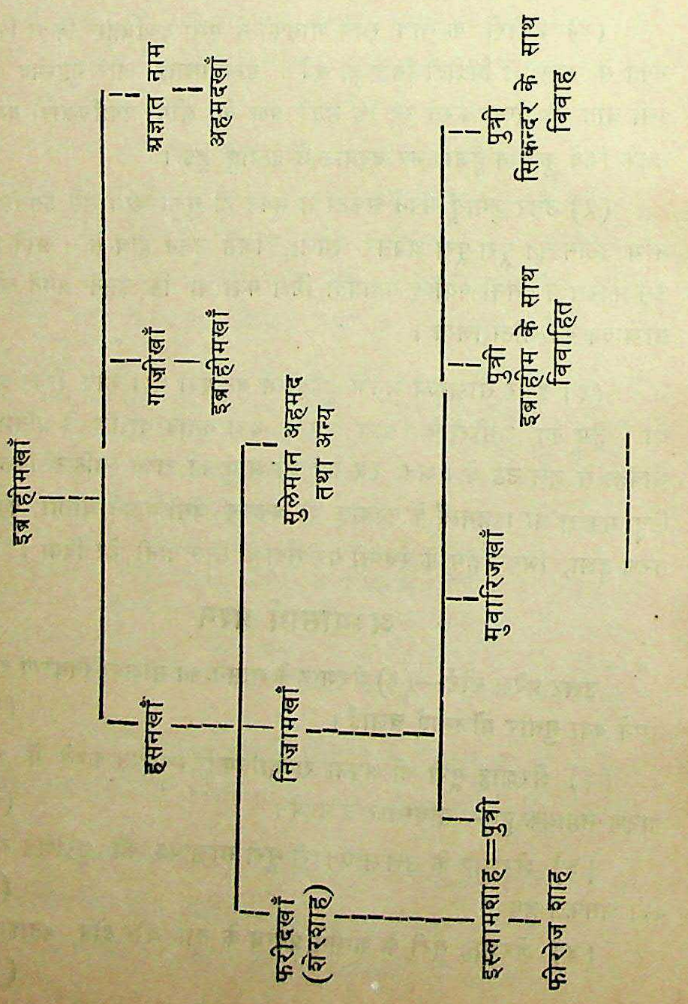

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद ४

अकबर महान

झंझावातों में मुग़लों का प्रकाश स्तम्भ स्थिर रखने वाला, भारत में राष्ट्रीयता का पोषक, वीरपुंगव अकबर महान् वस्तुतः अद्वितीय था। विलियम स्लीमैन का कथन है, कि **"मुझे बादशाहों में अकबर वैसा ही लगता है जैसे कवियों में शेक्सपियर"*** भारतीय इतिहास में अकबर का स्मरणीय स्वर्ण योग है। उसीने अपने पौरुष, तथा अपनी नीति निपुणता से मुग़ल शासन की जड़ें जमा दी थी। हुमायूं की मृत्यु के उपरान्त अकबर जैसे अल्पवयस्क बालक का ही कार्य था कि साम्राज्य की बागडोर सम्हालता। **उसमें उदार हृदय की सहानुभूति, दूसरे पर भरोसा रखने तथा अपने पर भरोसा करने की क्षमता तथा स्वामिभक्त प्रजा में ऐसा विश्वास उत्पन्न करने की प्रवृत्ति थी जिसकी बदौलत वह अपने पिता द्वारा छोड़ी गयी कड़ियों से साम्राज्य की श्रृंखला बना सका।**

उसका प्रारंभिक जीवन—पीछे कहा जाचुका है कि अमरकोट के दुर्ग में अकबर का जन्म १५४२ ई. में हुमायूँ की पत्नी हमीदा बानू बेगम से हुआ। इसके जन्म के समय हुमायूँ एक शरणार्थी भर था। अतः बालक अकबर को प्रारम्भ से ही आपत्तियों का सामना करना पड़ा। भारत से काबुल तक जाना, काबुल में कामरान द्वारा युद्ध के समय किले की दीवाल पर बिठाया जाना, आदि असम्भव विपत्तियों से बच जाना उसके भाग्य का द्योतक था। जब वह १ वर्ष का था, तभी हुमायूँ को उसे कन्दहार में अस्करी के पास छोड़ना पड़ा था। तीन वर्ष की आयु में जब उसके माता-पिता उसे पुनः मिले तो उसने उन्हें तुरंत पहचान लिया था। जब अकबर पाँच वर्ष का हुआ तो उसकी शिक्षा का प्रबन्ध

अकबर

---

* "Akbar has always appeared to me among sovereigns what Shakespeare was among poets"

Sir William Sleeman.

* He possessed that broad minded sympathy, that capacity to trust and to evoke trust, that generous confidence in a loyal people which enabled him to wield together a great and durable empire out of the poor fragments of military conquests left to him by his father"

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

किया गया। अकबर पढ़ने लिखने में सफल न हुआ, पर खेल कूद में सदा आगे रहा। १५५१ में अस्करी की मृत्यु के उपरान्त हुमायूँ ने अकबर को गज़नी का सूबेदार नियुक्त किया था। इसके अनन्तर अकबर ने हुमायूँ का साथ सरहिन्द के युद्ध में दिया, अपनी विजय के उपरान्त उसे हुमायूँ ने लाहौर का सूबेदार नियुक्त किया। इसके अनन्तर १३ वर्ष की आयु में उसे राज्य का भार मिला, यद्यपि उसका सारा कार्य उस समय वैरमखां के हाथ में रहा, जो उसका संरक्षक था।

राज्यारोहण के पूर्व भारत की दशा—अकबर १५५५ ई० में गद्दी पर बैठा। उस समय यह सिंहासन फूलों की शय्या न था। वस्तुतः वह राज्य सिंहासन ही न था। जिस समय हुमायूँ की मृत्यु हुई उस समय अकबर पंजाब में कालानौर में था। उस समय वहाँ सिंहासन का नाम भी न था। स्मिथ महोदय ने लिखा है, कि **"इस सिंहासन पर बैठने का अर्थ हुमायूँ के पुत्र का भारतीय सिंहासन पर अधिकार मान लेना कहा जासकता है।"*** उस समय अकबर की स्थिति इतनी डावाँडोल थी कि वैरमखां को छोड़कर शेष सभी की राय थी कि काबुल लौट चला जाय।

यद्यपि सिकन्दर सूर पराजित हो चुका था, पर उसकी शक्ति सर्वथा नष्ट न हुई थी। वह अभी भी पंजाब में घूम रहा था। महमूद शाह आदिल अभी जीवित था। उसका हिन्दू सेनानायक हेमू एक हस्ती था। बंगाल तो सदियों से अफगानों के अधिकार में था। कालिंजर में शेरशाह की मृत्यु के उपरान्त राजपूत भी स्वतंत्र हो रहे थे, जिनमें मेवात, जैसलमेर, बूँदी और जोधपुर प्रमुख थे। मालवा और गुजरात दिल्ली का आधिपत्य छोड़ चुके थे। गोंडवाना तथा उसके पड़ोस का भूभाग अपनी सीमा में न समा रहा था। विजय नगर अभी भी शक्ति सम्पन्न था, जिससे दक्षिण की मुसलमान रियासतें बीजापुर, गोलकुंडा, अहमद नगर आदि आये दिन लोहा लेते रहते थे। उन्हें दिल्ली से कोई सरोकार न था। पश्चिम में अरब सागर के किनारे पुर्तगाली अभी अपनी शक्ति का संचय कर रहे थे। उत्तरी पश्चिमी प्रदेशों की अवस्था भी अभी अस्थिर थी।

इस समय काबुल अकबर के भाई मिर्ज़ा हकीम के अधिकार में था। वह स्वतंत्र शासक की भाँति आचरण कर रहा था। उसके स्वप्नों में भारत का राज्य पाने की लिप्सा भी थी। सिन्ध और मुल्तान दिल्ली के प्रति स्वामिभक्त न रह गये थे। कश्मीर में भी स्वतन्त्र शासक था।

सबसे बड़ी बात यह थी कि भारतीय जनता को हेय समझा जाता था। उससे जज़िया सरीखे कर लिये जाते थे, अतः उसे भी दिल्ली सल्तनत से कोई सहानुभूति न रह गयी थी। लोग धीरे-धीरे अन्धविश्वासी और धनहीन हो रहे

* It merely registered the claim of Humayun's son to succeed to the throne of Hindustan. *Dr. Smith*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

थे। दिल्ली का भाग ध्वंस हो चुका था, अनेक लोग भूखों मर रहे थे। दैवयोग से इसी समय अकाल भी पड़ चुका था, अतः अकबर को एक नई सृष्टि ही करनी थी।

अकबर की प्रारंभिक कठिनाइयाँ

(१) साम्राज्य के प्रतिद्वन्दी
(२) शाह अब्दुलमाली का विरोध
(३) राजपूतों का विरोध
(४) भीषण आर्थिक संकट
(५) अन्य साधनों का अभाव
(६) भारतीयों का विश्वासपात्र न होना
(७) तार्दीवेग का कांड
(८) उसकी अल्पवयस्कता

(१) उपर्युक्त दशा से यह सिद्ध होता है कि अकबर को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा। सर्व प्रथम आपत्ति यह थी कि राज्य का अधिकारी तो वह था, पर उसके हाथ राज्य की बागडोर न थी। साम्राज्य के हस्तगत करने को अनेक दावेदार खड़े थे, जिनमें एक उसका ही भाई था। बैरम खाँ जैसे शक्तिशाली अमीर के हाथ सारी सत्ता थी। बैरम खाँ फारस का शिया था। अनेक सुन्नी अमीरों से वह बाद को आता था। राजघराना सुन्नी था, अतः आपत्ति की जड़ यही था। इसके अतिरिक्त एक ओर हेमू का भय दूसरी ओर काबुल से मिर्जा का भय था और किसी ओर चलने का अर्थ मध्य में सिकन्दर सूर को शक्ति संचय का मौका देना था।

(२) बैरम खाँ का एक प्रबल शत्रु शाह अब्दुल माली था। वह हुमायूँ का बड़ा भक्त था। हुमायूँ भी उसे फरजन्द (पुत्र) कह कर पुकारता था, उसे बड़ी इज्ज़त से बिठाता था। शाहमाली पक्का सुन्नी था। वह शिया बैरम खाँ को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखता था। पर बैरम खाँ बहुत नीति निपुण था, अतः उसने उस काँटे को शीघ्र ही निकाल भी दिया था।

(३) इस समय राजपूत अपने को संगठित कर रहे थे। वे अभी भी खानुआ की पराजय भूले न थे। मारवाड़ का राजा मालदेव दिल्ली साम्राज्य से लोहा लेने का प्रयत्न कर रहा था। उसकी भूल तो यह थी कि उसने विलम्ब कर दिया, जिसमें मुगलों को तैयारी करने का मौका मिल गया। उन को तो हुमायूँ के राज्यकाल में ही पर्याप्त समय मिल चुका था कि वे अपनी शक्ति बढ़ा लें। उनका सैनिक संगठन इतना दृढ़ हो गया था कि वे दिल्ली पर आक्रमण कर इस अवसर पर विजय भी पा जाते। केवल कमी राजनीति की थी, जिस ओर राजपूतों का ध्यान ही न गया।

(४) भीषण आर्थिक संकट—हुमायूँ का शासन अभी टिका ही कितने

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

दिन था कि राज्य कोष भरा पूरा होता। हुमायूँ को लगभग १५ वर्ष इधर-उधर भटकना पड़ा, जिसमें वह स्वयं दूसरे के सहारे रहा, अतः अकबर को धन की कमी होना स्वाभाविक था।

(५) **अन्य साधनों का अभाव**——अकबर के समीप कोई सुसंगठित सैन्यबल न था जिसके भरोसे वह किसी से रण ही ठान सकता। वह चारों ओर शत्रुओं से घिरा था। उसका सहायक केवल बैरम खाँ था। अकबर के समीप ऐसे अन्य अनुभवी सहायक न थे जो आपत्ति के समय सही राय ही दे सकते। जो जिधर चाहता उधर ही हाँक देता था।

(६) **भारतीयों का विश्वासपात्र न होना**——भारतीय मुग़लों को हेय दृष्टि से देखते थे। उनकी कामना सदैव यही रहती थी कि कब विदेशियों से मुक्ति मिले। भारतवर्ष के मुसलमान भी उनसे स्नेह न करते थे।

(७) **तार्दीबेग का काण्ड**——अकबर के राजत्व के प्रारम्भ को तार्दीबेग के वध ने कलंकित कर दिया। तार्दीबेग हुमायूँ का एक अत्यन्त राज-भक्त अमीर था। उसने दिल्ली में अकबर के नाम का खुतबा पढ़वाया था, पर जब हेमू ने दिल्ली पर आक्रमण किया तो वह सरहिन्द की ओर भाग खड़ा हुआ। बैरम खाँ ने उसको इस अपराध के लिए मृत्यु दण्ड दिया। वस्तुतः इसमें तार्दी-बेग का दोष न था, उसने हेमू के आक्रमण का समाचार पाते ही तमाम अमीरों को सूचना दी। वे आये, युद्ध हुआ, हेमू की एक टुकड़ी को हराया भी गया, पर ग़लती केवल यह हो गयी कि उस टुकड़ी का इतनी दूर तक पीछा किया गया कि मुख्य शाखा से वे दूर हो गये और हेमू ताक में बैठा था, उसने उससे लाभ उठाकर उस पर घोर आक्रमण किया। अन्ततः तार्दीबेग के पैर उखड़ गये। अतः उसको मृत्यु दण्ड मिला। इस वध को अनेक इतिहासकारों ने भला-बुरा कहा है, कुछ का मत है कि बैरम खाँ को यह न करना था, कुछ का मत है कि ठीक ही किया, जिससे दूसरों को नसीहत हो गयी। डा० स्मिथ कहते हैं। "**यद्यपि यह दण्ड अनियमित रूप से और बिना खोज-बीन के दिया गया था, फिर भी ऐसा करना आवश्यक था, क्योंकि तार्दीबेग को दण्ड न देने पर अकबर का जीवन और सिंहासन दोनों ही जा रहे थे।** इसी का समर्थन डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने किया है। आपका कथन है कि "**यह कृत्य सेना में विश्वास उत्पन्न करने तथा विद्रोह का दमन करने के लिए आवश्यक था।**†

(८) **अल्पवयस्कता**——अन्त में यह कहना अनुचित न होगा कि अकबर एक अल्पवयस्क बालक था। उसे स्वयं इतना अनुभव न था कि वह हर क्षेत्र

† "The act was necessarily to restore confidence in army and to stamp out sedition." *Dr. A. L. Srivastava.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शो सम्हालता। उसे किसी न किसी संरक्षक का सहारा लेना था, उसकी संरक्षता का भार यद्यपि एक पर था, पर उससे दूसरे अमीरों को संतोष न था, वे अपना स्वार्थ चाहते थे।

पानीपत के द्वितीय युद्ध की पृष्ठ भूमि—ऐसी विषम परिस्थिति में अकबर को अपनी नौका खेनी थी। जैसा कहा जा चुका है कि उसका सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी हेमू था। हेमू अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा के आधार पर उठ खड़ा हुआ था। वह रेवाड़ी के एक वैश्य वंश का था। पहले वह अपने मण्डल का चौधरी हुआ, जिस के कारण उसका अधिकारियों से सम्पर्क हुआ। तदनन्तर उसे दरबार में लाया गया। सुल्तान ने उसे विभिन्न स्थितियों में नियुक्त किया और सदा सफल शासक पाया। हेमू ने मुहम्मद शाह आदिल के लिए युद्ध किये तथा विजय पायी, उसके राज्य का विस्तार किया अतः स्वाभाविक था कि वह सुल्तान का दाहिना हाथ हो जाता। अपनी योग्यता के फलस्वरूप ही वह मुहम्मद आदिलशाह का मंत्री बन गया था। उसने तार्दी बेग से दिल्ली छीन ली थी। विक्रमाजीत की उपाधि धारण कर उसने दिल्ली में प्रवेश किया था। उसका कहना था कि अकबर क्या करेगा, अभी कल का बच्चा है। उसको पूर्ण आशा थी कि वह भारत पर राज्य करेगा। आदिलशाह भी समझता था कि भारत के राज्य पर तो उसका पैतृक अधिकार है।

इधर अकबर की हालत खराब थी। वह इस समय जालंधर में था। उसको जब विदित हुआ कि तार्दीबेग हार गया, तो उसे बहुत कष्ट हुआ। साथ ही तार्दीबेग की हार तथा उसके वध से उसके साथियों में भी जोश न रहा। आखिर अकबर ने बैरमखाँ को अपने पिता तुल्य माना। खान बाबा की उपाधि देकर उसे समस्त अधिकार दे दिये और उससे स्वामिभक्ति का बचन ले लिया। तदनन्तर अकबर ने मन्त्रणा की। मन्त्रणा में लगभग सभी ने (बैरम खाँ को छोड़कर) काबुल लौट चलने की सलाह दी, क्योंकि हेमू के पास असंख्य फौज थी जैसा कि फरिस्ता ने लिखा है कि "**वह रेगिस्तान से चींटी और टीड़ी दल के समान अपना सैन्य दल लेकर दिल्ली से निकला।**"* पर अकबर ने लड़ना ही उचित समझा।

इस समय आदिलशाह पूर्व में था। उसने हेमू को ५०००० घोड़े तथा ५०० हाथी लेकर दिल्ली भेजा था, जिससे वह सफल हुआ था। इस समय आगरा, बियाना और दिल्ली में भीषण अकाल था। बदाऊनी ने लिखा है कि एक सेर ज्वार २॥ टंके की बिकती थी, बड़ी अच्छी हैसियत के आदमी भी

*"With army as numerous as locusts and ants of the desert". *Peris.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अपने घर की चहार दीवारी के अन्दर बन्द होकर रह गये। उन्हें न कफन ही मिला न कबर ही मिली। उसने कहा कि मनुष्य निराश होकर मनुष्य को खाये जाता था, किन्तु हेमू अपनी विशाल बाहिनी लेकर पानीपत की ओर चल दिया।

पानीपत का युद्ध (१५५६ ई०)--आखिर ५ नवम्बर सन् १५५६ ई० के दिन हेमू ने अपने हाथियों को आगे कर धावा बोल दिया। उसका विचार था कि शत्रु के घोड़े उनसे दब जायेंगे, पर मुग़लों ने उसका कड़ा प्रतिरोध किया। हेमू अपने विशाल हाथी पर सवार होकर जुटा रहा। उसके साथ घोड़े भी ४००० थे, जो कम मार-काट न करते थे, किन्तु एकाएक हेमू की आँख में तीर लग गया और वह अपने होदे में ही गिर गया। इससे उसकी सेना ने यह समझा कि वह बचेगा नहीं, अतः अधिकांश उसका साथ छोड़ने लगे। हेमू वीर था, वह पुनः उठा और अपने शेष साथियों को लेकर लड़ता रहा, परंतु मुग़ल घुड़सवारों ने उसे घेर लिया तथा बन्दी बनाकर अकबर के समीप ले गये। उसके वहाँ पहुँचते ही वैरम खाँ ने अकबर से कहा कि उसका बध करके वह गाजी की उपाधि ले। अकबर ने अपनी तलवार से उसका सर छू भर दिया कि वैरम खाँ ने उसे धड़ से अलग कर दिया। इस प्रकार एक वीर सेनापति का अन्त कर दिया गया। मुसलमान इतिहासकारों ने भी उसकी वीरता की प्रशंसा की है। वदाऊनी के अनुसार **हेमू ने एक ही धावे में अकबर की सारी सेना तितर-बितर कर दी।‡ हेमू ने पानीपत के युद्ध में वीरता का परिचय दिया। वह अलग दिखाई पड़ रहा था।**† पर एक ही तीर के कारण उसकी विजय पराजय में बदल गयी।

इस युद्ध का परिणाम--पानीपत का द्वितीय युद्ध पहले की ही तरह बड़े महत्त्व का हुआ। पहले युद्ध ने मुगल सत्ता का बीज भर बो दिया था, दूसरे ने उसे पौधे का रूप दे दिया। हेमू की शक्ति सर्वथा नष्ट हो गयी। उसी के साथ अफ़गानों की आशाओं पर तुषारपात हो गया। मुगलों को इसमें बहुतसा धन तथा युद्ध सामग्री भी प्राप्त हुई। पर अकबर को इस समय तीन बातों का सामना करना था।

---

‡ Hemu upset the whole army of Akbar at one charge.

Badauni.

† "He was conspicuous by his bravery even at Panipat."

Syed Mohd. Latif.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

१. पूर्व अर्जित साम्राज्य पर अधिकार पाना।
२. प्रमुख अधिकारियों पर प्रभुत्व स्थापित करना।
३. अनेक विद्रोहों के कारण उत्पन्न अशान्ति के स्थान पर सुव्यवस्था स्थापित करना।

हेमू के वध के पश्चात् अकबर ने बड़ी शान से दिल्ली में प्रवेश किया। उसका बड़ी धूम-धाम से स्वागत हुआ। दिल्ली से दो विशेष कार्य किये गये। पहला तो मेवात का आक्रमण था क्योंकि हेमू के सहयोगी सारा माल लेकर उधर ही चले गये थे। इस आक्रमण के लिए पीरमुहम्मद भेजा गया। पीरमुहम्मद ने सब कुछ अपने अधिकार में करके हेमू के पिता के सामने दो बातें रखीं, या तो वह मुसलमान हो जावे या मौत के घाट उतर जाये। हेमू के पिता ने धर्म परिवर्तन से इन्कार कर दिया, अतः उसे तुरंत देवलोक पहुँचा दिया गया। इसके उपलक्ष में पीरमुहम्मद को मेवात की जागीर ही दे दी गयी। अकबर का दूसरा अभियान सिकन्दर सूर के विरुद्ध हुआ। जिसका नेतृत्व अकबर ने स्वयं किया। सिकन्दर ने अपने को मानकोट के दुर्ग में छिपा रखा था। बैरम-खाँ द्वारा भेजी गयी सेना ने उसका घेरा डाला और लगभग ६ माह के घेरे के पश्चात् सिकन्दर को आत्म-समर्पण के लिए विवश किया गया। सिकन्दर सूर को एक जागीर दे दी गयी। उधर मुहम्मद आदिलशाह का बंगाल के शासक से भी झगड़ा हो गया। जिसमें आदिलशाह अपने जीवन से हाथ धो बैठा। इस प्रकार अकबर के शत्रु अपने आप मिटने लगे।

ग्वालियर तथा जौनपुर (१५५८–६० ई०)—अकबर ने अपने राज्य के तीसरे वर्ष में साम्राज्य का विस्तार प्रारम्भ कर दिया। इसमें ग्वालियर जैसे दुर्ग का अधिकार भी उसे मिला। ग्वालियर का दुर्ग अपनी ऊँचाई के लिए प्रसिद्ध था। इस समय यह दुर्ग सुल्तान मुहम्मद आदिल के एक दास सुहायल के अधिकार में था। जैसे ही अकबर के सेनापतियों ने इसका घेरा डाला कि कुछ ही दिनों में इसके अधिकारी ने आत्म-समर्पण कर दिया। इसके पश्चात् जौनपुर की खबर ली गयी। जौनपुर में अभी भी अफ़गानों का ज़ोर था। सन् १५६० ई० में जौनपुर के क्षेत्र पर भी अधिकार कर लिया गया। इससे अकबर का राज्य बनारस तक फैल गया।

रणथम्भौर तथा मालवा—१५५९ ई० में रणथम्भौर के विरुद्ध हबीब अलीखाँ को भेजा गया। शेरशाह के समय यह दुर्ग हाजीखाँ के अधिकार में रख दिया गया था। हाजी खाँ ने उसे राय सुरजन के हाथ बेच दिया था। राय ने इस क्षेत्र में अपनी प्रभुता जमा रखी थी। हबीब्र खाँ ने उसके पड़ोस में विध्वंस किया किन्तु किले का कुछ अधिक न बिगाड़ सका। मालवा में इस समय जब कि

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मुगल राजधानी आगरे में थी बाजबहादुर का अधिकार था। अतः बहादुर खाँ को मालवा पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया। वह मालवा पहुँचा ही था कि इधर बैरम खाँ का संकट आरम्भ हो गया; अतः उसे लौटना पड़ा।

बैरमखाँ का उत्थान व पतन--अकबर के प्रारम्भिक राज्यकाल में बैरम खाँ की बदौलत ही सब कुछ हो सका था। काबुल से जौनपुर तब मुगलों का आधिपत्य हो गया, किन्तु बैरम खाँ को इसका प्रतिफल अच्छा न मिला। बैरमखाँ बदखशां का निवासी था। वह शिया धर्म को मानता था। उसने हुमायूँ तथा अकबर दोनों की सच्चाई से सेवा की थी। सन् १५४० ई० में वह कन्नौज के युद्ध में बन्दी भी बना लिया गया था। किसी प्रकार वह भाग कर पुनः हुमायूँ के साथ हो लिया था। फारस तक हुमायूँ के साथ जाकर उसने हुमायूँ को फारस के शाह से सहायता दिलवाई थी। वह हुमायूँ के साथ काबुल, कन्धहार, पंजाब, दिल्ली तथा आगरा सभी की विजयों में था। उसका नाम ही खान बाबा (पिता तुल्य) हो गया था। पहले संकेत किया जा चुका है कि जब हुमायूँ की मृत्यु हुई तो बैरम खाँ और अकबर पंजाब में थे। उस समय हेमू से युद्ध करने की सलाह देने वाला केवल बैरम खाँ था और उसी के परिश्रम से पानीपत का युद्ध जीता भी गया। उस पर तार्दीबेग के वध का आरोप अवश्य लगाया जा सकता है, पर समय की पुकार तथा स्थिति इस बात के लिए उत्तरदायी हैं। हुमायूँ ने एक बार बैरम खाँ से कहा था कि **"मेरे कुटुम्ब में तुम्हारे जैसा तो कोई दीप ही नहीं है।"**

बैरम खाँ ने अपने अनुभव के आधार पर अधिक कार्य किया। अतः धीरे धीरे वही राज्य का स्वामी बन गया। अकबर के ऊपर उसका प्रभाव बहुत बढ़ गया। पर उसका आगे का भाग्य कुछ और ही था। कुछ लोग तो उससे पहले से ही जलते थे; कुछ उसके दिन प्रति दिन बढ़ते प्रभाव को देख कर और जलने लगे। साथ ही कुछ उसकी ऐसी भूलें भी हो गयीं जिनके कारण वह अप्रिय बनने लगा। लोग आये दिन अकबर के कान भरने लगे। अकबर भी अब बालिग (वयस्क) हो रहा था, उसको भी इतनी पराधीनता सहन न हो रही थी। अतः उसने एक दिन बैरम खाँ से कह ही दिया कि अब मैं स्वयं राज्य देखूंगा। अकबर ने अन्त में पत्र लिखा—

"चूँकि मैं आपकी ईमानदारी और स्वामिभक्ति पर भरोसा करता था, मैंने राज्य के समस्त मुख्य कार्य आपके ही ऊपर छोड़ रखे थे। अपने को केवल आनन्द से सरोकार था। अब मैं राज्य की बागडोर अपने हाथ में लेना चाहता हूँ और समझता हूँ कि आपका मक्का चला जाना उचित होगा। यही आप बहुत समय से चाहते भी थे। हिन्दुस्तान से आपके भरण-पोषण के लिए एक

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उपयुक्त जागीर दे दी जायगी, जिसकी मालगुजारी आप के पास तक सदा भेज दी जायगी।"†

बैरम खां के पतन के कारण

(१) शेख गदाई की नियुक्ति
(२) पक्षपात पूर्ण व्यवहार
(३) "बैरमखां कामरान के पुत्र को गद्दी पर बिठाना चाहता है" यह सन्देह होना।
(४) उसका लोक प्रिय न होना
(५) अकबर का वयस्क होना
(६) महल के अन्य विरोधी
(७) बैरम खां का स्थिति को न समझना।

(१) बैरम खां ने शेख गदाई को सदर-ए-सुदूर नियुक्त किया। शेख शिया थे अतः यह समझा गया कि बैरम खां अब शियाओं का पक्ष करता है, जो कि राज-धर्म के विरुद्ध है। शेख को उलैमा तथा सय्यदों के सामने भी तरजीह दी जाती थी। इस से सुन्नी जमात में भारी क्षोभ उत्पन्न हो गया।

(२) बैरम खां ने अपने मित्रों तथा सेवकों का भी पक्ष लिया। उसने अपने सेवकों को खान तथा सुल्तान की पदवियाँ दीं, अपने खास-खास आदमियों को तो उसने पंचहज़ारी बना दिया, जब कि उचित अधिकारियों को ठुकरा दिया गया। इसी प्रकार अपराधियों के दण्ड देने में भी पक्षपात दिखाया गया। शाही घराने के सेवकों के साथ दुर्व्यवहार हुआ, जबकि अपनों के साथ नहीं। एक बार एक हाथी ने बैरम खां के खेमे की एक रस्सी तोड़ दी, तो उसने हाथी के महावत को फाँसी का दण्ड दे डाला, जब कि अकबर ने स्वयं उसे बहुत कुछ समझाया कि इसमें उसका कोई दोष न था, न वह उसका अपमान ही चाहता था।

(३) सबसे बड़ा सन्देह उस पर यह था कि वह एक षडयन्त्र रच रहा था, जिसमें कामरान के पुत्र

†"As I was assured of your honesty and fidelity I left all important affairs of state in your charge and thought only of my own pleasure. I have now determined to take the reins of Government into my own hands and it is desirable that you should make the pilgrimage to Mecca upon which you have been so long intent. A suitable Jagir out of parganas of Hindustan will be assigned for your maintenance the revenues of which shall be transmitted to you by your agent."

Akbar.

Elliot and Dowson P. 264.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अब्दुल क़ासिम को अकबर के स्थान पर बिठाना चाहता था, यह एक ऐसी बात थी जिसको टाला न जा सकता था।

(४) इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि वह लोक प्रिय न था। वह मुग़ल सरदारों को अपनी ओर आकृष्ट न कर सका। वस्तुतः उसे कुछ अपनी सफलता के कारण घमण्ड आ गया था। तार्दी वेग के वध ने यह निश्चय कर दिया था कि वह कभी भी किसी भी अमीर का वध करा सकता है, अतः सभी सशंकित हो उठे थे। **"वह बहुत हठी, ईर्ष्यालु, निरंकुश तथा घमंडी हो गया था, तथा किसी भी शक्तिसम्पन्न प्रतिरोधी को अपने अल्प वयस्क स्वामी के सामने देख ही न सकता था।***

(५) अकबर स्वयं वयस्क हो रहा था। उसको बैरम खां का व्यवहार पसन्द न आता था। दूसरी ओर बैरम खां अभी उसे स्वतन्त्र न छोड़ना चाहता था, वह अभी भी संरक्षक के रूप से उसे दबाये रखना चाहता था। अकबर अब व्यग्र था, फिर कुछ महल के अन्दर भी षडयन्त्र चल रहा था।

(६) बैरम खां के विरुद्ध अकबर की मां हमीदा बानू, महम अंगा, आदम खां, दिल्ली का गवर्नर शहाबुद्दीन, सभी थे, ये मनाते थे कि कब उसकी शक्ति का ह्रास हो। एक षडयन्त्र भी रचा गया। इसी के अनुसार अकबर दिल्ली गया। उसने बहाना यह किया कि उसकी माँ बीमार हैं। वहाँ से अकबर ने बैरमखां को लिखा कि वह राज्य स्वयं सम्हालना चाहता है अतः आप मक्का शरीफ चले जायँ। साथ ही आपको एक जागीर दे दी जायगी। बैरम खां इस पर राजी हो गया। वह कार्यभार देना ही चाहता था कि एक आपत्ति आ गयी।

पीर मुहम्मद, जिससे बैरम खां घृणा करता था, उसके पास इसलिए गया कि बैरम खां शीघ्र मक्का चला जाय। यह बैरम खाँ को सहन न हो सका और उसने विद्रोह कर दिया। दैवयोग से वह पराजित हुआ और क्षमा माँगने लगा। अकबर तो महान था ही उसने उसके साथ सम्मान का व्यवहार किया तथा उसे भेंट आदि दी। बड़ी सज-धज से बैरम खां ने मक्का के लिए प्रस्थान किया। दुर्भाग्यवश गुजरात में जाकर वह एक अफगानी के द्वारा कत्ल कर दिया गया। उसका समस्त धन लूट लिया गया। बस केवल उसका पुत्र अब्दुररहीम बच सका। डॉ० स्मिथ ने बैरम खां के लिए लिखा है--

* "His disposition was arbitrary, haughty, and jealous, and he could not easily tolerate the presence of possible rivals near his young master."

V. D. Mahajan

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

"बैरम खां के पतन तथा मृत्यु की कहानी एक दुःखद घटना है । स्पष्ट दिखाई देता है कि अकबर के साथ जो षडयन्त्रकारी थे, उन्होंने यह दृढ़ संकल्प कर लिया था कि उसे किसी भी कीमत पर हटाना है । वस्तुतः उन्होंने ही उसे विद्रोह करने को विवश किया, जिससे उसका पतन हो जाय । अन्यथा वह ऐसा कदम न उठाता ।"‡

बैरम खां तो विद्रोह चाहता ही न था, उसके सलाहकारों ने उसे प्रेरित किया पर उसने विद्रोह न किया था । वह जब विवश हुआ, तो उसने विद्रोह किया, वह भी अन्यमनस्क होकर, यह मनाता था कि कब पकड़ जाय । अबुल फजल जैसे व्यक्ति के लिए जो उसमें दोष ढूँढ़ना ही चाहता था । उसमें दोष न निकल सके, उसका कथन है—**"बैरम खां वस्तुतः भला आदमी था, उसमें अनेक गुण थे"*** पर अबुल फजल ने इतना अवश्य माना है कि बैरम खां ने मर्यादा का ध्यान नहीं रखा, वह चापलूसों की बात का शिकार हो गया । इस स्थिति में अकबर का यह धर्म था कि अपने पिता के समय से सेवा करने वाले स्वामिभक्त सेवक को अधिक से अधिक भलमनसाहत से विदा करता । इस बात में आपत्ति उपस्थित करने वाले उसके शत्रु थे । उसके शत्रुओं का तो यदि बस चलता तो उसे सुरधाम पहुँचा देते । जो कुछ सद्व्यवहार विद्रोह के पश्चात् भी बैरम खां को प्राप्त हो सका वह केवल अकबर की व्यक्तिगत भलमनसाहत थी । वूल्ज्ले हेग के अनुसार तो **"अकबर को अभी भी धैर्य रखना था । जब वह बड़ा होता बैरम खां स्वयं उसे मुक्त कर देता और बैरम खां के पश्चात् चार वर्ष फिर भी अकबर दूसरे के (हरम दल) अधिकार में रहा ।†**

---

‡ "The story of the transactions leading up to the fall and death of Bairam Khan leaves an unpleasant taste. It seems to be clear that the intriguers who surrounded and controlled the young Padshah were resolved to get rid of the protector at any cost, and that they deliberately forced him into rebellion in order to ensure his destruction."

V. A. Smith.

* "Bairam Khan was in reality a good man and of excellent qualities."

Abul Fazl.

† He would have done well to wait, for he was not yet fit to assume the sole charge of his empire and remained for four years mere under the pernicious influence of the harem party." *Woolsley Haig.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अकबर पर हरम दल का प्रभाव--इस बात का संकेत मिल चुका है कि बैरम खाँ के विरुद्ध जो षडयन्त्र रचा गया उसमें अकबर की महम का हाथ था। यह प्रभावशालिनी स्त्री अकबर की धाय महम अनगा थी। उसने अपने और अपने परिवार के लिए अकबर के हृदय में कलुषता उत्पन्न कर दी थी। बैरम-खाँ का पतन १५६० ई० में हो गया। उसके अनन्तर अकबर इस स्त्री के प्रभाव में रहने लगा। धीरे-धीरे महम अंका का प्रभाव बहुत बढ़ गया। डा० स्मिथ ने इसी बात को देखकर कहा है कि **"अकबर बैरम खां के हाथ से मुक्त क्या हुआ, वह तो निर्दय आदर्शहीन स्त्रियों के चक्कर में आ गया।"**† पर यह भी सर्वथा सिद्ध बात नहीं है। यदि वह इतनी प्रभावशालिनी होती तो वह अपने पुत्र आदम खाँ की सब से अधिक सिफारिश करती, जब कि आदम खाँ अपनी वीरता का परिचय भी दे चुका था। दूसरे यदि अकबर उसको बात का इतना आदर करता, तो उसकी इच्छा के अनुसार बैरम खाँ को दण्ड देता, पर उसने ऐसा नहीं किया। सब से बड़ी बात तो यह है कि इस बीच आदम खां को कोई उपाधि अथवा जागीर भी न दी गयी जिससे उसके पक्षपात की बात सिद्ध होती। फिर जब अकबर को समाचार मिला कि आदम खाँ ने मालवा की लूट का दुरुपयोग किया है, उसने स्वयं उसको दण्ड देना चाहा। इस समय उसकी माता ने उसे अवश्य बचा लिया, पर वही माँ उसे दुबारा मृत्यु से भी न बचा सकी। जब अकबर ने शमसुद्दीन के वध के अपराध में उसे किले की दीवाल से फेंकने को आज्ञा दी थी, उस समय महम के शब्द थे **"आपने ठीक ही किया।"***

इस स्थल पर इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि महम ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के सामने देश हित का कोई ध्यान न रखा।

आधम खाँ--सन् १५६१ ई० में मालवा को बाजबहादुर अफगान से मुक्त कराने के लिए आधम खाँ को मालवा भेजा गया। आधम खाँ की सहायतार्थ पीरमुहम्मद गया था। भाग्य से बाजबहादुर हार गया। आधम खाँ ने उसे लूटा तथा लूट का माल अपने ही अधिकार में रखा, साथ ही आधम खाँ ने यह भी प्रयास किया कि वह बाजबहादुर की हिन्दू पत्नी रूपमती को अपने हाथ करले। दैवयोग से वह विष-पान करके प्राणांत कर चुकी थी। पर अकबर को

---

† "Akbar shook off the tutelage of Bairam Khan only to bring himself under the monstrous regiment of unscrupulous women."

Dr. Smith.

* "Your Majesty did well."

Maham Ankah.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

आधम खाँ का लूट का माल रख लेना ही बुरा लगा और जैसा कहा जा चुका है, वह उसे दण्ड भी देता पर उसकी माँ की बदौलत वह बच गया। अकबर ने फिर भी इतना तो किया ही कि उसे एकाएक पकड़ लिया, तमाम माल छीन लिया, उसे पदच्युत कर दिया तथा उसके स्थान पर पीरमुहम्मद को नियुक्त कर दिया। इससे एक हानि हुई, कि बाजबहादुर ने दुर्बल शासक को देखकर स्वयं मालवा की शक्ति पुनः प्राप्त कर ली जिसे प्राप्त करने के लिए अबदुल्ला उजवेग को भेजना पड़ा और वह पुनः पराजित हुआ।

आधम खाँ सदा इस विश्वास में रहा कि वह कुछ भी करे उसकी माँ तो है ही जो बचा लेगी। उसने शमसुद्दीन का ही वध कर दिया। शमसुद्दीन को वस्तुतः महम की अनिच्छा पर भी अकबर ने मन्त्रिपद पर नियुक्त किया था। उसका वध ज्ञात कर अकबर आग-बबूला हो गया। यह घटना १५६२ ई० की है। अकबर ने उसे तुरत धराशायी कर दिया और किले की दीवार से फिकवा दिया। महम को अपने पुत्र की मृत्यु से बहुत खद हुआ। उसके चालीसवें दिन वह स्वयं इस संसार से चल बसी। इस प्रकार अकबर इस प्रभाव से भी मुक्त हो गया।

उजवेग विद्रोह––(१५६५–६७ ई०) अबदुल्ला खाँ उज़वेग अकबर का एक विश्वासपात्र अधिकारी था। उसी ने मालवा को पुनः हस्तगत किया था। १५६४ ई० में उसने अकबर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उसका साथ अन्य उज़वेगो ने भी दिया। अकबर ने उसके विरुद्ध अभियान किया जिससे उसे गुजरात की ओर भागना पड़ा; पर वहाँ से वह ज़ौनपुर चला गया। जहाँ उसे खान-ज़मन की सहायता मिल गयी। डा० स्मिथ के अनुसार "अकबर फारसी अधिकारियों का विशेष ध्यान रखता था, जिनसे कि उज़वेगों की न पटती थी।" उज़वेगों का ख्याल था कि अकबर उनकी समस्त जाति से ही घृणा करता है और उन्हें मिटा देना चाहता है। इसका फल यह हुआ कि खान ज़मन और अली कुली खाँ जैसे लोगों ने जो पानीपत के युद्ध में अकबर के बड़े सहायक थे, विद्रोह कर दिया। उन्हीं का साथ आसफ खाँ ने भी दिया।

खान ज़मन के विरुद्ध तो भेजी गयी मुग़ल सेना भी हार गयी। इस पर अकबर को स्वयं नेतृत्व करना पड़ा। फलतः विद्रोहियों ने आत्म-समर्पण का बहाना किया, यद्यपि वे आन्तरिक रूप से सन्तुष्ट न थे। पर उधर हकीम मिर्ज़ा सक्रिय था, अतः कुछ समय के लिए अकबर को उज़वेगों की ओर से ध्यान हटाना पड़ा। १५६७ में जब अकबर अपने भाई की ओर से निश्चित हो गया, तो एक दिन भरी गंगा पार कर विद्रोहियों के ऊपर चढ़ आया। घोर संग्राम हुआ, जिसमें खान ज़मन मारा गया, बहादुर खाँ और उसके भाई

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पकड़े गये तथा उनका भी वध किया गया। इस प्रकार इस विद्रोह को भी अकबर ने अपनी वीरता के फलस्वरूप ही शान्त किया।

मुग़लों का साम्राज्य विस्तार--कहना न होगा कि सच्चे रूप से अकबर ही मुग़ल साम्राज्य का संस्थापक था। उसके बाबा तथा पिता के राज्य चन्द दिन तक टिक सके थे, जो राज्य उसको प्राप्त हुआ था, उसे राज्य कहना ही युक्तसंगत न था। यदि अकबर में अपनी सूझ, अपने आत्मबल का सहारा और अपनी वीरता न होती तो वह हुमायूँ के पश्चात् प्राप्त किया हुआ राज्य भी हेमू को देकर चला जाता। अकबर ने साम्राज्य का इतना विस्तार किया कि उसके पूर्व कम सुल्तान कर सके थे। इस साम्राज्य विस्तार के पीछे एक लम्बी गाथा है। इसके पीछे ४० वर्ष (१५६१–१६०१ ई०) का अनवरत युद्धों का इतिहास है, इसी में मुगल शक्ति का उत्थान छिपा है। अकबर को दिल्ली और जौनपुर के अतिरिक्त मिला ही क्या था ? पर उसने अपने शासन-काल में अनेक युद्ध योजनाओं का नीति तथा चतुरता से संचालन कर विशाल साम्राज्य खड़ा कर दिया। उसे निम्नलिखित युद्ध करने पड़े।

अकबर की विजएँ*

उत्तर भारत

विजय	तिथि	विजय	तिथि
१. मालवा	१५६१ ई०	८. विहार व बंगाल	१५७४-७६ ई०
२. चुनार दुर्ग	१५६१ ई०	९. मेवाड़	१५७६ ई०
३. गोंडवाना	१५६४ ई०	१०. काबुल	१५८०–८१ ई०
४. (चित्तौड़ व	१५६८ ई०	११. काश्मीर	१५८५–८६ ई०
(रणथम्भौर	१५६९ ई०	१२. सिन्ध	१५९०–९२ ई०
५. कालिंजर	१५६९ ई०	१३. उड़ीसा	१५९२ ई०
६. मारवाड़	१५७० ई०	१४. विलोचिस्तान	१५९५ ई०
७. गुजरात	१५७३ ई०	१५. कन्दहार	१५९५ ई०

दक्षिण भारत

विजय	तिथि
खानदेश	१५९१ ई०
अहमद नगर	१६०० ई०
असीरगढ़	१६०१ ई०

* तिथियाँ डा० रामप्रसाद त्रिपाठी के आधार पर।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(३) **गोंडवाना १५६४ ई०**—इस समय गोंडवाने में रानी दुर्गावती अपने पुत्र वीर नारायण के संरक्षक के रूप से राज्य कर रही थी। रानी बड़ी बहादुर और योग्य शासिका थी। वह अपने सद्व्यवहार तथा सुन्दर शासन से अपनी जनता की विश्वासपात्र बन चुकी थी। इसके भू-भाग को किसी इस्लाम धर्मी ने उस समय तक न जीता था। इसके प्रदेश में अनेक घने जंगल और पर्वत शृंखलाएँ थीं। आजकल के मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग को पहले का गोंडवाना कहा जा सकता है। इसकी विजय का भार अकबर ने ख्वाजा अब्दुल-मजीद अथवा आसफ खाँ को सौंपा। वह पहले से ही कड़ा का गवर्नर था, अतः बहुधा गोंडवाने के समाचार लिया करता था। १५६४ ई० में उसने मुगल सेना को कूच करा दिया। रानी ने यह ज्ञात करके भी साहस न छोड़ा। वह भी युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गयी। मुगलों की सेना का सामना करने के लिए उसके पास ५०० हाथी और बीस हजार घोड़े थे। उसने जबलपुर जिले के गढ़ और मण्डल के बीच मुगलों को रोका। दो दिन तक युद्ध हुआ, रानी लड़ते-लड़ते मारी गयी। उसके सैनिक इतने कम थे कि रानी का बहुत दिन साथ न दे सके। फिर क्या था, मुगलों ने देश को खूब लूटा। उसका पुत्र वीर नारायण भी उसी हव्य में भस्म हो गया। वस्तुतः माता की मृत्यु के उपरान्त वीर नारायण ने सारा खज़ाना लेकर अपने को चौरागढ़ में जाकर बन्द कर लिया था, पर एक ही दिन में चौरागढ़ का दुर्ग तोड़ दिया गया और वीर नारायण को घोड़ों से कुचल-कुचल कर मारा गया। इस गढ़ से रत्न, जवाहरात, सोना, चाँदी आदि इतना अतुल धन लूटा गया कि जिसका वर्णन यहाँ सम्भव नहीं। आसफ खाँ ने उस लूट में से केवल १५ हाथी दरबार भेज दिये शेष स्वयं हड़प कर गया।

आसफ खाँ ने इस विधवा राज्य पर निरपराध ही आक्रमण किया था। रानी इस घटना से १५ वर्ष पूर्व विधवा हो चुकी थी। रानी महोबा के चन्देल वंश की राजकुमारी थी। महोबा इस समय से सैकड़ों वर्ष पूर्व बहुत शक्तिशाली राज्य वंश का स्थान रह चुका था। पर उस की स्थिति इस समय अच्छी न थी, रानी का पिता निर्धन था, इसीलिए उसने सामाजिक नियमों के विरुद्ध गोंड राजा को अपनी कन्या ब्याह दी थी। रानी ने अपनी पैतृक वीरता तथा कुशलता का परिचय दिया। अबुल फज़ल का कथन है **"वह अपनी अपूर्व प्रतिभा से बड़े-बड़े कार्य कर रही थी।"†** उसने सदा बाजबहादुर जैसे वीरों से लोहा लिया और विजय प्राप्त की। उसके समीप सदा २०००० अश्वारोही

---

† "Doing great things by dint of her far seeing abilities." *Abul Fazl.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

और १००० हाथी प्रस्तुत रहते थे। वह इतनी निडर और निशाने की सच्ची थी कि अपनी ही बन्दूक से जंगली पशुओं का शिकार करती थी। यदि कभी वह सुन पाती कि जंगल में कोई चीता आ गया है, तो जब तक उसका शिकार न कर लेती, जल ही ग्रहण न करती थी। डा० स्मिथ के अनुसार **"अकबर का ऐसी भली रानी पर आक्रमण करना सर्वथा अनुचित था, इसमें रानी का कोई दोष न था। यह तो अकबर की लूट और विजय लालसा का ही प्रतीक था।"‡**

(४) **राजपूतों से संघर्ष**--अकबर ने राजपूतों के साथ बड़ी कूटनीति से काम लिया, क्योंकि वह जानता था कि सीधे-सीधे लड़ने से काम न चलेगा। उसने विभिन्न राजपूतों के साथ विभिन्न व्यवहार किया। सन् १५६२ ई० में अकबर ने जयपुर के राजा भारमल (विहारमल) की बड़ी पुत्री से विवाह किया। १५७० ई० में उसने बीकानेर और जैसलमेर की राजकुमारियों से विवाह किया। १५८४ ई० में राजकुमार सलीम का विवाह भगवान दास की पुत्री से हुआ किन्तु इस बीच बहुत दिन तक मेवाड़ ने उसकी प्रभुता न मानी थी। अतः अकबर ने उसे दण्ड देने के लिए १५६७ ई० में चित्तौड़ पर आक्रमण किया।

इसका कारण--जहाँ तक अकबर के आक्रमण करने के कारण का संबंध है, अबुल फज़ल का कहना है कि अकबर राणा के उस गर्व को चूर करना चाहता था, जो उसे अपने भारी महल और पर्वत श्रेणियों पर था। बदाउनी और जियाउद्दीन के अनुसार राणा ने बाजबहादुर को शरण दे रखी थी जिसके लिए अकबर उसे दण्ड देना चाहता था। डा० स्मिथ का कथन है कि अकबर की यह राजनीतिक चतुरता तथा आर्थिक आवश्यकता थी, जिससे प्रेरित होकर वह मेवाड़ को अपने अधिकार में करना चाहता था। पर वूल्ज़लेहेग का कथन है कि मेवाड़ को छोड़कर लगभग सभी राजपूत अकबर की प्रभुता मान चुके थे। वही अकेला ऐसा था जो उसको कुछ नहीं गिनता था। शर्मा के अनुसार यह कारण ऐतिहासिक तथ्य के विरुद्ध है क्योंकि अकबर के १५६७ ई० में चित्तौड़ पर आक्रमण करने के पूर्व केवल अम्बर के कछवाहों का एक ही वंश ऐसा था, जिसने अकबर से मैत्री स्थापित कर ली थी। राजस्थान में उस समय तक अकबर को केवल मेरथा का दुर्ग ही मिल पाया था। जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर उस समय तक कोई साँस न लिये थे। अतः सत्यता तो यह है कि यदि अकबर केवल मेवाड़ को अपने अधीन कर लेता है, तो उस

‡ "Akbar's attack on a princess of character so noble was mere aggression, wholly unprovoked and devoid of all justification other than the lust for conquest and plunder."
Dr. Smith

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

का प्रभुत्व मानन वाल अन्य राजा अपने आप अकबर को मानने लगेंगे। ठीक भी था। अकबर राजपूतों की मनोवृत्ति खूब समझता था। एक से लड़ने से उसका काम चल जाता है, तो वह सबसे अलग-अलग क्यों लड़े। यह बात चित्तौड़ के पतन के पश्चात् रणथम्भौर के १५६९ ई० में तथा जोधपुर, जैसलमेर और बीकानेर के १५७० ई० में समर्पण से सिद्ध हो जाती है। फिर अकबर के नये ही प्राप्त किये हुए राज्य की सुरक्षा का भी तो प्रश्न था। विशेषकर मेवाड़ से जिसने मालवा के बाजबहादुर को शरण दे रखी थी जिसने मेरथा के राना का स्वागत किया था। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि अकबर गुजरात तक के देश को विजय करना चाहता था, अतः उसके बीच में इस बड़ी खाई को कैसे रख सकता था। अन्त में यह कहना असंगत न होगा कि उदयसिंह का दूसरा बेटा शक्तिसिंह अकबर के यहाँ से भाग आया था, उसने अपने पिता से कह दिया था, कि अकबर तुम्हारे ऊपर आक्रमण करना चाहता है। अतः अकबर को अपने सम्मान की रक्षा के लिए बड़ी सतर्कता बर्तनी थी। उसे यह भी सिद्ध करना था कि वह कभी हास्य नहीं करता, बल्कि सचमुच आक्रमण करने की क्षमता (दम) रखता है। क्या कभी यह भुलाया जा सकता है, कि अकबर उसी बाबर का नाती है, जिसने राणा उदय सिंह के पिता को मुँह की खिलाई थी। इस प्रकार यह वैर तो वंशानुगत हुआ, इसमें सद्भाव कहाँ आ सकता था। उस पर अकबर तो बाबर से भी अधिक महत्वाकांक्षी था। उसे भारत में ही रहना था, अतः यह आक्रमण उसके लिए परम आवश्यक था।

इस समय जैसा संकेत किया जा चुका है, राणा उदयसिंह मेवाड़ का स्वामी था। वह राणासाँगा की मृत्यु के उपरान्त पैदा हुआ था। वह बप्पा रावल जैसे अपने कुल का कलंक था। टाड के अनुसार **"उसमें राजत्व का कोई गुण न था, न अपने कुल का सामान्य पैतृक उत्तराधिकार रूप शौर्य ही उसमें था। वह सभी से हीन था। मेवाड़ के लिए क्या ही उत्तम होता कि वह होते ही मर जाता और मेवाड़ के इतिहास में वह कभी गिना ही न जाता।"** ‡

इससे यह स्वाभाविक है कि उदय सिंह में अकबर का सामना करने का बल न था। अतः वह चित्तौड़ को जयमल तथा उसके भाई पत्ता को सौंपकर पहाड़ियों की ओर चल दिया।

---

‡ "He had not one quality of a sovereign and wanting martial valour, the common heritage of his race he was destitute of all. Well had it been for Mewar, had the poniard fulfilled its intentions; and had the annals never recorded the name of Udai Singh in the catalogue of her princes." *Tod.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अकबर ने जाकर चित्तौड़ का घेरा डाला । यह घेरा चार माह तक रहा। अकबर ने बड़े धैर्य से काम लिया । इस समय उसका सबसे बड़ा सहायक टोडरमल उसके साथ था । अकबर ने चित्तौड़ के दुर्ग को तोड़ने के लिए तीन साधनों का प्रयोग किया ।

(१) **लम्बी सुरंगें (सावात)**--ये किले से थोड़ी दूर चलकर प्रारम्भ होती थीं । इनके बीच दुर्ग तक कच्चा मार्ग बनाया जाता था, जो ऊपर से ढका रहता था । दुर्ग के पास आकर बारूद से दीवाल तोड़ दी जाती थी । इसी के बीच से शत्रु दल प्रवेश कर जाता था । अकबर ने यह सावात इतनी बड़ी और चौड़ी बनवाई थी कि दस घुड़सवार एक साथ अगल बगल जा सकते थे ।

(२) **तुर्रे**--जो चमड़े के लंबे ढके हुए स्थल होते थे । इन ढके हुए मार्गों में कारीगर खुदाई कर सकते थे तथा इन से भाले लिए सवार निकल सकते थे ।

(३) **सीबा**--यह एक ऊँची मीनार सरीखी होती थी ।

इस प्रकार अकबर पूर्णरूप से सन्नद्ध था । उधर राजपूत भी वीरता से दुर्ग की रक्षा में लगे थे । एक बार तो ऐसा हुआ कि अकबर की दो सावातों में से एक जल्दी फट गयी, जिससे उसी की हानि हुई । अतः पुनः टोडरमल और कासिम खां की देख रेख में नये सिरे से बनाई गयी । आखिर दुर्ग की दीवाल में दरार पड़ गयी । इस दरार की मरम्मत स्वयं जयमल करा रहा था । अकबर ने बन्दूक के प्रकाश से जयमाल को पहचान लिया और ऐसा निशाना लगाया कि उसकी टाँग टूट गयी । वह बड़ा वीर था, फिर भी युद्ध भूमि से भागा नहीं, पर स्थिति गम्भीर हो गयी, जब उसने समझ लिया कि अब दुर्ग न बचेगा तो जौहर की आज्ञा दी । जयमल की भाँति पत्ता भी लड़ रहा था । दोनों ने मिलकर अनेक यवन धराशायी किये, पर दूसरी ओर उन्हीं के बन्धु शत्रु के साथ भी थें, जिससे वह पार न पा सके और लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए । उस समय तो यह साधारण सी बात थी, कि नायक के हटते ही फौज हताश हो जाती थी, कुछ भाग जाती या कट जाती थी । अकबर के सैनिकों ने दुर्ग में प्रवेश किया, तो मारे क्रोध के न लड़ने वालों को भी मृत्यु के घाट उतार दिया । फरवरी १५६८ ई० में आखिर चित्तौड़ मुग़लों के अधीन हो गया । आसफ खां को मेवाड़ का गवर्नर नियुक्त किया गया । इसके पहले चित्तौड़ को अलाउद्दीन ने भी जीत लिया था, पर मेवाड़ को नहीं । इस विजय के उपलक्ष्य में अकबर ने मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह तक पैदल यात्रा की, जिसके लिए उसने विजय के पूर्व बचन दिया था । दूसरे उसने जयमल और पत्ता की पत्थर की मूर्तियों को

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

आगरे के दुर्ग के फाटक पर इधर उधर रखवा दिया । यह उन वीरों के लिए भारी अपमान की बात थी, पर अकबर को उस पर गर्व था।

रणथम्भौर विजय १५६९ ई०––चित्तौड़ के पश्चात् अकबर की दृष्टि रणथम्भौर पर पड़ी। इस समय रणथम्भौर में बूंदी के चौहान वंशी हाड़ा राजपूत राजा सुर्जनहार का अधिकार था। अकबर चित्तौड़ को लेने के पश्चात् आगरे लौट आया था । दिसम्बर सन् १५६८ ई० में वह पुनः चल पड़ा तथा फरवरी १५६९ ई० में उसने जाकर रणथम्भौर को घेर लिया। मुग़लों को भाग्य से रणथम्भौर के दुर्ग के सामने एक दूसरी पहाड़ी मिल गयी जिस पर वे जम गये । रणथम्भौर का दुर्ग इतनी ऊँचाई पर स्थित था, कि उस पर कोई शत्रु चढ़ ही न सकता था । इस लिए अकबर ने दूसरी पहाड़ी से ही गोला बारी शुरू की। यहाँ तक कि दुर्ग की दीवाल टूटने लगी, राजा सुर्जन हार यह देख कर दंग रह गया और घबराया, अन्ततः उसने सन्धि करनी चाही। राजा मान सिंह और भगवानदास के द्वारा उसने अपने पुत्र दूध और भोज अकबर के पास भेजे। अकबर ने राजकुमारों का स्वागत किया और सन्धि को स्वीकार किया। सुर्जनहार ने दुर्ग की तालियाँ अकबर को सौंप दीं। सुर्जनहार को अकबर ने गढ़ कण्टक का किलेदार नियुक्त कर दिया । उसके अनन्तर वह बनारस का गवर्नर नियुक्त हुआ। इस प्रकार अकबर को चित्तौड़ के पश्चात् एक एक करके अनेक राजपूत सर झुकाने लगे । वे ही उसकी आगामी विजयों के बड़े स्तम्भ बने। भारत में मुग़लों के साम्राज्य स्थापना की यही एक कुंजी रही।

कालिंजर १५६९ ई०––चित्तौड़ और रणथम्भौर की विजयों ने अकबर की प्रतिष्ठा बढ़ा दी। अन्य राजे-महाराजे उससे भय खाने लगे। इससे अकबर की विजय लालसा और बढ़ गयी। अब की बार उसने कालिंजर को विजय करने की योजना बनाई। कालिंजर का दुर्ग अभेद्य समझा जाता था। शेरशाह ने इसे लेना चाहा था और एक वर्ष तक वह इसे घेरे रहा था, पर अन्त में अपने ही प्राण खो बैठा । इस समय इस दुर्ग पर रीवाँ के राजा रामचन्द्र का अधिकार था। वह बहुत ही अनुभवी शासक था। उसने चित्तौड़ और रणथम्भौर के युद्ध बड़ी सतर्कता से देखे थे । साथ ही उसने यह दुर्ग एक बड़ी कीमत देकर बिजली खाँ से खरीदा था । सन् १५६९ ई० में मजनू खां के नेतृत्व में मुग़ल सेना ने इस दुर्ग को जीतने के लिए प्रस्थान किया । राजा रामचन्द्र ने इसी में अपना भला समझा कि वह युद्ध न करे, अतः उसने दुर्ग की तालियाँ अकबर के पास भेज दीं और कहा कि "आप की चित्तौड़ विजय से मुझे बड़ी खुशी हुई है, मैं आपको बधाई देता हूँ" इस प्रकार कालिंजर जैसे दुर्ग पर बात की बात में अकबर का अधिकार हो गया । काश देश के ये राजे कभी राष्ट्रीय

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

भावना रख कर एक होते, और राणा संग्राम सिंह तथा महाराणा का उदाहरण अपने समक्ष रखते ।

(६) मारवाड़ १५७० ई०—कालिंजर की विजय ने तो अकबर का काम ही हल्का कर दिया । अकबर अब साम्राज्य वाद की भावना से भर गया । उसका उत्साह दिन दूना होने लगा । उधर राजपूत भयभीत होगये । उन्होंने आत्म-समर्पण प्रारम्भ कर दिये । सन् १५७० ई० में अकबर नगौर की ओर गया, वहाँ उसे बीकानेर और जोधपुर के शासकों की अधीनता बिना यत्न के ही प्राप्त हो गयी । इस समय बीकानेर का शासक कल्याणमल था और जोधपुर का शासक प्रसिद्ध राजा मालदेव का पुत्र चन्द्रसेन था । इसमें बीकानेर की मैत्री तो कुछ दिन टिकी । कल्याणमल की कन्या से अकबर ने विवाह किया । पर चन्द्र-सेन यह अपमान बहुत दिन न सह सका । चन्द्रसेन ने अकबर की प्रभुता को ठुकरा दिया और स्वयं सिवाना पहाड़ियों की ओर चला गया । फलतः जोधपुर पर आक्रमण किया गया और उसको अधीन कर कल्याणमल के पुत्र रायसिह को दे दिया गया । यह सब देख कर जैसलमेर के राजा हरराय ने आत्म समर्पण कर दिया । जैसलमेर की राजकुमारी भी अकबर के हरम में पहुँचा दी गयी । इस प्रकार मेवाड़ को छोड़कर सभी राजपूत अकबर के चंगुल में आ गये जिससे उसे समस्त उत्तरी भारत का राज्य निष्कंटक दिखाई देने लगा ।

(७) गुजरात १५७३ ई०—इन विजयों ने, जैसा सोचा गया था, अकबर को इस स्थिति में बिठा दिया कि वह समुद्र तक धावा करे । अब उसे बीच में रोकने वाली कोई शक्ति न थी । एक ओर बिहार था । तो दूसरी ओर गुजरात, दोनों ही राज्य भरे पूरे थे । अकबर की दृष्टि पहले गुजरात की ओर गयी । गुजरात पर पहले कुछ समय तक हुमायूँ का अधिकार भी रह चुका था । इसकी सब से बड़ी प्रमुखता थी कि यह व्यापार का केन्द्र था । उस समय यही व्यापार का सर्वोत्तम मार्ग था जहाँ से भारत का बाहरी देशों से भी व्यापार होता था ।

इस समय गुजरात में मुजफ्फर शाह तृतीय का शासन था । वस्तुतः उसका शासन लोकप्रिय न था । उसके एक अमीर इतमाद खां ने ही अकबर को बुलाया था । अतः अकबर इस अवसर को कैसे हाथ से जाने देता । वह नवम्बर सन् १५७२ ई० में अहमदाबाद पहुँच गया । मुजफ्फर शाह इतना भयभीत हुआ कि उसने शीघ्र ही आत्म-समर्पण कर दिया । अकबर ने उस को अपने अधीन किया साथ ही अन्य अमीरों को दबा दिया । बात यह थी, कि मुजफ्फर तो नाम मात्र का बादशाह था, असली शक्ति उसके अमीरों की थी । सारे राज्य में अव्यवस्था थी । कुछ मिर्ज़ा वंश के लोग थे जो अकबर से सम्बन्धित थे, ये

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

स्वयं आशान्ति की जड़ थे । मुजफ्फर इन पर स्वयं प्रभुत्व न रख पा रहा था। अतः मुजफ्फर को अकबर ने पेंशन दे दी । साथ ही अहमदाबाद का नगर उसने अज़ीज कोका को सौंप दिया । उसके अनन्तर मुग़लों ने गुजराती अमीरों को लूटना प्रारंभ किया । इस पर गुजरातियों को बहुत बुरा लगा, पर वे कर ही क्या सकते थे । अहमदाबाद से अकबर कम्बे तक गया । वहाँ से वह मिर्ज़ाओं को दबा देना चाहता था । मिर्ज़ाओं को उसने सारनाल पर जा कर घेर लिया, पर वह उनको पा न सका । वे बच कर निकल गये । एक बार तो अकबर स्वयं एक स्थल पर फँस गया पर झाड़ी में कूद कर बचा । इसके बाद वह सूरत की ओर गया । (१५७३ ई०) सूरत का दुर्ग भी बहुत सबल था, क्योंकि वह पुर्तगालियों से रक्षा करने के लिए बनाया गया था । अकबर ने उसका घेरा डाला और लग-भग डेढ़ माह में उसे भी जीत लिया । इधर मिर्ज़ाओं ने पुनः सर उठाया तो अज़ीज कोका ने दबा दिया । इस समय अजीज कोका के सबसे बड़े सहायक मालवा व चन्देरी के शासक थे । इस प्रकार उधर के प्रदेश की विजय कर अकबर सीकरी को लौट आया ।

अकबर सीकरी में मुश्किल से कुछ माह बिता पाया था कि उसने सुना कि गुजरात में पुनः विद्रोह उठ खड़ा हुआ । वह तुरत वहाँ से चल दिया और केवल ११ दिन में वह अहमदाबाद पहुँच गया । कुछ ही समय में उसने जाकर हुसेन मिर्ज़ा को घेर लिया । वह इसका स्वप्न भी न देख सकता था । उसने लड़ने की कोशिश की पर वह घोड़े समेत गिर गया, और बन्दी हुआ तथा फांसी पर चढ़ा दिया गया । उसकी हार सुन कर इख्त्यारुलमुल्क सामने आया, पर मुग़लों ने उसे भी पीछे हटा दिया । इख्त्यारुलमुल्क की मृत्यु ही उसे वहाँ ले आयी थी । वह घोड़े से गिरा नहीं कि उसका सर उतार लिया गया । इस प्रकार अकबर ने बड़ी वीरता का परिचय दिया, साथ ही उसने तुरत बुद्धि से काम लिया । गुजरात का राज्य हमेशा के लिए मुग़ल साम्राज्य का एक अंग बन गया । तीन महीने में उसने इस अभियान को समाप्त कर लिया और लौट कर सीकरी में पुनः आराम किया । **"गुजरात की विजय ने अकबर के इतिहास में एक नये अध्याय का सृजन किया था ।"***

बिहार व बंगाल (१५७४–७६ ई०)–गुजरात विजय के पश्चात् अकबर ने पूर्वी सीमा ठीक करनी चाही । हुमायूँ के समय बिहार और बंगाल पर मुग़लों का अधिकार रहा था, पर नाममात्र का । इन प्रदेशों में अफ़ग़ानों की शक्ति प्रबल रही । अकबर ने अफ़ग़ान शक्ति को नष्ट भी किया था, पर अभी

---

* "The conguest of Gujrat marks an important epoch in Akbar's history." *Dr. Smith.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

वह समूल नष्ट न हो सकी थी। इस समय बंगाल में दाऊदखाँ अफ़ग़ान शासक था। वह सुलेमान का पुत्र था। सुलेमान ने बंगाल में १५६४ ई० में एक नये राजवंश की स्थापना की थी। सुलेमान बड़ा चतुर था, उसने अकबर से मैत्री कर रखी थी (१५६८ ई० से)। उसके पश्चात् सन् १५७२ में दाऊद बादशाह हुआ। दाऊद को बंगाल के धन जन का भारी सहारा था। वह अपनी शान में किसी को कुछ न गिनता था। पहले अकबर ने उससे कुछ न कहा पर जब उसने जननियाँ का दुर्ग ले लिया, तो अकबर को सहन न हुआ। अतः पहले अकबर ने जौनपुर के गवर्नर को उसे ठीक करने भेजा, चूंकि इस समय वह स्वयं गुजरात में उलझा था। जब जौनपुर का गवर्नर उसे (दाउद को) रास्ते पर न ला सका तो अकबर ने टोडरमल को भेजा। सन् १५७४ ई० में वर्षा ऋतु में अकबर स्वयं गंगा के रास्ते नावों द्वारा चल पड़ा। उसकी सेना स्थल मार्ग से जा चुकी थी। वह गोमती तथा गंगा के संगम पर अपनी फौज से जा मिला। शीघ्र ही वह पटना तक पहुँचा (अगस्त १५७४)। यहाँ पहुँच कर उसे ज्ञात हुआ कि किले की रसद इत्यादि का प्रबन्ध तो हाजीपुर से होता है। अतः अकबर ने सबसे पहले हाजीपुर लेने के लिए एक टुकड़ी भेज दी और इधर दाऊद को लिखा ; जैसे चाहे सुलझ ले। चाहे अकेले अकेले, चाहे सेना से, चाहे एक एक वीर से, चाहे सुलह करके, चाहे जिस अस्त्र से। इसका उत्तर भी न आया था कि सूचना मिली कि उसकी सेना ने हाजीपुर ले लिया। अकबर ने दाऊद को और अधिक आतंकित करने के लिए हाजीपुर के प्रबन्धक फतह खां का सर कटवा कर दाउद के पास भेज दिया। दाऊद के समीप २०००० अश्वारोही, अनेक हाथी और तोपें थीं। पर हाजीपुर का समाचार सुनकर वह घबरा गया, उसे कुछ न करते बना। अतः उसने वर्षा की अँधेरी रात में पीछे के द्वार से बंगाल का रास्ता लिया। गूजर खां भी उसी के पीछे पीछे चल दिया। जब अकबर को यह ज्ञात हुआ, उसने शत्रु का पीछा करना चाहा। पर मुनीम खां की सलाह से रुक गया, क्योंकि मार्ग अज्ञात था। वर्षा का समय था, नदी नाले सभी भरे थे। दूसरे दिन उसने पटना में प्रवेश किया। इसके अनन्तर वह पुनः पूर्व की ओर बढ़ा, तथा ६० मील तक चलता गया। फिर भी दाऊद उसकी दृष्टि में न आया।

अतः मुनीम खां को बंगाल का भार सौंप कर अकबर लौट आया। मुनीम खां ने आगे बढ़कर तेलियागढ़ी पर अधिकार किया और बात की बात में टाँडा ले लिया। टाँडा ही उस समय बंगाल की राजधानी थी। यहाँ से मुग़ल सेना को हर कोने में दाऊद का पीछा करने भेजा गया। इन टुकड़ियों ने बंगाल को तो अधीन कर लिया पर दाऊद उनके भी हाथ न आया। वह

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उन्हें धोखा देकर उड़ीसा की ओर चला गया। इस पर मुनीम खां का साहस न हुआ कि और आगे बढ़े। पर टोडरमल न माना और उसने दाऊद को तुकारोई पर जाकर घेर लिया। भीषण संघर्ष के पश्चात् (१५७५ ई०) मुग़लों की विजय हुई। दाऊद ने सन्धि करनी चाही, जिसे टोडरमल ने स्वीकार न करना चाहा, पर मुनीम खां ने उसे मान लिया। दैवयोग से अक्तूबर १५५७ ई० में मुनीम खां की मृत्यु हो गयी। अतः दाऊद कब चूकने वाला था। उसने पुनः विद्रोह का झंडा खड़ा किया इधर मुगलों का कोई प्रमुख नेता न था जो उन्हें परस्पर के कलह से बचाता। अतः दाऊद ने मुग़लों को एक बार पुनः मार भगाया। यह देखकर अकबर ने हुसेनकुली खां तथा मुजफ्फर खां को सचेत किया। उन्होंने राजमहल के युद्ध में दाऊद को बुरी तरह हराया, उसे बन्दी बनाया। खान-ए-जहाँ ने दाऊद की मनोहर मूर्ति को देखकर उसे मुक्त करना चाहा, पर अमीरों ने विवश किया और उसका सर उतार कर अकबर के समीप भेज दिया। इस प्रकार बंगाल तक का प्रदेश अकबर के अधीन हो गया। साथ ही अफगान शक्ति सदा के लिए भारत से विलीन हो गयी।

मेवाड़ का राणा

प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप के पौरुष, उनके साहस तथा उनके संकट-मय जीवन और कष्ट कंटकों में उलझे परिवार के सम्मुख उनके अटल व्रत का कौन देशभक्त पुजारी न होगा। उस राजपूत शिरमौर ने अपनी कामना तथा अपने उच्च आदर्श से भारत का मस्तक ऊँचा किया है। उसके वंशज, मित्र और निकटवर्ती सभी जहाँ एक ओर गिर चुके थे, वहाँ वह अकेला स्तम्भ रूप झंझावात में प्रकाश प्रदान करता रहा। काश वह वीर राजनीतिज्ञ भी उतना ही बड़ा होता, तो सम्भव है वह इतिहास को ही बदल देता। महाराणा को सन् १५७२ ई० में अपने छिन्न-भिन्न राज्य का उत्तराधिकार मिला था। उसके बल पर वह कर ही क्या सकता था। टॉड महोदय ने उसके प्रति लिखा है,–

"महाराणा में अविचल वीरता, अदम्य साहस, प्रतिष्ठा को समुज्ज्वल करने वाली निष्ठा और ऐसा अध्यवसाय था, जो दूसरे राष्ट्रों को ज्ञात ही नहीं पर दूसरी ओर महत्वाकांक्षा, अतिशय बुद्धि, अपार साधन, धार्मिक उत्साह थे, जो उसके अजेय मस्तिष्क को कभी न जीत सके।"†

---

† "Undaunted heroism, inflexible fortitude that sincerity which keeps honour bright, perseverance with fidelity such as no nation can boast of were the materials opposed to soaring ambition, commanding talents,

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अबुलफजल के अनुसार तो महाराणा दम्भी, धोखेबाज और व्यर्थ की बात पर भरोसा करने वाला था, पर उससे और क्या आशा की जा सकती थी, जिसके स्वामी से कोई आजन्म युद्ध करे और मरते दम तक यही सोचता रहे कि उसकी सन्तति उसके पश्चात् कैसे उस युद्ध को कायम रखेगी। जो हो, राणा से अकबर को सुलझना था। उसको वह काँटे की भाँति खटकता था। हर यत्न से उसे निकालना था। इसके प्रति अकबर ने अपनी नीति-निपुणता से लेकर वीरता और अपने सहयोगियों के सहारे सभी का आश्रय लिया पर अपना लक्ष्य न पा सका। वस्तुतः महाराणा का दोष क्या था। डा० स्मिथ के शब्दों में उनका देशभक्त होना ही तो सबसे बड़ा दोष था, जिसके लिए वह अपने समस्त जीवन जंगलों की खाक छानते रहे।

उसके विषय में डा० आशीर्वादीलाल जी का कथन है कि **"महाराणा ने अपने सीमित साधनों के बल पर, अपने सैनिक असन्तोष तथा भाई शक्तिसिंह के विरोधी होने पर भी उस समय पृथ्वी के पर्दे पर सबसे अधिक समृद्धिशाली सम्राट से निःसंकोच लोहा लिया।"**†

जहाँ तक महाराणा पर अकबर के आक्रमण का सम्बन्ध है, डा० शर्मा का कथन है **"अकबर एक विशुद्ध साम्राज्यवादी था, जब कि राणा मेवाड़ को स्वतन्त्र रखना चाहता था।"** इस प्रकार अकबर की इच्छापूर्ति में राणा बाधक था। राणा को यह सह्य न था कि वह मुग़लों का एक जागीरदार बने। फिर उनका जागीरदार बन कर उसे उन्हीं के अधीन रहना था, उनसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने थे। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि अब राणा से अकबर को न लड़ना था, उसे तो संकेत भर करना था। प्रताप के ही भाई बन्धुओं को प्रताप से युद्ध करना था। अम्बर, बीकानेर और मारवाड़ के राजपूतों को उसके विरुद्ध युद्ध करना था। यद्यपि इस बात को जानकर प्रताप का मन और भी अटल हो गया, **उसने अपनी माँ के दूध को सफल बनाने की कठिन प्रतिज्ञा की थी,**‡ और उसे भलीभाँति निबाहा भी।

---

unlimited means, and the fervour of religious zeal, all however insufficient to contend with one unconquerable mind."

Tod.

† "Undaunted by his slender resources, defection in his ranks and the hostility of his own brother Shakti Singh he resolved to fight the aggression of one who was unmeasurably richest monarch on the face of earth"

Dr. A. L. Srivastava.

‡ "To make his mother's milk resplendent."

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस स्थल पर यह स्पष्ट कर देना अधिक उत्तम होगा कि शेष राजपूत वंश भी निर्वीर न हो गये थे। वे भी राणा के कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ सकते थे, पर उन्हें दो बातें रोके थीं। एक तो उन्हें अकबर ने सुझा रखा था कि वह उनके धर्म पर आघात नहीं करना चाहता। दूसरे साम्राज्य के अन्तर्गत बड़े-बड़े पदों के द्वार उनके लिए खुले थे। फिर उनको लड़ते-लड़ते ५०० वर्ष हो चुके थे। उनका अनुभव उन्हें यह सीख दे रहा था कि वे युद्ध न करें तो सुख और शान्ति पा सकते हैं। अकबर उनसे चार बातें चाहता था। एक तो वह उनसे कर रूप में कुछ धन चाहता था, दूसरे उनकी बाह्य नीति अपने अधीन चाहता था। तीसरे साम्राज्य की रक्षा के लिए आवश्यक सैनिकों की एक निश्चित संख्या (quota) चाहता था; चौथे वे साम्राज्य के अंग बन जायँ। अतः इस समय वस्तुस्थिति और क्रियात्मकता उन राजपूतों की मनोगत बातों का समर्थन कर रही थी, जबकि भावना और आदर्श राणा के साथ थे। जो हो राणा झुकने वाला न था, चाहे टूट भले ही जाय।

इसी बीच एक विचित्र घटना घट गयी। एक बार सन् १५७६ ई० में मानसिंह गुजरात से लौट रहा था, उसने चाहा कि राणा से भेंट करे। फलतः उदयसागर के किनारे प्रीतिभोज का आयोजन किया गया, पर महाराणा उसमें न आये। यह देखकर मानसिंह ने कहा, कि यदि राणा मेरे साथ न खायेंगे तो कौन खायेगा। कहा जाता है कि अमरसिंह ने उत्तर दिया कि पिता जी के सर में पीड़ा है, अतः उपस्थित न हो सकेंगे। इस पर मानसिंह ने कहा कि मैं शीघ्र ही उनके सर दर्द की दवा लाऊँगा। उधर किसी ने इसका भी उत्तर दे दिया कि अपने साथ अपने फूफा (अकबर) को भी लेते आना। दूसरे सूत्रों का कथन है कि राणा ने स्पष्ट कहला दिया था कि जो राजपूत अपनी बहिन मुसलमान को दे आया है, उसके साथ मैं भोजन नहीं कर सकूँगा। इस बात पर मानसिंह ने बड़ी मर्म भरी बात कही थी। **"तुम्हारी प्रतिष्ठा बचाने के लिए ही मैंने अपनी प्रतिष्ठा बेच दी है और अपनी बहिन बेटियाँ तुर्कों को दे दी हैं, किन्तु यदि तुम्हारा ऐसा ही विचार है, तो संकट में भी अपनी बात पर अड़े रहना, क्योंकि तुमको इस देश से सहारा न मिलेगा।"** कहते हैं जब राजा मानसिंह वहाँ से चल दिये तो राणा बाहर आये। इस पर मानसिंह ने कहा, कि मैंने तुम्हारा घमंड नीचा न किया तो मेरा नाम मानसिंह नहीं। राणा के पास इसका सीधा सा उत्तर था, कि मैं आपसे सब तरह से सुलझने को तैयार हूँ। अकबर ने जब यह समाचार सुना तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने तुरन्त एक विशाल-वाहिनी मानसिंह तथा आसफ खाँ की अध्यक्षता में भेज दी। उधर राणा भी अपने गिने-चुने राजपूत वीरों को लेकर आगे बढ़ा। दोनों दलों का हल्दी-

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

घाटी के स्थल पर सामना हुआ। राणा की सेना में कुल ३ हज़ार वीर थे, घनघोर युद्ध हुआ। प्रातः से लेकर दोपहर तक द्वन्द्व युद्ध होते रहे, आखिर एक तीर तथा भाले के घावों ने राणा को युद्धभूमि से हटने को मजबूर किया। बदाऊनी ने इस युद्ध का आँखों देखा चित्रण किया है। वह लिखता है **"राणा केवल तीन सौ अश्वारोही वीर लेकर पहाड़ी से निकला, पहले ही बार में वह बुरी तरह साम्राज्य की सेना में मिल गया। इसमें मुगलों की पूर्ण पराजय हुई। मुग़लों के बायें कक्ष में जो राजपूत थे वे भी भेड़ों की तरह भागे और दाहिने कक्ष की ओर शरण के लिए गये। इस विषम स्थिति को देखकर प्रसिद्ध इतिहासकार ने आसफ खाँ से पूछा कि वे शत्रु तथा मित्र राजपूतों में विभेद कैसे कर रहे हैं, तो सेनापति ने कहा कि किधर भी मारे जाँय, इस्लाम का हर तरह से भला है।"‡**

मुग़लों ने राणा का पीछा न किया बल्कि दूसरे दिन गोगूंदे के किले की ओर गये, जहाँ जाकर उन्होंने सभी रक्षकों का काम तमाम किया और दुर्ग में बड़े उल्लास के साथ प्रवेश किया। इसके हर्ष का समाचार भी बदाऊनी ही फतेहपुर में अकबर के समीप ले गया था। राणा की आशाओं पर तुषारपात हो गया, पर उसके लिए वही केवल उत्तरदायी न था। उसकी हार के कई कारण थे।

यह तो पहले से ही सिद्ध है कि अकबर के साधनों के सामने उसके साधन किसी काम के न थे। कहाँ वह विशालवाहिनी, जिसमें उसी के बन्धु-बान्धव सेनापतित्व कर रहे हों और कहाँ उसके साथ मुट्ठी भर राजपूत? पर इसके अतिरिक्त भी कई बातें ऐसी थीं जो उसकी पराजय का कारण बनीं। यथा--जिस पद्धति से राजपूत युद्ध करते आ रहे थे, वह अब पुरानी हो चुकी

‡ "The Rana came out of the mountains with 300 horses and in the first attack the vanguard of the imperialist troops became hopelessly mixed together and sustained a complete defeat. The Rajputs on the Mughal left ran away like a flock of sheep and fled for protection towards the right wing. It was on this occasion, that the historian asked Asaf Khan how they were to distinguish between the hostile and friendly Rajputs in such a confused mass whereupon the general replied on whichever side they may be killed, it will be a gain to Islam."

Muslim Rule P. 271
Dr. Ishwari Prasad.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

थी। हल्दीघाटी जैसे स्थल के लिए तो यह आवश्यक था कि किसी दर्रे पर खड़े होकर शत्रु को मजबूर करते कि वहीं से निकले और एक को भी जीवित न जाने देते। दूसरे जिस समय मुगल भाग रहे थे, राणा को अपनी सारी शक्ति लेकर मैदान में न उतरना था। तीसरे राणा अपने दल में मुगलों की भाँति संयम और अनुशासन न रख सका। बदाऊनी के अनुसार तो अकबर मानसिंह से इसी बात पर नाराज हुआ कि उसने राणा का पीछा करके उसे पकड़ा क्यों नहीं, साथ ही मुग़लों को उसके यहाँ लूट-मार क्यों न मचाने दी। निज़ामुद्दीन ने भी इसी का समर्थन किया है।

इस पर भी प्रताप कभी साहस छोड़ने वाला न था। उसने अपने युद्धों को जारी रक्खा, जिसके फलस्वरूप चित्तौड़, अजमेर और मण्डलगढ़ को छोड़कर उसने समस्त मेवाड़ पर पुनः अधिकार कर लिया था।

राणा का चरित्र—सन् १५९७ ई० में राणा की मृत्यु हो गयी, पर जब वह मरने के निकट थे तो उनको घोर संकट हुआ। वह बहुत बेचैन थे। उनके सरदारों ने राणा से पूछा, कि आपको क्या कष्ट है। तो उन्होंने कहा मुझे अपने पुत्र पर भरोसा नहीं है, कि वह इतने संकट सहन कर सकेगा। अतः **"मेरी आत्मा केवल इस सांत्वना देने वाली प्रतिज्ञा के लिए रुकी है, कि मेरा देश तुर्कों को न दिया जायगा।"**† इस पर अमरसिंह और उसके सरदारों ने वचन दिया कि ऐसा न होगा, तब उन्होंने अन्तिम श्वास ली।

इस बात से विदित होता है कि राणा के मन में अपने देश को स्वतन्त्र देखने के कितने प्रबल विचार थे। वह उस युग में कितना उच्च आदर्श स्थापित कर गये। थोड़े से साधनों के आधार पर वह इतने बड़े शत्रु से २५ वर्ष तक लड़ते रहे। इससे अधिक गौरव की बात और क्या हो सकती है। कुछ इतिहासकारों का कथन है कि अकबर ने उनकी वीरता को देखकर ही उसे जीवन भर नहीं छेड़ा। पर डा० आशीर्वादीलाल के अनुसार **"यह भ्रम है कि अकबर ने राणा प्रताप की वीरता से प्रभावित होकर उसे शेष जीवन में तंग नहीं किया, बल्कि सत्य तो यह है कि अकबर ने उसे दबाने के यत्नों में कोई कमी नहीं की।"**‡

† "For some consolatory pledge that his country should not be abandoned to Turks." *Rana Pratap.*

‡ "A Rajput whose memory is even now idealised by every Sisodia and will continue to do so till renewed oppression shall extinguish the remaining sparks of patriotic feeling. May that Day never come" *Todd.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

टॉड के शब्दों में **"राणा वह राजपूत वीर था जिसकी स्मृति आज भी हर सीसोदिया को है और उसे वह तब तक रखेगा जब तक कि कोई नया दमन का विनाशक तत्व देश प्रेम का उन बची-खुची चिनगारियों को बुझा न देगा, आशा है वह दिन कभी न आयेगा।"***

अरावली की ऐसी कोई पहाड़ी न बची थी, जिसको राणा के किसी कृत्य ने पवित्र न किया हो। यदा-कदा यह भूमि विजय से पूत की गयी, पर कभी-कभी विजय से भी पराजय अधिक यशस्विनी थी। हल्दीघाटी मेवाड़ की थर्मापली थी।

एक सेनापति के रूप से डा० शर्मा के अनुसार प्रताप अपने समय में अच्छे सेनापति थे। बस वह एक ही भूल कर गये कि मुग़लों से हल्दीघाटी के स्थल पर गलत उलझ गये अन्यथा उनकी नीति उत्तम थी। जब आवश्यकता पड़ती थी तो वह जंगलों में चले जाते थे। बहुधा शत्रु पर एकाएक आक्रमण कर देते थे, वस्तुतः उनकी अपने को बचाते हुए लड़ने की नीति एक अपने-आप में पद्धति ही बन गयी। पर इससे उसे सफलता न मिली क्योंकि अनेक अन्य कारण उत्तरदायी थे।

कुछ इतिहासकार उनपर इस बात का आरोप लगाते हैं कि उन्होंने जिद्द करके पर्वत से टक्कर ली। जो वह चाहते थे, उसे कर भी न सके। उसी के पुत्र के समय में मेवाड़ पुनः मुग़ल साम्राज्य का अंग बन गया। क्या अच्छा होता कि वह पहले ही दूरदर्शिता से काम लेते और मेवाड़ को ध्वंस से तो बचा लेते। उससे कहीं अधिक हराभरा बना लेते। पर यह थोथा आरोप है। उनके उस त्याग के सामने यह आरोप नहीं टिकता। राणा ने अपनी स्वतंत्रता रख कर कम से कम अपने जीवन काल में स्वतंत्रता-प्रियता का ज्वलंत उदाहरण उपस्थित किया। उन्होंने हिन्दूमात्र का मस्तक ऊँचा किया। उन्होंने अपने धर्म के लिए सब कुछ न्यौछावर कह दिया। डा० त्रिपाठी के अनुसार—

"राणा की वीरता, उनके उत्कृष्ट स्वातन्त्र्य तथा उसके लिए प्रेम एवं उनके बलिदान और त्याग ने भारत के अनेक लेखकों को उनके संघर्ष के विषय में ऐसी बातें लिखने को प्रेरित किया है, जिनका ऐतिहासिकता से बहुत

* "It is erroneously supposed that Akbar moved by sentiments of chivalrous regards for his great adversary, left him unmolested for the rest of his life. The truth, however is that Akber did not relax his attempt to subdue the Rana."

Dr. A. L. Srivastava.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सम्बन्ध ही नहीं।"† वस्तुतः सच्चा और महान् त्याग ऐसी ही चीज है जो हर एक की सहानुभूति आर्कषित कर लेता है। न जाने कितने कथान कों और कविताओं के वे इसीलिए नायक बन गये हैं। उसकी लड़ाई जैसा आम विश्वास है कि विशुद्ध इस्लाम और हिन्दुत्व की लड़ाई थी, ऐसी बात नहीं, क्योंकि इस्लाम के साथ मानसिंह आदि हिन्दू थे, तो राणा के साथ हकीमखां सूर थे। यह तो मेवाड़ तथा दिल्ली साम्राज्य की लड़ाई थी। यह उस साम्राज्यवादिता से संघर्ष था जिससे प्रेरित होकर अकबर मालवा के बाज़बहादुर, गुजरात के मुजफ्फर शाह और बंगाल के दाऊद से लड़ा था। अगर कहीं मेवाड़ मुसलमान शासक के अधीन होता तो भी अकबर का उतना ही बड़ा लक्ष्य होता, जितना राणा के होने पर हुआ। राणा में अपनी कामना के प्रति सच्चाई थी। वे हृदय से देश के लिए मर मिटने के लिए तैयार थे। उनमें दैवी गुण थे, वे स्वयं त्यागी थे, अतः दूसरे के त्याग के लिए भी उतना ही स्थान रखते थे। उनमें भामाशा जैसे व्यक्ति के लिए अपार श्रद्धा थी। उनमें वह मनमोहक आकर्षण था कि मेवाड़ का बच्चा-बच्चा उनके लिए प्राण देता था।

शासक के रूप से राणा किसी से पीछे न थे। उन्होंने खोयें हुए राज्य को हस्तगत किया, उसका सुन्दर प्रबन्ध किया, दुर्गों की मरम्मत करायी। उनका विश्वास था कि राजा प्रजा के लिए पिता तुल्य होता है। अतः अपनी स्थिति से विवश होते हुए भी उन्होंने कभी किसी को सताया नहीं। एक ओर उनमें सुभाष की संगठन शक्ति थी, तो दूसरी ओर शिवाजी की लड़ने की नीति। पर शिवाजी की भाँति किसी को लूटने का उन्होंने प्रयास नहीं किया। वह ऐसे प्रदेश के स्वामी थे, जो अधिक धन धान्य प्रदान न कर सका, अन्यथा स्थिति में महान् परिवर्तन होता।

अंत में डा० स्मिथ के शब्दों में कहना होगा :—

"अकबर के इतिहासकारों के मुख से उन वीर शत्रुओं के प्रति जिनके कष्ट कंटकों के कारण वह विजयी हुआ था, कदाचित् ही कोई शब्द निकला हो, क्योंकि उन्हें अकबर की प्रखर बुद्धि और उसके अपार साधनों ने जिनकी बदौलत वह अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति कर सका, दबा रखा था। पर वे

---

† "Rana Pratap's heroism, sturdy independence, love for freedom, readiness to suffer and sacrifice have inspired a large number of modern writers to read in his struggle facts not quite justified by sober history."
Dr. Tripathi

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पुरुष तथा महिलाएँ भी स्मृति के पात्र हैं और कहना होगा कि विजयी से विजित कहीं बड़े थे।"‡

राजपूत नीति

अकबर अपनी राजपूत नीति के लिए प्रसिद्ध है। इस दिशा में उसने एक नये अध्याय का सृजन किया था। राजपूत युद्ध क्षेत्र में हिन्दुओं के अगुआ थे। वे अपनी वीरता के लिए सुप्रसिद्ध थे। फिर अकबर जैसा सम्राट जो हिन्दुओं के कंधों पर होकर निशाना चलाना चाहता था, क्यों न उनके सहयोग को प्राप्त करता। अनेक राजपूतों को उसने अपने यहाँ उच्च पद प्रदान किये, मन्सबदार बनाया, उसने जजिया हटाया, तीर्थयात्रा का कर मुक्त किया, हर रूप से ऐसा आचरण किया कि वे अशान्त न हों बल्कि वे यह अनुभव करें कि अकबर ही उनका संरक्षक है। अपनी इसी नीति के फलस्वरूप वह इतने बड़े साम्राज्य को सम्हाल सका। डा० आशीर्वादीलाल का कथन है--

राजपूत नीति
१. सुनिश्चित तथा नूतन मार्ग
२. अपनाने के कारण
३. इसका स्वरूप
४. परिणाम

"राजपूतों के प्रति अकबर का व्यवहार किसी अविचारशील भावना का परिणाम नहीं था और न राजपूतों की धीरता, वीरता, स्वदेश भक्ति और उदारता के प्रति सम्मान का ही परिणाम था। उसका यह व्यवहार तो एक सुनिर्धारित नीति का परिणाम था और यह नीति स्वलाभ, योग्यता की स्वीकृति तथा न्यायनीति के सिद्धान्तों पर आधारित थी।"

नीति अपनाने के कारण--वस्तुतः अकबर के इस नीति को अपनाने के लिए अनेक बातें उत्तरदायी थीं यथा--

(१) राजपूत सदैव इस्लाम धर्मियों के शत्रु रहे थे, अतः अकबर उनको समूल नष्ट करना चाहता था।

(२) आवश्यकता तथा नीति दोनों ही इस बात का समर्थन करती थीं कि राजपूत ही उसके सहायक स्तम्भ हो सकते थे।

‡"The historians of Akbar, dazzled by the commanding talents and unlimited means which enabled him to gratify his soaring ambition seldom had a word of sympathy to spare for gallant foes, whose misery made his triumph possible. Yet they too, men and women are worthy of remembrance. The vanquished, it may be said, were greater than the victor."

Dr. V. A. Smith.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(३) अकबर के कुछ कुटुम्बी ऐसे थे जो उनके आने से दवे रहेंगे।

(४) अकबर स्वभाव से सहनशील तथा उदार था।

(५) हुमायूँ की विपत्तियों से अकबर ने पाठ पढ़ लिया था।

(६) राजपूत अपने वचन का पक्का होता है और कभी विश्वासघात नहीं करता।

(७) राजपूतों को विजय करने के पश्चात् अन्य हिन्दू अपने आप दुर्बल हो जायेंगे।

(८) पूर्व में अफगानों का बहुत समय तक जोर रहा, पश्चिम में उजवेगों का। उजवेगों और अफगानों का दमन करने में राजपूतों से बड़ी सहायता मिलेगी। विशेष रूप से इस समय अकबर के दरबार में विदेशी प्रभाव अधिक था।

(९) भौगोलिक दृष्टि से भी राजस्थान का महत्त्व बहुत अधिक था।

(१०) बैरम खाँ जैसे स्वामि-भक्ति का विद्रोह उसे सीख दे चुका था। अतः राजपूतों से बिना सुलझे काम बनना कठिन था। इसी का समर्थन महम अनगा के व्यापार से हुआ। उसके बेटे आधम खाँ ने तो अकबर की सरासर अवहेलना की। वह मालवे की लूट का माल ही पचा गया था। कुछ ही समय में उसने अकबर के प्रधान मन्त्री अतगा खाँ की हत्या कर डाली। आसफ खाँ प्रथम और अब्दुला उजवेग के विद्रोह के पश्चात् खान जमा का विद्रोह प्रारम्भ हुआ और खानजमा ने अकबर के सिंहासन तथा जीवन दोनों के लिए ही संकट पैदा कर दिया।

नीति का रूप—इसके अन्तर्गत अकबर को तीन प्रकार के राजपूतों से सामना पड़ा।

(अ) वे जो बिना लड़े उससे आ मिले और जिन्होंने उससे वैवाहिक सम्बन्ध चाहे यथा बिहारीमल, भगवानदास।

(ब) वे जिन्होंने युद्ध किया और जो सम्मान पूर्वक समझौता करके रहे। यथा रणथम्भौर के सुरजनहार।

(स) वे जिन्होंने कभी अधीनता न चाहकर सुख को दुख से बदला पर कलंकी न बने। यथा प्रताप।

अतः अकबर ने इन सबका सहयोग प्राप्त करने के लिए हर यत्न से काम लिया। उसने विचारा कि इनको अफगानों से भिड़ाना सर्वोत्तम होगा। इस नीति को अपनाने के लिए सबसे पहले उसने जयपुर के कछवाहे राजपूत भारमल को तोड़ा। उससे (१५६२ ई०) में वैवाहिक सम्बंध भी स्थापित किया अर्थात् भारमल की पुत्री से विवाह किया, जिसने आगे चलकर जहांगीर को ज़न्म दिया। १५७० ई० में जैसलमेर तथा जोधपुर की राजकुमारियों से विवाह

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

किया । १५८४ ई० में जहाँगीर का विवाह भारमल के पुत्र भगवानदास की पुत्री से हुआ ।

(ब) दूसरे वर्ग के अन्तर्गत १५६२ ई० में मेरठा का पतन हुआ ।

१५६८ ई० में रणथम्भौर } इनका अनुसरण अन्य राजपूतों
१५७० ई० में मारवाड़ } ने भी किया ।

इस सम्बंध में अकबर ने यदाकदा अपनी उदारता का परिचय दिया । बहुत से राजपूतों को सामना करने पर भी उसने क्षमा कर दिया । इन लोगों के साथ भी उसका वही व्यवहार रहा जो बिना युद्ध के आत्मसमर्पण करने वालों के साथ रहा था ।

(स) तीसरे वर्ग में मेवाड़ कुल शिरोमणि राणा प्रताप हैं, जिन्होंने सब कुछ नष्ट होने पर अपनी नीति न बदली और कभी घुटने नहीं टेके ।

इसका परिणाम–वेणीप्रसाद जी ने लिखा है :–

"इससे भारतवर्ष की राजनीति में एक नये युग का आरम्भ हुआ, देश के योग्य सम्राटों की चार पीढ़ियों को मध्य कालीन भारत के सर्वोच्च कोटि के सेनापतियों तथा कूटनीतिज्ञों की सेवाएँ प्राप्त होती रहीं ।" इसका सबसे बड़ा लाभ तो यह था कि अकबर ने राजपूतों के विरुद्ध राजपूतों को ही लड़ाया । चित्तौड़ की विजय वस्तुतः मानसिंह की विजय थी, इससे गैर मुसलमान प्रजा में अकबर के प्रति श्रद्धा भी बढ़ी । इस नीति के ही कारण तमाम नर-संहार बच गया यद्यपि आत्म गौरव खो गया । साथ ही कहना न होगा कि जब तक इस नीति का अनुसरण हुआ, मुगल साम्राज्य की जड़ सुदृढ़ होती गयी । इन सब लाभों के साथ इस नीति में राष्ट्रीयता की दृष्टि से दो बातें और उत्पन्न हुईं, अर्थात् एक ओर अकबर की एक नयी राष्ट्रीयता की सूझ और उसके प्रति प्रयास था । दूसरी ओर भारतीयता की दृष्टि से भारत सदियों के लिए दासता के बन्धनों में मजबूती से जकड़ गया । निःसन्देह अकबर बहुत ही चतुर राजनीतिज्ञ था, जो उस युग में इस नीति को सर्व प्रथम अपना सका । धीरे-धीरे उसके साथ हिन्दुओं का सम्पर्क भी बढ़ गया जो उसके स्वभाव तथा आचरण को बहुत कुछ घुमाव दे सका ।

इससे राजनीतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में बड़ी प्रगति हुई । राजपूतों के सम्पर्क में आने के कारण अकबर का दृष्टिकोण बड़ा व्यापक हो गया । इसी कारण उसने धार्मिक क्षेत्र में भी समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की । इसी आधार पर उसे राष्ट्रीय शासक कहा जाता है । पर कुछ इतिहासकारों ने उसकी कूटनीतिज्ञता, स्वार्थ परता, अनैतिकता तथा किन्हीं अंशों में शक्ति के दुरुपयोग

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

का स्वरूप बताया है । यह विचार निराधार तो नहीं, पर अत्युक्ति मात्र कहा जा सकता है ।

(१०) **काबुल विजय**——भारत के इतिहास में काबुल का महत्त्व बहुत रहा है । इसका सीधा सा कारण यह था कि एक तो वह सीमा पर है, दूसरे उस क्षेत्र में सदा वीर और लड़ाका जातियों का बास रहा । एक जाति यदि भगाई भी गयी, तो दूसरी उससे बढ़कर वीर जाति उसके स्थान पर बस गयी । अधिक वीर इसलिए कि यदि वह कमजोर होती तो विजयी कैसे होती । मध्यकाल के पश्चात् भी इसकी बड़ी प्रमुखता रही और जिसका इस राज्य पर अधिकार रहा, सदा सुख की नींद सोया । उसके राज्य की सीमा सदा सुरक्षित रही । इससे भी बढ़ कर बात यह है कि जो काबुल का अधिकारी रहा, और यदि वह भारतवासी न हुआ, तो भारत को लालच भरी दृष्टि से देखता रहा । अकबर की समझ में इसकी महत्ता आयी । इस समय काबुल में उसका सौतेला भाई मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम शासन कर रहा था । १५८० ई० तक अकबर की धार्मिक नीति के कारण प्रमुख मुसलमान अधिकारी भी उसके विरुद्ध सोचने लगे थे । वे उसे हटाकर उसके स्थान पर मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम को सिंहासन पर बिठाना चाहते थे । यहाँ तक कि जौनपुर के काज़ी मुल्ला मुहम्मद याज़दी ने एक फतवा निकाल दिया था, कि अकबर के विरुद्ध विद्रोह करना धार्मिक कर्त्तव्य है । कुछ तुर्कों ने जो बंगाल में ऊँचे पदों पर थे इस प्रवृत्ति को देख कर मुहम्मद हकीम के नाम खुतबा पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया था । इन्होंने गवर्नर मुजफ्फर खाँ को टाँडा में घेर लिया तथा उसकी सहायतार्थ आयी शाही सेना को भी पराजित किया । अकबर इस सब को देखकर समझ गया कि इस विद्रोह की जड़ काबुल में है अतः उसको ठीक करने के लिए उसने पूरी तैयारी की ।

उधर मिर्ज़ा हकीम ने अपने भारतीय मित्रों से सूचना तथा प्रोत्साहन पाकर अपने सेवक शादमान को आगे भेजा । राजा मानसिंह ने उसे बात की बात में हरा दिया । साथ ही उससे कुछ पत्र प्राप्त कर लिये और अकबर को सौंप दिये । उन्हें देख कर अकबर का माथा ठनका, क्योंकि उनसे उसके विश्वस्त दीवान् शाह मंसूर भी सम्बन्धित था । इन पत्रों का आशय मिर्ज़ा को और प्रोत्साहन देना था । अकबर ने पहले तो बड़े शान्त भाव से पत्र रख लिये । पर जब मिर्ज़ा आक्रमण करके लाहौर तक आया और उसके शिविर से मिर्ज़ा का दीवान उसके दीवान सानी मलिक मंसूर के पास आया, तो अकबर ने मंसूर को बुलाया, और सारी बात पूछी । मंसूर ने बहुत कुछ बहाने बनाये और अपने को निपराध बताना चाहा, पर अकबर ने एक न सुनी और दूसरे दिन उन्हें जन्नत पहुँचा दिया । यह ज्ञात करके मिर्ज़ा को भारत में सफलता की आशा न

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

रही । अतः १५८१ ई० में वह काबुल की ओर लौट गया । अकबर मानसिंह को लेकर उसके पीछे-पीछे गया । मिर्ज़ा काबुल से भी भाग खड़ा हुआ । अकबर ने शान से काबुल में प्रवेश किया । भयभीत होकर मिर्ज़ा ने क्षमा माँगी और अकबर की अधीनता स्वीकार करनी चाही । इस पर अकबर ने मिर्ज़ा की बहिन बख्तुन निशा बेगम को काबुल का गवर्नर नियुक्त कर दिया तथा कुछ ही समय में वह फतेहपुर सीकरी लौट आया ।

(११) **कश्मीर विजय १५८५ ई०**—अकबर से पहले के मुसलमान शासक कश्मीर को अपने अधीन न कर सके थे, क्योंकि यह धुर उत्तर में एक पर्वतीय प्रदेश है । अकबर तो कठिनाइयों से घबराने वाला न था । उसकी साम्राज्य प्रसार लिप्सा में यह एक बड़ा अंश कैसे छोड़ा जा सकता था । अकबर की बड़ी लालसा थी कि कश्मीर पर अधिकार करे । चाहे इसके लिए उसे किसी भी उपाय का आलम्बन करना पड़े ।

इस समय कश्मीर का शासक यूसुफ खाँ था । उसने सन् १५८१ ई० म अपने तीसरे बेटे को और १५८५ ई० में अपने बड़े लड़के को अकबर की सेवा में भेजा था । उस समय अकबर ने उनसे भेंट भी न की थी । थोड़े ही समय में अकबर को एक बहाना मिल गया । उसने यूसुफ शाह पर आरोप लगाया कि तुम हिन्दुओं पर अत्याचार करते हो । ऐसा कह कर उसने एक सेना भगवानदास के साथ सन् १५८५ ई० में भेजी और स्वयं भी पीछे चल दिया । अकबर सीकरी से दिसम्बर १५८५ ई० में चला था और रावलपिंडी तथा अटक होता हुआ कश्मीर तक गया । पहले तो काबाइली लोगों से युद्ध हुआ जिसमें अकबर को कोई सफलता नहीं मिली, बल्कि राजा बीरबल इसी युद्ध में स्वर्ग को चले गये जिस पर सम्राट को बड़ा कष्ट हुआ । दूसरे अभियान में राजा टोडरमल और मानसिंह ने कबाइलियों को घेर लिया और आत्मसमर्पण करने पर विवश किया । इसी समय कासिम खां और राजा भगवानदास कश्मीर पर अधिकार करने की चेष्टा कर रहे थे । १५८६ ई० में शाही सेना ने कश्मीर में प्रवेश किया पर बर्फ तथा वर्षा आदि के कारण बहुत सफलता न मिली । फिर भी यूसुफ खाँ से सन्धि की बात की गयी जो स्वयं डर रहा था । अतः वह अकबर के नाम से खुतबा पढ़ाने को राजी हो गया । अकबर को यह सन्धि पसन्द न आयी और जब यूसुफ खां अपने बेटे याकूब के साथ अकबर से मिलने आया तो उसने क़ैद करने की आज्ञा दी । इसमें याकूब भाग निकला और सम्राट से युद्ध करने की तैयारी करने लगा। पर शाही सेना ने उसका पीछा किया और उसे हरा दिया । आखिर कश्मीर मुग़ल साम्राज्य का अंग बन गया, जो काबुल प्रान्त में रखा गया, और मानसिंह को जिसका शासक बनाया गया ।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

याकूब तथा यूसूफ को बदायूनी के अनुसार बिहार भेज दिया गया, जहाँ कारावास में पड़े पड़े वे सड़ गये। १५८६ में सम्राट काश्मीर यात्रा को गया, और उसने काबुल का शासन भार जैन खां कोका को दे दिया। राजा मानसिंह को बुलाकर बिहार भेज दिया गया। इसी समय कश्मीर का भार मिर्ज़ा यूसुफ खां को सौंप दिया गया। जब सम्राट काबुल में था तो उसे ज्ञात हुआ कि लाहौर में राजा टोडरमल तथा भगवानदास चल बसे। अतः वह तुरत राजधानी को लौट आया।

(१२) **सिन्ध विजय** (१५६१ ई०)–उत्तर भारत में इस समय तक सिन्ध और बिलोचिस्तान ही साम्राज्य के बाहर रह गये थे। भक्खर का प्रान्त १५७४ ई० में अधीन किया जा चुका था। फिर भी सिंध का बहुत बड़ा भाग अभी शेष था। इसकी सबसे बड़ी मुख्यता यह थी कि इससे होकर कन्दहार के लिए मार्ग मिलता था। इसके अतिरिक्त अनेक अमीर सम्राट से मिलने के लिए लाहौर आया करते थे, पर अभी तक थट्टा का शासक जानीबेग न आया था, यद्यपि पत्र आदि से वह अपनी श्रद्धा प्रकट कर चुका था। १५६० में सम्राट ने बैरम के पुत्र अब्दुल रहीम खानखाना को मुलतान का शासक नियुक्त किया और उससे सिन्ध पर अधिकार करने को कहा। आखिर मिर्ज़ा पर आक्रमण किया गया, उसे दोबार युद्धों में हराया गया जिसके अनन्तर उसने थट्टा तथा सेहवान दोनों दुर्ग सौंप दिये। ज़ानीबेग को दरबार भेज दिया गया, जहाँ उसके साथ सद्व्यवहार किया गया। आखिर उसका राज्य उसी को दे दिया गया, पर उसे ५००० के मंसब के रूप से रहना पड़ा। वह दीनइलाही का अनुगामी भी बन गया था।

(१३) **उड़ीसा विजय** (१५६२ ई०)—१५६० ई० में बिहार के शासक राजा मानसिंह ने उड़ीसा पर आक्रमण किया क्योंकि बिहार और बंगाल लिये जाने के पश्चात् अफगान अपनी शक्ति का संचय उड़ीसा में कर रहे थे। इस समय उड़ीसा पर कुतुलू खां का आधिपत्य था। कुतुला खां का एकाएक देहान्त हो गया, पर उसके पुत्र निसार खां ने शाही सेना का सामना किया, किन्तु वह शाही सेना के समक्ष कब टिक सकता था। अतः आत्मसमर्पण करने पर विवश हुआ। इसके पश्चात् उसीको उड़ीसा का गवर्नर नियुक्त कर दिया गया। दो वर्ष के अनन्तर उसने पुनः विद्रोह का झंडा खड़ा किया तथा पुरी और जगन्नाथ को मुग़लों के अधिकार से ले लिया। इस पर मानसिंह ने पुनः उस पर १५६२ ई० में आक्रमण किया और शीघ्र ही इसे पराजित कर दिया। इस प्रकार उड़ीसा का प्रान्त भी मुग़ल साम्राज्य का अंग बन गया।

(१४) **बलूचिस्तान** (१५६५ ई०)––इसके अनन्तर १५६५ ई० में अकबर ने मीर मासूम की अधीनता में बिलोचिस्तान विजय के लिए एक सेना भेजी।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस समय वहाँ अफगानों का आधिपत्य था, जो अभी तक मुग़लों के दायरे के बाहर थे। मीर मासूम ने क्वेटा के उत्तर पूर्व में सीवी के दुर्ग पर आक्रमण किया, तथा परनी अफग़ानों को पराजित किया। इस पराजय से बलूचिस्तान तथा मकरान का प्रदेश मुग़लों के हाथ आ गया।

(१५) **कन्धार विजय (१५९२ई०)**—उत्तर पश्चिम के प्रान्तों में सबसे अधिक महत्त्व काबुल और कन्धार का है। काबुल के बाद कन्धार की बारी आयी। कन्धार पर फारस के शाह का अधिकार रहता था। पर कभी कभी वह काबुल के अधिकार में रहा। वस्तुत: कन्धार पर दोनों का ही दाँत रहता था। फारस के शाह ने हुमायूँ को सहायता देते समय यह वचन भी ले लिया था कि वह काबुल को लेने के पश्चात् कन्धार को लौटा देगा। पर हुमायूँ ने अपने वचन का ख्याल न रखा। अतः हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् फारस के शाह ने उस पर अपना अधिकार कर लिया था। ऐसी स्थिति में अकबर उसे कब छोड़ने वाला था। इस समय फारस का शाह अब्बास उज़बेगों तथा तुर्कों से बहुत परेशान था। अतः अकबर के लिए सर्वोत्तम अवसर था। उधर कन्धार के फारसी गवर्नर मुजफ्फर हुसेन मिर्ज़ा के सम्बन्ध शाह से अच्छे न रहे थे। अतः अकबर को बिना प्रयास के ही सब कुछ प्राप्त हो गया। मिर्ज़ा मुज़फ्फर हुसेन ने कन्धार का दुर्ग बिना लड़े ही अकबर द्वारा भेजे गये शाह बेग के सुपुर्द कर दिया। फलतः मिर्ज़ा का मुग़ल दरबार में बड़ा स्वागत हुआ। उसे ५००० का मंसब तथा सम्भल की जागीर दे दी गयी।

इस प्रकार अकबर ने लगभग समस्त उत्तर भारत पर अपना अधिकार कर लिया। पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में कन्धार तक उसके साम्राज्य की सीमा पहुँच गयी। इस सीमा को उसके पूर्व अन्य मुसलमान शासक न पहुँच सके थे। इस बीच बस एक मेवाड़ की खाई रह गयी, जिसे वह १५९७ ई० के पूर्व कभी न पाट सका। अतः इसके पश्चात् वह दक्षिण को ओर मुड़ा।

दक्षिण विजय

अकबर अपने समस्त शासन काल में लड़ता ही रहा। सन् १५५६ ई० से १६०१ ई० तक उसने आराम नहीं जाना। पहले उत्तर को जीतकर संगठित किया और जब उसके पैर काफ़ी मज़बूत हो गये, तो दक्षिण की ओर चला। उसने कोई भी कदम गलत उठाना तो जैसे सीखा ही न था।

दक्षिणी भारत की राजनीतिक दशा—दिल्ली सुल्तानों के समय में ही

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

दक्षिण में बहमनी राज्य पाँच भागों ‡ में बट चुका था। इनका परस्पर तो संघर्ष था ही, पर सबसे अधिक विजयनगर से था, जिसमें आये दिन घोर संग्राम हुआ करते थे। तालीकोटा के युद्ध के पश्चात् विजयनगर शक्तिहीन हो गया था। इधर अहमदनगर राज्य का बरार पर अधिकार हो गया था और बीजापुर का बीदर पर, इस प्रकार केवल तीन राज्य बचे थे। अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा। इसी बीच खानदेश का एक नया राज्य स्थापित हो गया था। अकबर ने इनकी आन्तरिक स्थिति को भली भाँति समझ लिया था। अतः उस ने चारो राज्यों के पास राजदूत भेजे और उनसे अधीनता स्वीकार करने को कहलाया। इस दिशा में खानदेश (राजा अली खाँ) को छोड़कर शेष सभी ने अकबर के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। अतः अकबर ने उनसे युद्ध करने का निश्चय किया।

अहमदनगर १५९५ ई०--१५९५ ई० में अकबर ने अब्दुर रहीम खान खाना को अहमदनगर जीतने के लिए भेजा, चूँकि भौगोलिक दृष्टि से यही सबसे पास पड़ता था। इस समय अहमदनगर की दशा अच्छी न थीं, क्योंकि वहाँ के शासक निजामशाह द्वितीय की मृत्यु हो चुकी थी, उसके स्थान पर उस का पुत्र इब्राहीम गद्दी पर बैठा था, पर शीघ्र ही वह भी चल बसा। ऐसी दशा में उसका घेरा डाला गया। परस्पर कलह के कारण दो दल हो गये। एक अहमदनगर की रक्षा के लिए युद्ध करना चाहता था, दूसरा समझौता। इसकी रक्षा करने वाली अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध चाँदबीबी थी। चाँदबीबी ने सेनापतित्व का पूरा धर्म निभाया। अपनी नंगी तलवार लेकर तथा जिरह-बख्तर धारण कर वह स्वयं किले की दीवाल पर खड़ी हो गयी जिससे कि उसकी सेना को प्रोत्साहन मिले।

"चाँदबीबी अपने सिर पर बुर्का ओढ़े दिखाई पड़ी। उसने आक्रमण-कारियों को मार भगाने के लिए तोपें लगवायी और पत्थर इकट्ठे किये, जिन की मार से कई बार आक्रमण विफल कर दिये गये। रात्रि के समय अपने

---

‡१. अहदमनगगर —— अहमद निजामशाह
२. बीजापुर —— यूसुफ आदिलशाह
३. गोलकुण्डा —— कुतुबशाह
४. बीदर —— बरीदशाह
५. बरार —— इमादशाह

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कारीगरों के साथ खड़ी होकर उसने ६ फ़ीट चौड़ी दरार को सूर्योदय से पूर्व लक्कड़ों, लाशों और पत्थरों से भरवा दिया।" ‡

इधर रहीम और मुराद में बिलकुल न बनती थी जिससे यह अभियान मुगलों को सफलता प्रदान न कर सका। अत: १५९६ ई० में मुगल सेनाध्यक्षों ने सुलह कर ली, जिसमें उन्हें बरार का प्रान्त मिल गया। पर यह सुलह अधिक दिन न टिकी क्योंकि अहमदनगर की आन्तरिक कलह ने विकराल रूप धारण कर लिया था जिसमें सुल्ताना चाँदबीबी का वध कर दिया गया। सन्धि के विरुद्ध बरार पर पुन: अधिकार करने की चेष्टा होने लगी। अतः अकबर ने मुराद और रहीम खानखाना को तो वापस बुला लिया, उनके स्थान पर स्वयं गया। उसके आने का समाचार पाते ही दौलताबाद का पतन हो गया (१५९९ ई०)। इसके उपरान्त अहमदनगर का घेरा डाला गया। आखिर १६०० ई० में १५००० सैनिकों का जीवन समाप्त करके अहमदनगर जीत लिया गया।

चाँदबीबी--चाँदबीबी अहमदनगर के हुसेन निजामशाह प्रथम की पुत्री तथा बीजापुर के शासक अली आदिलशाह की विधवा रानी थी। उसने इब्राहीम निजामशाह के अल्पवयस्क पुत्र बहादुर का पक्ष लेकर युद्ध किया। यह महिला बड़ी वीराङ्गना थी। इसने अपनी वीरता से मुगलों के भी दाँत खट्टे किये थे। उस युग में जबकि मुसलमान स्त्रियाँ परदे से बाहर निकलना जानती ही न थीं, चांदबीबी ने अनुपम कार्य किया।

असीरगढ़ १६०१ ई०--इसके उपरान्त अकबर ने असीरगढ़ के दुर्ग को लेना चाहा। असीरगढ़ का दुर्ग खानदेश में अपने समय का संसार का सबसे सुदृढ़ दुर्ग था। इसमें अस्त्र-शस्त्र भी भरे-पूरे रहते थे। यह दक्षिण भारत का फाटक कहा जाता था। पहले तो जैसा कहा जा चुका है इसके शासक रजाअली खाँ ने अकबर की बात मान ली थी, पर उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र मीरन-बहादुर ने स्वतन्त्र रूप से कार्य करना आरम्भ कर दिया। वह समझता था कि उसका दुर्ग मुगल तोड़ ही नहीं सकते। ६ माह तक इस दुर्ग को मुगल घेरे रहे पर कोई विशेष प्रगति नहीं कर सके। इस पर अकबर ने नीति से काम लिया। उसने सन्धि करने के बहाने बहादुर को बुलाया। उसके आने पर उसे अपने

---

‡ "Chand Bibi appeared with a veil on her head. She got guns to be brought to bear on the assailants and stones to be hurled on them so that they were repulsed in several repeated attacks, During the night she stood by the workmen and caused the breach to be filled up nine feet before daylight, with wood, stones and carcasses" *V. D. Mahajan,*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

यहाँ रोक लिया, पर दुर्ग की सेना ने फिर भी साहस न छोड़ा। अन्त में अकबर ने द्वाररक्षकों को अपार धन दिया और धन के लोभ में आकर उन सबों ने द्वार ही खोल दिया। बस फिर क्या था, मुगलों ने बात की बात में दुर्ग में प्रवेश किया और उस पर अधिकार कर लिया। इस स्थल पर अकबर को सफलता अवश्य मिली, जो राजनीति में मूल लक्ष्य होती है, पर उसके चरित्र में एक धब्बा आ गया जिसे वह कभी न धो सका। इस स्थिति में भी अनेक इतिहासकार अकबर के कृत्य का समर्थन करते हैं। उनका कहना है कि अकबर की सैनिक प्रतिष्ठा समस्त संसार के सम्मुख दाँव पर लगी थी, वह अपना दाँव कैसे छोड़ सकता था, बल्कि इस प्रकार की स्थिति में शत्रु से केवल युद्ध करके विजय की कामना करना मूर्खता है। फिर उसकी आयु अधिक हो चुकी थी (५६ वर्ष)। उसका पुत्र सलीम विद्रोह कर चुका था, वह राजधानी से अधिक काल तक दूर नहीं रह सकता था। तीसरे उसके द्वारा बहादुर को बन्दी बनाने के उपरान्त भी शत्रु सेना के पैर न उखड़े थे। अतः अन्य कोई साधन ऐसा न था, जिसका सहारा लेकर वह विजय पा सकता।

इस प्रकार अकबर का अधिकार खानदेश तथा अहमदनगर पर हो गया। इससे अन्य राज्य भयभीत हो गये। बीजापुर के शासक इब्राहीम आदिलशाह ने अकबर को प्रसन्न करने के लिए दानियाल से अपनी पुत्री का विवाह करने का बचन दिया। अकबर भी दानियाल को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त करके १६०२ ई० में आगरा लौट आया।

मुगल साम्राज्य का संस्थापक अकबर—बहुधा यह प्रश्न किया जाता है, कि मुगल साम्राज्य का सही संस्थापक कौन था? इसमें सन्देह नहीं कि १५२६ ई० में बाबर ने पानीपत के मैदान में इब्राहीम लोदी को हरा कर मुगल राज्य की नींव रखी। डा० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार **"पानीपत के युद्ध से ही दिल्ली साम्राज्य बाबर के हाथ आया। इसी से लोदी वंश की शक्ति छिन्न-भिन्न हुई और भारत की सत्ता चग़ताई तुर्कों के हाथ चली गयी।"** इसके पश्चात् १५२७ ई० में उसी ने राजपूत वीर संग्रामसिंह को खानुआ के युद्ध में पराजित किया, जिसके साथ अनेक अन्य राजपूत राजा ही न थे, कुछ मुसलमान भी थे।

---

† "The battle of Panipat placed the empire of Delhi in Babur's hands. The powers of the Lodi dynasty were shattered and the sovereignty of Hindustan passed to the Chaghtai Turks."

Dr. Ishwari Prasad.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

रशब्रुक विलियम के अनुसार "खानुआ के युद्ध के कारण ही मुगल सत्ता की नींव सुदृढ़ बनी।"†

सन् १५२८ में बाबर ने मेदिनीराय को हराकर चन्देरी जैसा प्रसिद्ध दुर्ग ले लिया और १५२९ ई० में घाघरा के युद्ध में इब्राहीम के भाई महमूद लोदी को हराया। यदि कहीं बाबर कुछ समय और बना रहता तो निश्चित है कि मुगल साम्राज्य का अच्छा संगठन करता और अफगान शक्ति का तभी सदैव के लिए लोप हो जाता। पर दुर्दैव को यह इच्छित न था। बाबर के पश्चात् हुमायूं उसका अधिकारी बना, शेरशाह ने हुमायूँ को भारत में राज्य ही न करने दिया। उसने हुमायूँ को भारत की सीमा से ही निकाल दिया। इस प्रकार बाबर की डाली गयी नींव समाप्त हो गयी। यद्यपि हुमायूँ को मरने के पहले आगरा व दिल्ली के प्रान्त पुनः प्राप्त हो गये थे, पर उनमें शक्ति न थी। वह नाममात्र का राज्य था। अकबर के स्थान पर कोई अन्य उत्तराधिकारी होता तो टिक ही न सकता था।

उसके पश्चात् अकबर को हेमू से, बैरम खाँ से तथा महम आनागा से सुलझना पड़ा। एक से एक भयानक स्थिति थी, यही नहीं उसका सौतेला भाई, भी इससे लाभ उठा सकता था। सिकन्दर सूर पंजाब में ही था, जो काफी शक्तिशाली था। अतः अकबर को बाबर की स्थापित सत्ता से क्या मिला? भारत की जो राजनीतिक अवस्था थी, वह इस परिच्छेद के प्रारम्भ में दिखाई जा चुकी है। भारत में कोई एक शक्ति न थी जिसे पराजित करके भी अकबर अपने को सुरक्षित समझ सकता। वस्तुतः अकबर ने आगरा और दिल्ली का राज्य भी अपनी पानीपत विजय के पश्चात् ही हस्तगत किया। इस युद्ध के पूर्व ही अनेक सरदारों के छक्के छूट चुके थे। अकबर और उसका संरक्षक बैरम खाँ ही केवल यह कामना कर सके कि युद्ध लड़ा जाय अन्यथा काबुल लौट जाने की तैयारी थी, वस्तुतः विषम परिस्थिति थी। पानीपत के पश्चात् भी जब तक सिकन्दर सूर का दमन नहीं हो गया, अकबर के राज्य की सुरक्षा कहाँ थी?

इसी प्रकार १५५७ ई० में ग्वालियर और जौनपुर जीते गये। १५६० ई० में मालवा, १५६४ ई० में गोंडवाना, १५६८ ई० में मेवाड़, राणाप्रताप की पराजय १५७६ ई० में, गुजरात अन्तिम रूप से १५८४ ई०, बंगाल १५९२ई०, काबुल १५८५ ई०, कश्मीर १५८६ ई०, सिन्ध १५९१ ई०, कन्दहार १५९५ ई०, अहमदनगर १६०० ई० और असीरगढ़ १६०१ ई० में जीते गये। इस आधार पर यदि कोई कहे कि मुगल साम्राज्य का सच्चा संस्थापक अकबर था, तो क्या

†"The battle of Khanwah put the Mughal empire of India on a firm footing." *Rushbrooke Williams.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

दोष है। टॉड के अनुसार अकबर ही मुगल साम्राज्य का सच्चा संस्थापक था। वही राजपूतों को जीत सका। वह उनसे ऐसी रस्सी का निर्माण कर सका जिससे उन्हीं को बाँध लिया। यह वस्तुतः अकबर की वीरता न थी, जिसके फलस्वरूप वह सब कुछ प्राप्त कर सका बल्कि उसकी नीति निपुणता थी। इसकी आधारशिला पर वह अपने रणकौशल से इतनी विशाल भित्ति बना सका। यह सार्वजनिक विश्वास था जिसके आधार पर अकबर का प्रत्येक कृत्य सही अर्थ में लिया गया, अन्यथा उससे अधिक उदार और कम संहार करने वाले सुलतान भी इसी सिंहासन पर न टिक सके। सबसे बड़ी बात यह थी जिसके कारण और भी अकबर को इसका श्रेय मिलता है कि अकबर का समय साथ दे रहा था। अपने शैशव से अन्त तक उसे न जाने कितने संकट आये, पर वह उनको धैर्य से निभा ले गया और इतना विशाल साम्राज्य बना गया।

अकबर की हिन्दू नीति

हिन्दुओं के प्रति नयी नीति अपनाने का श्रेय अकबर को है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अकबर अपनी परिस्थिति के कारण भी ऐसी नीति अपनाने पर विवश हुआ। पर स्वभाव से भी वह इसका पक्षपाती था। वस्तुतः वह अपने युग की पुकार के विरुद्ध चला। उस समय हिन्दू-यवन संघर्ष अधिक था। एक दूसरे को अपने अपने धर्म का विरोधी और घातक जानते थे। यही कारण था कि सल्तनत काल में सुलतान अधिक लोक प्रिय न हो सके थे। हाँ उसकी इस स्वाभाविक प्रवृत्ति के बदलने में उसकी हिन्दू पत्नियों का भी हाथ रहा,। निःसंदेह अकबर स्वयं हिन्दू संतों और दार्शनिकों के उपदेश सुना करता था। उसके जीवन को बदलने वाले वस्तुतः शेख मुबारक, अबुल फजल और फैजी थे। ये लोग सूफी थे जिन्होंने उसे धार्मिक भावना में समन्वय की प्रेरणा दी थी।

साधारण व्यवहार में भी अकबर एक बड़ा जिज्ञासु था। प्रत्येक बात को जड़ बुनियाद से समझने की चेष्टा करता था। यह उसकी केवल जिज्ञासा थी, जिसके सहारे फतेहपुर सीकरी के नित्य प्रति के शास्त्रार्थं, वाद विवाद आदि में उसने भाग लेना प्रारम्भ किया। इन विवादों से उसने समझ लिया था कि हर धर्म में सत्यता है, पर उसके मानने वाले उसको दूसरा रंग देकर बिगाड़ देते हैं। वह मुल्ला व पण्डितों के असहिष्णु स्वभाव से दुःखी होता था। उसका कथन है **"ये मुल्ला लोग एक दूसरे को मूर्ख और अज्ञानी कहते हैं तथा** एक जिस

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

बात को नियमित कहता है, उसे ही दूसरा अधर्म बतलाता है। † वस्तुतः अकबर के नई धारा खोजने का यही कारण था। वह चाहता था कि कोई ऐसा मध्यम मार्ग निकाल सके जिससे एक राष्ट्र का निर्माण हो। उसे भारत में बैठ कर फरगाना की स्मृति न सताती थी। वह अपने को भारतीय तुल्य ही समझता था, भारत को भी हरा भरा देखना चाहता था। उसकी साम्राज्य प्रसार की लिप्सा केवल अत्याचार और दमन पर आधारित न थी।

कुछ इतिहासकारों का कथन है, कि अकबर का हिन्दुओं के साथ भला व्यवहार केवल राजनीतिक चाल थी। यदि इसको चाल ही मान लें तो भी महत्त्व की बात है, कि वह हिन्दू जनता को कम से कम मुल्लाओं के चंगुल से छुड़ा सका। साथ ही अपने इन विचारों के कारण मौलवियों के क्रोध का शिकार बना।

१५६४ ई० में उसने हिन्दुओं से जजिया कर हटा दिया। इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दुओं को उसने मुसलमानों के तुल्य समझने की चेष्टा की। इसके पहले ही उसने तीर्थ यात्रा कर हटा दिया था। यही नहीं उसने हिन्दुओं के कुछ धार्मिक ग्रंथों का फारसी में अनुवाद भी कराया। यह सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने तथा एक दूसरे को नजदीक से समझने की दृष्टि से ही था। उसने युद्धबन्दियों को भी मुसलमान बनाने से मना कर दिया था।

सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उसके पूर्व हिन्दुओं को ऊँचे पदों से वंचित रखा जाता था। उन पर किसी प्रकार का भरोसा न था। पर अकबर ने अपने विभागों के द्वार हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के लिए खोल दिये। केवल योग्यता ही उसके सामने चुनाव का आधार था। इसका प्रमाण टोडरमल को वित्तमंत्री बनाने, भगवानदास, मानसिंह और राम सिंह को कई प्रान्तों का शासक नियुक्त करने, उनको सैनिक दलों का प्रमुख सेनापति का भार सौंपने आदि से पर्याप्त रूप में मिल जाता है। अनेक हजारी मंसबदार हिन्दू थे। वित्त वर्ष १६६४-६५ में नियुक्त किये गये १२ प्रान्तीय दीवानों में ८ हिन्दू थे। अकबर ने हिन्दुओं के मुकदमों के निर्णय के लिए हिन्दू न्यायधीश नियुक्त किये थे, राजस्व विभाग में अनेक हिन्दू कर्मचारी थे, सेना में भी हिन्दू थे। अकबर ने हिन्दुओं की भावनाओं का सम्मान करके ही उनसे काम लिया। उसने गोमांस खाने पर भी रोक लगा दी थी। १५८३ ई० में

† "The Mullahs call one another fool and heretic one pronounced a thing lawful another would pronounce the very same thing unlawful."
Akbar

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

तो उसने कुछ विशेष दिनों पर पशु वध ही बंद करा दिया। उसन हिन्दू उत्सवों में भाग लिया, बाल-विवाह को रोका। इससे सिद्ध होता है कि अकबर की यह नीति विचार पूर्वक निश्चित की हुई थी, कोई क्षणिक भावना न थी। इसी कारण उसके दरबार में अनेक कवि, कलाकार, संगीतज्ञ एकत्र हुए और अपनी प्रतिभा से उसके दरबार को सजा दिया।

युवराज सलीम का विद्रोह--अकबर के अन्तिम वर्ष कुछ अच्छे न बीते क्योंकि उसके प्रिय पुत्र सलीम (जहाँगीर) ने ही उसके विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। यह सन्तान अकबर को बड़ी मनौती मनाने के पश्चात् प्राप्त हुई थी। सलीम का जन्म १३ अगस्त १५६९ ई० को फतेहपुर सीकरी में शेख सलीम चिश्ती की कुटिया में राजा बिहारीमल की पुत्री से हुआ था। अकबर ने इसके लालन-पालन का बड़ा ध्यान रखा था जिसके फलस्वरूप सलीम आराम पसन्द बालक के रूप में विकसित हुआ।

१५९९ ई० में जब अकबर दक्षिण अभियान की तैयारी में था उसने सलीम को अजमेर का गवर्नर नियुक्त किया। साथ ही राजा अमर सिंह (राणा का पुत्र) के विरुद्ध संघर्ष जारी रखने को आज्ञा दी। पर यह काम सलीम के वश का न था। इस समय तक अकबर का दूसरा बेटा मुराद चल बसा था। (१५९९ ई०)। अतः अकबर की कृपा सलीम से हटकर दानियाल पर हुई। मन ही मन वह सलीम से असन्तुष्ट रहने लगा। सलीम दूसरी ओर गद्दी पाने के लिए व्याकुल था। वह अपने पिता के लम्बे शासन काल से ही ऊब चुका था।

अकबर जब खानदेश के संघर्ष में व्यस्त था, एक दिन सलीम ने आगरा से चल कर इलाहाबाद का रास्ता लिया। उसकी दादी ने उसे समझाने का प्रयास किया, पर वह आँख बचा कर यमुना पार कर इलाहाबाद की ओर चल दिया। मार्ग में उसने बिहार से आते हुए शाही कोष छीन लिया तथा इलाहाबाद पहुँच कर अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया और अपने निजी अधिकारी नियुक्त करना प्रारम्भ किया। अकबर ने यह समाचार पाकर भी कोई उद्विग्नता न दिखायी। उसने सलीम को एक पत्र लिखा जिसमें विद्रोह के समाचार पर ही अविश्वास प्रकट किया और कहा कि वह ठीक से रहे। पर सलीम पर इसका कोई असर न पड़ा।

आखिर अकबर दक्षिण से लौटा। उसने सलीम को जो एक सेना लेकर इलाहाबाद से इटावा तक आ गया था, धमकाया। इस पर वह पुनः इलाहाबाद लौट गया। अकबर ने दक्षिण से अपने परम मित्र अबुलफजल को सलीम को समझाने के लिए बुलवाया। सलीम ने मार्ग में ही ओरछानरेश वीरसिंह देव द्वारा अबुलफजल का काम तमाम करा दिया (१६०२ ई०)। इस समाचार को

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सुनकर अकबर और अधिक दुखी हुआ और उसने वीरसिंह देव को दण्ड देने का निश्चय किया। पर वीर सिंह चतुर था, बच कर निकल गया। अन्ततः सलीमा बेगम ने सलीम को समझाने का निश्चय किया और इलाहाबाद जाकर उसे आगरा चलने पर राज़ी कर लिया। आखिर पिता-पुत्र का मेल हुआ। अकबर ने उसे क्षमा कर दिया। सलीम बहुत सी भेंट आदि लेकर पुनः इलाहाबाद चला गया। वहाँ उसने अनेक कुकृत्य किये। उसके दुर्व्यवहार से दुखी होकर उसकी पहली पत्नी ने (जो मानसिंह की बहन थी) आत्महत्या कर ली। अकबर ने पुनः उसे दण्ड देना चाहा पर अपनी माता की बीमारी के कारण तथा अपने पुत्र दानियाल के भी चल बसने के कारण (अप्रैल १६०४ ई०) वह कुछ न कर सका। उसने सलीम को पुनः बुलाकर खूब डाटा फटकारा और उसकी उचित देख-रेख में चिकित्सा करायी, जिसके अनन्तर उसकी विरोधी भावनाएँ समाप्त हो गयीं।

सलीम के विरुद्ध षडयन्त्र—इसी बीच एक षडयन्त्र ऐसा उठ खड़ा हुआ जो सलीम को अकबर का उत्तराधिकारी ही न बनने देना चाहता था। इसके नायक अज़ीज कोका और राजा मानसिंह बने। उनकी इच्छा थी कि वे सलीम के स्थान पर उसी के लड़के खुसरो को गद्दी पर बिठावें। खुसरो इस समय १७ वर्ष का हो चुका था। उसका विवाह अज़ीज कोका की पुत्री से हो गया था। षडयन्त्रकारियों ने सलीम को बन्दी बनांना चाहा पर वह बहुत चण्ट था, उनके हाथ न आया। आखिर उनका यत्न सफल न हुआ। सलीम ने भी अपने पिता से समझौता कर लिया तथा उसके विरोधी कुछ तो भयभीत हुए, कुछ इस बात का विचार कर रह गये कि यह इस्लाम के विरुद्ध होगा कि पिता के पश्चात् पुत्र को छोड़कर पौत्र को गद्दी पर बिठाया जाय।

अकबर के अन्तिम दिन—इतने विशाल साम्राज्य का निर्माण करके अकबर थक चुका था। आखिर १६०५ ई० ३ अक्तूबर के दिन वह बीमार पड़ गया। उसे पेचिस की शिकायत थी। इधर परिवार में कलह हो रही थी, जिस से वह और भी विक्षुब्ध था। उसकी दशा दिन पर दिन गिरने लगी। २१ अक्तूबर को उसकी दशा इतनी गिर गयी कि उसने सलीम को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। २५-२६ अक्टूबर १६०५ ई०की रात्रि को आखिर वह इस संसार से बिदा ले गया।

अकबर का चरित्र

अकबर का स्वरूप—जिसने भीषण स्थिति में अपने मन को विचलित न होने दिया, ४० वर्ष तक युद्ध किया, जिसने समस्त देश में एक सूत्रता उत्पन्न करनी चाही, जिसने कला, कलागीरी को प्रोत्साहन दिया, उसका चरित्र

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अनुपम नहीं तो और क्या कहा जा सकता है ? अबुलफज़ल रचित आईन अकबरी और अकबरनामा तथा जहाँगीर की तुजके जहाँगीरी और विदेशी लेखकों के लेखों से अकबर के चरित्र का सही ज्ञान हो जाता है। फादर मानसैरेट का चित्रण इस प्रकार है :—"वह कद और चेहरे से एक सम्राट के योग्य था। कोई भी पहली बार देखते ही उसे एक सम्राट समझ सकता था। उसके कन्धे चौड़े थे, तथा उसकी टाँगें घुड़सवारी के उपयुक्त थीं। उसका रंग साफ, किन्तु हल्का सांवलापन लिये हुए था। उसका सिर दाहिने कंधे की ओर जरा सा झुका रहता था। उसकी भौहें चौड़ी और आँखें समुद्र पर सूर्य की चमक की तरह चमकदार थीं। उसकी पलकें सारमैशियन, चीनी और निफोनियन जातियों की तरह भारी थीं, जैसे कि उत्तरी एशिया के लगभग सभी निवासियों की होती हैं।"... शरीर से वह न दुबला और न मोटा था। उसके शरीर से साहस और बल टपकता था। हँसते समय उसका चेहरा विकृत हो जाता था, पर शान्त होते ही वह विशाल और प्रभावशाली लगता था। बस क्रोध में वह अजेय प्रतीत होता है।"†

अकबर बड़ा वीर और साहसी था। उसका व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था। वह कठोर परिश्रम कर सकता था। आलस्य को उसने कभी समीप न आने दिया। उसके जीवन में ऐसी अनेक घटनाएँ आयीं थीं, कि यदि वह अपने पिता की भाँति कहीं आराम करने लगता, तो न जाने कितना पहले उसके

---

† "He was in face and stature fit for the dignity of a king, so that anybody, even at the first glance could easily recognize him as the king. His shoulders were broad and his legs slightly bandy and adapted to riding. His complexion was fair, but slightly suffused with a darker tint. He carried his head slightly inclined to one side towards the right shoulder. His brow was broad and open and his eye sparkled as does the sea when lighted by the Sun. His eyelids were heavy as those of Sarmatians, the Chinese, the Niphonians and nearly all Asiatics of the more northern regions." .. ..

"He has in his body, which is very well made and neither thin and meagre nor fat and gross, much courage and strength, when he laughs he is distorted but when he is tranquil and serene he has a noble mind and great dignity. In his wrath he is majestic."

Manserrate

Cambridge History of India Vol. IV P. 155

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

भाग्य का निर्णय भिन्न हो जाता। यद्यपि अकबर पढ़ा लिखा न था, पर उसने कम ज्ञान न अर्जित किया था। अपनी जिज्ञासा के कारण उसने बहुत कुछ सुन कर ही जान लिया था। बड़े बड़े विवादों का वह स्वयं निर्णायक रहा। बड़ी-बड़ी मर्म भरी बातों को वह ध्यान से सुनता पर हर क्षेत्र में ध्यान रखता था कि एक प्रजा उसके सम्मुख है।

व्यक्तिगत जीवन—अकबर बहुत शक्तिशाली था। वह अनवरत बहुत समय तक युद्ध कर सकता था। कहा जाता है कि एकबार २४ घंटे में अजमेर से आगरा आया (लगभग २५० मील)। व्यक्तिगत रूप से वह अत्यन्त प्रेम पूर्ण व्यक्ति था। अपने माता पिता का आज्ञाकारी पुत्र तथा अन्य सम्बन्धियों के प्रति वह दयालु था। उसका भाई हकीम उसके विरुद्ध था, पर अकबर ने उसे क्षमा कर दिया उसका पुत्र सलीम विद्रोही था, पर उसे भी क्षमा किया। किसी किसी समय तो उसने अत्यन्त विनम्रता से व्यवहार किया। कहा जा सकता है कि उसे अभिमान न था। सरदारों तथा अमीरों के साथ उसका व्यवहार विनम्र था। हास्य तथा विनोद से भी उसे चाव था। हाँ जब उसे क्रोध आता था तो वह भयंकर होता था। पादरी जैरोम जैवियर ने लिखा है--

"वह बड़े के साथ बड़ा तथा छोटे के साथ छोटा बन जाता था।"

वह अपने परम मित्र अबुलफजल के देहावसान पर फूट फूट कर रोया भी था। अपने समय के अन्य राजाओं की भाँति उसके भी कई पत्नियाँ थीं। पर उसमें कहीं भी दुर्व्यवहार की मात्रा नहीं दिखायी पड़ती। समयानुसार वह प्रेमी, करुणापर, क्रोधी तथा दयालु हो सकता था।

अपनी पोशाक में वह अन्य मुसलमान सम्राटों की भाँति रहता था। घुटनों तक का नीचा रेशमी अंगरखा जो फूल पत्तियों की कढ़ाई से सजा होता था, उसे बहुत प्रिय था। उसकी पगड़ी में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों की पद्धति का सम्मिश्रण रहता था। पगड़ी भी मोतियों आदि से जटित रहती थी। कमर में सदा एक कटार रहती थी।

वह कम आहार पसन्द करता था। वर्ष का अधिकांश भाग उसका निरामिष बीतता था। पश्चात् के जीवन में तो उसने मांस खाना ही छोड़ दिया था। पर अपनी इच्छानुसार निश्चित मात्रा में सुरा का पान उसकी दृष्टि में वर्जित न था। फलों का वह विशेष प्रेमी था। वह अपने स्वास्थ्य का सर्वदा ध्यान रखता था, और कहना न होगा कि अपनी जिह्वा पर वह नियंत्रण रखता था।

"Great with the great and low with the lowly."
Father Jarome Xavier.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कभी भी वह समय को व्यर्थ न गँवाता था उसका अधिकांश समय राज-काज देखने में ही बीतता था। उसका शेष समय साहित्य, धर्म आदि की चर्चा में बीतता था। आखेट का उसे बहुत चाव था। वह जंगली तथा भयंकर पशुओं के शिकार करता था। वह उच्चकोटि का घुड़सवार था, साथ ही अपने निशाने का पक्का था। उसकी निशानेबाजी का प्रमाण हमें जयमल को बन्दूक की रोशनी में गोली मारने से प्राप्त होता है। घुड़सवारी का सबसे बड़ा प्रमाण उसका फतेहपुर से दुबारा मालवा तक लौटने में है। यह दूरी लगभग ६०० मील है जो लगभग ६ दिन में तै की गयी थी। उसकी मानसिक शक्ति भी प्रबल थी। उसकी स्मरण शक्ति तीव्र थी। गम्भीर से गम्भीर समस्या को वह सरलता से समझ लेता था। बहुधा इस विषय में विवाद होने लगा है कि वह निरक्षर भट्टाचार्य था या साक्षर। इस विषय में डा० आशीर्वादीलाल जी के अनुसार यह अनुमान केवल भ्रमपूर्ण है। ईसाई धर्म प्रचारक मानसेरेट और जीरोम के प्रमाणों के अलावा उसके पुत्र जहाँगीर का वर्णन भी इसी बात की पुष्टि करता है कि वह पढ़ा बिल्कुल न था।

धार्मिक-प्रवृत्ति––अकबर अपने हृदय से धार्मिक था, पाखंडी नहीं। वह ईश्वर की सत्ता में सच्चा विश्वास करता था। उसने अलग अलग धर्मों का अध्ययन भी किया था। इससे अपने धर्म की दुर्बलताओं को भी वह समझ गया था। प्रतिदिन नियम से वह चार बार नमाज पढ़ता था। इसके अतिरिक्त वह वस्तुतः सत्य की खोज में रहता था। उसका कथन है कि **"प्रकृति में शून्य स्थानों के सम्भावित के विषय में तर्क करना नितांत अनावश्यक है, क्योंकि ब्रह्म स्वयं सर्वव्यापी है।"** वस्तुतः इसी का फल था कि उसमें धार्मिक कट्टरता न थी। उसकी दृष्टि में सभी धर्मों का सम्मान था। इसका प्रबल प्रमाण एक नये धर्म की खोज करने से अधिक क्या हो सकता है। उसके तर्क करने का ढंग बहुत सुन्दर था। डा० स्मिथ का कथन है **"यदि कोई उसको वाद-विवाद करते सुनता और उसके तर्क उपस्थित करने की सरलता और अकाट्यता को देखता, तो उसे साहित्य का बड़ा ज्ञानी कहता और उसकी विशाल बुद्धि की प्रशंसा किये बिना न रहता। उसे इस बात का सन्देह भी न होता कि वह निरक्षर है।"**

'Anybody who heard him arguing with acuteness and lucidity on the subject of debate would have credited him with wide literary knowledge and profound erudition and never would have suspected him of illiteracy."

Dr. Smith

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सैनिक स्वरूप--जैसा कहा जा चुका है कि वह आखेट प्रिय था। एक सैनिक के रूप से वह अत्यन्त कुशल था। अपने बाल्य-काल से ही वह युद्ध करने का अभ्यस्त था। युद्धों में उसने हार खाना तो सीखा ही न था। दाऊद को उसने सूचना भेजी थी कि जैसे चाहे सुलझ ले। गुजरात में दुबारा स्वयं दौड़ कर गया, उसे कश्मीर स्वयं जाना पड़ा, दक्षिण में स्वयं जाना पड़ा अर्थात् सेना का कार्य उसके ही प्राण से प्राणित था। साथ ही वह हर रीति से विजय का साथी था, यथा--अहमदनगर में उसे रिश्वत देनी पड़ी। सलीम से उसे समझौता करना पड़ा, पर कभी भी उसने अपने युद्ध की योजना तथा संचालन में कोई त्रुटि नहीं आने दी।

शासक का स्वरूप--अकबर का आदर्श राजत्व के विषय में बहुत उच्च था। उसका कहना था कि अत्याचार सबके लिए बुरा है, विशेष रूप से सार्वभौम सम्राट के लिए जो संसार का संरक्षक है। वह राजत्व को ईश्वर की छाया मानता था। अतः प्रतिविम्ब में मूल का स्वरूप होना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि वह साम्राज्यवादी नीति का पोषक था। वह कहता था कि

"एक राजा को राज्य विजय के लिए सदा संलग्न रहना चाहिये अन्यथा उसके पड़ोसी राष्ट्र उस के विरुद्ध युद्ध करने पर उतारू हो जाते हैं। सेना को सदा युद्ध क्षेत्र में अभ्यास करना चाहिये अन्यथा अभ्यास के अभाव में वह आलसी और विलासी हो जायगी।" डॉ० त्रिपाठी के अनुसार अकबर का राजत्व राष्ट्रीय ही नहीं बल्कि सार्वभौमिक था। इसके समर्थन में आपका कहना है कि अकबर मध्य एशिया की ओर से लेकर भारत तक तमाम विजय करना चाहता था, इसीलिए वह विभिन्न जातियों के संतुलन और समन्वय में विश्वास रखता था। सजातीयों के लिए वह राजपूतों का सहयोग चाहता था और राजपूतों तथा अन्य भारतीयों के लिए सजातीयों को अपना बनाये था। अतः सार्वभौमिक नहीं तो राष्ट्रीय तो था ही, क्योंकि उसने इतना तो करके ही दिखा दिया। उसने मुग़ल साम्राज्य को राजनीतिक एकता प्रदान की। सभी राज्य कार्यों में उसने फारसी का प्रयोग करके एक भाषा का प्रचार चाहा। उसने हिन्दू प्रथाओं को सुधारने का यत्न करके एक सुधारक का स्वरूप दिखाया। न्यायशील तथा प्रजा-पालक बनकर उसने सभी को मानों वशीभूत कर लिया। उसके दरबार में कला तथा साहित्य के प्रेमी भी उतने ही थे जितने किसी शिक्षित सम्राट के यहाँ सम्भव थे।

अबुल फजल ने अकबर को सम्पूर्ण पुरुष कहा है, ऐसा मान्य नहीं, क्योंकि यह तो प्रकृति की ओर से सम्भव नहीं पर इसका भाव यह है कि उसका आचरण अच्छा था। इसके विपरीत उसके आलोचक उसे दूसरी ओर मीना बाज़ार

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

के लिए दुराचारी कहने का आग्रह करते हैं, उसे अपनी कूटनीति से राजपूतों को ठगने का आरोप लगाते हैं। उसे अहमदनगर में रिश्वत देकर विजय करने पर लांछन लगाते हैं। अतः ऐसा सम्भव नहीं कि उसमें दोष थे ही नहीं। आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार वह बड़ा प्रतिभाशाली था। आपका कथन है– "अपने समय के सभी सम्राटों में वह उच्च है। वह शासन करने की दृष्टि से तथा उसमें सफल शासक होने के नाते उच्च स्थान का अधिकारी है। विशेषकर भारतीय शासकों में वह बड़ा महान है। उसने अन्य कार्य तो किये ही हिन्दू मुस्लिम ऐक्य का प्रयास भी किया और यदि वह एक राष्ट्र की स्थापना न कर सका तो इसलिए कि अपने युग की नीति को शीघ्र न बदल सका। सोचने की बात है कि उस समय यूरोप में प्रोटैस्टैंट कैथोलिक को तथा कैथोलिकि प्रोटैस्टैंट को शूली पर चढ़ा रहा था, अकबर ने उसके विपरीत युद्ध करने वालों को ही नहीं बल्कि विभिन्न धर्म मानने वालों को भी शान्ति प्रदान की। उस समय की धार्मिक स्थिति, विभिन्न जातियाँ जिनको यह पाठ पढ़ाना था, और सहिष्णुता की मात्रा का ध्यान रखते हुए धार्मिक सहिष्णुता में वह आज के देखते हुए भी बहुत बड़ा प्रयोग कर्त्ता था।*

स्मिथ के अनुसार "अकबर मनुष्यों का जन्मजात राजा था और इतिहास में बड़े से बड़े सम्राटों में गण्यमान होने का पूरा अधिकारी था। उसका

---

* "The greatest of monarchs in his time Akbar is sure of a high place among the rulers of mankind for his brilliant success in the great adventure of governing men. Among the rulers of India he occupies a very high place, for among other things—for having attempted to bring Hindus and Muslims together with some success. If he did not succeed in creating a nation it was because he could not hurry the march of events. It is worth remembering that at a time when Europe was plunged into a strife for warring sects when Roman Catholics were burning protestants at the stake and protestants were executing Roman Catholics, Akbar guaranteed peace not only to warring sects but to differing religions. In the modern age he was the first and almost, the greatest experimenter, in the field of religious toleration, if the scope of the toleration, the races to which it was applied and the contemporary conditions be taken into account."

Sri Ram Sharma.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

यह अधिकार उसकी अलौकिक राष्ट्रीय प्रतिभा, मौलिक विचारों और अभूत-पूर्व सफलताओं के आधार पर स्थिर था।" †

"बूल्जले हेग के अनुसार अकबर निस्संदेह मध्यकालीन भारत के महानतम शासकों में से एक था। उसका तो युग ही एक महान शासकों का युग था।" ‡

अन्त में त्रिपाठी जी का कथन दृष्टव्य है--

"वह ऐतिहासिक भारत के उन महान शासकों में से एक था जिन्हें कभी भारत ने उत्पन्न किया हो। वही अपने युग का शिशु तथा जनक भी था।" *

इस रूप से हम अकबर को एक पूरा संस्थास्वरूप पाते हैं। उसने हर क्षेत्र में अपने कदम बढ़ाये। उसने अपनी सत्यता तथा व्यवहार कुशलता से प्रत्येक क्षेत्र में आशातीत सफलता भी प्राप्त की। वह मनुष्य को सही रूप से परख लेता था। उससे काम ले सकता था। जो कार्य दूसरों से बड़े यत्न से भी सम्भव न थे, वह उसने अनायास कर डाले। वह यदि कभी किसी संकट में भी पड़ा तो उसने अपने धैर्य को नहीं खोया, शान्त और निश्चल चित्त से जो उचित हुआ वही किया। जीवन व्यापक है, उसका व्यापार उससे अधिक। अतः अपने युग में इससे अधिक दूसरा सम्राट न कर सकता था।

प्रश्नावलि

(१) बैरम खां की संरक्षता का तथा उसके पतन का वर्णन करिये।

(२) "बैरम खाँ के पतन की कहानी बड़ी ही दुःखद स्मृति छोड़ती है," इस की समीक्षा करिये।

---

† "Akbar was a born king of men, with rightful claim to rank as one of the greatest sovereigns known to history. That claim rests securely on the basis of his extraordinary national gifts, his original ideas and his magnificent achievements."

Dr. Smith.

‡ "Akbar was unquestionably the greatest of all rulers of India of the muslim period. His age, it has been remarked, was an age of great rulers."

Wolseley Haig.

* "Akbar was one of the greatest kings which Historic India had ever had. He was at once the child and the father of his age."

Dr. Tripathi.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(३) १५५६ ई० में भारत का चित्र धूमिल तथा अस्थिर था; इसको स्पष्ट करिये।

(४) अकबर की विजयों का संक्षिप्त वर्णन करिये।

(५) अकबर के राज्य ने हिन्दू वैभव को हटाकर मुगल वंश की जड़ें जमा दीं। कहाँ तक ठीक है ?

(६) अकबर की राजपूत नीति का वर्णन करिये।

(७) अकबर के विरुद्ध राजपूतों के संघर्ष की कहानी बताइये। वे सफल क्यों न हुए ?

(८) मुगल साम्राज्य का सच्चा संस्थापक अकबर था। इसकी पुष्टि करिये।

(९) अकबर का शासन काल एक छोटे से राज्य को साम्राज्य बनाने का सतत प्रयास था।

(१०) अकबर के चरित्र तथा व्यक्तित्व की समीक्षा कीजिये।

कुछ आवश्यक तिथियाँ

अकबर का जन्म	१५ अक्तूबर १५४२ ई०
राज्यारोहण (कालानूर में)	फरवरी १५५६ ई०
पानीपत का युद्ध (द्वितीय)	५ नवम्बर १५५६ ई०
मालवा विजय	१५६१ ई०
अम्बर से वैवाहिक सम्बन्ध	१५६२ ई०
तीर्थ यात्रा कर से मुक्ति	१५६३ ई०
जजिया कर से मुक्ति	१५६४ ई०
चित्तौड़ का घेरा	१५६७–६८ ई०
रणथम्भौर विजय	१५६८ ई०
कालिंजर विजय	१५६९ ई०
गोंडवाना विजय	१५६४ ई०
गुजरात विजय	१५७३ ई०
विहार व बंगाल विजय	१५७४–७६ ई०
हल्दीघाटी का युद्ध	१५७६ ई०
काबुल अभियान	१५८१ ई०
कश्मीर विजय	१५८२ ई०
सिन्ध विजय	१५९०–९२ ई०
कन्दहार प्राप्ति	१५९५ ई०
अहमदनगर विजय	१६०० ई०
असीरगढ़ विजय	१६०१ ई०
अकबर का देहावसान	२६ अक्टूबर १६०५ ई०

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद ५

जहाँगीर (१६०५–२७ ई०)

प्रारम्भिक जीवन––यह कहा जा चुका है कि जहाँगीर अकबर को कितनी मनौतियों के उपरान्त मिला था। अकबर ने अपने उत्तराधिकारी के लिए ईश्वर से ही याचना नहीं की बल्कि महात्माओं के आशीर्वाद भी चाहे थे। जहाँगीर का जन्म ३० अगस्त १५६९ ई० में हुआ था। चूँकि यह जन्म शेख सलीम चिश्ती के आशीर्वाद का फल था। अतः उसका नाम मुहम्मद सलीम रखा गया। अकबर ने उसके लिए पैदल तीर्थ-यात्रा भी की।

जहाँगीर

शीघ्र ही अकबर ने सलीम के अध्यापन का प्रबन्ध कर दिया। चार वर्ष की आयु में ही वह पढ़ने लगा। उसको फारसी, तुर्की, अरबी, गणित, इतिहास, भूगोल आदि पढ़ाने के लिए योग्य अध्यापक रख दिये गये। इन सब में अधिक उसके ऊपर प्रभाव डालने वाला अब्दुर रहीम खानखाना था। रहीम अरबी, फारसी और हिन्दी का पण्डित था। इसके शिष्यत्व में सलीम ने फारसी अच्छी सीख ली। पर सलीम की रुचि तो कला की ओर अधिक थी। दूसरी ओर उसे आखेट का भी कम शौक न था। जो हो युग की पुकार थी। उसे सैनिक शिक्षा भी दी गयी।

१५ वर्ष की अवस्था में उसका विवाह अपनी ममेरी बहिन आमेर के राजा भगवान दास की पुत्री मानबाई के साथ हुआ। राजा भगवान दास ने उसे दहेज में अमूल्य उपहार भेंट किये। यद्यपि मानबाई को सलीम कम न चाहता था, पर उसके अन्य हिन्दू पत्नियाँ भी थीं; जिनमें जोधाबाई का नाम विशेष है। धीरे-धीरे उसकी हरम की संख्या २०० तक पहुँच गयी थी। इनमें सबसे पश्चात् उसकी चिरसंगिनी नूरजहाँ उसे मिली थी। कुछ इतिहासकारों के अनुसार उसके ८०० पत्नियां थीं। पर धीरे-धीरे अपने लालन-पालन में वह इतना उद्धत हो गया कि अपने पिता के विरुद्ध ही विद्रोह कर बैठा जिसकी चर्चा पीछे की जा चुकी है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उसका राज्याभिषेक—बहुत सी उलझनों के पश्चात् विलासी राजकुमार सलीम अपने यशस्वी पिता का उत्तराधिकार प्राप्त कर सका। सलीम ने अपने व्यवहार से अनेक दरबारियों को और विशेषकर राजा मानसिंह तथा अजीज-कोका को असन्तुष्ट कर रखा था। पर विरोधियों का दल इतना सबल न हो सका कि उसको उत्तराधिकार से वंचित कर पाता। अन्ततः १६०५ में अकबर के देहावसान के पश्चात् उसका बचा हुआ एकमात्र पुत्र सलीम नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर के नाम से गद्दी पर बैठा। (**"जहाँगीर"** शब्द का अर्थ है विश्व विजयी)। इस उपलक्ष्य में उसने अनेक बन्दियों को मुक्त कर दिया और अपने नाम के सिक्के बनवाये। अपनी नीति की घोषणा में उसने १२ बातों का उल्लेख किया।

(१) तमगा, मीर बहरी तथा कुछ अन्य कर बन्द होंगे।
(२) सड़कों के किनारे कुएँ तथा सरायें बनेंगी।
(३) व्यापारी की बिना जानकारी के उसके सामान की गाँठ न खोली जायगी।
(४) मृत्यु के पश्चात् किसी की भी सम्पत्ति उसके उचित उत्तराधिकारी को दी जावेगी।
(५) मद्य तथा अन्य मादक वस्तुओं का निर्माण एवं क्रय न होगा।
(६) कोई भी राज्य का कर्मचारी किसी के घर पर बलपूर्वक अधिकार न करेगा।
(७) नाक अथवा कान काटने का दण्ड न दिया जायगा।
(८) राज्य कर्मचारी किसी कृषक की भूमि बलपूर्वक न लेगा।
(९) बिना सम्राट की आज्ञा के कोई जागीरदार या परगने का अधिकारी किसी से विवाह न करेगा।
(१०) निर्धनों के लिए अस्पतालों का प्रबन्ध होगा।
(११) वर्ष के कुछ दिनों में पशुवध बन्द रहेगा। (गुरुवार, जहाँगीर का राज्याभिषेक दिन और रविवार, अकबर का देहावसान दिवस)
(१२) पिता के समय के सभी जागीरदार और कर्मचारी अपने पदों पर यथावत रहेंगे।

जहाँगीर ने अपने राज्यारोहण के उपलक्ष्य में अपने उन विरोधियों को भी क्षमा प्रदान की जिन्होंने उसको गद्दी प्राप्ति में बाधा डालनी चाही थी और अपने कृपा पात्रों के पद ऊँचे कर दिये। इस कोटि में मिर्जा गयासबेग, ओरछा नरेश, वीरसिंह देव और कुतुबुद्दीन खाँ आदि आते हैं।

जहाँगीर ने १६०५-२७ लगभग २२ वर्ष राज्य किया। चूँकि उसे पका पकाया राज्य मिला था उसकी साम्राज्य की बड़ी कामना न थी, न उसे

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अपने निजी कार्यों से इतनी फुर्सत थी कि राज्य सम्हाले। अतः उसके राजत्वकाल में बहुत कम घटनाएँ उल्लेखनीय हैं। उसके पुत्रों का विद्रोह, उसका नूरजहाँ से विवाह, उत्तर पश्चिम व दक्षिण के प्रति उसकी नीति ही विशेष उल्लेखनीय है।

खुसरो का विद्रोह--खुसरो के सम्बन्ध अपने पिता से वैसे ही भले न थे। अतः उसके गद्दी पर बैठने के पश्चात् ही उसने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया (६-४-१६०६), उसने अपने पिता से सिकन्दरे में अकबर की दरगाह देखने का बहाना कियां। ३५० अश्वारोही लेकर वह दिल्ली की ओर चल दिया। मार्ग में ३०० अश्वारोही लेकर हुसेन बेग भी उससे आ मिला। धीरे धीरे उसके साथियों की संख्या १२००० तक पहुँच गयी। खुसरो ने लगभग १ लाख का राज्य कोष भी ले लिया। दिल्ली होते हुए वह लाहौर पहुँचा, वहाँ उससे प्रान्त का दीवान अब्दुर रहमान आ मिला। उसी समय तरन तारन में उसने सिक्खों के गुरु अर्जुन का आशीर्वाद भी प्राप्त किया। उसने जाकर लाहौर को घेर लिया। इस समय लाहौर का शाही रक्षक दिलावर खाँ था। दिलावर खाँ ने लाहौर की रक्षा की अतः खुसरो अपने यत्न में सफल न हो सका।

यह समाचार पाकर जहाँगीर स्वयं एक सेना लेकर चल पड़ा। लाहौर के समीप जाकर उसने अपने पुत्र को सही मार्ग पर लाने की चेष्टा की, पर पुत्र तो उसी पिता का था, जो स्वयं अपने पिता से द्रोह कर चुका था। मुगल वंश के लिए यही कीटाणु विनाश का कारण हुआ। खुसरो ने एक न सुनी और युद्ध करने पर उद्यत हुआ। अन्ततः भैरोंवाल के मैदान में पिता पुत्र की सेनाओं का मुकाबला हुआ। वस्तुतः युद्ध क्या था, न पिता को मरना था, न पुत्र को। कुछ सैनिक खेत रहे, पुत्र मैदान को न सँभाल सका, भाग खड़ा हुआ तत्पश्चात् उसने अपने विश्वस्त साथी हुसेन बेग से मंत्रणा की कि काबुल की ओर चल कर उसे विजय करें तब भारत को जीता जाय। पर वह कोरी कल्पना थी। मार्ग में ही चिनाव पार करते समय वह जहाँगीर के गुप्तचरों द्वारा बन्दी बना लिया गया। १ मई १६०७ को वह बन्दी के रूप में दरबार में लाया गया। उसी के साथ हुसेन बेग और अब्दुर रहीम भी बन्दी थे। राजकुमार को कारावास का दण्ड दिया गया तथा उसके साथियों को बैल और गधे की खाल में सिल कर लाहौर की सड़कों पर घुमाया गया। खुसरो के अन्य साथियों को फाँसी का दण्ड दिया गया, और उन्हीं के बीच होकर खुसरो को घुमाया गया, अर्थात् व्यंग से कहा गया कि ये तुम्हारे सम्मान में लटके हैं। इसके अनन्तर गुरु अर्जुन की भी खबर ली गयी, उनको मृत्यु-दण्ड दिया गया तथा उनकी सारी सम्पत्ति जप्त कर ली गयी

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

यद्यपि यह भारी भूल थी क्यों कि इससे जहाँगीर ने सिक्ख जाति का सहयोग सदा के लिए खो कर विरोध मोल ले लिया। अन्त में राजकुमार को अंधा कर दिया गया तथा आसफखां के हाथ सौंप दिया गया। १६२० ई० में उसको खुर्रम के अधिकार में दे दिया गया। खुर्रम (शाहजहाँ) का व्यवहार उसके प्रति और भी खराब रहा। मार्च १६२२ ई० में खुसरो का वध कर दिया गया। इस बात को बहुत समय पश्चात् औरङ्गजेब ने व्यक्त किया था, कि खुर्रम परवेज और खुसरो के वध के लिए उत्तरदायी था।

खुसरो वस्तुतः बड़ा लोक प्रिय था। कहा जाता है कि उसकी मृत्यु के पूर्व उसके रहने का स्थान इलाहाबाद उसके मरने के पश्चात् पूजा गया। उसको तो राजकुमार नहीं बल्कि शहीद और सन्त समझा जाता है। यह बात बड़ी विवादास्पद है कि एक राजकुमार सत्ता के लिए अपने ही बाप से लड़े, तो भी सन्त समझा जाय। डा० त्रिपाठी का इस विषय में कथन उल्लेखनीय है। **"भारत का इतिहास क्या होता?" यदि जहाँगीर के स्थान पर खुसरो उत्तराधिकारी बना होता, इस बात का उत्तर कोई इतिहासकार देने को प्रस्तुत नहीं। निःसन्देह खुसरो जहाँगीर का पुत्र था, पर बहुत सी बातों में वह अपने पिता से बढ़कर था। वह विचारशील, सभ्य तथा गम्भीर था। उसमें अपने पिता का कोई दुर्गुण न था। न उसमें सुरा के प्रति रुचि थी, न सुन्दरी के लिए वह व्यग्र था। उसकी मनोहर आकृति, उसका व्यक्तिगत स्वरूप, समाज में सम्मान, विशुद्ध चरित्र, उसकी उदार भावनाओं तथा उसके विनम्र हृदय ने उसे पितामह का प्रिय बना दिया था। साथ ही वह अमीरों तथा जनता का भी प्रिय बन चुका था।** †

---

† "What would have been the history of India had Khusrau succeeded Akbar instead of Jahangir, is a question, no historian can undertake to answer. There is, however, no doubt, that though the son of Jahangir, he was in many respects superior to his father. Thoughtful, cultured and sober, he had none of the vices which disgraced the character of Jahangir. He had no fondness for wine nor anyweakness for women. His pleasant features, personal charms; social grace, purity, of character. liberal views, dignified manners and kind and affectionate heart had made him pet of his grand father, Akbar and extremely popular with the masses and a large section of nobles."

Dr. Tripathi.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कन्धार :— (१६०६–०७ ई०) कन्धार की स्थिति व्यापारिक तथा सैनिक दोनों ही दृष्टिकोणों के अनुसार महत्त्व पूर्ण थी । यही कारण है कि वह भारत तथा फारस के बीच कलह का कारण बना । वह भारत का सिंहद्वार कहा जाता है । अनेक विदेशियों ने भारत आने के पूर्व इसी स्थान को अपना आधार बनाया । इस पर अधिकार होने के अनन्तर काबुल पर भी सरलता से अधिकार किया जा सकता था । बाबर ने इसे १५२२ ई० में ले लिया था। पर १५५८ ई० में हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् पुनः वह फारस के अधीन हो गया था । इसका उस समय अधिकारी शाह मिर्ज़ाहुसेन था । अकबर बहुत भाग्यशाली था कि उसे बिना प्रयास के ही यह हाथ आ गया था (१५९४ ई०) । अकबर की मृत्यु के उपरान्त जब खुसरो का विद्रोह हुआ, तो शाह अब्बास ने उसे अपने अधिकार में करना चाहा ।

इस दृष्टि से शाह अब्बास ने खुरासान के अध्यक्ष को उत्तेजित किया और कन्धार पर आक्रमण करा दिया । इस समय कन्धार का रक्षक शाहबेगखां था । उसने डटकर आक्रमण का सामना किया । साथ ही जहाँगीर ने उसकी सहायता के लिए एक सेना और भेज दी । इस सेना को देखकर फारसी सैनिकों के पैर उखड़ गये और वे घेरा उठा कर लौट गये । जब शाह अब्बास की यह चाल काम न आयी तो उसने जहांगीर को लिखा कि वह इस आक्रमण से बिल्कुल सम्बन्धित न था । ये तो कुछ उच्छृङ्खल फारसी थे, जिनका उद्दण्डतापूर्ण व्यवहार उसे बहुत अप्रिय लगा । इस तरह आचरण करने के लिए उनको वह दण्ड देगा । इस प्रकार अपनी मीठी-मीठी बातों से उसने जहाँगीर को बहका दिया ।

जहाँगीर तो स्वयं इस संकट से बचना चाहता था । उसने उसकी रक्षा की चिन्ता छोड़ दी । आखिर कन्धार मुग़लों के अधिकार से निकल गया । शाह अब्बास बराबर अपने दूत मुग़ल दरबार में भेजता रहा (१६१५, १६,२० ई०) १६२१ ई० में शाह अब्बास ने एक विशाल सेना कन्धार पर पुनः अधिकार करने को भेजी । जहाँगीर ने समाचार पाते ही खुर्रम से जाने को कहा । खुर्रम बहुत होशियार था । वह यह देख रहा था कि यदि मैं उधर गया, तो नूरजहाँ की बन आयगी । वह मुझे इसी बहाने दूर भेज कर शहरयार के उत्तराधिकार को पक्का करना चाहती है । इसका फल यह हुआ कि खुर्रम कन्धार तो नहीं ही गया, बल्कि उसने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । थोड़े ही समय में कन्धार पर फारसियों का अधिकार हो गया जिसके लिए जहाँगीर कुछ न कर पाया । उसने बस, शाह अब्बास की भर्त्सना की कि वह झूठा और धोखेबाज है । जहाँगीर इस समय स्वयं बीमार था, अतः स्वास्थ्य लाभ के लिए

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

काश्मीर गया हुआ था । उसने परवेज को भी भेजना चाहा, पर आसफखां के संकेत पर वह भी न गया । आखिर कन्दहार जहाँगीर के थोड़े से पहले आलस्य और पश्चात् को सही स्थिति न समझने के कारण मुग़ल अधिकार से निकल गया । डा० त्रिपाठी का मत है कि शाहजहाँ ने वस्तुतः जाने से सीधी इन्कार न की थी, बल्कि कहा था कि वर्षा के बाद जाऊँगा । इस बीच उसका मंशा यह था कि समस्त सेना पर उसका अधिकार हो जावे । जहाँगीर की यह भूल थी कि खुर्रम सेना पर अधिकार कर लेगा तो कार्य बिगड़ जायगा । अतः उसे पूरा अधिकार दे देना था ।

नूरजहाँ—जहाँगीर का इतिहास वस्तुतः नूरजहाँ का इतिहास है । कम स्त्रियां उसके समान राजनीति पटु और बहादुर हुई हैं । उसके पति ने राज्य नहीं किया बल्कि उसी ने किया । नूरजहां मिर्ज़ा ग्यासबेग की पुत्री थी । मिर्ज़ा ग्यासबेग तातार सुल्तान के वज़ीर तेहरान निवासी ख्वाज़ा मुहम्मद शरीफ का पुत्र था । कुछ ऐसी विषम परिस्थिति थी कि मिर्ज़ा ग्यासबेग को अपना भाग्य आज़माने के लिए भारत की ओर चलना पड़ा । वह एक धनी सौदागर मलिक मसूद के साथ भारत आ रहा था, कि मार्ग में कन्दहार में उसके एक पुत्री उत्पन्न हुई । भारत पहुँचकर मलिक ने मिर्ज़ा को अकबर से मिला दिया जहाँ स्वयं मिर्ज़ा की प्रतिष्ठा दिन-ब-दिन बढ़ने लगी । धीरे-धीरे वह अपने परिश्रम तथा अपनी ईमानदारी की बदौलत काबुल का दीवान हो गया ।

जब मिर्ज़ा ग्यास बेग की पुत्री मेहरुन्निसा १७ वर्ष की हुई तो उसने उसका विवाह अली कुलीबेग इस्तग्लू से कर दिया । अली कुली भी फारस का निवासी था । वह अकबर की सेना में नौकर था । कहा जाता है कि मेहरुन्निसा और सलीम का प्रेमालाप हो चुका था । वे एक दूसरे से विवाह के इच्छुक थे, पर अकबर को यह सम्बन्ध न भाया था । अतः उसने मेहरुन्निसा का विवाह अली कुली से करा दिया था । साथ ही उसे सलीम की दृष्टि से दूर रखने के लिए अकबर ने अलीकुली को बंगाल में जागीर दे दी थी । अलीकुली एक साधारण वंश का था । जब सलीम को मेवाड़ के विरुद्ध जाने के लिए अकबर ने आज्ञा दी, तो अलीकुली उसके साथ था । उसने इन्हीं दिनों एक चीते का शिकार किया । इससे प्रसन्न होकर सलीम ने उसे शेर अफ़गन (शेर को गिराने वाला) की उपाधि दे दी । जब सलीम ने विद्रोह किया तो शेर अफगन ने उसका साथ छोड़ दिया । मगर जहांगीर ने अपने राज्याभिषेक के उपरान्त उसे क्षमा कर दिया, उसकी जागीर बनी रहने दी और बंगाल भेज दिया ।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सन् १६०७ ई० के लगभग बंगाल में अशान्ति थी। अभी तक वहाँ के अफ़ग़ानी अपनी खोई हुई शक्ति पुनः पाने की चेष्टा कर रहे थे। जहाँगीर को सूचना मिली कि शेर अफ़ग़न भी उसका साथ दे रहा है। उसको यह सहन न हुआ। उसने बंगाल के गवर्नर कुतुबूद्दीन से जो वहाँ मानसिंह के पश्चात् नियुक्त हुआ था, कहा कि इस विद्रोही को दरबार में भेजो। गवर्नर ने उसे बन्दी बनाना चाहा। जब कुतुबुद्दीन के सेवक शेर अफ़ग़न के समीप आये तो वह क्रोध से उबल पड़ा और बोला, यह क्या मज़ाक है। जब कुतुबुद्दीन ने उसे यह समझाने की चेष्टा की कि वह क्या चाहता है तो शेर अफ़ग़न ने उस पर घातक बार किया, जिससे कुतुबुद्दीन घायल हो गया। इतना देखते ही मुग़ल सैनिकों ने शेर अफ़ग़न का काम तमाम कर दिया। आखिर मेहरुन्निसा अपनी पुत्री लाड़ली बेगम के साथ दरबार में भेज दी गयी। दरबार में आने पर वह सुल्तान सलीमा बेगम की देख रेख में रख दी गयी। यह घटना १६०७ ई० की है। इसके चार वर्ष पश्चात् कहीं जहाँगीर की दृष्टि उस पर पड़ी। चार वर्ष के बीतने पर वह अपने दुःख को भी भूल चुकी थी, अतः विवाह करने को राज़ी कर ली गयी तथा जहाँगीर की पत्नी हुई। इस विवाह से उसके तथा उसके परिवार का भाग्योदय हुआ।

इस स्थल पर एक शंका उठती है, कि जहाँगीर इस वध के लिए उत्तरदायी था या नहीं? डा० वेणीप्रसाद जी का कथन है कि उसके बध की कहानी एक कोरी कल्पना है, जो बाद के इतिहासकारों ने गढ़ ली है। आपका मत है कि (१) इसकी चर्चा तत्कालीन ग्रंथों में नहीं है, न इस घटना को योरुपीय लेखकों ने ही लिखा है। योरोपीय लेखक तो मुग़लों के कलंकों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर लिखने वाले रहे हैं। कहीं भी इस बात का संकेत नहीं मिलता कि अकबर ने उस समय सलीम को विवाह करने से मना किया हो, फिर अकबर को उसके विवाह से आपत्ति भी क्या थी। ऐसे विवाह तो उस समय नित्य ही हुआ करते थे। प्रत्येक सम्राट न जाने कितनी पत्नियां रखता था, उनकी कोई गणना निश्चित न थी। इस विषय में इस्लाम का नारा भी व्यर्थ था, क्योंकि इस्लाम में ४ पत्नियों की अनुमति है। (२) जाति पाँति भी इस विषय में कोई न पूछता था। (३) वस्तुतः उस युग में किसी सुन्दर रमणी का सतीत्व सुरक्षित न था। (४) यदि मान भी लें कि अकबर यह विवाह न चाहता था; तो क्या अकबर जैसे चतुर सम्राट के लिए यह विवेक का कार्य होता कि वह उसी शेर अफगन को सलीम के साथ रखता।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सलीम भी अपने प्रतिस्पर्द्धी से कभी प्रसन्न न हो सकता था, न उसके समीप जागीर रहने दे सकता था। विशेषकर सलीम के विद्रोह पर शेर अफगन ने सलीम का साथ छोड़ दिया था और अकबर से जा मिला था। इस स्थिति में सलीम अपने शासनकाल में उसका बदला अवश्य लेता। (५) यदि नूरजहाँ यह जान पाती कि उसके पति की हत्या में जहाँगीर का हाथ है, तो कदाचित् विवाह को उद्यत न होती। (६) यह भी नितान्त स्वाभाविक था कि शेरअफगन की मृत्यु के पश्चात् उसकी विधवा को उसके श्वसुर आदि के समीप पहुँचा दिया जाता। इस मत के मानने वालों का कहना है कि जहाँगीर ने नूरजहाँ को सर्वप्रथम १६११ ई० में ही देखा। वह मुग्ध हो गया और उसने उसे पत्नी रूप से रख लिया।

पर डा० ईश्वरी प्रसाद का मत है कि यह सम्भव था कि सलीम ने मेहरुन्निसा से प्रेमालाप किया हो और वह उसे उस समय न प्राप्त कर सका हो। शेर अफग़ान की हत्या में उसका हाथ भी रहा हो। आपका कथन है कि डा० वेणी प्रसाद के सारे तर्क नकारात्मक हैं, उनमें बल नहीं है। पश्चात् के इतिहासकार जो लिखते हैं उसका खण्डन कैसे हो सकता है ? इन इतिहासकारों ने आखिर यह कल्पना क्यों की ? फिर बाद के इतिहासकार तथ्य की ठीक खोज कर सकते हैं; निश्चित ही तत्कालीन इतिहासकार नहीं; क्योंकि वे तत्कालीन प्रभाव से अछूते रहते हैं।

(२) शेर अफगन के ऊपर किसी राजद्रोह का आरोप न था, जो उस की हत्या करा दी जाती। उस पर केवल सन्देह प्रकट किया गया कि वह अफगानों का साथ दे रहा था।

(३) सबसे बड़ी बात तो यह है कि जहाँगीर अपने जीवन की प्रत्येक घटना का विशद वर्णन करने वाले व्यक्तियों में था पर उसने नूरजहां के विवाह की तीन वर्ष तक कोई चर्चा न की। इस दुराव में कोई तथ्य है।

(४) नूरजहाँ के भाई और पिता के मौजूद होते हुए नूरजहाँ को दरबार में रखने की क्या तुक थी। क्या अन्य जागीरदारों के मरने पर ऐसे ही उनकी पत्नियों को भी रखा गया। शेर अफगन के विरुद्ध राजद्रोह का अपराध लगाया जाता है, पर क्या कभी उसे यह बताया गया था कि वह इसका अपराधी है ! यहाँ एक बात अवश्य उठती है कि यदि जहाँगीर को यही करना था तो वह सम्राट होनें के पश्चात् ४ वर्ष तक चुप क्यों बैठा रहा ? इसके दो ही कारण हो सकते हैं, पहले तो वह राजनीतिक उलझनों में पड़ा रहा हो, दूसरे नूरजहाँ को इतना घोर दुःख रहा हो कि वह प्रस्तुत ही न हुई हो। अथवा जहाँगीर शेर अफगन की मृत्यु का लांच्छन अपने सर न लेना चाहता हो।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

एक डच लेखक डी० लाय ने "भारत का वर्णन" तथा "भारतीय इतिहास के कुछ अंग" में स्पष्ट लिखा है कि "जहाँगीर अकबर के शासनकाल में ही नूरजहाँ पर आसक्त हो गया था, पर उसका शेर अफगन से विवाह होने के कारण जहाँगीर का मनोरथ पूरा न हुआ था।" ‡

इस प्रकार यह विवाद अभी भी एक विवाद है, जब तक कोई ठोस प्रमाण किसी ओर न प्राप्त हो जाय।

मेवाड़ का समर्पण--अकबर अपने जीवन भर मेवाड़ के पीछे पड़ा रहा, उसने उसको बर्बाद भी किया, पर वह पूर्ण रूप से राणा को दबा न सका था। उधर राणा भी अपने व्रत में अटल था। वह मरते समय भी यही बचन लेकर इस असार संसार से चला था कि मेवाड़ भूमि पर इस्लाम को न आने दिया जायगा। १५९७ ई० में उसका पुत्र अमरसिंह उसका उत्तराधिकारी बना। अकबर ने जहाँगीर को अपने जीवन काल में मेवाड़ पर आक्रमण करने की आज्ञा दी थी, पर वह उसे अपने स्वार्थवश टाल गया था। जब जहाँगीर स्वयं गद्दी पर बैठा तो उसने इस संघर्ष का अन्त करना चाहा। अमरसिंह यद्यपि राणा की भाँति अजेय न था, पर उसने अपने पूर्वज की नीति को अपनाया। वह भी एक वीर सैनिक तो था ही। अतः जहाँगीर ने मेवाड़ को कुचलने के लिए अपने दूसरे पुत्र परवेज़ को २०००० अश्वारोहियों के साथ भेजा।

अमरसिंह ने बड़ी बीरता से मुगलों का सामना किया। देवार के दर्रे पर युद्ध हुआ, जो अनिर्णीत रहा। इधर खुसरो का विद्रोह चल रहा था, अतः घेरा अधिक दिन तक न चलाया जा सका। दो वर्ष के बाद १६०८ ई० में जहाँगीर ने पुनः यत्न किया। इस बार उसने महावत खां को एक विशालवाहिनी के साथ भेजा। महावत खां ने बहुत तूफान मचाया, आखिर अमरसिंह को पर्वत मालाओं में शरण लेने को बाध्य किया। पर इसका भी कोई फल न निकला, अतः १६०९ ई० में महावत खां को वापस बुला लिया गया और अब्दुल्ला खां को उसका अध्यक्ष बनाकर भेजा गया। थोड़ से छुट-पुट युद्धों के अतिरिक्त अब्दुल्ला खां भी कुछ न कर सका। अतः उसको भी वापस बुला लिया गया और उसके स्थान पर अजीज कोका भेजा गया। १६१३ ई० में जहाँगीर स्वयं अजमेर तक गया जिससे शत्रु को भयभीत कर सके। साथ ही शाहज़ादे खुर्रम

---

‡ "Jahangir had been in love with Nurjahan even when she was a maiden during the life time of Akbar, but her betrothal to Sher Afgan proved an obstacle in in the way of marriage."

De Lact.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

को उसने मेवाड़ के विरुद्ध अभियान की पूरी बागडोर सौंप दी। १६१४ ई० में पूरी तैयारी के साथ पुन: आक्रमण किया गया। इसी बीच में कोका और खुर्रम में मत-भेद हो गया, अत: अजीज कोका को भी वापस बुला लिया गया। खुर्रम ने अकेले ही मेवाड़ में आतंक जमा दिया। उसने गाँव व नगर जलाये, मन्दिर तुड़वाये, राजपूतों को भूखों मारा। इतने पर भी राजपूत उसका मुकाबला करते रहे। पर वर्षों के इस निरन्तर युद्ध से दोनों दलों को भारी क्षति उठानी पड़ी। इसमें मुग़लों के पास तो अपार साधन थे, पर मेवाड़ की पर्वती भूमि राजपूतों को कितने दिन टिका सकती थी। राजपूत ऊबने लगे। उन्होंने राणा को खुर्रम से सन्धि करने के लिए प्रेरित किया। राणा भी अपनी परिस्थिति से विवश हुआ। उसके पुत्र कर्ण ने भी इसी का समर्थन किया, आखिर राणा ने खुर्रम से बात-चीत आरम्भ की। खुर्रम तो यह मना ही रहा था, उसने जहाँगीर से सन्धि करने का पूरा अधिकार ले लिया। खुर्रम राणा से मिला। उसको बहुत सी भेंट दी (घोड़े, हाथी, रत्न आदि) उसका स्वागत किया और बड़ी नीति कुशलता से उससे सन्धि कर ली। सन्धि की शर्तें ऐसी रखीं जो राणा को शीघ्र ही मान्य हो गयीं। उसे राज्य वापस दे दिया गया, तथा वैवाहिक सम्बन्ध के लिए बाध्य न किया गया। उसका मुग़ल दरबार में रहना भी अनिवार्य न रखा, बस कर्ण उसका प्रतिनिधित्व वहाँ कर सकता था। हाँ चित्तौड़ के दुर्ग की सुरक्षा उसके हाथ न रखी गयी।

इस सन्धि के द्वारा मुग़ल तथा राजपूतों के बीच एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। इससे पहले किसी सीसोदिया ने मुग़लों की अधीनता स्वीकार न की थी। वे परस्पर वैमनस्य की भावना से ओत-प्रोत थे। इस सन्धि से उस कटुता में कुछ कमी आ गयी। इसका श्रेय खुर्रम तथा जहाँगीर को है। ये सम्बन्ध औरंगजेब के पूर्व तक ठीक बने रहे। कुछ लेखकों ने राणा को अपनी वंशगत नीति को छोड़कर मुगलों से सन्धि कर उसे कलंकित किया है, पर यह आरोप आधारहीन है। इसके स्थान पर यही सम्भव था कि या तो वह बन्दी बना लिया जाता अथवा तलवार के घाट उतर जाता और मेवाड़ अधीन हो जाता, क्योंकि अमरसिंह के साथी उसे छोड़ने लगे थे। उसके पास सैनिक न रह गये थे।

काँगड़ा विजय १६२० ई०--पंजाब में कांगड़ा के हिन्दू राज्य की विजय भी जहाँगीर के काल की एक महत्वपूर्ण घटना है। कांगड़ा का दुर्ग झेलम और रावी के बीच पहाड़ी प्रदेश में स्थित नगरकोट का दुर्ग था। इस दुर्ग को अकबर भी न जीत पाया था। इसकी स्थिति बहुत ऊँची पहाड़ी पर थी, इसके अन्दर सुन्दर भवन थे। यह इतना प्राचीन था, कि सहसा इसकी निर्माण तिथि

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

का भी ठीक ज्ञान नहीं होता। सबसे विचित्र बात तो यह थी कि इसके प्रारम्भ से अन्त तक एक ही वंश ने इस पर राज्य किया। इसे कुछ नहीं तो ५२ बार घेरा गया था, मगर यह किसी के हाथ न आया था। इसकी विजय का श्रेय जहाँगीर को मिलना था। जहाँगीर ने राजकुमार खुर्रम को इसका नेतृत्व सौंपा। खुर्रम के साथ उसका सबसे बड़ा सहायक राजा विक्रमाजीत था। दुर्ग का घेरा महीनों चला पर कोई टस से मस न हुआ, इस पर जहाँगीर लिखता है--

"किले को जाने वाली रसद बन्द कर दी गयी। थोड़े ही समय में किले की अन्दर की रसद समाप्त हो गयी। फिर भी चार माह तक लोग सूखी घास या इसी प्रकार की अन्य चीज़ों पर जिन्हें वे उबाल कर खा लेते थे, जीवित रहे। पर जब मृत्यु उनके सामने नाचने लगी और मुक्ति का कोई साधन न रहा तो उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया।" ‡

किश्तवार विजय (१६२२ ई०)--इतने विशाल साम्राज्य का अधिपति होकर भी जहाँगीर किश्तवार को न पा सका था। अकबर के समय भी इसके लिए प्रयत्न किया गया था, पर सफलता न मिली थी। किश्तवार कश्मीर का एक पड़ोसी भाग था। कश्मीर के गवर्नर दिलावर खां ने किश्तचार के राजा को जहाँगीर के सम्मुख उपस्थित किया, मगर दिलावर खाँ के अत्यावार के कारण वहाँ इतनी अशान्ति हुई कि जहाँगीर को उसकी सहायता के लिए एक बड़ी सेना भेजनी पड़ी। १६२२ ई० में युद्ध समाप्त हुआ तथा किश्तवार में भी शान्ति हो गयी।

अहमदनगर से युद्ध (१६१०-२० ई०)--अहमदनगर की विजय अकबर कर चुका था। उसने निजाम शाही वंश को दबा लिया था। जहाँगीर ने इस विषय में अपने पिता की नीति को अपनाया। इस समय जहाँगीर को वस्तुतः अपने किये का ही फल भोगना था क्योंकि जब अकबर दक्षिण गया था और विजय में लगा था, तो वह जहाँगीर ही था, जिसके विद्रोह के कारण अकबर को शीघ्र लौटना पड़ा था और अकबर सारे काम को पूरा न कर

‡ "The ingress of provisions was completely stopped. In time the fortress was in difficulty, no corn or food remained in the place, but for four months longer the men lived upon dry fodder and similar things, which they boiled and ate, but when death stared them in the face and no hope of deliverence remained the place surrendered."

Mughal Empire in India, Page 387.
by S. R. Sharma.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पाया था। दूसरे इस समय तक निज़ाम शाही वंश को एक बहुत ही योग्य मंत्री मिल गया था। यह था मलिक अम्बर। मलिक अम्बर अबीसीनियां का निवासी था। वह शासन कार्य में बड़ा पटु था। डा० ईश्वरीप्रसाद जी लिखते हैं—

"मलिक अम्बर साधारण प्रतिभा का मनुष्य न था। उसमें असाधारण बुद्धि तथा चरित्र ही न था बल्कि वह नागरिक तथा सैनिक शासन में भी पटु था। अधिक काल तक प्रशासकीय कार्य करने के कारण उसकी निर्णय शक्ति बहुत संभल चुकी थी। इसी आधार पर वह राजनीतिक तथ्यों को बहुत अच्छी तरह समझता था। इसी के बल पर राज्य में उसका प्रमुत्व भी बहुत था।" †

उसने अनेक सुधार किये थे, इनमें कृषि तथा माल का प्रमुख था। यह ठीक राजा टोडरमल के सुधारों की भाँति था। वह सेनापति भी बहुत उच्च कोटि का था। उसने निज़ाम शाही राज्य की सैनिक शक्ति का भी संगठन किया। वही पहला व्यक्ति था जिसने युद्ध की पद्धति में नया मार्ग दिखाया। मराठों को गुरिल्ला पद्धति से लड़ना उसी ने सिखाया था।

मलिक अम्बर ने शीघ्र ही अपना खोया हुआ राज्य हस्तगत कर लिया। उसने मुग़लों को आगे बढ़ने से रोक दिया। जहाँगीर ने स्थिति को काबू में लाने के लिए खान-ए-खनान को एक बड़ी सेना लेकर भेजा। राजकुमार परवेज उसका सबसे बड़ा अधिकारी था। धीरे-धीरे इस सैनिक दल को अन्य अधिकारी भेजकर और सशक्त बनाया गया पर दक्षिण की दशा शोचनीय रही। वहाँ से फिर मुग़ल सैनिक दल लौट रहा था, क्योंकि मलिक अम्बर ने उनको मार भगाया था। खान-ए-जहाँ ने कहा कि यह सब अधिकारियों की योजनाहीनता थी, जिसके कारण ऐसा हुआ। खान-ए-खनान को तुरत वापस हो जाना चाहिये। उधर मलिक अम्बर गुरिल्ला नीति से लड़ता था। अतः १६११ ई० में मुग़लों ने अहमदनगर को घेरने के लिए

† Malik Amber was not a man of ordinary talent. Possessed of a rare intellectual powers and force of character he was equally at home in civil and military affairs. Long experience of administrative work had ripened his judgement, and given him an insight into matters of high state policy which had secured for him a position of considerable influence in the state."

Muslim Rule, P. 361,

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

विशेष प्रयत्न किया। अब्दुल्ला खां ने गुजरात की ओर से तथा खान-ए-जहाँ लोदी व मानसिंह ने बरार की ओर से आक्रमण किया, किन्तु यह योजना भी असफल रही, क्योंकि अब्दुल्ला गुजरात की ओर से वहाँ शीघ्र पहुँच गया, इधर से खान-ए जहाँ लोदी और मानसिंह न पहुँच सके। इसका फल यह हुआ कि मलिक अम्बर ने उसे मार भगाया। इस पर जहाँगीर को बड़ा क्षोभ हुआ। उसने अब्दुल्ला को वापस बुला लिया तथा खानखाना को अध्यक्षता का भार सौंपा। १६१२ ई० में पुनः युद्ध हुआ, जिसमें आंशिक सफलता मुग़लों के हाथ लगी। अतः नूरजहाँ ने एक नई तदवीर सोच निकाली। उसने खुर्रम को दक्षिण भेजने का निश्चय किया। खुर्रम १६१७ ई० में बुरहानपुर तक गया। वहीं से उसने मलिक अम्बर से लिखा पढ़ी की। मलिक अम्बर भी खर्रम से डर गया, उसने हाल ही जीता हुआ बालाघाट का प्रान्त लौटाना स्वीकार कर लिया तथा अन्य शर्तें भी मान लीं। धीरे-धीरे अहमदनगर का दुर्ग भी मुग़लों के हाथ आ गया। १५ लाख का उपहार लेकर बादशाह आदिलशाह स्वयं खुर्रम के समक्ष उपस्थित हुआ। जहाँगीर ने भी सन्धि को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया तथा आदिल को फर्जन्द (पुत्र) की उपाधि प्रदान की। इसी समय खुर्रम को "शाहजहाँ" की उपाधि से विभूषित किया गया। पर यह सब धोखा था। खुर्रम ने कोई विजय तो की न थी, केवल अपने बल के आतंक से लाभ उठाया था। अतः मलिक अम्बर जैसा राजनीतिज्ञ उस पर क्यों टिकता।

१६२० ई० में उसने सन्धि की अवहेलना कर, बीजापुर तथा गोलकुंडा की शक्ति को एक करके खान-ए-खाना पर आक्रमण कर दिया तथा उसे अहमदनगर के दुर्ग में ही बन्दी बना लिया। शेष मुग़लों ने भाग कर बुरहानपुर में शरण ली। यह जानकर दक्षिण में पुनः शाहजहाँ की याद की गयी। इस समय वह एक ओर अपने भाई खुसरो की निगरानी कर रहा था, दूसरी ओर कांगड़ा के अभियान में व्यस्त था। फिर भी अपना दक्षिण जाना आवश्यक जान कर वह गया। उसने जाते ही मराठों को पीछे हटा दिया। इसके अनन्तर वह अहमदनगर गया, जहाँ कि मुग़ल सेना अब भी घिरी थी। यह देखकर उसमें भी बल आ गया। उधर दक्षिण वालों ने घेरा उठा लिया। आखिर मलिक अम्बर पुनः सन्धि करने पर विवश हुआ। दक्षिण वालों ने मुग़लों से छीने हुए प्रदेश लौटा दिये। अहमदनगर, बीजापुर तथा गोलकुंडा की रियासतें मुग़ल आधिपत्य में आ गयीं। इस घटना से शाहजहाँ की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी। इसी बीच उसने खुसरो का अन्त करवा दिया। पर चूँकि वह नूरजहाँ से सशंकित रहता था, अतः शीघ्र ही दक्षिण से लौट आया। इसका फल यह हुआ

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कि जब तक (१६२६ ई०) मलिक अम्बर जीवित रहा, दक्षिण की स्थिति ऐसी ही डावाँडोल रही।

प्लेग की महामारी (१६१६ ई०)--१६१६ ई० में प्लेग की महामारी फैली। इसका क्षेत्र सरहिन्द से लेकर दिल्ली तक था। जहाँगीर ने इसका चित्रण इस प्रकार किया है।

"जब महामारी प्रारम्भ होती थी, एक पागल सा चूहा अपने बिल से बाहर आ जाता था। वह अपने को दीवाल तथा दरवाजों से टकरा कर समाप्त कर देता था, यदि इसी संकेत को पाकर घर में रहने वाले जंगल में भाग जाते तब तो बच जाते थे अन्यथा सारा गाँव का गाँव मौत के मुंह में होता था। यदि कोई मुर्दे को छू भर लेता, या उसके कपड़े ही छू लेता तो वह बच नहीं सकता था। दूसरों की अपेक्षा हिन्दू इसके शिकार अधिक हुए। लाहौर में इसका प्रकोप और भी भीषण था। वहाँ एक घर में दस या बीस प्राणी मर जाते थे। उनकी दुर्गंध से उनके पड़ोसियों को जंगल में भागना पड़ता था। मृतक ताले में बन्द रहते थे। कोई उनके निकट न जा सकता था।" *

प्लेग का प्रकोप कश्मीर में भी कम न था। वहाँ ी यदि कोई मृतक के समीप गया नहीं कि स्वर्ग-लोक चला गया। एक गाय ने यदि वह घास खा ली जिस पर मुर्दा पड़ा था, तो मर गयी। एक कुत्ते ने यदि उस गाय का

* "When it was about to break out, a mouse would run out of its hole as if mad, and striking itself against the door and walls of the house, would expire. If immediately after this signal the occupants left the house and went to the jungle, their lives were saved, if otherwise, the inhabitants of the whole village would be swept away by the hand of death. If any person touched the dead or even the clothes of a dead man, he also could not survive the fatal attack. The effect of the epidemic was comparatively more severe upon Hindus. In Lahore its ravages were so great that in one house 10 or 20 persons would die, and their surviving neighbours annoyed by the stench would be compelled to desert their houses full of habitations. The dead were left locked, and no person dared to go near them through fear of his life."

V. D. Mahajan, P. 115.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मांस चख लिया तो चल बसा । यह दशा वर्षों बनी रही । नित्य सौ दो सौ मर जाते थे । इसका मुग़ल सम्राटों के समीप कोई चारा न था ।

शाहजहाँ का विद्रोह (१६२३–२५ई०) :—जहांगीर और नूरजहाँ का सम्पर्क एक वैवाहिक सम्पर्क ही न था बल्कि नूरजहाँ ने आते ही जहाँगीर पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था । धीरे-धीरे उसका दल इतना प्रबल हो गया था कि परस्पर वैमनस्य की जड़ बन गया । जहाँगीर को मद्यपान से ही छुट्टी न थी । साथ ही जहाँगीर इतना जीर्ण-शीर्ण हो गया था कि उसे अपना जीवन सँभालना दूभर था । नूरजहाँ के लिए यह भय की बात थी । अपने १० वर्ष वैवाहिक जीवन के पश्चात् नूरजहाँ सोचने लगी कि कहीं पतिदेव चल बसे तो उसका सारा प्रभुत्व ही समाप्त हो जायगा । अभी तक का समय उसका महत्त्वाकांक्षा में बीता था । उसे भय था शाहजहाँ उत्तराधिकार पा लेगा । वह शाहजहाँ की योग्यता से परिचित थी । वह जानती थी, कि शाहजहाँ उसकी एक न सुनेगा । इस मतभेद का कारण राजनीतिक तो था ही, कुछ धार्मिक भी था । नूरजहाँ उदार शिया थी, जबकि खुर्रम कट्टर सुन्नी । खुर्रम दरबार में शियाओं का प्रभुत्व न देख सकता था । नूरजहाँ चाहती थी कि जहाँगीर का पुत्र शहरयार उसका उत्तराधिकारी बने । इसकी भूमिका सही उतारने के लिए नूरजहाँ ने शेरअफगन से उत्पन्न अपनी पुत्री लाड़ली बेगम का विवाह भी १६२१ ई० में शहरयार से कर दिया । दैवयोग से कुछ ही समय में नूरजहाँ के माता-पिता चल बसे । इनका भी उसे बड़ा सहारा रहता था । अब तो उसके तथा जहाँगीर के सम्बन्धों में और भी तनाव हो गया । इसी समय कंधार के ऊपर फारस वालों का आक्रमण हुआ, तो नूरजहाँ ने प्रयास किया कि शाहजहाँ कन्धार जाये । कन्धार जाने की शाहजहाँ को आज्ञा भी हुई, पर शाहजहाँ ने कहा कि यदि उसे सेना का सम्पूर्ण अधिकार दे दिया जाय, पंजाब का गवर्नर बनाया जाय और उसके कुटुम्ब को रखने के लिए रणथम्भौर का दुर्ग दे दिया जाय, तो वह वर्षा काल के बाद जा सकेगा । वह वस्तुतः नूरजहाँ से सशंकित रहता था । वह जानता था कि यदि कहीं वह किसी बहाने राजधानी से दूर गया और उसके पिता का स्वर्गवास हुआ, तो नूरजहाँ शहरयार को सम्राट बना देगी ।

इसी समय एक और दुर्घटना हो गयी । शाहजहाँ धौलपुर की रियासत चाहता था, और इस आशा में कि मिल ही जायगी, उसने अपने सेवक दरियाँ खां को वहाँ अधिकार लेने को भेजा ।

पर नूरजहाँ इस रियासत को पहले ही शहरयार के नाम करवा चुकी थी । अतः शहरयार के सेवक शरीफ उलमुल्क तथा दरियां खां में मुठभेड़ हो

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

गयी । आपस के संवर्ष में शरीफ उल्मुल्क के चोट आ गयी । कई व्यक्ति मारे गये । इस घटना से नूरजहाँ ने पूरा-पूरा लाभ उठाया । नूरजहाँ के उसकी (खुर्रम) शिकायत करने पर जहाँगीर ने उसे और डाँटा, और दक्षिण की पूरी सेना दर्बार में भेजने का आदेश दिया ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि यदि शाहजहाँ सुरक्षित रहना चाहता है तो वह बेगम के आक्रमण से बचे ।

नूरजहाँ ने अपने लिए एक बचाव और कर लिया । वह अपने भाई आसफ खां से भी भयभीत रहती थी, क्योंकि शाहजहाँ आसफखाँ का जामाता था और आसफखाँ की सहानुभूति शाहजहाँ के प्रति थी । अतः नूरजहाँ ने काबुल से महावतखां को जो एक विख्यात सैनिक था, बुला लिया तथा उसे एक उच्च पद प्रदान किया ।

इस घटना से शाहजहाँ और भी निराश हो गया और खुले रूप से विद्रोह कर बैठा । जहाँगीर को जब यह समाचार मिला तो वह बहुत दुःखी हुआ । उसने कहा :—

"समाचार मिला है कि खुर्रम ने नूरजहाँ बेगम तथा शहरयार की जागीरों पर अधिकार कर लिया है । उसके माण्डू पर बहुत दिन रहने से, उसके पत्रों में अनुचित तथा मूर्खतापूर्ण बातों से में बहुत असन्तुष्ट हूँ । मैंने उसकी धृष्टता से समझ लिया है कि उसका दिमाग घूम गया है । आगे जो समाचार मिले हैं, उनसे विदित होता है कि मेरी सब दया तथा भलाई के होते हुए भी वह उल्टी सोचता है । इसीलिए मैंने अपने पुराने सेवक राजा रोज अफज़म को भेजा कि उसकी धृष्टता तथा शैतानी के कारण का पता लग जाय । मैंने एक फरमान भी भेजा, जिसमें लिखा था कि वह अपना काम देखे, अपने कर्त्तव्य से अलग न हो । उसे शाही खज़ाने से जो जागीरें दी गयीं उन्हीं पर सन्तोष करना चाहिये था । मैंने उससे यह भी कहा कि तू मेरे पास मत आ, बस अपनी फौज भेज दे, जिसकी कंधार के अभियान के लिए आवश्यकता है । अब अगर वह मेरी आज्ञा के विपरीत चलता है तो उसे पछताना पड़ेगा । अभी इतिबारखाँ तथा आगरे के अन्य अधिकारियों का पत्र आया है, कि खुर्रम अपनी कुचाल से बाज नहीं आ रहा और आज्ञा मानने के बजाय आज्ञा उल्लंघन की सोच रहा है । साथ ही वह आगरे पर आक्रमण करने वाला है ।

"आसफ खां का एक पत्र आया है जिसमें लिखा है कि उस कृतघ्न बालक ने सारी शिष्टता ताक में रख दी । उसने खुल्लम-खुल्ला विद्रोह कर दिया । और भी कुछ ऐसी बातों का पता लगा है, जिससे आसफखां ने कोष भेजना उचित नहीं समझा बल्कि स्वयं मेरे समीप आ रहा है ।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

"यह सब समाचार पाकर ही मैं उस बदनसीब (स्याहवक्त) को दण्ड देने की सोच कर चल पड़ा। मैंने नदी को सुल्तानपुर पर पार किया तथा उसको आज से वे दौलत कहने का आदेश दे चुका। जो कुछ मैंने उसके लिए किया है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। न मैं अपनी वेदना को ही आँक पा रहा हूँ जो मुझे उसके पीछे दौड़ने में इस भीषण गर्मी में सहनी पड़ रही है। वह मेरा अब पुत्र ही नहीं रह गया।

"इस समय मेरे बच्चों को चाहिये था कि कंधार और खुरासान में लड़ते जिसके चले जाने से इस विशाल साम्राज्य की सारी प्रतिष्ठा धूल में मिली जा रही है। इसमें उल्टे ही यह दुष्ट बाधक हो रहा है। मेरा तो ईश्वर पर भरोसा है, वही इस संकट से उबारेगा।" *

शाहजहाँ अपने मुख्य निवास स्थान माण्डू से चला। पहले उसने फतेहपुर सीकरी पर अधिकार करना चाहा, पर उसे सफलता न मिली तो वह आगरे की ओर बढ़ा। इसके अनन्तर १६२३ ई० में उसकी बिल्लोचपुरे (दिल्ली के दक्षिण) में शाही सेना से मुठभेड़ हुई जिसमें उसने हार खाई। इस युद्ध में उसका सबसे बड़ा सहायक राय रायाँ राजा विक्रमाजीत मारा गया। इसके अनन्तर शाही फौज को सबल बनाने के लिए महावत खां आगया। जहाँगीर स्वयं भी अजमेर तक गया जिसके कारण शाहजहाँ हताश होगया और दक्षिण की ओर गया। पहले वह मांडू पहुँचा। वहाँ भी जब उसे सुरक्षा न मिली तो वह असीरगढ़ पहुँचा। वहाँ से उसने मलिक अम्बर से सहायता की प्रार्थना की, पर मलिक अम्बर ने मुग़ल सम्राट का कोप-भाजन न बनना चाहा। अतः उसने सीधा सा जवाब दे दिया। जब शाही सेना न उसे अधिक दबाया तो उसने चढ़ी हुई ताप्ती नदी को पार कर गोलकुंडा की ओर का मार्ग अपनाया। गोलकुंडा के सुल्तान ने भी उसकी कोई सहायता न की बल्कि उसने अपना देश छोड़ जाने की प्रार्थना की। इसके अनन्तर वह तेलिंगाना होता हुआ उड़ीसा की ओर गया। यहाँ उसने बंगाल और उड़ीसा को अपने अधीन कर लिया। इसके अनन्तर उसने बिहार पर धावा करने की योजना बनाई जिससे उसका वृद्ध पिता भयभीत हो जाय। कुछ ही समय में बिहार का प्रान्त भी उसके अधीन हो गया। इसके अनन्तर उसने अवध लेने की भी चेष्टा की। इलाहाबाद के समीप शाही सेना से मुठभेड़ हुई, इसमें शाहजहाँ की ओर से भीम बड़े पराक्रम से लड़ा, पर महावत खां के कौशल, और उसकी तत्परता के कारण शाहजहाँ

---

* वाकियात्-ए-जहाँगीरी-अनुवाद—इलियट और डॉवसन Vol. VI pp. 383-85

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

को मुँह की खानी पड़ी । भीम तो खेत रहा पर शाहजहाँ प्राण लेकर भाग खड़ा हुआ । उसे लौटकर रोहताश्व के दुर्ग में शरण मिली । रोहताश्व से वह पुनः बंगाल गया । वहाँ से उड़ीसा होते हुए तेलिंगाना और गोलकुंडा की ओर गया । अन्त में पुनः अहमदनगर पहुँचा । इस बीच मलिक अम्बर तथा बीजापुर सुल्तान में अनबन हो गयी थी । इस बार मलिक अम्बर ने शाहजहाँ का स्वागत किया । शाहजहाँ ने बुरहानपुर का घेरा डाला पर जैसे ही महावत खां का सामना हुआ वह लौट आया । इस सब को देखकर उसके वीर शिरोमणि सेनापति अब्दुल्ला खां ने तो सन्यास ले लिया और ईश्वर भजन में लीन हो गया । शाहजहाँ अब और भी संकट में पड़ गया । उसमें दम न रह गया था कि वह शाही सेना का सामना करे । यद्यपि उसे मलिक अम्बर की सहायता मिल चुकी थी, पर मुग़लों के अपार साधनों के समक्ष वह व्यर्थ थी । उसके अनेक साथी तो शत्रु दल में जा मिले थे । उसका सबसे बड़ा भरोसा जिस पर था वह सन्यासी हो गया था । इस समय भी उसके पास रोहताश्व तथा असीरगढ़ के दुर्ग थे, पर बेकार थे । अतः उसे अब पिता से क्षमा-याचना करने के अतिरिक्त कुछ समझ में न आया । उसने अन्ततः पिता को पत्र लिखा तथा अपनी भुल स्वीकार की । जैसा कि डा० आशीर्वादी लाल जी लिखते हैं कि **"मृत्यु और परित्याग के कारण अपने अधिकांश सहयोगियों की सहायता से वंचित, शारीरिक और मानसिक पीड़ाओं से ग्रसित, अजेय सेना और महावत खां की सर्वत्र सफल अध्यक्षता से व्यथित शाहजहाँ के समक्ष मौत मुँह फैलाये खड़ी थी । इस परिस्थिति ने उसे अपने भावी जीवन का पथ निर्णय करने के लिए प्रेरित किया । उसकी तर्क शक्ति ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया कि वह बिना शर्त रखे ही अधीनता स्वीकार कर ले । अतः उसने सम्राट से क्षमा याचना की ।"**

इस समय नूरजहां महावत खां के व्यवहार से संतुष्ट न थी, अतः उसने महावत खां की शक्ति को रोकने के लिए जहाँगीर व शाहजहाँ में समझौता कराने में सहायता की । शाहजहाँ को लिखा कि वह रोहताश्व और असीरगढ़ के दुर्ग छोड़ दे और विश्वास के लिए अपने पुत्र दारा और औरङ्गजेब को भेज दे । शाहजहाँ ने भी बिना संकोच के बात मान ली, सारी बातें पूरी कर दी गयीं और शाहजहाँ स्वयं नासिक चला गया ।

महावत खां का विद्रोह (१६२६ ई०)––महावत खां ही वह बीर सेनानी था जिसकी बदौलत जहाँगीर शाहजहाँ को वश में कर सका था । जिस समय वह शाहजहाँ के पीछे दौड़ रहा था उस समय कभी यह न सोच सका था कि थोड़े ही समय में उसे भी शाहजहाँ की भाँति दर दर भटकना पड़ेगा । पर नूरजहाँ

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

किसी के प्रभुत्व को बढ़ने न देना चाहती थी, साथ ही महावत खां किसी की आँख बर्दाश्त न कर सकता था। उसका स्वामी केवल जहाँगीर था। अतः परस्पर कलह अवश्यम्भावी थी। नूरजहाँ यद्यपि साधारण स्थिति की रमणी थी, पर जहाँगीर के साथ विवाह होने से वह अपने को बहुत कुछ समझने लगी थी। वह सारे दरबार को अपनी मुट्ठी में रखना चाहती थी तथा अपने प्रभुत्व की स्थापना के लिए ही योजनाएँ बनाया करती थी। वह कभी भी अपनी इच्छा के विरुद्ध कोई काम न होने देना चाहती थी। उसकी कामना थी कि शहरयार को उत्तराधिकारी बनाये क्योंकि वही उसकी उंगलियों पर नाच सकता था। इसके विपरीत महावत खां उसके स्थान पर परवेज़ को बिठाना चाहता था। महावत खां की दृष्टि में शहरयार बिल्कुल अयोग्य और निकम्मा था।

आखिर एक दिन नूरजहाँ ने यह ठान लिया कि महावत खां का पत्ता काटना है। इस समय तक खुसरो न रह गया था। खुर्रम नीचा देख ही चुका था, अतः नूरजहाँ का मस्तिष्क और भी खराब था। परवेज बचा, वह महावतखां के साथ था, अतः महावत खां का इलाज आवश्यक था।

अवसर आते ही नूरजहाँ ने महावत खां को आदेश दिलाया कि वह बंगाल का गवर्नर पद स्वीकार करे और सैनिक संचालन का भार छोड़ दे। जब परवेज ने इस बात पर आनाकानी की तो नूरजहाँ ने आदेश दिया कि परवेज बुरहानपुर रहे तथा महावत खां दरबार में उपस्थित हो। इस बात को सुनकर परवेज ने खुर्रम का उदाहरण सामने रखा और चुपचाप राजाज्ञा के पालन में भलाई समझी। महावत खां ने भी उसी को मानना चाहा।

नूरजहाँ इतने से सन्तुष्ट न हुई। उसने महावत खां के विरुद्ध भ्रष्टाचार तथा राजद्रोह का अभियोग लगाया। उसने महावत खां को बंगाल के युद्ध में प्राप्त हाथी तथा जागीरदारों से प्राप्त धन का हिसाब देने को कहा। इसके अतिरिक्त महावत खां ने अपनी पुत्री का-विवाह उमर नक्शाबन्दी के पुत्र से करना स्वीकार कर लिया था पर नूरजहाँ ने उस लड़के को ही पकड़वा लिया और उसका बड़ा निरादर किया। उसमे उस लड़के को दी जाने वाली सारी सम्पत्ति को दरबार में उपस्थित करने को कहा। महावत खां समझ गया कि इस बात का अर्थ उसको तिरस्कृत करना है। अतः उसने ५०० राजपूतों की एक टुकड़ी लेकर राज दरबार की ओर प्रस्थान किया।

जहाँगीर इन्हीं दिनों कश्मीर से कुछ स्वास्थ्य लाभ कर लौटा था तथा काबुल जाने की सोच रहा था। जब जहाँगीर झेलम पार कर रहा था, महावत खां को मौका मिल गया। उसने जहाँगीर को ही बन्दी बना लिया जिससे नूरजहाँ अथवा आसफ खाँ उसके द्वारा कोई अनुचित आज्ञा न निकलवा सकें।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पकड़ना तो वह नूरजहाँ को भी चाहता था, पर वह भेष बदल कर निकल गयी। नूरजहाँ ने एक बैठक बुलाई उसमें विशेष रूप से अपने भाई आसफ खां को डाटा और कहा——

"यह सब आपकी दुर्बलता और प्रबन्धहीनता के कारण देखना पड़ रहा है। जिसका कभी किसी ने स्वप्न भी न देखा था, वह आज हो रहा है। अब आप मारे लज्जा के ईश्वर तथा मनुष्य के समक्ष गड़े जाते हैं. अब आप इससे मुक्ति का उपाय सोचिए और जो सर्वोत्तम मार्ग हो बताइए।" †

आखिर सभी ने एक मत होकर निश्चय किया कि किसी प्रकार उस ओर चलकर बादशाह सलामत को छुड़ाया जाय। जहाँगीर ने जब यह सुना तो वह बहुत संकट में पड़ गया, क्योंकि वह समझता था कि राजपूतों के सामने मुगल कुछ न कर सकेंगे। वे मुगलों को थोड़े से ही समय में एकसा कर देंगे। आखिर वही हुआ, नूरजहाँ एक हाथी पर सवार होकर चल पड़ी।

उधर से युद्ध प्रारम्भ हो गया। अनेक नदी की धार के साथ वह गये। अनेक घायल हो गये, आसफ खां भाग खड़ा हुआ। नूरजहां इस दशा को देख कर भौचक्की हो गयी। थोड़ी ही देर में सारी सेना तितर-बितर हो गयी। पर नूरजहाँ ने बुद्धि से काम लिया। उसने अपने को भी बन्दी बनवा दिया। अब क्या था? महावत खां की धाक जम गयी। वह फूला न समाया। वहाँ जाकर नूरजहाँ ने मुक्ति की दूसरी युक्ति सोच निकाली। उसने महावत खां को विश्वास दिला दिया कि वह अब उसकी बन्दिनी है। अतः उससे अनुरोध किया कि वह थट्टा की ओर जाते हुए राजकुमार खुर्रम को रोके। महावत खां ने तुरन्त एक सेना अटक की ओर भेजी जिसने आसफ खां को भी अधीन बना लिया। पर होनहार कुछ और ही था। जहाँगीर और नूरजहां सेना देखने के बहाने निकले और महावत खां से कहला दिया कि अपनी सेना अलग रखे जिस से कहीं संघर्ष न हो जाय। महावत खां बातों में आ गया और अपनी हाल ही प्राप्त की हुई शक्ति खो बैठा। उसके थोड़े से असावधान होते ही नूरजहाँ और जहाँगीर ने सारा बोझ उतार कर फेंक दिया। तुरन्त महावत खां को आज्ञा

---

† "All this has happened through your neglect and stupid arrangements. What never entered into the imagination of anyone has come to pass and now you stand stricken with shame for your conduct before God and man. You must do your best to repair the evil, and advise what course to pursue."

—Muslim Rule, P. 368.

Dr. Ishwari Prasad.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

दी कि वह अन्य सब को मुक्त कर दे। महावत खां को यह सब देखते ही बना। इसमें नूरजहाँ की बुद्धि का बल था।

विदेशियों का आगमन—विदेशियों का आगमन तो भारत में १६वीं सदी के प्रारम्भ से है, पर वे बहुत दिन तक अपना सम्पर्क मुगलों तक न ला सके थे। अँग्रेज भी इस देश में १६०० ई० में पदार्पण कर चुके थे। जब जहाँगीर गद्दी पर भी न बैठा था।

अकबर के दरबार में आये पादरी रिडोल्फ एक्वे विवा से जहाँगीर की भेंट हो चुकी थी। अपनी विद्रोह की अवस्था में जहाँगीर ने गोआ से बात करने की चेष्टा की थी, यद्यपि इसका फल कुछ न निकला था। जहाँगीर ने गद्दी पर बैठते ही अँग्रेजों को बहुत सी सुविधाएँ दीं तथा उनके चिह्नों को स्वयं अपनाया। उसका इनसे इतना स्नेह बढ़ गया था, कि उसने स्वयं अपने भतीजे (दानियाल के पुत्र) को ईसाई बनने की अनुमति दे दी थी।

जहाँगीर के समक्ष सबसे पहला अँग्रेज कप्तान विलियम हाकिन्स आया था। उस समय इंगलैंड का सम्राट जेम्स प्रथम था। वह सम्राट से बहुत सा धन भेंट रूप में लाया था, जिसे वह भारत में पुर्तगाली पादरी की प्रतिद्वन्द्विता के कारण बड़ी कठिनाई से पहुँचा सका। पुर्तगाल के पादरी ने तो हाकिन्स को मार भगाने का पूरा प्रबन्ध करा दिया था, मगर हाकिन्स तुर्की तथा फारसी स्वय बोल सकता था। उसे द्विभाषिये की भी आवश्यकता नहीं थी, अतः उसने अपना सिक्का जमा लिया। हाकिन्स मुगल दरबार में लगभग ३ वर्ष तक सम्राट का अतिथि रहा।

हाकिन्स ने जहाँगीर के विषय में बहुत कुछ लिखा है। उसने जहाँगीर का स्वभाव, दरबार का भ्रष्टाचार, प्रजा की स्थिति तथा शासन-प्रणाली सभी का वर्णन किया है। इसका वर्णन इस प्रकार है।

"जहाँगीर मदिरा बहुत पीता था। उसके दरबार में अनेक दावतें होती थीं। इनमें नौरोज की दावत प्रमुख थी। उस समय का जब्ती कानून लागू था। इसके आधार पर सरदारों की मृत्यु के बाद उनकी सारी सम्पत्ति सम्राट की हो जाती थी। उनकी आमदनी के चार साधन थे।" †

(१) अपने पूर्वजों से प्राप्त हीरे जवाहरात का धन।

(२) सरदारों की वह सम्पत्ति जो उनकी मृत्यु के उपरान्त सम्राट की हो जाती थी।

(३) विदेशी सौदागरों द्वारा लायी हुई भेंटें।

(४) भूमिकर से आय।

† He was a mixture of opposites.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सम्राट के क्रोध के समय बड़ी भयंकर अवस्था होती थी। वह ऐसे समय जीवित मनुष्य की भी खाल खिंचवा लेता, हाथियों से कुचलवा देता तथा अन्य अनेक प्रकार की यातनाएँ दे दिया करता था। सम्राट विभिन्न विरुद्ध बातों का समिश्रण था। कभी तो वह मुहम्मद बिन तुगलक बन जाता, कभी किसी को खूब दान दे डालता। वह दिन में प्रजा की पुकार तीन बार सुनता था, पर भ्रष्टाचार और अत्याचार सभी बहुत था। प्रान्तीय शासकों पर कोई नियन्त्रण न होने के कारण वे मनमानी किया करते थे।

जहाँगीर के शासनकाल में दूसरा यात्री सर टामस रो आया था। वह १६१५ ई० में भारत आया। इसे भी जेम्स प्रथम ने ही भेजा था। वह भी बहुत योग्य और सुन्दर व्यक्तित्व का यात्री था। १६१५ ई० से लेकर १६१८ ई० तक वह जहाँगीर के यहाँ रहा। उसी ने जहाँगीर से अँग्रेज व्यापारियों के लिए व्यापार करने का आज्ञापत्र प्राप्त किया था। पर इसमें भी बड़ा रहस्य था। सर टामस रो भारत में आते ही यहाँ की दशा को भली-भाँति समझ गया था। वह समझ गया था कि बिना नूरजहाँ व आसफ खां के वह कुछ न कर सकेगा। अतः उसने इन सभी को रत्न आदि देकर प्रसन्न किया और अपना काम सीधा किया। इसमें सन्देह नहीं कि अँग्रेजों के दिमाग से उसी दिन से भारतीयों के प्रति श्रद्धा जाती रही। उसके मुख्य विरोधी तो पुर्तगाली व्यापारी थे, जिनके कारण उसके सन्धिपत्र फेंक दिये जाते थे। पर वह सब कठिनाइयाँ पार कर अपना मनोरथ सिद्ध कर सका। अँग्रेजों को निःशुल्क व्यापार करने की आज्ञा मिल गयी। किसी भी अँग्रेज को कहीं रोका न जाता था, वे सब स्वतन्त्रता से नहीं बल्कि स्वच्छन्दता से विचरने लगे थे। वे मन चाहे स्थान पर अपनी फैक्टरियाँ बनाने लगे। पहले उनको अस्त्र-शस्त्र रखने की अनुमति न थी, पर सर टामस रो ने इस बन्धन से रोक हटवा दी। यद्यपि उस समय अँग्रेज व्यापारी रो के कृत्य का आभार न मानते थे, पर रो ने एक सराहनीय कार्य किया था। उसने अँग्रेजों की प्रतिष्ठा मुग़ल दरबार में बढ़ा दी थी। इसी के फलस्वरूप प्रान्तीय गवर्नरों को आदेश दे दिये गये थे कि वे अँग्रेजों को सताएं नहीं। इसके आधार पर उनको अपनी स्थिति ठीक करने का अवसर प्राप्त हो गया था।

रो के लेखों से हमें जहाँगीर के दरबार का अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है। हाँ, उसने नूरजहाँ के विषय में कुछ नहीं लिखा, क्योंकि उसे वह कभी देख ही न सका था। वह लिखता है--

"राज दरबार में बड़ी शान-शौकत रहती थी। किसानों की दशा दयनीय थी, राजपथ अरक्षित थे। उस समय लिखित कानून न थे। सम्राट की वाणी ही विधि थी। केन्द्रीय विभागों का प्रान्तीय भागों पर समुचित प्रभुत्व न था।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अतः प्रान्तीय शासक निरंकुश थे। अपने अपनों का जोर था। दरबार में लोग शराब बहुत पीते थे। **"जब सम्राट शराब के नशे में चूर होता था, तो दरबार की बत्तियाँ बुझा दी जाती थीं, तथा दरबारी चले जाते थे।"** *

वस्तुतः रो ने तत्कालीन यात्रा, दरबार में प्रवेश, दरबारी मनोरंजन, उस समय की कुछ विशेष घटनाएँ, सम्राट का जन्म दिन, उसके मनाने की समुचित रीति, सम्राट की रुचि, दरबार की शान शौकत, विदेशी राजदूतों की चर्चा, सम्राट का लश्कर, उसकी भेंट, नये वर्ष का भोज, आंग्ल व्यापार, आदि के विषय में अपने सच्चे अनुभव लिखे हैं। जैसे-जैसे जहाँ-जहाँ वह गया, जो भी उसने देखा वह सब भली-भाँति उसने अंकित किया है।

उदाहरणार्थ—**"अठारहवीं तिथि बहुत सी बातों के लिए प्रमुख थी। इस दिन मुझे दरबार की शान शौकत देखना थी। सम्राट को प्रसन्न करना था। वह जो शिष्टाचार पसन्द करता था वही मुझे करना था और मैं उससे घृणा भी कैसे करता, क्योंकि मुझे नगर में कोठी बनानी थी। मैंने अपने अनुभव से देखा कि तलवारें सेना में खूब खरीदी जाती हैं, मैं सम्राट तक गया, उसके लिए भेंट भी ले गया, मुझे एक कोतवाल अन्दर ले गया। बाहरी प्रांगण में लगभग १०० अश्वारोही सम्राट को सलाम झुकाने के लिए खड़े थे, और उसके निकलने का मार्ग बना रहे थे,..... उसी पंक्ति के बीच से एक अधिकारी मेरे पास आकर कह गया कि मुझे अपना टोप उतार कर अपना मत्था भूमि पर टेकना होगा।"** †

* "When the emperor became dead drunk, the lights were put out, and tipsy courtiers went away to their homes." Muslim Rule, P. 361. by *Ishwari Prasad.*

† "The eighteenth, for many considerations as well as to see the fashions of the court, as to content the prince, who desired it and I was loath to distaste him, because there was some purpose of erecting a factory in the Town; and I found by experience sword blades were well sold in the armies. I went to visit the Prince and carried him a present. I was brought in by the cutwall, at the outward court were about one hundred horse men armed being gentlemen that attend the princes setting out to salute him making a lane of each side..... coming towards him through a lane of people an officer came and brought me word I must touch the ground with my head and my hat off."

Travels in India P. 17, by Sir *Thomas Roe.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

जहाँगीर की मृत्यु––जहाँगीर का स्वास्थ्य तो अति मदिरापान से वैसे ही बहुत गिर गया था। उसने स्वास्थ्य लाभ के लिए काश्मीर और काबुल की वायु का सेवन किया, पर प्रत्येक की अवधि तो निश्चित होती है। एक बार वह काबुल से काश्मीर जा रहा था कि अत्यधिक शीत के कारण लाहौर की ओर लौट पड़ा। उस समय वह घोड़े के चढ़ने योग्य न रह गया था, अतः पालकी पर चलता था। उसकी भूख मर चुकी थी, अतः उसने अपनी चिर संगिनी अफीम खाना भी त्याग दिया था। केवल कुछ अंगूर ही उसके आधार थे। लाहौर में आकर वह इतना गिर गया कि २८ वीं सफर १०३७ हिजरी अर्थात् अपनी शासन काल की २२ वीं वर्ष १६२७ ई० में चल बसा।

जहाँगीर का चरित्र

जहाँगीर का चरित्र

(१) उत्तम लालन पालन
(२) शिक्षा
(३) न्यायशील सम्राट
(४) परिस्थिति वश पिता के साथ दुर्व्यवहार
(५) विलासी
(६) सुरा व सुन्दरी के चक्कर में, शासन में त्रुटि
(७) लेखक
(८) विपरीत तत्वों का मिश्रण
(९) कलाकार, कला पहचानने की क्षमता
(१०) धार्मिक
(११) अकबर तथा शाहजहाँ के बीच की कड़ी

अभी तक के दिये गये वृत्त से यह स्पष्ट हो गया कि जहाँगीर एक सम्राट के पुत्र की हैसियत से पाला पोषा गया फलतः उसका मस्तिष्क बहुत ही शीघ्र स्वच्छन्दता तथा विलासिता की ओर झुक गया। इसके पश्चात् उसे इस प्रकार की स्थिति मिलती गयी कि वह विलासमय जीवन से निकल ही न सका। वह यदि कुछ प्रयास भी करता, तो उस पर प्रभुत्व जमाने वाली उसकी पत्नी थी, जिसने उसे और भी अकर्मण्य बना दिया। इसके अतिरिक्त पिता से वह लड़ चुका था, तो बहुत स्वाभाविक था कि उसके बच्चे भी उससे लड़ते, और वे लड़े, खूब लड़े; उससे लड़कर उन्होंने उसे रुला दिया। उसके राजत्व काल में कोई ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ी महत्व पूर्ण घटनायें नहीं हुईं। इसलिए भी उसे अपनी पैतृक कमाई शान्ति से खाने को मिली। दो चार युद्ध जो कुछ हुए भी तो या तो महावत खां की बदौलत जीते गये, या खुर्रम के सर मढ़ दिये गये। अन्यथा मुग़ल प्रतिष्ठा में धब्बा ही लगा। कन्धार के प्रश्न पर यदि शाहजहाँ लड़ने न गया था तो वहाँ जहाँगीर को चुप हो कर न बैठ जाना चाहिये था। यदि ऐसी स्थिति में अकबर या बाबर होता तो कन्धार हाथ से न जाता। राजत्व में परिश्रम, बुद्धि और योजना सभी की आवश्यकता होती है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

विलासिता राजत्व की दुश्मन है। यही कारण हुआ कि जहाँगीर पका पकाया राज्य भी न सम्हाल पाया। डा० स्मिथ के अनुसार "जहाँगीर कोमलता और निदर्यता, न्याय और चालाकी, सभ्यता तथा पशुता, बुद्धिसत्ता तथा बचपना आदि का अद्भुत मिश्रण था।" *

पर इस बुद्धि से उसने साम्राज्य के कितने कार्य सम्हाले यह सोचने का विषय है। वस्तुतः वह स्वभाव से निर्दय भी न था, पर कभी-कभी बड़ी कड़ी सजाएँ दे डालता था। वह उदार तथा न्यायप्रिय था। उसकी स्वर्ण की जंजीर एक ऐतिहासिक वस्तु है। पर कितने इस बात का साहस कर सके कि उस जंजीर को खींचें, अथवा कब उसने यह जानने की चेष्टा की कि उसके प्रान्तीय शासक निरंकुश हैं यह एक पृथक् प्रश्न है। आजकल के योरुपीय लेखकों का मत है कि जहाँगीर चञ्चल प्रकृति का मनुष्य था, उसे सुरा तथा सुन्दरी से ही छुट्टी न थी। वह एक शासक की दृष्टि से सर्वथा असफल था। पर भारतीय विद्वान उसे न्यायप्रिय तथा उदार शासक कहते हैं। उनका कथन है, कि उसके व्यवहार में कोई त्रुटि न थी। उसने अपने पिता के विरुद्ध जो आचरण किया, वह किसी परिस्थिति में आकर ही किया था। अन्यथा राज्यारोहण के पश्चात् वह सदा उसका सम्मान करता था। सिकन्दरे में उसकी कब्र पर श्रद्धा से सर झुकाता था। उसके विचार तथा वर्णन में सदा पिता के प्रति आदर की भावना रही।" † उसने अपने पूर्व मित्र तथा सेवकों का भी पूर्ण ध्यान रक्खा। जिन लोगों ने उसका साथ उसके युवराज काल में दिया था उनको उसने उच्च-पदों पर आसीन किया, तथा कई विरोधियों को क्षमा भी किया।

जहाँगीर सुसंस्कृत तथा शिक्षा प्राप्त सम्राट था। फारसी तथा तुर्की दोनों भाषाओं पर उसका अच्छा अधिकार था। अन्य भाषाओं से भी वह कुछ परिचित था। उसकी विद्वत्ता का परिचय हमें "तुज़ुके जहाँगीरी" से हो

---

* Jahangir was a strong compound of tenderness, cruelty justice and caprice, refinement and brutality, good sense and childishness."

Dr. V. A. Smith.

† "Made amends after he was in possession, of the throne. He cherished the loving memory of Akbar, and in thought and expression held him in high reverence. He would walk to his mausoleum at Sikandara, and rub his forehead at the threshold."

Dr. A. L. Srivastava.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

जाता है। वह साहित्य, संगीत, कविता, निर्माण कला, चित्रकला आदि से बहुत स्नेह करता था। उसे विज्ञान तथा वनस्पति शास्त्र का भी व्यावहारिक ज्ञान था। वह निःसन्देह प्रकृति सौन्दर्य, पुष्पों, निर्झर तथा सरिताओं का उपासक था। वह पशु तथा पक्षियों से ही स्नेह न करता था, बल्कि उनके चित्र भी उसे बहुत प्रिय थे। चित्रकला का तो वह अच्छा आलोचक था। वह एक ही चित्र पर विभिन्न चित्रकारों की तूलिकाएँ परख सकता था। वह **अपने चरित्र में** लिखता है। "**अपने विषय में मैं कह सकता हूँ, कि चित्रकला में मेरी आसक्ति और विवेचना इस सीमा तक पहुँच चुकी है, कि जब कोई चित्र मेरे सामने उपस्थित किया जाता है, चाहे उसका चित्रकार मृत हो या जीवित, मैं देख कर तुरंत बता सकता हूँ कि वह किसकी तूलिका का फल है। यदि एक चित्रपट पर अनेक व्यक्तियों की छबियाँ हैं, जो विभिन्न चित्रकारों द्वारा अंकित की गयीं हैं, तो मैं बता सकता हूँ कि अमुक-अमुक चितेरे ने बनाया है। यदि एक मुख के नेत्र और भृकुटियाँ अलग अलग चितेरों ने रंगी हैं तो मैं यह बता सकता हूँ. कि मुख, भृकुटी और नेत्र के बनाने वाले कौन हैं ?**

उसकी धार्मिक भावना के प्रति बड़ा मतभेद है। सर टामस रो ने तो उसे नास्तिक तक कह डाला है। कुछ समसामयिक लेखकों ने उसे सब धर्मों के उत्तम सिद्धान्तों का ग्रहण करने वाला कहा है। कुछ लोगों ने उसे कट्टर मुसलमान और कुछ ने ईसाई ही बता डाला है। वस्तुतः वह किसी धर्म का पूर्ण रूप से पालन न करता था। वह एक उदारचित्त मुसलमान था जो दूसरे के धर्म के प्रति भी सहिष्णु था। इसमें सन्देह नहीं कि वह ईश्वर में विश्वास करता था। वह हिन्दू तथा मुसलमान संन्यासियों का बड़ा सम्मान करता था।

जहाँगीर को सैनिक शिक्षा भी दी गयी थी। उसे अपने पिता के समय से ही युद्ध करने के अवसर प्राप्त होने लगे थे। उसे आखेट से बड़ी रुचि थी पर उसमें सेनानायक तथा संचालक के वे गुण न थे जो बाबर अथवा अकबर में थे। उसने अपने काल में सैन्य संगठन का भी कोई विशेष प्रयास नहीं किया।

जहाँगीर के विषय में कुछ मत

(१) जफर--"**जहाँगीर एक महान शासक था। वह अत्यधिक शक्तिशाली था। यदि वह नूरजहाँ के दल से प्रभावित न होता तो अपने पिता के समकक्ष ही शासक होता। उसका शासन-काल दो महान शासन-कालों के बीच आ जाने से राहुग्रसित सा हो गया था। उसके अकबर महान तथा**

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

वैभव पूर्ण शाहजहाँ के बीच आने से उसकी निजी प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लग गया।"

(२) रिचार्डबर्न--"जहाँगीर भारतीय सम्राटों के बीच एक उदार भावना युक्त, विलास-प्रिय, कला-प्रिय, सर्व हितकारी और अच्छे जीवन का आनन्द ग्रहण करने वाला था। पर अपनी विवेकहीनता के कारण कुशल प्रशासक न बन सका।"

(३) वीवरिज--"जहाँगीर वस्तुतः एक अद्भुत व्यक्ति था। जो एक ओर किसी जीवित की खाल खिंचते देख सकता था और दूसरी ओर न्यायप्रिय बन सकता था तथा बृहस्पति की संध्या बड़ी गम्भीर बातों के विचारने में व्यतीत कर सकता था। वह अबुल फजल का वध कराके बिना पश्चात्ताप के उसे स्वीकार कर सकता था, किन्तु शाही हाथियों पर जब वे शीत में अपने ऊपर ठंडा पानी छिड़कते थे, तो दया से पिघल जाता था। उसका सबसे उत्तम गुण प्रकृति प्रेम तथा फूलों का प्रेम था।"

---

(1) "Jahangir was a great ruler, capable of enormous energy. If he had not allowed himself to be dominated by the Nurjahan clique, he would have proved himself an excellent administrator, worthy to be placed by the side of his father. It must however be pointed out that the real glory of his reigns that followed and preceded him and he himself has suffered much on account of coming between two illustrious Sovereigns, Akbar the great, and Shahjahan the magnificent." Jaffar

(2) "He stands in the roll of Indian monarch as a man with generous instincts, fond of sport, art and good living aiming to do well to all and failing by the lack of the finer intellectual qualities to attain the ranks of great administrator." Richard Bern

(3) "Jahangir was indeed a strange mixture. The man who could stand by and see flayed alive could yet be a lover of justice and could spend his Thursday evenings in holding high converse. He could procure the murder of Abul Fazl and avow the fact without remorse and also pity the royal elephants because they shivered in winter when they sprinkled them selves with cold water. One good trait in Jahangir was his hearty enjoyment of nature and his love of flowers. Beveridge

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(४) डा० बेणीप्रसाद--"जहाँगीर एक समझदार, दयालु स्वभाव वाला तथा अपने परिवार का स्नेही था। वह सभी के प्रति उदार था। उसे अत्याचार से घोर घृणा तथा न्याय से विशेष प्रेम था। अपने युवराज तथा शासनकाल में बहुत कम अवसरों पर उसने क्रोध किया, वह भी बहुत उकसाने पर। इसी कारण उसने कुछ व्यक्तिगत अत्याचार के कार्य किये, किन्तु मानवता दयालुता, और विशाल हृदयता उसके सामान्य जीवन का एक अंग थी।

(५) डा० ईश्वरीप्रसाद--'"मुग़ल इतिहास में जहाँगीर बड़े ही दिलचस्प सम्राटों में से एक था। यह कहना कि वह निर्मम, अत्याचारी तथा विलासी था; उसके साथ अन्याय होगा। सभी वृत्त इस विषय में एक मत हैं कि वह बुद्धिमान, चतुर, तथा बिना किसी कठिनाई के हर समस्या को समझने वाला था।

(६) जहाँगीर स्वयं--"मैं स्वयं सुरा का आदी रहा और अपनी अठारहवीं वर्ष से आज ३८ वर्ष तक मैं इसे बराबर पीता रहा। प्रारम्भिक अवस्था में जब मुझे यह बहुत प्रिय थी तो मैं बीस-बीस प्याले पी जाता था। थोड़े ही समय में इसका मेरे ऊपर बड़ा असर पड़ा। अतः मैंने इसकी मात्रा कम करनी प्रारम्भ कर दी। मैंने अपने पीने के समय को कभी एक न रखा, कभी किसी समय, कभी किसी समय पी और कभी तब पी, जब दिन दो तीन घंटे शेष रह जाता था, कभी दिन के पीछे और कभी रात को और कभी दिन को।

---

(4) "Jahangir was a sensible, kind hearted man, with strong family affections, and unstinted generosity to all, with a burning hatred of oppression and a passion for justice. On a few occasions in his career as prince and emperor he was betrayed not without provocation, by fits of wrath into individual acts of cruelty. But as a rule, he was remarkably for humanity, affability and an open mind." *Dr. Beni Prasad.*

(5) "Jahangir is one of the most interesting figures in Mughal history. The ordinary view that he was a sensuous pleasure seeker and a callous tyrant does him less than justice. All accounts agree that he was intelligent, shrewd, and capable of understanding the most complex problems of the state without any difficulty, *Dr. Ishwari Prasad.*

(6) "I myself have been accustomed to take wine and from my eighteenth year, to the present which is the thirty eighth year of my age, have regularly partaken of it. In early days when I craved for

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

नूरजहाँ का चरित्र

(१) अपूर्व प्रतिभा-शालिनी महिला
(२) सुन्दरी
(३) शिक्षित
(४) छोटी स्थिति से उच्चतम उठना
(५) साहसी
(६) दूरदर्शी
(७) कला-प्रिय
(८) उत्तम शासिका
(९) शक्ति का संतुलन रखना
(१०) अपने परिवार को न भूलना
(११) पर दलबन्दी का केन्द्र

भारतीय इतिहास में ऐसी रमणियाँ कम हुई हैं, जो एक साधारण स्थिति से उठकर, इतना कार्य कर सकी हों जितना नूरजहाँ ने किया। एक विधवा स्त्री का भाग्योदय नहीं तो क्या था, कि भारतीय साम्राज्य की साम्राज्ञी बनी। पर यह केवल भाग्य न था, नूरजहाँ में अपना पौरुष भी बहुत था। उसमें बुद्धि थी, सूझ थी, चतुरता थी, चाल थी। उसमें बल था, युक्ति थी, जिसके फलस्वरूप वह पति के साथ पत्नी का कार्य ही नहीं, बल्कि नायिका का पूरा भार सम्हाल सकी। नूरजहाँ का चरित्र भी एक रोचक अध्ययन है।

(१) नूरजहाँ के माता-पिता ने अपनी पुत्री को बड़े संकट से पाला था, पर पुत्री बड़ी स्वरूपवान थी। उसके युवती होने पर उसका रूप और भी निखर गया। इसीलिए उसका नाम मेहरुन्निसा तथा नूरजहाँ रखा गया था। कहते हैं कि उसकी बाल्यवस्था में ही उस पर राजकुमार सलीम की दृष्टि पड़ चुकी थी। जो, हो पर यह तो निश्चित है कि जहाँगीर ने उसको प्राप्त करने की चेष्टा की, तभी वह उसे प्राप्त कर सका। नूरजहाँ ने अपने बाल्यकाल में पर्याप्त शिक्षा ग्रहण कर ली थी। वह राज्य सम्बन्धी जटिल से जटिल समस्याओं को अत्यन्त सरलता से समझ लेती थी। बड़े-बड़े मन्त्री उसके निर्णय के सामने सिर झुका देते थे। कविता, संगीत एवं चित्र कला में उसकी विशेष रुचि थी। वह फारसी में पद्य-रचना करती थी। उसमें सूझ भी नई थी। अपने युग में उसने अनेक चीज़ों को नया रूप प्रदान किया। वस्त्र तथा आभूषणों के नये-नये फैशन चलाये।

---

ddrink I sometimes took as many as twenty cups of eouble distilled liquor. In course of time it took great ffect upon me, and I set about reducing the quantity. My times of drinking varied, some times I began when two or three hours of the day remained, some times I took it at night and a little in the day."

Waqyat E. & D. V. V. Page 285.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(२) नूरजहाँ वस्तुतः एक उदार हृदय स्त्री थी। निर्धनों और पीड़ितों की वह एकमात्र सहायिका थी। नित्य ही वह अनाथ कन्याओं के विवाह के लिए धन दिया करती थी। उसने अनेक छात्राओं को छात्रवृत्तियाँ दीं। स्वयं जहाँगीर के शब्दों में "**जो भी उसकी शरण में आया, निश्चित ही अत्याचार तथा दमन से उसकी रक्षा हुई।** उसके शासन काल में लगभग ५०० अनाथ लड़कियों के विवाह किये गये।

(३) नूरजहाँ बड़ी साहसी भी थी। उसमें शारीरिक बल था। कई बार उसने स्वयं शेर का शिकार किया था। वह सदा अपने पति के साथ शिकार खेलने जाया करती थी। उसके साहस का सबसे बड़ा प्रमाण हमें उसके अपने को बन्दी बनाने में मिलता है। विपत्ति के समय भी उसने अपनी तुरत बुद्धि को न खोया। उसके सहारे ही जहाँगीर महावत खां के चंगुल से बच सका।

(४) जसाँगीर के प्रति प्रेम भी उसे अत्यधिक था। यही प्रेम जहाँगीर को वशीभूत करने में सफल हुआ। इसी के फलस्वरूप उसने सारा शासन कार्य उसे सौंप दिया। जहाँगीर का कहना है—"**मैं ने अपना सारा साम्राज्य अपनी प्रियतमा के हाथ एक प्याला सुरा तथा एक तश्तरी शोरवे में बेच दिया।**" * जहाँगीर के और भी पत्नियाँ थीं, पर वे उसकी विश्वासपात्र न बन सकीं थीं। साथ ही नूरजहाँ बड़ी परिश्रमशीला थी। समय पर वह बड़े से बड़ा त्याग कर सकती थी। जहाँगीर के लिए उसने अपने प्राण संकट में डाल दिये थे। स्त्री जन सुलभ भीरुता (डर) उसमें नाम को भी न थी।

(५) वह स्वयं एक शासिका थी। देश के अनेक पदाधिकारी उसकी कृपा प्राप्त करने आते थे। राज्य के अनेक कार्यों की वह देख-रेख रखती थी। खुर्रम ने एक बार धौलपुर की रियासत अपने नाम करानी चाही, पर विदित हुआ कि नूरजहाँ उसे पहले ही शहरयार के नाम करवा चुकी है। इससे उसकी दूरदर्शिता का प्रबल प्रमाण मिलता है।

(६) नूरजहाँ में सबसे बड़ी बात यह थी कि वह उच्च स्थान पाकर अपने परिवार को भूल न गयी थी। वह हर सदस्य का समुचित ध्यान रखती थी। इसमें सन्देह नहीं कि उसके पारिवारिक सदस्य योग्य भी थे। पर नूरजहाँ की अनुपस्थिति में वे अपनी योग्यता से लाभ न उठा सकते थे। उसके पिता तथा भाई अपनी प्रतिष्ठा की चरमसीमा पर पहुँच सके। कभी-कभी नूरजहाँ अपने

* "I have sold my kingdom to my beloved queen for a cup of wine and a dish of soup."

Jahangir.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

प्रभाव से क्षमा-दान भी दिला देती थी । जैसा कि डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने बड़े ही आलंकारिक शब्दों में लिखा है । **"यह उसी का कार्य था, कि क्षमा की लेखनी अपराधों के वृत्त रूपी बन्धन को काट सकी ।**‡ किन्तु जहाँ वह अनेक गुणों की खान थी, वहाँ उसमें कुछ ऐसे दोष भी थे जिनके कारण सदा परस्पर वैमनस्य पलता रहा ।

उसने इतने षडयन्त्र फैला रखे थे कि जहाँगीर उनको कभी न सम्हाल सका । सम्हलना तो दूर है, वह कभी उनकी गुरुता को समझ ही न सका । नूरजहाँ के वैमनस्य तथा कुचक्र के भय से ही कन्धार गया । नूरजहाँ के व्यवहार से दुःखी होकर ही, तथा उसके शहरयार के प्रति पक्षपात के कारण ही शाहजहाँ ने विद्रोह किया । डा० ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं, † **"उसकी शक्ति के प्रति निष्ठा, उसका स्त्रीपरक घमंड, तथा उसकी सम्राट को दास बनाने की चाल ने ही उन संकटों को उत्पन्न किया, जिनसे साम्राज्य की शान्ति ही भंग होगयी ।"**

उसे सही निर्णय तथा निश्चय की क्षमता ही न थी, जो किसी भी शासक के लिए मूल तत्व है । उसने जिस ढंग से अपने शत्रुओं को हटाना चाहा, उसमें कोई शक्ति ऐसी न थी जो परिवर्तन ला सकती, उसका ही फल था कि महावत खां जैसे योग्य सेनापति को विद्रोह करना पड़ा । जैसा कहा जा चुका है वह बड़ी चतुर थी उसकी चतुरता यह थी, कि महावत खां को बंगाल से बुलाया, और खुर्रम को दबाने में पूर्ण सहयोग लिया । पर यह ध्यान रखा कि कहीं महावत खां की शक्ति भी न बढ़ जाय । **उसका घमंड, उसका स्वाभाविक, अविश्वास, तथा राज्य के योग्य से योग्य अधिकारी को उसकी सतत नीचा दिखाने की भावना ही साम्राज्य की अशान्ति के मुख्य कारण थे ।** उसका हरम षडयन्त्र का घर बन गया था । यह जानते हुए कि खुर्रम ही जहाँगीर का अधिक योग्य पुत्र है, उसने अयोग्य शहरयार के लिए भरसक प्रयास किया । हर यत्न इस बात के लिए किया कि खुर्रम का अधिकार छीन कर शहरयार

‡ "It was through her intercession that the pen of pardon was drawn through the record of his faults."
Muslim Rule P. 353,
Dr. Ishwari Prasad.

† "Her inordinate love of power, her womanly vanity, and her subtle devices to make the emperor her slave led to troubles which seriously threatened the peace of the empire."
Muslim Rule P. 353. by *Dr. Ishwori Prasad.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

को साम्राज्य का स्वामी बना दे, उसमें भी शहरयार का कल्याण शहरयार के भले के लिए नहीं, बल्कि अपने भले को सामने रखकर किया । शहरयार के स्वामी बनने का अर्थ था कि उसका प्रभुत्व बना रहेगा । इस से सिद्ध होता है कि नूरजहाँ के मुगल खानदान में योग देने से जितना भला नहीं हुआ उतना अहित हो गया। जहाँगीर भी इस अहित के लिए बहुत अंशों में उत्तरदायी है पर नूरजहाँ का उत्तरदायित्व कम नहीं ।

प्रश्नावलि

१––जहाँगीर के चरित्र तथा उसकी नीति की समीक्षा करिये । वह अकबर के द्वारा संचालित शासन को कहाँ तक सम्हाल सका ?

२––अपने समय के कार्यों में नूरजहाँ के प्रभाव तथा प्रभुत्व का स्वरूप बताइये ।

३––राणा साँगा की मृत्यु के पश्चात् से जहाँगीर के राज्य तक की मेवाड़ की स्थिति का वर्णन करिये ।

४––जहाँगीर के समय आये हुए यात्रियों द्वारा भारत का वर्णन लिखिये ।

५––जहाँगीर के शासन का वर्णन करो और बताओ कि वह कहाँ तक विरोधी तत्वों का मिश्रण था ?

६––मुगलों ने दक्षिण में अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए जो प्रयत्न किये उनका वर्णन करिये ।

७––महावत खां तथा खुर्रम के विद्रोहों का वर्णन करिये ।

८––खुसरो अपने विद्रोह में कहाँ तक सही था ? उसका अन्त इतना बुरा क्यों हुआ ?

कुछ प्रमुख तिथियाँ

जहाँगीर का राज्यारोहण	**२४ अक्तूबर १६०५ ई०**
अर्जुन का देहांत	**३० मई १६०६ ई०**
काबुल में जहाँगीर	**३ जून १६०७ ई०**
मेवाड़ का आक्रमण	**१६०६ ई०**
नूरजहाँ से जहाँगीर का विवाह	**१६११ ई०**
मेवाड़ विजय	**१६१३–१५ ई०**
काँगड़ा विजय	**१६२० ई०**
कंधार का हाथ से निकलना	**१६२२ ई०**
खुर्रम का विद्रोह	**१६२२ ई०**
महावत खां का विद्रोह	**१६२६ ई०**
जहाँगीर की मृत्यु	**२९ अक्तूबर १६२७ ई०**

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद ६

शाहजहाँ (१६२७–१६५८ ई०)

प्रारम्भिक जीवन—जहाँगीर के चार पुत्र थे। खुर्रम, खुसरो, शहरयार, और परवेज। शाहजहाँ का जन्म ५ जनवरी १५९२ ई० में लाहौर में हुआ था।

शाहजहाँ

उसकी माँ सुप्रसिद्ध राजपूत महिला जगत गोसाईं राजा उदयसिंह की पुत्री थी। शाहजहाँ का बचपन का नाम खुर्रम था। उसके पितामह अकबर ने ही उसकी शिक्षा का प्रबन्ध किया था। बालक खुर्रम बड़ा होनहार था, उसने उसी के अनुसार अच्छी शिक्षा भी प्राप्त की। उसकी सबसे बड़ी रुचि फारसी साहित्य में थी, पर उसने प्रारम्भिक हिन्दी का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया था। इसके साथ अन्य विषय जैसे इतिहास, भूगोल, धर्मशास्त्र आदि का भी उसने अध्ययन किया। यही नहीं उसने सैनिक शिक्षा में भी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। अपनी युवावस्था प्राप्त करते ही वह साम्राज्य का एक अच्छा सेनानायक माना जाने लगा। खुर्रम बहुत प्रतिभाशाली तथा महत्वाकांक्षी था। उसने अपने पितामह को अपनी योग्यता से प्रभावित कर लिया था। किशोर अवस्था तक उसे पिता का स्नेह भी खूब मिला। उस समय तक शहरयार और नूरजहाँ का गुट रंगमंच पर न था। उसकी योग्यता देखकर ही उसके पिता ने उसे १६०७ ई० में ८००० जात, और ५००० सवार का मनसब प्रदान किया था। इसके अनन्तर १६११ ई० में उसे १०००० जात और ५००० सवार का मनसब मिला। १६१२ ई० में उसका विवाह आसफ खां की पुत्री से हो गया। पर दूसरी ओर शहरयार का विवाह नूरजहाँ की पुत्री से हो गया। बस इन विवाहों के कारण खुर्रम के उन्नति के दिन कुछ समय के लिए समाप्त हो गये। उसके लिए एक प्रतिद्वन्द्वी खड़ा हो गया। साथ ही उस प्रतिद्वन्द्वी को नूरजहाँ जैसी महिला का सहारा प्राप्त था।

जैसा कहा जा चुका है, कि यही षडयन्त्र उसके विद्रोह का कारण बना। पिता पुत्र में बहुत समय अनबन हुई, जिसके कारण दोनों का जीवन संकट में पड़ गया। खुर्रम को दर-दर भटकना पड़ा, पहले पहल उसे सफलता भी मिली पर समय ने बहुत दिन उसका साथ न दिया। अन्त में प्रार्थना और याचना के अतिरिक्त उसके पास कुछ न रहा।

उसका राज्यारोहण:—राज्य प्राप्ति के लिए असली संघर्ष खुर्रम और

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शहरयार में न था, बल्कि उन दोनों के सहायक आसफ खां (खुर्रम के लिए) तथा नूरजहाँ (शहरयार के लिए) में था । इसके लिए एक नहीं अनेक यत्न ऐसे किये गये जिसमें एक का अधिकार विशेष सुरक्षित हो और दूसरे का नष्ट हो जाय, पर भाग्य का चक्र विचित्र होता है । अन्त में खुर्रम के ही दिन अच्छे निकले । १६२७ ई० में जब जहाँगीर की मृत्यु हुई, नूरजहाँ उसी के समीप थी और शाहजहां दक्षिण म था । नूरजहाँ ने शहरयार को आगरे से लाहौर बुलाया क्योंकि जहाँगीर बीमार होने के कारण कश्मीर न जाकर लाहौर लौट आया था ।

पर शाहजहाँ के समर्थक आसफखाँ ने अपनी चाल चली । इस प्रकार भाई (आसफखां) और बहिन (नूरजहाँ) दोनों में अपने-अपने दामाद को की राज्य दिलाने की चेष्टा हुई । नूरजहाँ ने अपने ही भाई को बन्दी बनाने की कोशिश की और शहरयार को लिखा कि वह अपनी शक्ति को संगठित रखे, कदाचित युद्ध से ही निर्णय हो । पर आसफखां इससे भी अधिक चालाक था । उसने अपनी बहिन से मिलने से ही मना कर दिया । साथ ही खुसरो के पुत्र दावरबख्श को गद्दी पर बिठा दिया । जिससे सिंहासन खाली न रहे, तथा राज्य के सभासदों को खुर्रम के पक्ष में कर लिया । इसी समय उसने शाहजहाँ को सूचना दी कि वह तुरत दिल्ली को प्रस्थान करे । उधर शहरयार ने लाहौर में अपने को सम्राट घोषित कर दिया और शाही कोष पर अधिकार कर लिया । यह सूचना पाकर आसफखां ने स्वयं शहरयार के विरुद्ध युद्ध किया, तथा उसे पराजित कर बन्दी बना लिया, यही नहीं उसको नेत्रहीन कर दिया । शाहजहाँ भी दिल्ली आया । मार्ग में उसका मेवाड़ नरेश राजा कर्णसिंह ने भव्य स्वागत किया । इस बीच उसने आसफखां को दावरबख्श आदि राजकुमारों को मौत के घाट उतारने का आदेश दिया, जिसका आसफखां ने अक्षरशः पालन किया* अतः फरवरी सन् १६२८ ई० में शाहजहाँ ने आगरे में शान के साथ प्रवेश किया । उरी दिन उसके नाम का खुतबा पढ़ा गया ।

आसफखां को ८००० ज़ात और ८००० सवारों का मन्सब प्रदान किया गया, तथा उसी को साम्राज्य का वज़ीर नियुक्त किया गया । महावतखाँ का मंसब भी बढ़ा दिया गया तथा उसे उपाधियों से विभूषित किया गया । नूरजहाँ को पेंशन दे दी गयी ।

नूरजहाँ यह सब देखती ही रह गयी । उसने समझ लिया कि अब उसके

---

* यह मत डा० आशीर्वादी लाल का है । श्री वी. डी. महाजन का कथन है कि दावरबख्श को फारस जाने की आज्ञा दे दी गयी थी तथा वह अपने प्राण बचाकर चला गया था ।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

दिन अच्छे नहीं रहे। अतः लाहौर में जाकर शान्तिप्रिय जीवन बिताने लगी। लगभग १७ वर्ष के वैधव्य जीवन के पश्चात १६४५ ई० में नूरजहाँ की मृत्यु हो गयी।

बुन्देला राजपूतों का विद्रोह--बुन्देल खण्ड के राजपूत इस्लाम की बहुत कम चिन्ता करते थे। उनकी स्वतन्त्र प्रकृति ने अनेक यवन आक्रमणकारियों को मुँह की खिलाई। शाहजहाँ इस बात से भली-भाँति परिचित था। इस समय बुन्देल खण्ड में एक प्रबल राजपूत वीरसिंह बुन्देला था। जहाँगीर के थोड़े से संकेत पर उसने अबुलफज़ल की हत्या कर दी थी। जहाँगीर के शासन-काल में उसकी प्रतिष्ठा भी बहुत बढ़ गयी थी। उसके अनन्तर उसके पुत्र जुझारसिंह की भी मुगलों में बड़ी प्रतिष्ठा थी। वह अपनी जातिगत वीरता, तथा अपने देश की भौगोलिक स्थिति पर बड़ा गर्व करने लगा था। पहले तो वह अपने पुत्र विक्रमाजीत सिंह को राजधानी में छोड़कर आगरे चला आया, पर शाहजहाँ के राज्यारोहण पर उसे विदित हुआ कि वह उससे अप्रसन्न है, तथा उसके लगाये करों की जाँच पड़ताल चाहता है। अतः वह मुग़ल दरबार छोड़कर ओरछा लौट आया। ओरछा राज्य झाँसी जिले में है। शाहजहाँ ने जुझारसिंह का मन्तव्य समझ लिया था, अतः उसने महावत खाँ को तथा उसकी सहायता के लिए अब्दुल्ला खाँ को बुन्देल खण्ड की ओर भेजा इस समय शाह-जहाँ का निजी ध्यान पश्चिम की ओर भी लगा था, क्योंकि काबुल पर ट्रांस ओक्सियाना के जामिद ने आक्रमण कर दिया था। पर शीघ्र ही सीमान्त संकट से मुक्त होकर वह स्वयं ग्वालियर की ओर गया। उसने तीसरी सेना खान-जहाँ के नेतृत्व में भेजी, क्योंकि शाहजहाँ स्वयं बड़ा सशंकित रहता था। तीन ओर से ओरछा को घेर लिया गया। इसी समय जुझार सिंह के सम्बन्धी भरत-सिंह ने मुगलों का साथ दिया। घमासान युद्ध के बाद आखिर जुझार सिंह को आत्म- समर्पण करने पर विवश होना पड़ा। उसने १५ लाख रुपये तथा १००० स्वर्ण की मुहरें शाहजहाँ को देना स्वीकार किया। उसने कुछ सेना शाहजहाँ के दक्षिण अभियान के लिए देना भी स्वीकार की। इस युद्ध में बुन्देल खण्ड को नष्ट भ्रष्ट भी किया गया। अन्ततः शाहजहाँ ने जुझार सिंह को एक छोटी सी जागीर रखने की अनुमति प्रदान की।

१६३४ ई० तक जुझार सिंह शान्त रहा, पर १६३५ ई० में उसने पुनः विद्रोह का झंडा उठा लिया। उसने दक्षिण में मुग़लों की बड़ी सेवाएँ की थीं, पर वहाँ से लौट कर उसने गोंडवाना विजय की योजना बनायी। शाहजहाँ ने उसे धमकाया, पर उसने धमकी की परवाह न की। वह गोंडवाना पर जा पहुँचा। इस पर शाहजहाँ ने औरङ्गजेब को उसे ठीक करने के लिए भेजा।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

औरङ्गजेब ने तुरत ओरछा पर आक्रमण किया और जुझारसिंह का पीछा किया। जुझार सिंह जाकर चौरागढ़ में छिप गया था। चौरागढ़ के घेरने के पश्चात् जुझार सिंह वहाँ से भी निकल भागा। पर औरङ्गजेब ने उसका पीछा न छोड़ा। आखिर जुझार सिंह को युद्ध करने के लिए विवश होना पड़ा। युद्ध में वह हार गया। जुझार सिंह तथा विक्रमाजीत सिंह युद्ध में गोडों द्वारा मारे गये। उनकी स्त्रियों को जौहर का अवसर न मिला अतः बहुत सी पकड़ कर इस्लाम में परिवर्तित की गयीं। बस वीरसिंह की पत्नी तथा उसकी कुछ अन्तरंग सहेली ही इस संकट से बच सकीं, क्योंकि उन्हीं के सेवकों ने उन्हें समय पाकर कत्ल कर दिया। जुझारसिंह के दो पुत्रों को मुसलमान बना लिया गया। उसका तीसरा पुत्र मुसलमान बनने पर सहमत न हुआ अतः मृत्यु के घाट उतार दिया गया। ओरछा के भव्य भवन मस्जिदों में बदल दिये गये। अनेक मन्दिर तथा पवित्र स्थल भ्रष्ट किये गये। यह घटना शाहजहाँ को श्रेय न देकर कलंकित करती है।

खान जहाँ लोदी का विद्रोह (१६२८-३१ ई०)--शाहजहाँ के समय में खान जहाँ लोदी दक्षिण का सेनापति तथा सूबेदार था। उसी के सहारे शाहजहाँ को बुन्देल खण्ड में सफलता मिली थी। वह एक साहसी अफगान पर्यटक था, जिसने अपनी योग्यता की बदौलत यह पद प्राप्त कर लिया था। शाहजहाँ के राज्य प्राप्त करने के पूर्व वह शहरयार के पक्ष में था, पर शाहजहाँ ने उसे क्षमा कर दिया था, साथ ही दक्षिण की सूबेदारी दे दी थी। कुछ समय पश्चात् उसे दरबार में बुलाया गया। दरबार में उसके साथ सद्व्यहार हुआ, पर फिर भी वह खिन्नचित्त रहा। थोड़े ही समय में उसे विदित हुआ कि वह बन्दी बनाया जाने वाला है, तो उसका दिमाग ठनका। अतः वह भागने पर विवश हुआ। तुरत ही धौलपुर के निकट उसे शाही फौज ने रोकने का प्रयास किया, पर वह दक्षिण की ओर भाग गया। शाही सेना ने उसका दक्षिण तक पीछा किया, उससे छुट पुट युद्ध भी किये किन्तु वह कब्जे में न आया। खानजहाँ इधर से उधर शरण ढूंढ़ता रहा। कभी उज्जैन, कभी कालिंजर, कभी बुन्देलों के यहाँ, लेकिन अन्त में बाँदा जिले के सिहोंसदा नामक स्थान पर पकड़ा गया तथा मार दिया गया।

१६२८ ई० का नौरोज--१६२८ ई० में शाहजहाँ ने नौरोज का त्यौहार बड़ी धूग धाम से मनाया, उसने अपने कुटुम्बियों को अनेक मूल्यवान उपहार प्रदान किये, आसफ खाँ का मन्सब ९००० जात तथा ९००० अश्वारोहियों का कर दिया।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है कि **"नौरोज के उत्सव मनाने के स्थल को सजाने में कोई कसर न छोड़ी गयी थी।"** †

१६३० का दुर्भिक्ष--सन् १६३० ई० में दक्षिण, गुजरात तथा खान देश में दुर्भिक्ष पड़ा। यह दुर्भिक्ष बड़ा भीषण था। हज़ारों नर नारी असीम निद्रा की गोद में सो गये। मनुष्य अपने बच्चों को खाने की सोचने लगा था। मांस विक्रय में बकरी के स्थान पर कुत्तों का मांस बिकने लगा। देश की दुर्दशा हो गयी। गाँव के गाँव साफ हो गये। मृतकों से भूमि पट गयी। अब्दुल हमीद लाहोरी का कथन है--

"यह दुर्दशा इस सीमा पर पहुँच गयी कि मनुष्य मनुष्य को खाने लगा। बच्चे की प्रीति से उसका मांस अधिक प्रिय था। मृतकों की लाशों से मार्ग अवरुद्ध हो गये। यातना सह कर भी जो काल के गाल से बच गये तथा जो चल सकते थे उन्हें अपने जन्म-स्थान को छोड़कर अन्यत्र जाने पर विवश होना पड़ा। जो भूतल अपनी उपज के लिए प्रसिद्ध थे, वंजर हो गये।*

पीटर मुण्डी का कथन है— **'राज मार्ग लाशों से भरे पड़े थे। लाशों से दुर्गंध निकल रही थी, नगरों में तो विशेषकर मृतकों को चाहे वृद्ध हों या बाल चाहे स्त्री हो या पुरुष टाँग से नंगे घसीट कर घर से बाहर कर दिया जाता था, जिससे रास्ता कुछ खुल जाता था।‡**

डॉ० स्मिथ के अनुसार शासक इसमें कुछ न कर सके, १/११ लगान की छूट दी गयी

---

† "No effort was spared in making the place look grand and beautiful." Muslim Rule P. 381.

* "Destitution at length reached such a pitch that man began to devour each other and the flesh of a son was preferred to his love. The number of dying caused obstructions in the roads and every man whose dire sufferings did not terminate in death and retained the power to move wandered off to the towns and villages of other countries. Those lands which had been famous for fertility and plenty now retained no productiveness." *Abdul Hamid Lahori.*

‡ "The highways were strewn with corpses which emitted terrible stench. In the towns specially they dragged them out by the heel stark naked of all ages and sexes till they are out of the gates and then they are left so that the way is half barred up. *Peter Mundi.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

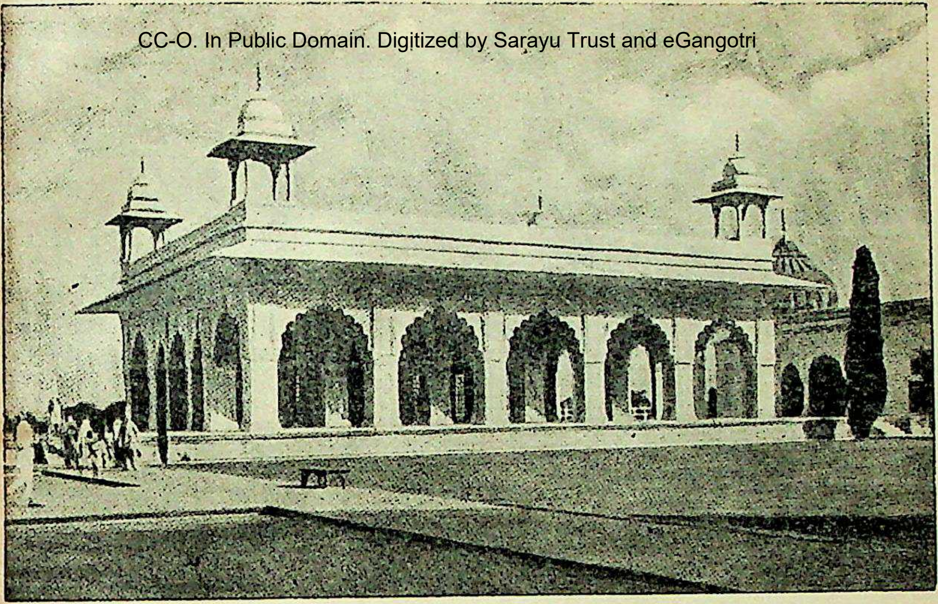

दीवान-ए-खास, दिल्ली

मुग़ल कालीन स्थापत्य कला के ये दो प्रतीक मुग़लों की महान साधना के केवल संकेत मात्र हैं। मुग़लों में भी शाहजहाँ उनका प्रकाश स्तम्भ है, जिसने इस कला को सबसे अधिक प्रोत्साहन दिया। सदियों पश्चात भी हम इनकी भव्यता वैसी ही पाते हैं और हमीं नहीं, विश्व इनकी सराहना करता है।

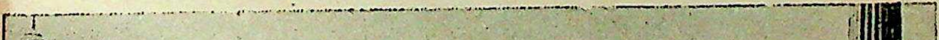

UP State Museum, Lucknow

जामा मस्जिद, दिल्ली

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

थी, इससे सिद्ध होता है कि शेष वसूल किया गया था। यह नृशंसता न थी तो क्या था ? किन्तु अब्दुल हमीद के अनुसार लगभग ७० लाख रुपये बाँट दिये गये थे। वह लिखता है, कि शाहजहाँ ने बुरहानपुर और अहमदाबाद के अधिकारियों को खाने के वितरण के लिए लंगर खोलने को आज्ञा दी थी। वह अत्यन्त दयालु था। नित्य भोजन बाँटा जाता था। ५०,०००) तो शाहजहाँ के बुरहानपुर रहने पर ही बाँट दिये गये थे। प्रत्येक सोमवार को बाँट कर २० बार में १ लाख रुपया अलग से बाँटा गया। फिर भी वर्षा की कमी के कारण अनेक ज़िलों में त्राहि-त्राहि मच गयी।

मुमताज महल

(१) आसफखाँ की पुत्री (२) १५९४ में जन्म (३) १६१२ ई० में खुर्रम से विवाह (४) योग्य पत्नी (५) कट्टर धार्मिक (६) निर्धन की पोषिका (७) १६३१ ई० में देहासवान (८) उसका स्मारक ताजमहल

भारत की स्थापत्य कला का सर्वोत्तम प्रतीक ताज जब तक संसार का ताज है, तब तक इतिहास के पृष्ठों से मुमताज महल का नाम नहीं उठ सकता। मुमताज महल इत्मादुद्दौला के पुत्र आसफखाँ की पुत्री थी। मुमताज महल का बचपन का नाम अरजुमन्द बानू बेगम था। उसका जन्म सन् १५९४ ई० में हुआ था। १६१२ ई० में उसका खुर्रम से विवाह हो गया था। यह विवाह बहुत सफल रहा। उसने शाहजहाँ को अपने प्रेम के वशीभूत कर लिया था। नूरजहाँ के जहाँगीर के प्रति प्रेम से भी यह बढ़कर था, क्योंकि नूरजहाँ में स्वार्थ सिद्धि तथा राजनीति के कण आ गये थे, पर मुमताज महल शाहजहाँ के विपत्ति अथवा सुख के समय निस्वार्थ भाव से सदा शाहजहाँ के साथ रही। शाहजहाँ के विद्रोह के समय भी उसने साथ न छोड़ा था। वही शाहजहाँ की मुख्य पत्नी थी। शाहजहाँ भी उससे कम स्नेह न करता था।

मुमताज महल सुयोग्य पत्नी थी। उसे प्रकृति से अपार प्रेम था। वह प्रतिभा सम्पन्न थी। वह उदार हृदय तथा निर्धन की चिन्ता और सहायता करने वाली थी। साथ ही इस्लाम में उसकी सच्ची निष्ठा थी। उसे धर्म की व्यापकता का कदाचित् ज्ञान न था। शाहजहाँ में कट्टरता के बीज बोने का श्रेय उसी को दिया जाता है। डा० ईश्वरी प्रसाद का कथन है, कि बहुपत्नी वाले दम्पति (पति पत्नी) में इतना प्रेम अन्यत्र नहीं देखा गया। "सुख रहा

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

हो या दुःख, अच्छे दिन रहे हों अथवा बुरे, वह सदा आज्ञाकारिणी पत्नी रही और अपने पति के सुख दुःख को बँटाती रही। अपने पिता के शासन काल में शाहजहाँ के प्रबास के समय आठ वर्ष तक अरजुमन्द बानू बेगम ने बड़ी तल्लीनता के साथ पति का कष्ट निवारण किया।" †

धीरे-धीरे वह १४ बच्चों की माँ बन गयी, पर १६३० ई० में जब शाहजहाँ खान-ए-जहाँ के विद्रोह में व्यस्त था, उस समय उसकी चौदहवीं सन्तान एक पुत्री हुई। इसकी प्रसव पीड़ा ने उसे अन्य कष्ट भी दिये, और एक दिन अपने साथ उसे भी ले गयी (७ जून १६३१)। चलते समय मुमताज ने शाहजहाँ से अपने बच्चों तथा वृद्धों का ध्यान रखने को कहा और अन्तिम श्वास ली।

इसकी मृत्यु से शाहजहाँ को बड़ा धक्का लगा। शाहजहाँ को पत्नियों की कमी तो न थी, पर दूसरी पत्नी मुमताज न वन सकती थी। न कोई दूसरी पत्नी मुमताज की स्थानापन्न ही हो सकती थी। एक सप्ताह तक तो शाहजहाँ कोई काम ही न कर सका। सारा साम्राज्य दुःख सागर में डूबा रहा। एक बार वह उसकी कब्र पर जाकर रोया। **"साम्राज्य में अब कोई मिठास नहीं है, जीवन में मुझे अब कोई आनन्द ही नहीं दिखाई देता, ...मुझे किसी के मुख मण्डल से अब हर्ष नहीं हो सकता।"** * शाहजहाँ ने कीमती वस्त्र तथा आभूषण तक पहनना छोड़ दिया। उसके सभी बाल अविलम्ब श्वेत हो गये किन्तु उसने मुमताज को अमर कर दिया।

† "Through sunshine and storm, through good and evil days she always behaved like a dutiful wife, cheerfully sharing her husband's joys and sorrows. When Shahjahan was a homeless exile for eight years during his father's reign the Begum weathered the buffets of political life with a serenity which is deserving our admiration."

Muslim Rule. P. 315,

* "Empire has no sweetness. Life itself has no relish left for me now. . . . . . . Nobody's face can delight me now."

Muslim Rule, P. 387.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

दक्षिण नीति

(१) दक्षिण एक समस्या
(२) पृष्ठभूमि
(३) शाहजहाँ के अभियान के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ
(४) अभियान के कारण, धार्मिक व राजनीतिक
(५) मलिक अम्बर का देहावसान
(६) अयोग्य उत्तराधिकारी
(७) अन्ततः मुग़लों से संघर्ष तथा एक एक करके रियासतों का पतन

भारत का दक्षिण प्रान्त उत्तर वालों के लिए सदा एक नयी समस्या रहा है। बहुत कम ऐसे शासक हुए हैं, जिन्होंने दक्षिण विजय की कल्पना की हो और आक्रमणकारियों में सभी शासक सफल नहीं हो सके। हिन्दूकाल में समुद्रगुप्त अपने अभियान में सबसे अधिक सफल हुआ था। हर्ष नर्मदा पार न कर सका था, दिल्ली सुल्तानों में अलाउद्दीन सबसे अधिक सफलता प्राप्त कर सका था। उसके पश्चात् तुग़लक के समय ह्रास प्रारम्भ हो गया। मुग़लों में अकबर ने अहमदनगर और असीरगढ़ को तोड़ दिया था, पर अधिक आगे वह न निभा सका। जहाँगीर के समय शाहजहाँ के कारण कुछ सफलता मिली थी, इस प्रकार शाहजहाँ दक्षिण को पहले से ही भलीभाँति जानता था। उस समय की स्थिति भी शाहजहाँ के अनुकूल थी। उसे अब उत्तर में किसी संकट की सम्भावना न थी। वह अपने समस्त साधन दक्षिण में लगा सकता था। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि शाहजहाँ केवल राजनीतिक कारणों से प्रेरित न था, बल्कि वह दक्षिण की शिया रियासतों को ठीक करना चाहता था। इसके अतिरिक्त दक्षिण की दशा भी गिर गयी थी। अहमदनगर का सुल्तान अब निःशक्त हो गया था। कारण यह था कि उसका पूर्व तथा योग्य मंत्री मलिक अम्बर स्वर्ग सिधार गया था। उसके पश्चात् उसके पुत्र फतेहखाँ तथा सुल्तान में न बनती थी। अतः उसने आसफखाँ को लिखा कि वह विवश है, उसके साथ नहीं निभा सकता, साथ ही मैंने उसे बन्दी बना लिया है। आसफखाँ ने इसका उत्तर दिया कि यदि ऐसी बात है तो उससे मुक्ति ही ले लो। बस फतहखाँ को बल मिल गया। उसने बन्दी सुल्तान निज़ामशाह को समाप्त कर दिया, तथा उसके स्थान पर उसके अल्पव्यवस्क पुत्र हुसेन को गद्दी पर बिठाया। यही नहीं खानजहाँ लोदी के विद्रोह के समय अहमदनगर के सुल्तान ने मुग़ल साम्राज्य के विरुद्ध खानजहाँ की सहायता की थी। इस स्थिति से बीजापुर तथा गोलकुंडा की नियत

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

भी खराब हो गयी थी । अतः शाहजहाँ को हर प्रकार दक्षिण का ठिकाना लगाना था ।

अहमदनगर--फतेहखाँ शाहजहाँ के प्रति भी स्वामिभक्त न रहा । उसने अपनी शक्ति को संगठित करना प्रारम्भ किया । शाहजहाँ इस समय खानजहाँ लोदी के विद्रोह के सम्बन्ध में दक्षिण में ही था । अतः महावतखाँ को अहमद नगर के विरुद्ध आक्रमण करने को भेजा । इधर फतेहखाँ ने दौलताबाद पर अधिकार कर लिया । महावतखाँ ने जब सीधे काम निकलते न देखा तो फतेहखाँ को धन देकर अपनी ओर मिलाने की चेष्टा की । फतेहखाँ वैसे तो बहुत निर्भीक था, महावतखाँ की बात न मानता पर इसी समय एक जागीर के पीछे शाहजी भोसले से उसका झगड़ा हो गया था । शाह जी ने बीजापुर में नौकरी कर ली और बीजापुर सुल्तान को अहमदनगर के विरुद्ध और भी भड़का दिया । अतः फतेहखाँ ने मुग़लों का सहारा लेना अधिक अच्छा समझा । फतेहखाँ को बीजा-पुर के सेनापति ने भी तोड़ना चाहा । अतः महावतखाँ ने मौका हाथ से न जाने दिया । उसने दौलताबाद के दुर्ग पर अधिकार कर लिया तथा फतेहखाँ व निजामशाह को मुग़ल दर्बार भेज दिया । सुल्तान को तो ग्वालियर के दुर्ग में रखा गया और फतेहखाँ को लाहौर में रख दिया गया । दौलताबाद के पतन के पश्चात् भी अहमदनगर राज्य समाप्त नहीं हुआ । इसका बालाघाट वाला प्रदेश अभी भी अहमदनगर के अधिकारियों के हाथ में था । ये अधिकारी शाह जी द्वारा हुसेन के स्थान पर बिठाये गये शासक के स्वामिभक्त थ । शाह जी भोंसला ने निज़ामशाही राज्यवंश को पुनर्जीवित करने की चेष्टा थी । पर शाहजहाँ के सम्मुख उसकी एक न चली । १६३६ ई० में अहमदनगर-राज्य पूर्ण रूप से नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया ।

बीजापुर--शाहजहाँ ने बीजापुर नरेश आदिलशाह को पत्र लिखा कि की वह अधीनता स्वीकार करले । पर उसने इस पर कोई ध्यान न दिया । अतः शाहजहाँ ने तीन सेनापतियों को तीन दिशाओं से बीजापुर पर आक्रमण करने के लिए भेजा--उसकी आज्ञा थी **"यदि आदिलखाँ अपनी अज्ञानता से जाग जाय, तथा समुचित आज्ञा माने तो देश को बरबाद न करना, अन्यथा हर यत्न से उसे कुचल देना ।"** †

† "If Adil Khan should awake from his heedless stupidity and should pay proper obedience, they were to hold their hands, if not, they were to make every exertion to crush him."

Mughal Empire in India P. 466,
(बादशाहनामा के आधार पर)

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अतः खानजहाँ ने शोलापुर की ओर से, खान जमन ने इन्दपुर और खान-ए-दोरां ने पूर्वउत्तर में बीदर की ओर से आक्रमण किया। ऐसी स्थिति में बीजापुर सुल्तान ने यह बताने की चेष्टा की, कि वह निर्दोष है और स्वागत के लिए तैयार है, पर मुग़ल उसकी चाल में न आये क्योंकि उन्हें विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हो गया था कि वह सब धोका है, सुल्तान युद्ध की पूरी तैयारी कर रहा है। अतः बीजापुर रियासत को खूब लूटा गया। अनेक पकड़े व मारे गये। दोनों पक्ष शीघ्र ही युद्ध से ऊब गये। आखिर सन्धि की शर्तें स्वीकार की गयीं; आदिलशाह ने शाहजहाँ की अधीनता स्वीकार कर ली। उसने वचन दिया कि वह अहमदनगर के विषय में भविष्य में कोई हस्तक्षेप न करेगा। इसी के साथ उसने २० लाख रुपये का धन क्षति पूर्ति के लिए देना स्वीकार किया तथा शाह जी को अपनी सेवा से निकालने का वचन दिया। अन्त में सुल्तान की इच्छा हुई कि शाहजहाँ राजधानी लौट जाय तो उसकी जनता को सांत्वना हो। अतः १६३६ ई० में शाहजहाँ ने उसकी कामना रखने के लिए मांडू की ओर कूच किया। इस सन्धि से बीजापुर सदैव के लिए दब गया। यह सन्धि १६३६ ई० से ५६ ई० तक कारगर रही। इस स्थिति को देखकर गोलकुंड ने भी आत्म-समर्पण कर दिया।

औरंगजेब की सूबेदारी (१६३६-४४ ई०)—शाहजहाँ ने अपने सुयोग्य पुत्र औरङ्गजेब को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया, पर दक्षिण का प्रबन्ध सरल न था। दक्षिण में ६४ किले थे, इनमें से ५३ किले पहाड़ियों पर बसे थे तथा शेष ११ मैदान में थे। वह प्रदेश निम्नलिखित चार सूबों में विभक्त था।

(१) दौलताबाद—जिसमें अहमदनगर तथा अन्य जिले सम्मिलित थे और जिसे दक्षिण का ही सूबा कहते थे। यह सूबा पहले निजामुल्मुल्क के अधिकार में था। इसकी राजधानी पहले अहमदनगर थी, बाद को दौलताबाद हो गयी।

(२) तेलंगाना—यह बालाघाट वाला प्रान्त था।

(३) खानदेश—इस प्रदेश का दुर्ग असीरगढ़ था। इसकी राजधानी बुरहानपुर थी जो असीरगढ़ से ४ कोस थी।

(४) बरार—इस प्रान्त की राजधानी एलिचपुर थी। इसका प्रधान दुर्ग गाविल था, जो पहाड़ी की चोटी पर बना था तथा एक सुदृढ़ दुर्ग था। इन चारों सूबों का राजस्व (Revenue) लगभग २ अरब दम था जो ५ करोड़ रुपये के बराबर होता है।

इस समय तक शाह मुगलों के अधीन न था, न उसने अभी अपने दुर्ग ही छोड़े थे, अतः उसको दबाने के लिए आदिल ने एक टुकड़ी भेजी। यह टुकड़ी

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शाही फौज को सहायता देने भर को थी। शाह ने अपने को जब बुरी तरह घिरा पाया, तो सन्धि करने को प्रस्तुत हुआ। शाह की इच्छा थी कि उसे शाही दरबार में स्थान दिया जाय, तभी वह आत्मसमर्पण करे। शाही आज्ञा यह थी कि यदि वह अपना जीवन सुरक्षित चाहता है तो आदिलशाह से समझौता कर ले। आखिर यही हुआ। शाह को अपने दुर्ग देने पड़े तथा आदिलशाह से समझौता करना पड़ा। इस प्रकार ४० वर्ष (१५९५–१६३६ ई०) का दीर्घ-कालीन संघर्ष कुछ शान्त हुआ। जैसा कि यदुनाथ सरकार ने लिखा है––

"दक्षिण का मामला आखिर तय हुआ। मुगल बादशाह की स्थिति निर्विवाद शक्तिशाली मान ली गयी। उसके साम्राज्य की सीमाएँ निश्चित हो गयीं, तथा दक्षिणी राज्यों पर आधिपत्य मान लिया गया।" *

इसी प्रकार डा० त्रिपाठी ने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा है––

"१६३६ ई० का बीजापुर तथा गोलकुंडा की मुगल बादशाह से सन्धि का दक्षिण तथा मुगल साम्राज्य दोनों के इतिहास में एक प्रमुख स्थान है। इन सन्धियों से निजामशाही वंश का तो अन्त आ गया तथा बहमनी के पश्चात् दक्षिण की मुसलमान रियासतों का एक प्रमुख अध्याय समाप्त हो गया। इन रियासतों की संतुलन शक्ति ही नष्ट हो गयी, जिससे मराठे तथा मुगलों की बन आई।" †

गोलकुंडा––गोलकुंडा में कुतुबशाही राज्य था। यहाँ के नये सुल्तान अब्दुल्ला कुतुबशाह ने १६३१ ई० में शाहजहाँ को जब वह खानजहाँ के

---

* "The affairs of the Deccan were at last settled. The position of the emperor was asserted beyond challenge, his boundaries clearly defined, and his suzerainty over the southern kingdoms formerly established."

Jadu Nath Sarcar. History of Aurangzeb.

† "The treaties of 1636 between the emperor and the States of Bijapur and Golkunda form an important land mark in the history of the empire as also of the Deccan. They brought to an end the Nizam Shahi dynasty and closed an important chapter in the post Bahmani history of the Muslim States in the Deccan. The balance of power which existed in the South was destroyed to the advantage of the Marathas and the Mughals."

Rise & Fall of the Mughal Empire, P. 451.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

विरुद्ध दक्षिण गया था, एक अमूल्य भेंट दी थी। साथ ही जब महावत खां ने बीजापुर पर हमला किया था, तो उसने बीजापुर सुल्तान की सहायता भी न की थी। लेकिन फिर भी शाहजहाँ से और गोलकुंडा सुल्तान से मैत्री सम्भव न थी, क्योंकि शाहजहाँ कट्टर सुन्नी था और सुल्तान कट्टर शिया। सुल्तान फारस के बादशाह को मानता था। अतः शाहजहाँ की सबसे बड़ी माँग यह थी कि फारस के बादशाह का नाम हटा कर उसका नाम खुतबे में पढ़ा जाय तथा शिया रीति-रिवाजों को हटा दिया जाय। गोलकुंडा का सुल्तान पहले तो आना-कानी करता रहा, पर दूसरी रियासतों से उसे पर्याप्त सीख मिल चुकी थी। अतः उसने सन्धि की सारी शर्तें मान लीं। सालाना कर भी देना स्वीकार किया। इस कार्य का भारी श्रेय औरङ्गजेब को था।

औरंगजेब का सूबेदारी से त्याग पत्र—मुगल राजधानी में एक ऐसी घटना घटी कि औरङ्गजेब को दक्षिण की सूबेदारी से त्यागपत्र देना पड़ा। शाहजहाँ की पुत्री, जहाँनारा, जिसे बेगम साहबा कहते थे और जो बड़ी दयालु तथा उदार स्त्री थी, १६४४ ई० में बुरी तरह जल गयी। उसके सुन्दर इत्र से सुगन्धित वस्त्रों ने अग्नि की लपटों को समेट लिया। शाहजहाँ ने उसकी अच्छी से अच्छी देख-रेख की। वह स्वयं उसके औषध लगाता, तथा उसकी चारपाई के समीप बैठता था। सारा राजकीय कार्य ठप हो गया था। नित्य दान-दक्षिणा दी जाती। तमाम दुआएँ की जातीं; मनौती मनायी जाती थीं। यह दशा ६ माह तक रही। आखिरकार अनेक वैद्यों और हकीमों की औषध तथा उपचार के पश्चात् एक दास आरिफ ने एक सुन्दर मरहम बनाया, जिससे जहाँनारा के घाव भरे। उसका स्वास्थ्य लाभ बड़ी खुशी से मनाया गया। आरिफ को तो सोने से तौल दिया गया तथा उसे अनेक अन्य उपहार दिये गये। औरङ्गजेब भी अपनी बहिन को देखने आगरे आया। इसी बीच उसे ज्ञात हुआ कि उसकी जागीर उससे छीन ली गयी। इसका कारण तो कुछ और ही बताया जाता है (एक साधु की हत्या) पर इसकी जड़ में उसका भाई दारा था। दारा के द्वेष का वह भाजन रहा। दारा सदा बादशाह के निकट रहता था अतः मन चाहा उसको प्रेरित करता रहता था। औरङ्गजेब ने समझ लिया कि वह इस स्थिति में दक्षिण की सूबेदारी भी न निभा सकेगा, अतः उसने उस से त्यागपत्र दे दिया।

औरंगजेब की दूसरी बार सूबेदारी—१६५३ ई० में औरङ्गजेब पुनः दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया गया। उसने अपने द्वितीय शासन-काल में उसी राजस्व पद्धति को अपनाया, जो टोडरमल ने उत्तर में अपनायी थी। इस कार्य में उसका सहायक मुर्शिद कुली खाँ था। कृषकों को औजार तथा बीज

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

खरीदने के लिए पेशगी धन दिया गया क्योंकि १६४४ से ५३ ई० तक ६ वर्ष में दक्षिण की दशा बहुत गिर गयी थी। औरङ्गजेब के स्थान पर जो सूबेदार नियुक्त किये गये थे, उन्होंने किसानों से बुरी तरह धन वसूलने के अतिरिक्त और कुछ न किया था। इससे राज्य की माली हालत बहुत गिर चुकी थी। इसके पूर्व जिस दक्षिण से अपार धन मिलता था, वही अब संकट का आगार था। वहाँ पर प्रशासकीय कर्मचारियों तथा शान्ति की सुरक्षा के लिए सैनिकों को शाही खजाने के धन से वेतन दिया जाता था। डा० ईश्वरी प्रसाद जी लिखते हैं **"संक्षेप में कहा जा सकता है कि दक्षिण की दशा क्षीण थी। भूमि को चूस लिया गया था। लगान में हर साल कमी होती जा रही थी, अतः नये सूबेदार को एक आर्थिक विषम स्थिति का सामना करना था।"** †

औरङ्गजेब ने देखा कि लगान १/१० भी वसूल नहीं हो पा रहा। उसे दौलताबाद से कुछ धन व्ययभार के लिए माँगना पड़ा। अतः औरङ्गजेब ने पिता से ऐसी जागीरें प्रदान करने को लिखा जो धन दे सकें और जो उस समय अयोग्य कर्मचारियों के हाथ में थीं। इस पर उन कर्मचारियों ने बहुत असन्तोष प्रकट किया, पर शाहजहाँ ने औरङ्गजेब की बात मान ली। इस बात पर उसके विरुद्ध यह आरोप लगाया गया कि उसने सारी जागीरें अच्छी-अच्छी इसलिए लेनी चाहीं कि वह अपना लाभ चाहता है, अतः उसको आधी अच्छी तथा आधी खराब जागीरें दे दी गयीं, साथ ही शाहजहाँ ने एक भर्त्सनापूर्ण पत्र भी लिखा। औरङ्गजेब ने पत्र के आरोपों का उत्तर तो दे दिया पर अन्य बातों की चिन्ता न की।

मुर्शिद कुली खां का माली प्रबन्ध––माल विभाग को दृष्टि में रखकर दक्षिण दो भागों में विभक्त था, पोनघाट तथा बालघाट। पहले भाग में खानदेश तथा आधा बरार सम्मिलत था, शेष राज्य दूसरे भाग में था। इनमें से प्रत्येक के लिए एक दीवान की नियुक्ति की गयी। बालघाट का दीवान मुर्शिदकुली खां था। यह बहुत योग्य प्रबन्धक सिद्ध हुआ। उसने टोडरमल की चलायी हुई पद्धति को दक्षिण में अपनाया। अमीन तथा अमील भूमि नापने के लिए नियुक्त किये गये। इन अधिकारियों ने कृषि योग्य भूमि तथा बंजर आदि की सही नाप की। ग्रामों में लगान इकट्ठा करने के लिए मुकद्दम रखे गये।

† "In short the province was in a State of decay, the land sucked dry, and the deficit continued to increase from year to year so that the new viceroy found himself confronted with a serious financial situation"
Muslim Rule. P. 409

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मुकद्दम किसानों के हित की भी रक्षा करते थे। निर्धन कृषकों को वीज तथा पशु खरीदने के लिए धन पेशगी दिया गया जिससे वे थोड़ा-थोड़ा करके अदा कर सकते थे। दीवान बड़ा न्याय प्रिय था और न्याय की सीमा को रखने के लिए वह कभी कभी स्वयं जंज़ीर घसीटता था। लगान को निश्चित करने के लिए उस समय तीन पद्धतियाँ थीं। इन्हीं से मुर्शिद कुली खां ने काम लिया। पहली पद्धति के अनुसार हर हल पर कुछ लगान बाँध दिया जाता था, इसमें लगान घटता बढ़ता न था, चाहे उपज कम हो या अधिक। इस प्रकार इस पद्धति में कभी किसान को लाभ हो जाता था, कभी राज्य को। इस पद्धति का प्रयोग मुर्शिद कुली खां ने पिछड़े स्थलों में किया। दूसरी पद्धति वटाई की थी। इसके अनुसार राज्य को उपज का आधा भाग मिलता था। यह उन स्थलों में लागू की गयी थी जहाँ वर्षा पर ही उपज निर्भर थी। जहाँ कुओं से सिंचाई होती थी, वहाँ राज्य उपज का $\frac{1}{3}$ भाग ले लेता था। कहीं-कहीं फल आदि की उपज में यह हिस्सा कम या अधिक होता था। नहर, तालाब अथवा नदी की सिंचाई में भी लगान का अंश घट बढ़ जाता था। तीसरी पद्धति उत्तरी भारत की ज़रीब पद्धति थी। इसके अनुसार भूमि का नाप करके प्रति बीघा उपज के अनुसार लगान निश्चित कर दिया जाता था।

इस प्रकार के सुनिश्चित प्रवन्ध से दक्षिण की दशा सुधर गयी। तमाम अन्याय और अत्याचारों से किसान को छुट्टी मिल गयी।

गोलकुंडा से युद्ध--जैसा पहले कहा जा चुका है कि दक्षिण की रियसतों को शाहजहाँ केवल राजनीतिक दृष्टि से ही समाप्त न करना चाहता था, बल्कि उसे धार्मिक वैमनस्य भी था। इसमें गोलकुंडा की स्थिति और भी खराब थी। गोलकुंडा नरेश ने बहुत समय से न तो सालाना कर ही चुका पाया था, न उसने औरङ्गज़ेब की सीख की ही परवाह की थी। औरङ्गज़ेब का कहना था कि यदि वह कर नहीं दे सकता तो अपने राज्य का एक अंश ही दे दे। इसके अतिरिक्त सुल्तान ने कर्नाटिक ले लिया था, जो शाहजहाँ को कभी न भाया था। सबसे बड़ी बात यह थी कि उसका मंत्री मीर जुमला* एक योग्य

---

* **मीर जुमला**--मीर मुहम्मद सय्यद, अथवा मीरजुमला अर्दिस्तान का निवासी था। यह इस्पहान के सय्यद वंश का था। अन्य यात्रियों की भाँति यह भी एक सौदागर के साथ भारत आया था। वह सौदागर उसे गोलकुंडा ले आया। सौदागर की मृत्यु के पश्चात् उसका धन इसे प्राप्त हो गया। उसकी योग्यता ने गोलकुंडा के शासक कुतुबशाह अब्दुल्ला का ध्यान आकर्षित किया। अब्दुल्ला ने उसे अपना मंत्री बना लिया। धीरे-धीरे वह अपनी योग्यता के बल

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पुरुष था, पर सुल्तान की उससे बनती न थी। अतः सुल्तान उसके साथ अच्छा व्यवहार न करता था। इस पर मीरजुमला ने शाहजहाँ को हस्तक्षेप के लिए लिखा था।

अतः औरङ्गज़ेब ने एक टुकड़ी अपने पुत्र मुहम्मद के साथ भेजी और शीघ्र ही स्वयं भी जा पहुँचा। यह देखते ही सुल्तान अब्दुल्ला को होश आया। उसने तुरंत मीरजुमला के परिवार को मुक्त कर दिया, तथा शाहजहाँ से क्षमा याचना की। पर औरङ्गज़ेब ने एक न सुनी और चढ़ता चला गया। सुल्तान ने ने अपना कोष हटा लिया, राजधानी की रक्षा के लिए सेना को सचेत कर दिया। कहते हैं "**फिर भी सुल्तान एक अबोध बच्चे तथा अबला के समान भयभीत हो गया।** उसने औरंगज़ेब को प्रसन्न करना चाहा। उसके अधिकारियों ने भी औरङ्गज़ेब को प्रसन्न करने की चेष्टा की, हीरे जवाहरात भेंट किये, फिर भी मुग़लों ने नगर को बुरी तरह लूटा। उनके ऊपर उपहारों का भी कोई प्रभाव न हुआ। यह देखकर अब्दुल्ला ने बीजापुर के सुल्तान से सहायता की याचना की। उधर औरङ्गज़ेब के मामा शायरता खाँ ने मालवा से आकर उसकी सहायता की, इससे दोनों दलों में घोर संग्राम हुए, पर सुल्तान शाही सेना के समक्ष कैसे टिक सकता था। उसे सन्धि करने पर विवश होना पड़ा। औरङ्गज़ेब से अधिक दारा और जहाँनारा का शाहजहाँ को ध्यान था।

पर अपने स्वामी का विश्वासपात्र भी बन गया। उसने सैनिक तथा व्यावहारिक (civil) सभी कार्य बड़ी चतुरता से किये। उसी ने कर्नाटिक जीत लिया। अपने राज्य की सीमा ही नहीं उसने सम्पत्ति भी बढ़ाई। साथ ही एक निजी सेना भी तैयार कर ली। इससे सुल्तान सतर्क हो गया। इससे कुछ उसके शत्रु भी बन गये। उन्होंने सुल्तान के कान और भरने शुरू कर दिये। शाहजहाँ-नामा के अनुसार उसे अपने उत्तम कार्यों के बदले बस दुर्व्यवहार ही मिला। एक बार उसे ज्ञात हुआ कि सुल्तान उसे बन्दी बनाना चाहता है तथा अन्धा कराना चाहता है, अतः वह सतर्क हो गया। सुल्तान के बुलाने पर भी वह उसके समीप न गया। यही नहीं उसने बाहरी सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया। औरङ्गज़ेब तो ऐसे अवसर की ताक में ही था। इधर मीरजुमला के पुत्र मुम्मद अमीन ने सुल्तान का भरे दरबार में अपमान कर दिया। अतः सुल्तान ने उसे सपरिवार कारागार में डाल दिया। इस की सूचना जब शाहजहाँ पर पहुँची, उसने कुतुबशाह से मीरजुमला के परिवार को मुक्त करने को कहा, पर जब तक वह कोई उत्तर देता, औरंगज़ेब ने उसके राज्य पर आक्रमण कर दिया।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

दारा ने भी सुल्तान की सिफारिश की। शाहजहाँ को तुरत आज्ञा हो गयी कि युद्ध बन्द कर दिया जाय। आखिर औरङ्गज़ेब के पुत्र मुहम्मद से सुल्तान की पुत्री का व्याह कर दिया गया, लाखों रुपया भेंट में लिया गया। सुल्तान ने सदा मुग़ल शासन के अधीन रहना स्वीकार किया। मीरजुमला का दरवार में स्वागत किया गया। उसे ६००० ज़ात और ६००० सवार का मन्सब दिया गया। इसी प्रकार उसके पुत्र के साथ व्यवहार किया गया। इस समस्त घटना चक्र में औरङ्गज़ेब की प्रतिष्ठा गिर गयी, क्योंकि दारा तथा जहाँनारा के द्वारा शाहजहाँ के कान भरे गये। उन्होंने औरङ्गज़ेब को इसका श्रेय न देकर स्वार्थी तथा धन-लोलुप कहा।

बीजापुर से युद्ध—पहली बार की सूबेदारी में औरंगज़ेब ने इस रियासत को दबा लिया था, पर युद्ध एकाएक बन्द करने के कारण उसकी मनोकामना पूर्ण न हुई थी। मुहम्मद आदिलशाह का दिल्ली से मैत्री सम्बन्ध भी था। बीजापुर अभी तक स्वतंत्र था। आदिल शाह के व्यवहार से शाहजहाँ सन्तुष्ट न था। अतः उसने सुल्तान को एक कठोर पत्र लिखा जिसमें यह था कि वह स्वतन्त्रता से आचरण न करे। वह मुग़लों की भाँति उपाधि आदि नहीं धारण कर सकता। बीजापुरियों को यह सहन न हुआ किन्तु आदिलशाह एक दूरदर्शी राजा था। उसने शाहजहाँ से क्षमा माँगी, तथा १६५६ ई० तक शान्ति से राज्य किया। १६५६ ई० में उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका १८ वर्षीय पुत्र अली आदिलशाह द्वितीय गद्दी पर बैठा। ऐसा अवसर पाकर औरंगज़ेब कब चूक सकता था। उसने शाहजहाँ को लिखा कि यह उत्तराधिकारी आदिल शाह का औरस पुत्र नहीं है, दरबारियों की बदौलत एक लड़का बिठा दिया गया है। साथ ही आदिल शाह के उपरान्त उसका उत्तराधिकारी शान्ति भी नहीं रख सकता। अतः उसे आज्ञा दी जाय कि वह बीजापुर पर आक्रमण कर उसे भी मुग़ल राज्य में मिला ले। शाहजहाँ ने औरंगज़ेब को लिख दिया कि जो उचित समझें करें। औरंगज़ेब की सहायता के लिए मीरजुमला को भी आज्ञा दी कि वह दक्षिण चला जाय, क्योंकि वह दक्षिण से भलीभाँति परिचित था। आखिर युद्ध की तैयारी हुई और बीजापुर पर आक्रमण कर दिया गया। बीदर का घेरा डाला गया। इस युद्ध के लिए औरंगज़ेब का इतिहासकार लिखता है कि **"इस प्रकार के युद्ध की स्वीकृति सर्वथा ग़लत थी। बीजापुर कोई अधीन रियासत न थी, बल्कि मुग़लों की भाँति उनका मित्र राष्ट्र था। मुग़लों को उनके उत्तराधिकार निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार न था। मुग़लों के आक्रमण का मूल कारण तो उत्तराधिकारी का असहाय होना तथा उसके अधिकारियों का**

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अनैक्य (फूट) था जिसने औरंगजेब को राज्य अपहरण का अवसर प्रदान किया था। †

बीदर का दुर्ग बड़ा मज़बूत था। इसके चारों ओर ७५ फीट गहरी खाई थी। यह स्वयं ३६ फीट ऊँची दीवालों में घिरा था। इस दुर्ग के अन्दर अनेक प्रासाद, स्नानागार, उद्यान आदि थे। इसे उस समय अभेद्य समझा जाता था। इसका रक्षक एक वीर सीदी मरजां था। इसके आधिपत्य में १००० अश्वारोही तथा ४००० पदाति रहते थे। इनमें तोपची तथा बन्दूकची भी थे। आखिर घनघोर युद्ध हुआ, कभी बीजापुरी मात खा जाते, कभी मुग़लों को खिला देते। मुग़लों ने धीरे-धीरे खाई पाटना प्रारंभ किया। मुग़लों की संख्या अधिक होने के कारण विजयश्री उन्हीं के हाथ लगी। इसमें सीदी तथा उसके पुत्र बारूद से जल गये, अतः उनके कर्मचारी उन्हें दूर हटा ले गये। आखिर मुग़लों ने जो सामने आया उसी को स्वर्ग लोक पहुँचा दिया। सीदी ने कोई दूसरा चारा न देखकर आत्म-समर्पण कर दिया, और दुर्ग की तालियाँ औरंगज़ेब को सौंप दीं। यह दुर्ग २७ दिन में जीत लिया गया। मुग़लों के हाथ अपार धनराशि लगी। औरंगज़ेब ने दुर्ग में प्रवेश किया, शाहजहाँ के नाम से खुतवा पढ़वाया गया। बहादुर सीदी अपने व्रणों (घावों) के कारण इस संसार से चल बसा। इसके पश्चात् बीजापुरियों ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए गुलवर्गा में शक्ति संचय किया। औरंगज़ेब ने तुरंत महावत खां को उसके विरुद्ध भेजा। महावत खां को अफजल खाँ के सेनापतित्व में एक संगठित सेना का सामना करना पड़ा, पर अफजल खां की एक न चली। थोड़े ही समय में औरंगजेब भी बीदर से कल्याणी पहुँच गया। वहाँ भी उसे भारी संघर्ष का सामना करना पड़ा। दुर्ग रक्षकों ने आक्रमणकारियों पर अपार अग्नि की वर्षा की। उन्होंने ६ घंटे तक मुग़लों को श्वास न लेने दिया, किन्तु ये संख्या में अधिक थे, फिर उनके अश्वारोही बड़े कुशल थे; अतः कल्याणी का दुर्ग भी उनके हाथ आ गया। इसके अनन्तर औरंगज़ेब बीजापुर की ओर चल पड़ा

† "The war thus sanctioned was wholly unrighteous and Bijapur was not a vassal State but an independent and equal ally of the Mughal emperor, and the latter had no lawful right to confirm or question the succession at Bijapur. The true reason of the Mughal interference was the helplessness of its boy king and the discord among his officers which presented a fine opportunity for annexation."

History of Aurangzeb, P. 237.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

और उसे भी परास्त करता, पर बीच में ही शाहजहाँ की आज्ञा हुई कि युद्ध वन्द कर दिया जाय। शाहजहाँ ने इस आज्ञा को निकाल कर भारी भूल की। औरंगज़ेब का किया-कराया सब मिट्टी हो गया। औरंगज़ेब अपनी नीति कुशलता से इन राज्यों को सदा के लिए एकसा कर देता, पर मुग़ल राजधानी में तो औरंगजेब के भी शत्रु मौजूद थे, उन्होंने शाहजहाँ को उसके विरुद्ध सुझा रखा था। अतः बीजापुर सुल्तान से सन्धि कर ली गयी। सुल्तान को १॥ करोड़ रुपया क्षति पूर्ति के लिए देना पड़ा तथा उसने कल्याणी, वीदर और परेन्दा के दुर्ग भी देना स्वीकार किया।

शाहजहाँ की मध्य एशियाई नीति :—बाबर ने चाहा था कि वह अपनी मातृ-भूमि पर शासन करे, पर यह कोरी कल्पना ही रह गयी थी। कई पीढ़ी पश्चात् शाहजहाँ ने उस स्वप्न को पूरा करने का प्रयास किया मानों अभी भी उत्तराधिकार के फलस्वरूप बाबर का ही रक्त शेष था। शाहजहाँ अपने बचपन से ही उत्साही रहा था, समय भी उसका साथ दे रहा था। उसने बल्ख, बदखशां तथा ट्राँसोक्सियाना की ओर लालच भरे नेत्रों से देखा। साथ ही कन्धार जैसा प्रान्त जो १६२२ ई० में हाथ से निकल चुका था, उसे खटक रहा था। यही नहीं, बोखारा के शासक नज़र मुहम्मद तथा उसके पुत्र में ही अनबन थी; अतः साम्राज्य-प्रसार की दृष्टि से शाहजहाँ का पश्चिम उत्तर का अभियान उचित था। हाँ, नज़र मुहम्मद ने किसी भी रूप से शाहजहाँ को अप्रसन्न न किया था।

१६४६ ई० में शाहजहाँ ने मुराद तथा अलीमर्दां के आधिपत्य में एक विशाल वाहिनी भेजी। इस बात पर यदुनाथ सरकार ने लिखा है।

"शाहजहाँ की सम्पन्नता तथा उसके दरबारियों की चापलूसी ने उसके मस्तिष्क को खराब कर रखा था। वह व्यर्थ के स्वप्न देखने लगा था, यह मूर्खतापूर्ण अभियान था, जिसमें किसी सफलता की आशा करना व्यर्थ था।†

पर भाग्य चक्र ने उसका साथ दिया। नज़र मुहम्मद मुग़लों की सेना को आते देख फारस की ओर भाग खड़ा हुआ, मुग़लों ने नगर में प्रवेश किया। लाखों की सम्पत्ति उनके हाथ लगी, किन्तु कुछ ही समय रहकर मुराद उकता

† "The prosperity of his reign and the flattery of his courtiers turned the head of Shahjahan and he started dreaming the vainest of vain dreams. It was a foolhardy enterprize and there was absolutely no chance of success."

J. N. Sarkar.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

गया। वह सुख से पला था, वहाँ की सूखी जलवायु उसे अनुकूल सिद्ध न हुई। अतः वह पिता की आज्ञा के बिना ही वहाँ से लौट पड़ा।

उसके उपरान्त शाहजहां ने बल्ख की सूबेदारी औरंगज़ेब को सौंप दी। १६४७ ई० में ओरंगज़ेब रण-स्थल में पहुँच गया। उसने जाते ही तूफ़ान खड़ा कर दिया। शाहजहाँ ने भी उसका पाया मज़बूत बनाने के लिए अपना डेरा काबुल में जमाया। पहले पहल औरंगज़ेब को कुछ सफलता भी हाथ लगी, पर शत्रुओं को शक्ति संचय का काफ़ी अवसर मिल चुका था। अब्दुल अजीज़ अपनी सेना संगठित करके औक्सस नदी के पास आ डटा। साथ ही उज़बेग सेना दूसरी दिशा से आक्रमण के लिए प्रस्तुत हो गयी। आखिर दोनों का संघर्ष हुआ, जिसमें औरंगज़ेब की विजय हुई। अतः अब्दुल अज़ीज सन्धि करने का विचार करने लगा। पर मुग़लों की यह सफलता स्थायी सिद्ध न हो सकी, औरंगज़ेब औक्सस के आगे न बढ़ सका। उसके अधिकारी भी शीघ्र ही ऊब गये। उधर नज़रमुहम्मद फारस से वापस आ गया। उसने अफगानिस्तान में स्थित मुग़ल चौकियों पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिये। उसे फारस से बराबर सहायता प्राप्त होती रही। अतः औरंगज़ेब विवश होकर ट्रांस औक्सियाना से लौट कर अफगानिस्तान की ओर बढ़ा। मार्ग में उसे हज़ारा जाति ने आ घेरा, जिससे उसको बड़ी हानि उठानी पड़ी। उधर फारस के शाह अब्बास ने अब खुल्लम खुल्ला उज़बेगों का साथ देना प्रारम्भ कर दिया। उसने शाहजहाँ से माँग की कि वह कन्धार उसे लौटा दे। यही नहीं उसने खुरासान को जाकर घेर लिया। इस प्रकार शाहजहां के हाथ कुछ न लगा। मध्य एशिया के इस अभियान में उसका लगभग ४ करोड़ रुपया व्यय हुआ, मिले कुल कुछ लाख ही। यदुनाथ सरकार ने लिखा है।

"इस प्रकार बल्ख में शाहजहाँ के मूर्खतापूर्ण युद्ध का अन्त हुआ। ऐसा युद्ध जिसमें दो वर्ष के अन्दर भारतीय सरकार ने ४ करोड़ रुपया व्यय किया तथा विजित प्रदेश से आमदनी में केवल २२½ लाख प्राप्त किया। न तो इंच भर भूमि विजय की गयी, न किसी राजवंश को बदला गया, न बल्ख के सिंहासन पर किसी मित्र को ही बिठाया जा सका।..................

युद्ध में ५०० वीर खेत रहे, पर इसके दस गुने शीत के कारण तथा पर्वतीय बर्फ़ के कारण ही सो गये।" †

---

† "Thus ended Shahjahan's fatuous war in Balkh—a war in which the Indian treasury spent four crores of rupees in two years and realised from the conquered country a revenue of 22½ lacs only. Not an inch of terri-

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इसी प्रकार डा० त्रिपाठी का भी कथन है।

"बलख का युद्ध शाहजहाँ के लिए ४ करोड़ में पड़ा। यह धन दिल्ली तथा आगरे की वार्षिक आमदनी से कुछ ही कम था। इसमें ५ हज़ार जानें चली गयीं।" ‡

शाहजहाँनामे में भी यही अभिप्राय व्यक्त किया गया है। **"युद्ध के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक इस अभियान में लगभग ५००० मनुष्य, इतने ही पशु:—उदाहरणार्थ घोड़े, हाथी, ऊँट, बैल आदि नष्ट हो गये। इसके अतिरिक्त अपार धन धान्य बर्फ़ के अन्तस्थल में दबकर रह गया।" †**

कन्धार का हाथ से निकलना:—कन्धार जहाँगीर के समय ही सन् १६२३ ई० में मुग़ल अधिकार से बाहर निकल गया था। सन् १६३८ ई० तक उसे पुन: लेने का कोई प्रयत्न न किया जा सका। कन्धार में फारस सरकार की ओर से अलीमर्दां सूबेदार था। शाहजहाँ ने कंधार को लेने का बिचार किया। इसको ज्ञात कर अलीमर्दां ने तैयारी प्रारंभ की। इससे फारस के शाह ने यह सन्देह किया कि वह स्वतन्त्र होना चाहता है। अत: उसने अलीमर्दां को ही बन्दी बनाने का प्रयत्न किया। अलीमर्दां के लिए यह बड़े अपमान की बात थी। उसने मुग़लों से बात चीत की, तथा उनके हाथ दुर्ग सौंपकर दिल्ली दरबार में शरण ली। पर फारस का शाह अभी भी हताश न हुआ। वह शाहजहाँ की असफलता को देख चुका था। उसने अपनी तैयारी ज़ारी रखी। इसी बीच

---

tory was annexed, nor dynasty changed and no enemy replaced by an ally on the throne of Balkh.

Five hundred soldiers fell in battle and ten times that number were slain by cold and snow on mountains."

J. N. Sarkar.

‡ "The Balkh war cost Shahjahan an account of four crores of rupees, which was less than the annual revenue of the provinces of Delhi and Agra and a loss of over five thousand liors."

Dr. R. P. Tripathi,
Rise and Fall of the Mughal Empire. P. 458.

† "From the first commencement of the army's crossing to the end about 5000 men, similer number of animals such as horses, elephants, camels, oxen etc. were destroyed and a vast deal af property remained buried in the Snow."

Shahjahan namah E & D. VII, P. 83.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शीत का प्रारम्भ हो गया। शीतकाल के आते ही शाहजहाँ ने दरबारियों से सलाह ली, तो उन्होंने बताया कि शीतकाल के लिए अभियान को स्थगित कर दिया जाय। शाहजहाँ ने उस स्थिति का समुचित अध्ययन किये बिना ही वह निश्चय मान लिया। उधर शाह अब्बास ने किले पर आक्रमण कर दिया जिसे मुग़लों ने ५७ दिन तक रोकने का प्रयत्न किया। पर जब उनको विश्वास हो गया कि भारत से कोई सहायता न पहुँच सकेगी तो उन्होने सन् १६४६ ई० में आत्म समर्पण कर दिया। काश! उसका सेनापति दौलतखाँ थोड़े दिन और धैर्य से काम लेता तो फारस वाले घेरा ही उठा लेते क्योंकि उनके समीप भी खाद्य सामग्री समाप्त हो चुकी थी। इस दुर्ग के पतन के लिए अनेक कारण उत्तरदायी थे। इनमें सबसे अधिक उत्तरदायित्व शाहजहाँ का ही था। इनायतखाँ के अनुसार निम्नलिखित बातें उत्तरदायी थी :—

(१) छावनी के सैनिकों को भारत से सहायता की आशा न रही थी। अतः उनका रहा सहा उत्साह भी भंग हो गया था।

(२) शादीउज़बेग ने कज़ल वाशीश के साथ षडयन्त्र करके किप चखखाँ (मुग़ल अधिकारी) को अपने कर्त्तव्य का पालन न करने दिया।

(३) कुछ मुग़ल मनसबदारों, अहदियों और बन्दूकचियों ने षडयन्त्र-कारियों से मेल कर लिया तथा किले के फाटक के सामने जाकर घोषणा की कि बर्फ़ के कारण सारे मुख्य मार्गों के बन्द हो जाने से कोई सहायता शीघ्र न आ सकेगी।

(४) साथ ही शत्रु इतना प्रबल है कि शीघ्र ही अधिकार कर लेगा। न हमारे प्राण बचेंगे और न हमारे बाल बच्चों के ही। हम गुलाम बना लिये जायँगे। अतः कन्धार हाथ से निकल जाने में ही अपना भला है।

कन्धार का पहला घेरा (१६४९ ई०)—कन्धार का हाथ से निकलना शाहजहाँ के लिए बड़ा दुःखद था। अतः उसने शीघ्र ही उसे पुनः प्राप्त करने का यत्न किया। शाहजहाँ ने अफगान, राजपूत तथा सय्यदों की मिली-जुली सेना तैयार की, उसको तमाम सुविधाएँ दीं। हर अश्वारोही को सौ रुपये तथा हर मासिक पाने वाले को तीन माह की पेशगी वेतन दे दिया। इसी प्रकार अन्य लोगों को भी सुविधाएँ प्रदान की गयीं।

इस आक्रमण के लिए औरंगज़ेब ने मुल्तान से तथा सादुल्लाखाँ ने लाहौर से कूच किया। यह दोनों गज़नी होकर कन्धार की ओर बढ़े। शाहजहाँ स्वयं भी काबुल की ओर चल पड़ा (१६४९ ई०)। लगभग १५ दिन काबुल में ठहर कर तथा आवश्यक तैयारी करके वह कन्धार की ओर बढ़ा। उधर फारस

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

वालों ने नगर की रक्षा का भी अच्छा प्रबन्ध कर रखा था। उनको अपने प्रदेश के बहुत से लाभ थे। यह घेरा लगभग तीन माह चला जिसके अनन्तर शाहजहाँ को आदेश देना पड़ा कि घेरा उठा लिया जाय। औरंगज़ेब ने भी यह सुनकर कि २०००० की सेना फारस से और चल चुकी है शीघ्र ही अपना प्रयाण कर दिया। साथ ही शीत का प्रकोप बढ़ रहा था। अतः इस आक्रमण का कोई फल न निकला और कन्धार फारस वालों के हाथ रहा।

कन्धार का दूसरा घेरा (१६५२ई०)--पहले घेरे में असफल होने के कारण औरंगज़ेब को बहुत बुरा लगा था। इससे साम्राज्य की प्रतिष्ठा में भी धक्का लगा था। शाहजहाँ को पहले का अनुभव था ही अतः उसने अबकी बार ५०००० अश्वारोही तथा १० हज़ार पदातियों का प्रबन्ध किया। नई तोपों का प्रबन्ध किया गया। इनके अतिरिक्त हाथी, ऊँट सभी कुछ जुटा लिये गये। शाहजहाँ ने इस अभियान के लिए २ करोड़ रुपये ख़र्च करने की स्वीकृति दे दी। साथ ही ५०००० फौज लेकर स्वयं भी काबुल की ओर बढ़ा। औरंगज़ेब सेना नायक नियुक्त किया गया और उसकी सहायता के लिए सादुल्लाखाँ तथा रुस्तमखाँ को भेजा गया। १६५२ ई० की मई में घेरा प्रारम्भ हुआ। पर फारसी तोपों के सामने मुग़लों की एक न चली। ये दुर्ग की दीवालों को न तोड़ सके। राना राजरूप ने दीवाल पर चढ़ने की चेष्टा की, पर शत्रु ने अग्नि बरसा दी। अतः सफलता उसके हाथ न लगी। शत्रु ने घनघोर गोलाबारी की, जिससे मुग़लों को भारी क्षति उठानी पड़ी। जब किसी भी रूप से वीरता मुग़लों का साथ न दे सकी तो उन्होंने छल का सहारा लिया। उन्होंने फारसी सेनापति को धन का लालच देकर तोड़ना चाहा, पर उसने कहा कि यदि आप किसी रूप से दुर्ग को दुर्बल कर सकें तो मैं भागने की सोचूँगा। इस प्रकार लगभग तीन माह घेरा पड़ा रहा और सफलता के चिह्न न दिखायी दिये। आखिर शाहजहाँ पुनः उकता गया। उसने सोचा कि एक तो हमारी तोपें काम नहीं दे रहीं, दूसरे खाद्य सामग्री कम हुई जा रही है। उधर सादुल्ला उससे कह ही चुका था कि घेरे में अब कोई जान नहीं रह गयी। यदि अब आगे बढ़ा तो अल्ला मालिक है। केवल औरंगज़ेब एक ऐसा था जो अब भी लड़ने को तैयार था। उसे तो पहले की हार ही कसक रही थी। उसने अपनी दक्षिण की सूबेदारी भी ताक़ में रख दी थी। उसने शाहजहाँ से कहा कि वह उसे युद्ध कायम रखने का मौक़ा दें; पर शाहजहाँ निश्चय कर चुका था, उसने पुनः घेरा उठाने का ही आदेश दिया। आखिर मुग़ल पुनः कन्धार से काबुल लौट आये। औरंगज़ेब के अधिक हठ करने पर शाहजहाँ के ये शब्द थे।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

"यदि मैं तुम्हें इसी योग्य समझता कि तुम कन्धार ले लोगे, तो मैं तुम्हारी सेना को वापस न बुलाता। हर मनुष्य कुछ न कुछ काम कर सकता है, इतना ही कहना पर्याप्त होगा, बुद्धिमान को इशारा काफी है। *

कन्धार का तीसरा घेरा (१६५३ ई०)—दूसरे घेरे की असफलता पर दारा बहुत प्रसन्न हुआ, क्योंकि उसके प्रतिद्वन्द्वी औरंगज़ेब की प्रतिष्ठा बहुत गिर चुकी थी। उसने शाहजहाँ से कहा कि मैं कन्धार को एक सप्ताह में विजय करके दिखा सकता हूँ। शाहजहाँ को इसमें विरोध ही क्या हो सकता था। अतः युद्ध की भारी तैयारियाँ प्रारम्भ हुईं। शाहजहाँनामा का लेखक इनायत-खां लिखता है कि दारा की सेना में ७० हज़ार अश्वारोही, ५००० पदाति, ३ हज़ार अहदी, १० हज़ार तोपची, ५०० पथरकट तथा अन्य साधन विद्यमान थे। अपार अस्त्र शस्त्र बाँट दिये गये थे। लगभग ६० तोपों का प्रबन्ध कर दिया गया था, तोपखाने पर विशेष ध्यान दिया गया था। हज़ारों गोले तैयार किये गये, अतुल बारूद बनाई गयी। अनेक हाथी सजाये गये, खाद्य सामग्री जुटाई गयी। शाहजहाँ तो दारा की सफलता में अधिक प्रसन्न था। अतः १ करोड़ रुपया तुरंत मंजूर किया गया। आखिर नवम्बर १६५२ ई० में राजकुमार ने काबुल के लिए प्रस्थान किया।

अति शीघ्र वह जाकर अपने दल से मिल गया। मुग़लों ने दुर्ग पर चार बार आक्रमण किया किन्तु कोई सफलता हाथ न लगी। एक बार पुनः वे जी जान से चढ़े, पर शत्रुदल उनसे भी अधिक प्रबल सिद्ध हुआ। दोनों ओर भारी क्षति हुई। मुग़लों के तो कई सेनानायक ही इसमें काम आ गये। दारा बराबर यही स्वप्न देखता रहा कि अब विजयश्री उसका वरण करना चाहती है। उसे इस बात का अनुमान ही न था कि उसके सामने कितना भयंकर काम पड़ा है। मनुष्य तथा प्रकृति दोनों ही उसके विरुद्ध संघर्ष के लिए प्रस्तुत थे। सात माह तक तो संघर्ष चलता रहा, पर इसके अनन्तर सैनिक ऊबने लगे। उनके सम्मुख निराशा नाचने लगी, खाद्यान्न भी धीरे-धीरे कम होने लगा। पशुओं के लिए चारा न रह गया था। तोपें काम दे चुकी थीं। डा० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है, **मनुष्य तथा पशु सम्राट के दम्भ की तुष्टि के लिए बिना किसी विचार के बलि चढ़ाये जा रहे थे। यह तुष्टि उस सम्राट की थी जिसने अभियान की कभी रूप रेखा ही न समझ पाई**

---

* "If I had believed you capable of taking Kandhar, I would not have recalled your army. Every man can perform some work. It is wise saying that men of experience need no instruction." *Shahjahan.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

थी, जिसकी न कोई योजना ही थी तथा तुरत कार्य व सेनापतित्व की एकता कभी समझ में न आयी थी।*

इसका फल यह हुआ कि शाहजहाँ के सम्मान को पुनः धक्का लगा। दारा के अन्ततः लौटने का अर्थ यह हुआ कि मुग़लों में न तो कोई सैनिक शक्ति थी, न क्षमता ही। फारस वालों की भारत के विरुद्ध जीत ने संसार में मुग़लों की दुर्बलता का ढिंढोरा पीट दिया। इससे सत्रहवीं शताब्दी भर मुग़लों को पश्चिम से भय लगता रहा। स्मिथ महोदय का कथन है कि **कन्धार के इन तीनों अभियानों के व्यय का सही अंकन १२ करोड़ रुपया था जो सारे साम्राज्य की मालगुज़ारी का आधे से कुछ अधिक ही था। उस समय शाहजहाँ की मालगुज़ारी २२ करोड़ रुपये थी।†**

शाहजहाँ तथा पुर्तगाली—पुर्तगाली भारत में १६ वीं सदी में बंगाल में आ चुके थे। उनसे मुग़लों ने तब तक कुछ भी न कहा, जब तक वे भय का कारण न बने बल्कि वे शाही खज़ाने को १०००० टंका नमक कर के रूप में अदा करते थे। पर वे केवल व्यापार से सन्तुष्ट न हुए। वे धर्म परिवर्तन करने लगे। कभी-कभी वे ४०, ५० मील चले आते, तथा ग्राम वासियों को पकड़ ले जाते, अथवा मेले के दिन उन्हीं को लाकर उनके घर वालों के सम्मुख बेचते थे, ये दृश्य बड़े ही मार्मिक हो गये थे।

पुर्तगाली हुगली के किनारे बसे हुए थे। शाहजहाँ के समय तक वे काफी शक्ति संचय कर चुके थे। हुगली को आधार बना कर वे चीन, मलक्का तथा मनिल्ला तक जाकर व्यापार करते थे। वे अपनी बस्तियों में स्वतंत्र रूप से आचरण करते थे। इनमें से कुछ तो व्यापारी क्या थे, समुद्री लुटेरे थे। कुछ शान्तिप्रिय जनता के ही दैनिक जीवन में हस्तक्षेप करते थे। इस समय बंगाल का गवर्नर कासिम खां था। उसने शाहजहाँ से उनके बुर्व्यवहार की शिकायत की। शाहजहाँ तो उनसे पहले से ही असन्तुष्ट था क्योंकि जब उसने अपने पिता

* "Men and beasts were thoughtlessly sacrificed to gratify the vanity of an emperor who had no well-organized plan of campaign and who failed to realise the importance of the unity of command and prompt action." Muslim Rule, P. 408

† "Trustworthy estimates place the cost of the three-sieges of Kandhar at 12 crores of rupees, more than half of the annual income which is stated to have been 22 crores."

V. A. Smith.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

के विरुद्ध विद्रोह किया था, तो उन्होंने उसकी सहायता न की थी । इसमें उन्होंने मुमताज महल की दो दासी कन्याओं की नावें रोक कर और भी उसके क्रोध को बढ़ा दिया था । अतः उसने कासिम खां को उन्हें दण्ड देने के लिए लिखा । कासिम खां ने अनेक नावें एकत्र कर उन पर आक्रमण किया । यह आक्रमण जल तथा थल दोनों ओर से था । उन पर खूब गोलाबारी की गयी । उन्होंने दुःखी होकर २ लाख रुपये देकर सन्धि करनी चाही, पर न हो सकी । अतः वे नावों पर बैठ कर अपनी-अपनी बस्तियाँ छोड़ने लगे । मुग़लों ने उन्हें पुनः घेरा और अनेक बन्दी बना लिये । उनमें से कुछ तो भाग गये, पर उन्हें बड़ी क्षति उठानी पड़ी ।

इस आक्रमण के विषय में लेखकों ने अनेक अटकल लगाये हैं, पर यह कहना यहाँ असंगत न होगा कि ये दण्ड न तो राजनीतिक चाल थी, न धार्मिक पक्षपात । उस समय तक इस ओर मुग़लों की दृष्टि ही न गयी थी । यह तो एक स्थल विशेष की शान्ति तथा सुरक्षा के प्रबन्ध का प्रश्न था । दूसरे पुर्तगालियों के मस्तिष्क इतने बढ़ गये थे जिनका ठिकाना लगाना किसी भी शासक को अभिप्रेत हो सकता था । इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि इस दण्ड में राष्ट्रीयता अथवा राजनीति की सही भावना आ जाती तो आज गोआ, डमन, और ड्यू को पुर्तगाली अपने विशाल साम्राज्य का अंग न बता सकते थे ।

उत्तराधिकार संघर्ष :—शाहजहाँ के चार पुत्र थे । सभी एक मां से जन्मे थे । सभी प्रौढ़ हो चुके थे । १६५७ ई० में जब शाहजहाँ बीमार पड़ा और उसके अच्छे होने की कोई आशा न रही, तो उत्तराधिकार का प्रश्न उपस्थित हो गया । उस समय दारा ४३ वर्ष का, शाहशुजा ४१, औरंगज़ेब ३९ तथा मुराद ३३ वर्ष का था । चारों भाइयों को राजकाज का समुचित ज्ञान था । क्योंकि प्रत्येक किसी न किसी स्थल पर रह चुका था । गवर्नरी तो सभी कर चुके थे । इस समय दारा पंजाब का, मुराद गुजरात का, शुजा बंगाल का तथा औरंगज़ेब दक्षिण का गवर्नर था । पर इनके व्यक्तिगत गुणों में बहुत अन्तर था । इनके परस्पर संघर्ष को समझने के लिए इनका व्यक्तिगत स्वभाव समझना बहुत आवश्यक है ।

दारा
१–एक कोरा दार्शनिक
२–राजनीति पटु नहीं
३–उदार हृदय
४–धार्मिक सहिष्णुता

१. दारा :—चारों भाइयों में दारा बहुत योग्य था, भला भी था, पर कभी कभी उसे क्रोध बहुत आता था । वह दर्शन शास्त्र का बड़ा प्रेमी था । वह अपने समय के सूफियों तथा हिन्दू वेदान्तियों के साथ बहुत बैठता था । कई उपनिषदों का फारसी

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

५–पिता का प्रिय
६–स्वप्नदर्शी
७–भावुक
८–भाग्यहीन
९–शिक्षित
१०–रणकुशल नहीं

में रूपान्तर करने का श्रेय उसी को है। इस दृष्टि से उसे हिन्दुत्व तथा इस्लाम में कोई विभेद ही न दिखायी देता था। इस विषय में उसकी भावनाएँ बड़ी उदार थीं। इसी कारण उसे कट्टर इस्लाम धर्मी कभी पसन्द न करते थे। उनके लिए तो वह काफिर था। पर वह अपने पिता का बड़ा प्रिय था, जैसा कि कन्धार के अभियान में दिखाया गया है। कन्धार की इतनी भारी असफलता देखकर भी दारा का भव्य स्वागत किया गया था। उसे बड़ी शान से भेंटें दी गयीं थीं। यही कारण था कि वह पंजाब का गवर्नर था, पर रहता आगरा में था। उसमें एक कमी यह थी कि वह चतुर राजनीतिज्ञ न था। उसे व्यर्थ का गर्व रहता था। वह कभी युद्धक्षेत्र में अपनी वीरता का झंडा न गाड़ सका था। साथ ही उसे किसी की सलाह भी न भाती थी। उसके चाटुकार सदा उसे घेरे रहते थे। लेन पूल के अनुसार "दारा भीरु, शीघ्र घबरानेवाला तथा भावुक व्यक्ति था। उसकी कल्पना तथा भावनाएँ बड़ी विशाल थीं, न उसे अपने पर भरोसा था, न दूसरों पर ही। जिस समय शान्तचित्त होकर किसी निर्णय पर पहुँचने की भारी आवश्यकता होती थी, उस समय वह अस्थिर हो जाता था। वह कवि या सुन्दर दार्शनिक हो सकता था, कभी भारत का शासक नहीं।"* मनुक्की के अनुसार "वह शाहजहाँ का प्रथम पुत्र था। वह अत्यन्त सभ्य स्वभाव का था। सुन्दर आकृति का, प्रसन्नचित्त, बातचीत में सदा विनम्र, तुरत बुद्धि युक्त, अनोखी स्वतन्त्र वृत्ति वाला, दयालु तथा उदार था, किन्तु अपने विषय में उसे बड़ा भ्रम था। वह अपने को बहुत योग्य समझता था। किसी की सलाह की आवश्यकता ही न समझता था। जो उसे सलाह देता था, उसी से वह घृणा करता था। इसका फल यह होता था कि उसका सबसे बड़ा मित्र भी उसे उस समय तक

---

* "Dara was a nervous, sensitive, impulsive creature, full of fine feelings and vivid emotions, never master of himself or of others and liable to lose his control just when cool judgment was most necessary. He might have been a poet or a transcendental philosopher, he could never become a ruler of India."

Lane poole.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कोई राय देने न आता था, जब तक कि सख्त जरूरत न होती थी। उसकी कल्पना थी कि भाग्य उसके साथ है और हर एक उसे चाहता है।"*

वस्तुतः वह काफिर तो न था, न उसने कभी भी इस्लाम का अनादर ही किया था। यदि वह अपने धार्मिक विचारों के लिए एक सम्प्रदाय की भली बुरी सुनता था, तो कुछ विचारकों का विश्वासपात्र भी था। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कथन है कि धार्मिक क्षेत्र में कार्य करने की दारा की पद्धति बड़ी सुन्दर थी। यदि कोई दूसरा कुछ करना चाहता है, तो उसी सीढ़ी से चलना प्रारम्भ करदे जहाँ पर दारा ने छोड़ा था। बस वह क्रियात्मकता तथा विचार का विभेद न कर पाया, जिसमें उसके अन्य भाई कहीं आगे थे, इसी लिए उसे सफलता न मिली।

शुजा
१–विलास प्रिय
२–राजनीति पटु
३–संसारी
४–युद्धप्रिय पर अधिक सुरा प्रिय
५–दृढ़ विचारशील
६–व्यवहार कुशल
७–शिया
८–साधन जुटाने में अत्यन्त पटु
९–पर एक दुर्बलता का दास

२. शुजा :––शाहशुजा बंगाल का गवर्नर था। वह आराम पसन्द आदमी था। सुरा और सुन्दरी के बीच ही उसे आनन्द आता था। इस कारण उसकी तीव्र बुद्धि भी प्रभावित हो गयी थी। वह संकट काल में सही निर्णय भी न कर सकता था। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वह शिया मत को मानता था, जब कि तमाम उत्तर भारत अधिकतर सुन्नी था, जो उसे घृणा की दृष्टि से देखता था। वह अपने काम में वैसे तो बहुत चतुर था, पर उसकी सारी चतुरता उसके मनोविनोद के कारण नष्ट हो जाती थी।

वर्नियर लिखता है **"शाहशुजा चारित्रिक दृष्टिकोण से अपने भाई दारा के समान था। पर**

* "The first born son of King Shahjahan was the prince Dara, a man of dignified manners, of a comely countenance, joyous and polite in conversation, ready and gracious of speech, of most extraordinary liberty, kindly and compassionate, but over-confident in his opinion for himself, considering himself competent in all things and having no need of advisers. He despised those who gave him counsel. This was why even his dearest friends, never ventured to inform him of the most essential things. He assumed that fortune would invariably favour him and everybody loved him.

Manucci.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

वह अधिक विचारशील, दृढ़ संकल्प, चरित्रवान तथा व्यवहार कुशल था।" *

मनुक्की के अनुसार "शुजा ऐसे मित्र बनाना जानता था जो उसके उचित अवसर तथा कार्य में उसके सहायक हो सकें। उसके गुप्तचरों ने दारा के अनेक कर्मचारियों को उसके दरबार से फुसला कर शुजा के पास भेज दिया था। वह शिया मत को मानता था और कहा जाता है कि उसने यह धर्म केवल इसलिए अपनाया था कि वह सम्राट के दरबार में जो फारसी अधिकारी थे उनकी सहायता प्राप्त कर ले, क्योंकि वे भी शिया थे।†

लेनपूल ने तो यहाँ तक लिखा है कि "शाहशुजा का रनिवास ही उसके जीवन का बन्दी गृह था +

शुजा में व्यवहार कुशलता बहुत थी। उसकी बातचीत का ढंग बड़ा ही चित्ताकर्षक था। साथ ही साहस में भी वह कहीं कम न था। उसे आवश्यक से आवश्यक कार्य भी शराब के प्याले से दूर न कर सकता था। इसी में बंगाल की जलवायु ने भी कुछ योगदान दे दिया था। वह किसी गम्भीर और साहसिक कार्य के योग्य ही न रह गया था। हाँ उसमें तुरत बुद्धि की कमी न थी। वह कार्य करने के साधन जुटाने में भी कुशल था। उसके स्वभाव की यह विचित्रता देखकर उसके समकालीन दंग रह जाते थे।

औरंगज़ेब

औरंगज़ेब
१—अपने भाइयों में सब से योग्य

औरंगज़ेब इन चारों भाइयों में सबसे अधिक योग्य था। वह दक्षिण की सूबेदारी बड़ी कुशलता से कर चुका था। वह कट्टर धार्मिक था, पर अपने कार्य के समय अटल था। कभी-कभी तो उसकी

* "Shah Shuja resembled in characteristic traits his brother Dara, but he was more discrete, firmer of purpose, and excelled him in conduct and address."
Bernier.

† "He knew how to acquire friends likely to help him in his important and reasonable affairs. His agents at the court succeeded in seducing many men from the service of Dara. He was a Shia by religion and it is believed that this religion was adopted with the object of winning support of the Persian officials of the emperor who were also Shia.
Manucci.

+ "Shuja's zenana was the prison of his career."
Lane Poole.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

२–धार्मिक
३–रणकुशल
४–कूटनीतिज्ञ
५–असहिष्णु
६–कुशल प्रवन्धक
७–इस्लाम धर्मियों द्वारा पूज्य
८–विरोधी तत्वों का समिश्रण
९–अविश्वासी
१०–असफल शासक

धार्मिक कट्टरता ही उसे ले डूबी। वैसे युद्ध करने में, राजनीति में, बुद्धि में, व्यबहार में, सभी रूप से वह एक ही व्यक्ति था। दारा के स्थान पर शाहजहाँ कहीं औरंगज़ेब को इतना प्रिय बनाता तो सम्राज्य का कार्य अधिक कुशलता से होता। वह एक वीर सेनानी तथा सेनापति था। अपने पिता के शासन काल में ही उसने अपनी योग्यता का परिचय दे दिया था। उसका कोई भी भाई उससे युद्धक्षेत्र में न जीत सकता था। वस्तुतः वह इतना चण्ट था कि उसका परम मित्र भी न जान पाता था कि उसके मस्तिष्क में क्या है। वही ऐसा राजनीतिज्ञ था, जो संकटकाल में भी अपने मस्तिष्क को शान्त रख सकता था। अपनी धार्मिक बुद्धि तथा धर्मान्धता के लिए तो वह कट्टर इस्लाम धर्मियों द्वारा पूजा जाता था। उसने दक्षिण की सूबेदारी करके शासन का बड़ा अनुभव प्राप्त कर लिया था। वर्नियर के अनुसार **"वह कुशल राजनीतिज्ञ तथा महान् शासक था और उसमें अद्वितीय प्रतिभा थी।"**† लेन पूल का कथन है कि **"वह विरोधी तत्वों का अद्भुत सम्मिश्रण था। उसमें अनेक महान् गुण थे, उसका आचरण पवित्र तथा भला था, पर मनुष्य मात्र का नायक बनने का एक आवश्यक तत्व उसमें न था। वह किसी के हृदय को न जीत सकता था।**‡

इसमें सन्देह नहीं की वह अत्यन्त परिश्रमी था। उसने चैन से जीवन बिताना तो सीखा ही न था। हण्टर के अनुसार **"उसका जीवन दोषहीन**

---

† "He was a consummate statesman, and a great king, but endowed with a versatile and rare genius."

Bernier.

‡ "It has been usual to call the character of Aurangzeb as a puzzling component of contradictions. He possessed many great qualities. He practised all the virtues, but he was lacking in one thing needful in a leader of men—he could not win love. Such a one may administer an Empire but he cannot rule hearts of man."

Lane Poole.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

होता यदि कहीं उसे अपने पिता को गद्दी से न उतारना, भाइयों को मृत्यु के घाट न उतारना, अथवा अपनी हिन्दू प्रजा को न सताना होता।" †

मुराद

मुराद
१–सबसे छोटा पुत्र
२–विलासप्रिय, रणप्रिय
३–पर व्यवहार कुशल नहीं
४–सुरासेवी
५–छल कपट हीन
६–औरंगज़ेब की कूट-नीति का शिकार

मुराद शाहजहाँ का सबसे छोटा पुत्र था। वह वीर सेनानी था। अन्यथा वह विलासी, तथा बुद्धिहीन था। लेन पूल के अनुसार "शाहजहाँ का सबसे छोटा पुत्र एक शास्त्रास्त्र में निपुण, साहसी नवयुवक, सिंह के समान वीर, दिन के तुल्य स्वच्छ हृदय, स्पष्ट वक्ता, राजनीति तथा कूटनीति से सर्वथा अनभिज्ञ तथा तलवार पर भरोसा करनेवाला आदमी था। वह युद्ध भूमि के लिए आतंक था।* मुराद में सबसे बड़ी दुर्बलता अपनी पैतृक दुर्लबता थी। उसके बाबा से लेकर भाइयों तक सभी तो मदिरापान करते थे। हाँ, उसने इस उत्तराधिकार का अधिक अंश पा लिया था। बर्नियर के अनुसार "उसका मूल विचार यह रहता था कि वह किस प्रकार अपने जीवन में आनन्द उठा सके। उसको रणभूमि तथा मदिरा पान का आनन्द एकसा आकर्षित करता था।" +

मुराद भेद रखना तो जानता ही न था। वह छल-कपट को घृणा की दृष्टि से देखता था। उसे इस बात पर गर्व था कि वह कोई बात छिपाता नहीं। साथ ही वह उदार हृदय था तथा अपने सेवकों का बड़ा ध्यान रखता था। बस, उसमें नायकत्व की भारी कमी थी। बर्नियर का कथन कि यदि उसका साहस थोड़ी बुद्धि लेकर चलता तो वही भारत का स्वामी होता; ठीक नहीं जान पड़ता।

---

† "His life would have been a blameless one if he had no father to dispose, no brothers to murder, and no Hindu subjects to oppress." *Hunter*.

* "The youngest son of Shahjahan was a gallant swash buckler, brave as a lion, frank, and open as the day, a fool in politics, a despair in statecraft, and a firm believer in ruddy steel. He was a tenor of the battlefield." *Lane Poole*.

+ "His constant thought was how he could enjoy himself and the pleasure of the table and the field engaged his undivided attention." *Bernier*.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस प्रकार के स्वभाव वाले इन भाइयों ने उत्तराधिकार के लिए अपने अपने दाव पेच लगाये। जैसे ही उन्हें शाहजहाँ की बीमारी का समाचार प्राप्त हुआ सभी ने अपनी-अपनी तैयारी की। शाहशुजा तथा मुराद ने अपने को राजा घोषित किया। दोनों ने गद्दी पर बैठकर अपने नाम के सिक्के ढलवाने प्रारम्भ कर दिये। दारा तो राजधानी में ही था, उसने अपने हित की हर बात का ध्यान रक्खा। पिता की बीमारी के समय वही उसकी चारपाई के समीप रहता था। वही उसके नाम पर राज-काज देखता था। खफी खां का कथन है **"उसने मंत्रियों से ठहरा लिया कि जो कुछ सभा की कार्यवाही हो उसे गोपनीय रखें, तथा उसने अहमदाबाद, दक्षिण और बंगाल को दूतों का भेजना, यात्रियों का जाना ही रोक दिया था। यद्यपि अमीरों, जमींदारों और प्रजा ने इसे बुरा समझा तथा विद्रोही तत्वों ने युद्ध की आशंका से सर उठाना प्रारंभ कर दिया।"†**

उधर औरंगज़ेब बहुत होशियारी से चला। उसने अपनी बहन रोशनारा को लिख दिया कि जो कुछ भी समाचार हो लिखती रहे। अपने कार्य की रूप-रेखा को उसने सर्वथा गोपनीय रक्खा। उसने अपने गुप्तचर नर्मदा के किनारे बिठा दिये। इसके पश्चात् उसने मुराद से पत्र व्यवहार किया। दोनों में यह निश्चय हुआ कि दारा के विरुद्ध एक साथ युद्ध किया जाय तथा विजयी होने पर मुराद पंजाब, काबुल, कश्मीर तथा सिन्ध ले लेगा, शेष साम्राज्य का स्वामी औरंगज़ेब बनेगा। अल्लाह और मुहम्मद की शपथ हो गयी। यह निश्चय करके दोनों राजकुमार आगरा की ओर बढ़े, और मालवे में उज्जैन के समीप दिपालपुर पर जाकर मिल गये।

दारा तो सतर्क था ही। उसने इन दोनों के रोकने के लिए जसवन्त सिंह तथा कासिम खां को भेजा। अप्रैल १६५८ में धरमत पर दोनों दलों के बीच युद्ध हुआ। इसमें मुराद और औरंगज़ेब की विजय हुई। कहते हैं कि जब जसवन्त सिंह भाग कर अपने घर गया तो उसकी पत्नी ने फाटक ही न खोला, क्योंकि यह राजपूत परम्परा के विरुद्ध था कि कोई युद्ध क्षेत्र से पीठ दिखाकर भागे। यद्यपि यह हार केवल उसी की भीरुता के कारण न थी, क्योंकि उसके अधीन विभिन्न वर्ग थे जो एक दूसरे के अधीन रहना ही न चाहते थे। हिन्दू

† "He exacted pledges from ministers not to publish what passed in council and closed the roads of Bengal, Ahmedabad and Deccan against messengers and travellers. The Amirs, Zamindars, and ryots resented Dara's impolitic action, and turbulent spirit in all parts of the country raised their heads in expectation of strife."

Khwafi Khan.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

तथा मुसलमान अपनी-अपनी अलग भावनाओं में डूबे थे। हिन्दुओं का कथन था कि चाहे जिसकी विजय हो उन्हें दास ही रहना है, अतः व्यर्थ में क्यों कटा जाय। मुसलमान हिन्दुओं के सेनापतित्व में चलना न चाहते थे, अतः परस्पर ही एक दूसरे की शक्ति को क्षीण कर रहे थे। कुछ वर्ग ऐसा भी था जो औरंगज़ेब की विजय की आशा करके पहले से ही उसका साथ दे देना चाहता था। जो हो, यह केन्द्रीय सरकार के लिए बड़े खेद व आश्चर्य का विषय था; अतः दारा ने स्वयं बागडोर सँभाली।

उधर शुजा ने बिहार को लूट पाट लिया। वहाँ से वह बनारस की ओर आगे बढ़ा। १४ जनवरी १६५८ ई० को वह बनारस पहुँच गया। दारा ने उसे रोकने के लिए राजा जयसिंह को भेजा। बहादुरपुर पर शाही फौज से उसका सामना हुआ। यह स्थान बनारस से ५ मील उत्तर पूर्व को है। शुजा की हार हुई और उसे बंगाल की ओर पुनः भागना पड़ा।

इधर धरमत की विजय से औरंगज़ेब की प्रतिष्ठा बढ़ गयी। साथ ही उसे काफी धन दौलत तथा युद्ध सामग्री भी प्राप्त हुई। अतः विजयी राजकुमार ग्वालियर की ओर बढ़ा। चम्बल पार कर वह सामूगढ़ के मदान में रुका। सामूगढ़ आगरा से ८ मील पूर्व सामोगढ़ के नाम का गाँव था। दारा को जब जसवन्त सिंह की पराजय का समाचार मिला तो उसके होश उड़ गये। उसने शाहजहाँ को सारा समाचार सुनाया। शाहजहाँ इस समय आगरा की गर्मी से पीड़ित होकर दिल्ली जा रहा था, पर संकट का अवसर जानकर रुक गया, उसने भी युद्ध की तैयारी कराई। वस्तुतः उसे स्वयं जनता के समक्ष आकर युद्ध को रोकना था, पर पक्षपात की जड़ ही कितनी होती है। वह पूर्णरूप से दारा के कहने पर चलता था, उसके भाई इसी से और भी दुःखी तथा क्रुद्ध थे। आखिर दारा की सेना भी (५००००) सामूगढ़ के मैदान में पहुँची। उसने अपने को इस प्रकार खड़ा किया कि उसका अगला भाग राजपूतों की सुरक्षा में तथा बायें और दाहिने अंग सिफीर शिकोह व खलीलुल्ला खाँ की अध्यक्षता में थे। सिफीर शिकोह दारा का छोटा पुत्र था। दारा भी एक ऊँचे हाथी पर बैठकर सेना के मध्य पहुँच गया। दारा की सेना वस्तुत दारा की सेना न थी। इसका एक सेनापति खलीलुल्ला खां तो धनलोलुप था, जिसे औरंगज़ेब जैसा कूटनीतिज्ञ बिना बहकाये न छोड़ सकता था। राजपूत अपनी विभेद की नीति को भूले न थे, अतः दारा की शक्ति देखने भर की थी। उधर औरंगज़ेब के साथ संतुलित वीर सेनानी थे, उन पर भरोसा किया जा सकता था। अतः युद्ध का परिणाम तो प्रत्यक्ष था। आखिर घनघोर युद्ध हुआ, जिसमें तीर तथा बन्दूकों का अपार प्रयोग हुआ। सिफीर की टुकड़ी ने एक बार शत्रुदल में खलभली

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मचा दी। उसका साथी रुस्तम भी कम बहादुर न था, पर उसके हाथी के गोली लगते ही वह तो धराशायी हो गया, सिफीर को पीछे हटना पड़ा। दारा २०००० अश्वारोहियों को लेकर आगे बढ़ा किन्तु सफल न हुआ। उधर मुराद का हाथी तो भाग खड़ा होता पर जंजीरों के बल पर उसे रोका गया, औरंगज़ेब तथा मुराद ने बड़ी वीरता से युद्ध किया, अनेक राजपूतों को मृत्यु के घाट उतार कर उन्होंने धरा को रक्त-रंजित कर दिया। औरंगज़ेब ने दारा के दल पर इतना भयानक आक्रमण किया कि दारा ने हाथी का हौदा त्याग घोड़े की रास संभाली। खाली हौदा देखकर सेना में खलभली मच गयी, हज़ारों तो कुचल कर मर गये। आखिर औरंगज़ेब की विजय हुई और दारा उल्टे पाँव आगरा को भागा। औरंगज़ेब ने दारा की रही बची सामग्री अपने हाथ की और मुराद को सफलता पर बधाई दी।

इस समय दारा की दशा शोचनीय थी। उसके साथी उसे छोड़ते जा रहे थे। मारे लज्जा के वह पिता को भी मुँह न दिखा सका। फिर भी तुरंत एक फरमान दिल्ली भेजा गया कि सारा कोष दारा के अधीन कर दिया जाय, पर इससे लाभ क्या था, जब उसके भाग्य का ही कोष समाप्त था। औरंगज़ेब आगरा की ओर आया, नगर के बाहर बाग-ए-नूर में रुक कर उसने शाहजहाँ के समीप एक पत्र भेजा, उसमें लिखा कि उसे युद्ध करने पर विवश होना पड़ा, जिसके लिए वह क्षमा चाहता है। शाहजहाँ अभी भी अन्धकार में था। उसने औरंगज़ेब को विजय के उपलक्ष्य में एक तलवार भेंट की, और मिलने की इच्छा प्रकट की, पर औरंगज़ेब के साथियों ने उसे सुझाया कि यह सब धोखा है, बादशाह उसे बन्दी बनाना चाहता है, या मार डालना चाहता है। अतः उसी को बन्दी क्यों न कर लिया जाय। औरंगज़ेब की समझ में बात आ गयी। उसने तुरंत आज्ञा दी कि आगरा का घेरा डाल दिया जाय। घेरा प्रारम्भ हुआ, जिसकी रक्षा भी शाही सेना ने की। पर जब पानी बन्द कर दिया गया, तो उन्हें आत्म-समर्पण करना पड़ा। शाहजहाँ को एकान्तवास मिला; जहाँ उसके कुछ विशिष्ट सेवक ही जा सकते थे। उसकी एक पुत्री जहांनारा भी उसी की सेवा में रत रही। उसने पिता-पुत्र में समझौते का भी प्रयास किया; पर उसकी कोशिश व्यर्थ सिद्ध हुई। इसी बीच शाहजहाँ ने दारा को एक गुप्त पत्र लिखा, जिसमें दिल्ली रुकने की चर्चा थी। दैव योग से वह पत्र भी औरंगज़ेब के पास पहुँच गया, बस उसका विश्वास जम गया कि उसके पिता के इरादे ठीक नहीं हैं, अतः उसने किसी समझौते की कोई बात ही न सुनी। इस प्रकार औरंगज़ेब मुग़ल साम्राज्य का स्वामी बन गया।

मुराद का बंदी होना:—औरंगज़ेब ने एक दरबार किया, जिसमें उसको

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सभी ने सम्मान प्रदान किया। उसने शीघ्र ही एक २०००० की सेना तैयार की और अपनी सत्ता को सुदृढ़ करना चाहा। थोड़े ही समय में वह दिल्ली की ओर चला। मुराद भी उसके साथ चल पड़ा। औरंगज़ेब मुराद के भाव को ताड़ गया। अतः मथुरा में उसने मुराद की दावत की जिसमें उसे खूब शराब पिलायी। उसने इतनी पी कि उसे होश ही न रहा और जब होश आया तो देखा कि वह स्वर्ण की जंजीरों में बँधा अपने भाई का वन्दी है। वह कभी इसकी कल्पना भी न कर सकता था। इस पर डा० ईश्वरी प्रसाद ने बड़े मार्मिक शब्द लिखे हैं। **"उसकी टाँगों को स्वर्ण की जंजीरें बाँधे थीं, जिस पर वह एक पिजड़े में बंद शेर की भाँति व्यर्थ की शक्ति दिखा रहा था, चिल्ला रहा था, धमका रहा था, साथ ही अपने भाई को उसके कुरान की शपथ भंग करने पर गालियों तथा अभिशापों की बौछार कर रहा था।**† आखिर उस वन्दी को ग्वालियर भेज दिया गया। वहाँ वह दीवान आदि के संहार के लिए उत्तरदायी ठहरा कर (१६६१ ई० में) स्वर्गलोक पहुँचा दिया गया।

दारा का अन्तिम प्रयास––दारा दिल्ली में बहुत समय तक न रह सका। वह पंजाब की ओर भागा। पंजाब में जाकर उसे आशा थी कि वह औरंगजेब के पंजे से बच जायगा, किन्तु औरंगजेब ने उसका पीछा किया और उसे वहाँ से भी गुजरात की ओर जाना पड़ा। अहमदाबाद के राज्यपाल ने उसका स्वागत किया, उसे दस लाख रुपया दिया। उसने इस धन से २०००० सेना खड़ी की तथा पुनः औरंगजेब से युद्ध करने को प्रस्तुत हो गया। इसी समय राजा जसवन्त सिंह ने उसे लिखा कि वह अजमेर चला आये। वह उसकी सहायता करेगा। दारा उस ओर चल दिया। मार्ग में उसे ज्ञात हुआ कि राजा जयसिंह के द्वारा राजा जसवन्त सिंह को औरंगजेब ने अपनी ओर मिला लिया, उसे क्षमा प्रदान करके पुनः उसका मन्सब दे दिया है। दारा ने राजा जसवन्तसिंह को बहुत समझाया, पर उसने एक न सुनी। आखिर दारा स्वयं औरंगजेब के विरुद्ध अजमेर के समीप देवरा पर लड़ा, जिसमें पुनः पराजित हुआ–– इस पराजय के पश्चात् दारा को पुनः भागना पड़ा। इस बार भी दारा गुजरात की ओर गया, पर अबकी बार उसे वहाँ शरण न मिली, इसके अनन्तर वह दादर गया। दादर में एक बलूची मुखिया मलिक जीवन रहता था। मलिक-

† "Gold fetters were thrown round his legs and he fretted and fumed with the impotent rage of a caged tiger and heaped curses on Aurangzeb for violating his solemn oaths on the Quran."

Dr. Ishwari Prasad, Muslim Rule P. 439.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

जीवन को उसने अपने शासन के समय शाही कोप का भाजन न बनने दिया था। अत: उसे पूरी आशा थी कि वह उसकी सहायता करेगा। दारा की पत्नी, तथा बच्चों सहित सारे परिवार ने उससे हाथ जोड़ कर विनय की कि वह मलिक जीवन के पास न जाये। दारा की समझ में कुछ न आया। उसका कहना था कि मलिक जीवन उसके आभार को नहीं भूल सकता। दादर की यात्रा बड़ी विचित्र रही। उसकी पत्नी नादिरा बेगम तो मार्ग में ही चल बसी। वही सुख-दुःख में उसकी एकमात्र सहायिका थी।

खफी खाँ लिखता है—

"दारा के सर संकट के पहाड़ पर पहाड़ टूट पड़े। एक संकट में दूसरा जुड़ता गया। एक दुःख में दूसरे ने योग दिया। इससे उसके मस्तिष्क का संतुलन ही मिट गया।" †

मलिक जीवन ने उसे प्रेम से औरंगजेब के सेनापतियों को सौंप दिया। दारा यह देखकर दंग रह गया। पर अब हो ही क्या सकता था, उसे बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिया गया। पिता-पुत्र दोनों ही इस प्रकार बन्दी हो गये।

बड़े भाई का बन्दी होना सुनकर औरंगजेब की खुशी का पार न था, उसने दारा की खूब दुर्गति की। दारा को मय पुत्र के एक साधारण हाथी पर बिठाकर दिल्ली की गलियों में होकर घुमाया जहाँ से वह अनेक बार बड़ी शान-शौकत से निकला था। इस हृदय विदारक दृश्य को वर्नियर ने आँखों देखा था। वह लिखता है—**"हर स्थल पर मनुष्य रो रहे थे। वे दारा के दुर्भाग्य पर बड़े हृदय विदारक शब्दों में विलख रहे थे। मैंने नगर का एक बहुत ही प्रमुख भाग अपने बैठने का स्थान चुना था, यह सबसे बड़े बाजार के बीच था।** ‡

मैं अपने दो मित्रों तथा दो भृत्यों के साथ घोड़े पर था। हर कोने से मैंने मर्मभेदी तथा दुःखद चीख सुनी। भारतीयों का हृदय बहुत ही कोमल होता है। मनुष्य, स्त्री, बच्चे सभी विलख रहे थे मानों उन पर कोई भारी

---

† "Mountain after mountain of trouble thus passed upon the heart of Dara, grief was added to grief, sorrow to sorrow, so that his mind no longer retained its equilibrium."

Khwafi Khan.

‡ "And everywhere I observed the people weeping and lamenting the fate of Dara, in the most touching language, I took my station in one of the most conspicuous part of the city, in the midst of the largest bazar."

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

विपत्ति गिर पड़ी हो। मलिक जीवन भी दारा के समीप ही चल रहा था, चलते-चलते उस पर जो गालियों और क्रुद्ध धिक्कारों की बौछार हो रही थी, उससे कान ही बहरे हुए जा रहे थे। मैंने देखा कि कुछ फकीर और निर्धन भी उस पर पत्थर फेंक रहे थे। किन्तु कष्ट की बात तो यह है कि एक भी यत्न दीन राजकुमार की मुक्ति का न हुआ। किसी ने तलवार न निकाली। जब यह अपमानजनक जलूस दिल्ली की हर गली से निकल चुका; वह दीन बन्दी अपने ही एक उद्यान में बन्द कर दिया गया।" †

दारा बड़ी उदार प्रवृत्ति का था। मनुक्की का कथन है कि जब राजकुमार अपने किले के सामने आया, तो एक फकीर चिल्लाया—**"ए दारा, जब तुम स्वामी थे, तुमने मुझे सदा दान दिया, पर अब तुम्हारे पास मेरे देने के लिए कुछ भी नहीं है।"*** दारा ने तुरत उस भिखारी की बात सुनी और अपना एक मैला सा काला शाल उस पर फेंक दिया किन्तु औरंगजेब के सेनानी बहादुर खाँ ने उसे वापस ले लिया और कहा कि बन्दी को दान देने का कोई अधिकार नहीं है। इसके अनन्तर दारा का क्या हो, इस बात पर औरंगजेब के साथियों में बहस हुई। दानिशमन्द का कहना था कि उसे छोड़ दिया जाय जब कि शायस्ताखाँ ने कहा कि नहीं वह काफिर है, उसे मृत्यु-दण्ड ही मिलना चाहिये।

---

† "was mounted on a good horse and accompanied by two servants and two intimate friends. From every quarter I heard piercing and distressing shrieks, for the Indian people have a very tender heart, men, women, and children wailing as if some mighty calamity had happened to themselves. Malik Jiwan rode near the wretched Dara, and abusive and indignant cries vociferated, as the traitor moved along, were absolutely deafening. I observed some faqirs and several poor people throw stones at the infamous pathan, but not a single movement was made, no one offered to draw his sword, with a view to delivering the beloved and compassionate prince. When this disgraceful procession had passed through every part of Delhi, the poor prisoner was shut up in one of his gardens."

Bernier.

* "The prince responded to the beggar's, wish drew off his dingy dark coloured shawl from his person and threw it down to the faqir.

Manucci.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इसी में रोशनारा ने थोड़ा और योगदान दिया, क्योंकि उसका क्रोध अभी भी शान्त न था। आखिर उलेमा से भी यही निर्णय ले लिया गया कि दारा काफिर है, जिसकी सज़ा मौत है। औरंगज़ेब भी तो यही चाहता था। इसमें उसके दो मन्तव्य थे, एक तो दारा का विनाश दूसरे प्रजा के लिए उदाहरण। अतः अब दारा के लिए इसके अतिरिक्त कोई चारा न था, उस पर अन्य कोई दया कैसे कर सकता था, जब उसके सगे भाई के हृदय में दया न थी। औरंगज़ेब से जब उसने दया की भिक्षा चाही, तो औरंगज़ेब ने कहा कि **"उत्पाती और गद्दी छीनने वाले के लिए दया कहाँ?"** आखिर उसे मारने के लिए एक नाज़िर नियुक्त हुआ। नाजिर ने जैसे ही पिता पुत्र को अलग करना चाहा, दारा ने अपने तकिये से छिपी हुई कटार निकाली, उस पर बार भी किया, किन्तु वह सिद्धहस्त था, उसने दारा का काम तमाम किया, तथा उसके सर को औरंगजेब के सपीप भेज दिया। औरंगज़ेव ने उसे भी दिल्ली की गलियों में घुमवाया, जिससे किसी को संशय न रह जाय कि दारा का क्या हुआ?

सुलेमान शुकोह का अन्त :--दारा ने अपने बड़े पुत्र सुलेमान शुकोह को शुजा से लड़ने के लिए पूर्व की ओर भेजा था। जब धरमत आदि युद्धों की सूचना शाहजहाँ को मिली थी, तो उसने शुकोह को लिख दिया था कि सारी सेना लेकर वह राजधानी की ओर चला आवे। सुलेमान ने बंगाल, विहार और उड़ीसा के प्रान्त शुजा के लिए छोड़कर उससे सन्धि कर ली थी। पर जब सुलेमान की सेना को सामूगढ़ के युद्ध का समाचार मिला, तो उसकी सेना ही उसका साथ छोड़ने लगी। सुलेमान के बहुत यत्न करने पर भी लोग विजयी की ओर ताकने लगे। इनमें राजा जयसिंह भी था, जो तुरन्त औरंगजेब की ओर हो लिया। यह देखकर शुकोह ने अपनी रक्षा करनी चाही। पहले वह इलाहाबाद आया, वहाँ से वह लखनऊ, मुरादाबाद होकर हरद्वार गया। उसका विचार था कि वह पंजाब जाकर दारा से मिल जाय, पर वह ऐसा न कर सका। शायस्ता खाँ ने उसका पीछा किया, तथा उसे गढ़वाल की पहाड़ियों में भागने को विवश किया। जब औरंगज़ेब अन्य प्रतिद्वन्द्वियों से छुट्टी पा चुका तो उसने शुकोह की ख़बर लेनी चाही। गढ़वाल के हिन्दू राजा पृथ्वीसिंह पर ही धावा बोल दिया और शुकोह को समर्पित करने को लिखा। राजा पृथ्वीसिंह शुकोह को शरण दे चुका था, अतः उसने शरणागत को न छोड़ना चाहा, इस पर औरंगज़ेब ने राजा जयसिंह से काम लिया। राजा जयसिंह की चाल में पृथ्वीसिंह तो न आया पर उसका पुत्र मेदिनी सिंह चंगुल में फँस गया, उसने शुकोह को औरंगज़ेब

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

के हवाले कर दिया। बन्दी के रूप में सुलेमान ने अपन चचा को सलाम किया और विनय की कि वह तुरंत मृत्यु का वरण करता है, पर चाहता है कि विष द्वारा धीरे २ न मारा जाय। औरंगज़ेब ने वचन दिया कि ऐसा ही होगा, पर ठीक उसके विरुद्ध उसे ग्वालियर भेज दिया, जहाँ उसे उसी विष का सेवन करना पड़ा। जब तक उसका प्राणांत न हुआ; कारागार में पड़े पड़े वह अपने चचा की पुण्य स्मृति करता रहा। औरंगज़ेब वैसे तो बड़े रोज़े और नमाज़ में विश्वास करता था, धर्म बुद्धि बनता था, पर इस स्थल पर उसने अपने वचन को व्यर्थ ही भंग किया। शत्रु का विनाश अभिप्रेत था, न कि उसके दण्ड के स्वरूप का बन्धन; इससे औरंगज़ेब नैतिकता से गिर गया। यदि उसे ऐसा ही करना था, तो वह यह कह भी सकता था कि उसके लिए कोई रिआयत न की जायगी।

शुजा का अन्त :—बहादुरपुर के युद्ध के पश्चात् शुजा पटना की ओर भाग गया था। सुलेमान शुकोह ने उसका पीछा करके उसे सन्धि करने पर विवश किया था। जब औरंगज़ेब ने अपना राजतिलक कराया था, तो उसे लिखा था कि जैसे ही वह दारा से छुट्टी पा जाता है, उसका ध्यान करेगा, वह तो उसका स्नेह भाजन है। शुजा पागल न था, उसने अपने भाई के इरादे को सही ससझ लिया था। वह युद्ध की तैयारी करने लगा। आखिर फतेहपुर के समीप (उत्तर प्रदेश में बिन्दकी रोड) शुजा से औरंगजेब का संग्राम हुआ, जिसमें शुजा की बुरी हार हुई। अतः शुजा वहाँ से बंगाल तथा अराकान की पहाड़ियों की ओर भाग गया (१६५६ ई०)। वहीं उसका प्राणांत हो गया।

औरंगजेब की सफलता के कारण
१–चतुर राजनीतिज्ञ,
२–एक ही लक्ष्य में रत
३–अपनी पैतृक नीति
४–दारा की दुर्बलताएँ
५–उसके पिता की दुर्बलता
६–दारा की सेना में अव्यवस्था
७–उसकी दूरदर्शिता

औरंगजेब की सफलता के कारण—जैसा कि कहा जा चुका है अपने भाइयों में औरंगजेब ही सबसे अधिक चतुर था। उसने क्या-क्या यत्न किये, इस बात का विचार छोड़ दें तो मानना होगा कि उसने सब कुछ एक उद्देश्य को ध्यान में रख कर किया। वह था राज्य पद प्राप्ति। क्या दारा का या शुजा का वश चलता तो वे औरंगजेब को बख्श देते, क्या शाहजहाँ ने स्वयं अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह न किया था, या खुसरो के बध का वह उत्तरदायी न था। औरंगजेब ने भी वही दस्तूर कायम रखा। अपनी कूटनीति, सैनिक प्रतिभा तथा अन्य साधनों से पूरा लाभ उठाया और सफल हुआ।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

८–मुराद की मूर्खता
९–समय की अनुकूलता

औरंगजेब की सफलता वस्तुतः इस लिए थी कि वह इस्लाम का कट्टरता से पालन करता था, उसके अनुयायी उसकी पूजा करते थे, उसकी जी जान से सहायता करते थे। इसके विपरीत दारा के सहायक उसे धोखा देते थे।

(२) दारा किसी भी रूप से औरंगजेब के विरुद्ध नहीं टिक सकता था। औरंगजेब दारा से राजनीति, सैन्य संचालन तथा शासन कुशलता में कहीं बढ़ कर था। सामूगढ़ के युद्ध में दारा की सबसे बड़ी भूल यह थी कि उसने हाथी को छोड़कर घोड़े की सवारी की। सेना को भ्रम हो गया कि दारा मैदान में नहीं है। दारा के साधन औरंगजेब से कहीं अधिक थे, पर एक छोटी सी भूल के कारण उल्टे सिद्ध हुए। उसे नीति तथा दूरदर्शिता से काम लेना था। दारा को जयसिंह तथा सुलेमान शिकोह के आ जाने पर ही युद्ध छेड़ना चाहिये था, जिसमें विजय की अधिक सम्भावना थी।

(३) औरंगजेब की सफलता के लिए सबसे बड़ी सहायक बात तो उसके पिता की दुर्बलता थी। वह जनता के समक्ष कभी भी आकर अपनी मृत्यु का समाचार न फैलने दे सकता था। स्वयं उसे सारा निर्देशन करना चाहिये था। शाहजहाँ के सामने आते ही औरंगजेब का पाया कमजोर पड़ जाता, उसके साथी उसे छोड़ सकते थे।

(४) दारा की सेना के नायक विभिन्न वर्गों के थे, अतः उनका परस्पर कभी सद्भाव ही न रहता था। उसकी तोपें पीछे थीं वह स्वयं आगे बढ़ रहा था। निश्चय ही वह तो दर्शनशास्त्री था जो युद्ध संचालन के सर्वथा अयोग्य था। ऐसी स्थिति में शाहजहाँ युद्ध परिषद् बुला सकता था जिससे अपनी तथा दारा दोनों की दुर्बलता ढक जाती, पर ऐसा नहीं किया गया। दारा, जैसा कहा जा चुका है, अपने चाटुकारों की बातों पर भरोसा करके कभी सही स्थिति ही न जान सका। इसके अतिरिक्त उसके सेना-नायकों को औरंगजेब ने तोड़ लिया था।

(५) अन्त में कहना न होगा कि औरंगजेब का समस्त कार्य एक ऐसी योजना के अनुसार किया गया, जिस योजना के तत्त्व को उसके अतिरिक्त किसी ने अन्त तक जाना ही नहीं। उस समय की स्थिति में इस प्रकार के यत्न के बिना उसे सफलता वरण न कर सकती थी।

शाहजहाँ के अन्तिम दिन—ऐसी परिस्थिति में औरंगजेब ने शाहजहाँ को ८ वर्ष और जीवित रहने दिया यही बहुत है, पर उसने कटु वचनों के आघात से कभी न छोड़ा। औरंगजेब को सदा इस बात की कसक रहती थी

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कि उसके पिता ने भी अपने बन्धुओं के साथ दुर्व्यवहार किया था, उसका प्रतिफल उसे मिलना चाहिये। उसने शाहजहाँ से एक बार कहा था **"इस समय आपको अपने भाई खुसरो और शहरयार की स्मृति कैसी लगती है, उन्हीं भाइयों की स्मृति जिनको आपने मौत के घाट उतार दिया था, जब कि उनका कोई अपराध न था।"†**

आगरा के दुर्ग में शाहजहाँ पर सख्त पहरा रहता था। एक बार उस ने मुक्ति की चेष्टा की, तो उसकी मुक्ति तो न हुई बल्कि अन्य सुविधाएँ कम हो गयीं। यहाँ तक कि शाहजहाँ को पत्र लिखने की स्वतन्त्रता भी न रही, उसे आदेश था कि जो लिखाना चाहे वह बोल दे। शाहजहाँ को अपना संचित धन देखने तक का अवसर न दिया जाता था। अपने राज्याभिषेक के समय औरंगजेब ने शाहजहाँ से कुछ अमूल्य हीरे जवाहरात माँगे, तो शाहजहाँ ने उसे अपना अपमान समझा और वह बहुत क्रुद्ध हुआ। औरंगजेब का कथन था कि बन्धु विरोध और युद्ध का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व शाहजहाँ पर है, क्योंकि उसने दारा के साथ पक्षपात किया। इससे न केवल औरंगजेब के हित की हानि है, बल्कि इस्लाम की हानि है, अतः आत्मरक्षा तथा इस्लाम की रक्षा के लिए उसे विवश होना पड़ा कि वह ऐसा आचरण करे। जो हो, शाहजहाँ ने अपने वैभव को भुलाकर यह अपमानजनक जीवन भी सहा। इस समय उसने ईश्वर भजन किया, जिसमें उसे कन्नौज के सय्यद मुहम्मद और उसकी पुत्री ने सदा सांत्वना दी। सन् १६६६ ई० में वह पुनः बीमार हुआ और २२ जनवरी को इस असार संसार से चल बसा। उसके शव को धूमधाम से निकालने की आज्ञा भी जब जहाँनारा को न मिल सकी तो कुछ हिजड़ों और सेवकों के सहारे उसे अन्तिम शान्ति स्थल तक पहुँचा दिया गया। **इस नश्वर शरीर को कब उच्च स्थान प्राप्त होता है, और कब निम्न यह उसके भाग्य ने स्पष्ट कर दिया। जो एक दिन राजाओं के मस्तक पर अपना कदम रख सकता था, उसे कोई ले जाने वाला न था।**

शाहजहाँ का व्यक्तित्व--शाहजहाँ ने इस प्रकार अपने जीवन में अच्छे और बुरे सभी दिन देखे। वह अपनी प्रतिभा के बल पर ही इतना उठ सका था, पर उसकी कुछ दुर्बलताओं ने उसे नीचा भी दिखा दिया।

† "How do you still regard the memory of your brothers Khusro and Shahryar whom you did to death before your accession and who had done no injury to you." *Aurangzeb.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शाहजहाँ का चरित्र

१–उद्यमी तथा परिश्रम शील।
२–उच्च कोटि का सैनिक।
३–न्यायप्रिय शासक।
४–धार्मिक असहिष्णुता।
५–साहित्य प्रेमी।
६–कला प्रेमी।
७–परिवार प्रेमी।
८–उसके चरित्र में दोपक्ष
९–दुर्बल बुद्धि।
१०–पक्षपाती।

(१) उद्यमी तथा परिश्रमशील :––शाहजहाँ का प्रारंभिक जीवन बड़े परिश्रम का था। उसे अपने भाइयों की प्रतिद्वन्द्वता तथा पिता के कोप का भाजन बनना पड़ा था। पर वह कभी साहसहीन न हुआ। उसने बड़े यत्न से तथा युक्ति से काम लिया। वह कभी किसी की चाल में न आया। उसे अपने बल और पौरुष पर भरोसा था। यह उसी का काम था कि दक्षिण की समस्या सुलझना प्रारम्भ हुई।

(२) उच्च कोटि का सैनिक––शाहजहाँ एक योग्य सैनिक था। वह सदा युद्ध की योजनाएँ बना कर चलता था। उस पर यह आरोप लगाया जाता है कि करोड़ों रुपये व्यय करके भी वह कन्धार न ले सका। पर इसका उत्तरदायित्व कुछ तो परिस्थिति को है, कुछ उसके पुत्रों को। उसने दक्षिण तथा मेवाड़ के युद्धों में भारी सफलता प्राप्त की थी।

(३) न्याय प्रिय शासक––एक शासक के रूप से उसने न्याय करने की चेष्टा की, यद्यपि अपने व्यक्तिगत जीवन तथा धार्मिक दृष्टि कोण में वह उसे न निभा सका। इसमें सन्देह नहीं कि उसने प्रजा को प्रजा समझ कर शासन किया। उसकी नीति न्याय पर आधारित थी।

(४) धार्मिक असहिष्णुता––शाहजहाँ निःसन्देह एक कट्टर सुन्नी था। अमीन काजवीनी के वर्णनों से विदित होता है कि इस्लाम के प्रति उसकी श्रद्धा कितनी प्रगाढ़ थी।

वह नित्य चार बार नमाज पढ़ता तथा रमजान के महीने में रोजा रखता था। उसकी शुद्ध इस्लाम भक्ति ने ही उसे प्रेरित किया था कि वह दक्षिण की शिया रियासतों से लड़े, तथा केवल बनारस में ७६ मन्दिर गिरवा दे। यही वह शाहजहाँ था जिसने ओरछा नरेश वीर सिंह बुन्देला का भव्य मन्दिर मिट्टी में मिलवा दिया था, तथा उसके परिवार की स्त्रियों के साथ नृशंस व्यवहार किया था। धर्म के विषय में उसे ईसाइयों से भी घृणा थी। जब शाहजहाँ को विदित हुआ कि बुरहानपुर में हिन्दू मुसलमानों में व्याह होते हैं और स्त्रियों को पति के धर्म के अनुसार जलाया या गाढ़ा जाता है, तो उसने एक आज्ञा निकाली कि कोई मुसलमान स्त्री किसी हिन्दू के घर न जायगी,

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

यदि फिर भी जाती है तो उस हिन्दू को इस्लाम ग्रहण करना होगा। इस प्रकार अनेक लोगों को इस्लाम धर्म स्वीकार करना पड़ा। उसने इस्लाम के प्रचार के लिए काजी और मौलवी भी नियुक्त किये थे। पंजाब के कुछ हिन्दुओं ने भी मुसलमान लड़कियों से विवाह कर लिया था, उनके तो विवाह ही समाप्त कर दिये गये, लड़कियों को लौटा कर मुसलमानों को दे दिया गया। इस विषय में भी लगभग ४०० पुरुषों ने लड़की वापस न देकर स्वयं इस्लाम को ग्रहण कर लिया। उसने कुछ मन्दिर तुड़वा कर मस्जिदें भी बनवा दीं तथा मक्का और मदीना को बराबर उपहार भेजे।

(५) **साहित्य प्रेमी**--शाहजहाँ केवल सैनिक न था, उसकी बुद्धि प्रखर थी, उसे साहित्य से बड़ी रुचि थी। वह फारसी अच्छी तरह बोल सकता था, साथ ही हिन्दी में भी बात करता था। यही नहीं उसे तुर्की का भी कुछ ज्ञान था। उसका लेख सुन्दर था, उसे कविता से बड़ा स्नेह था। संगीत का तो वह अनन्य भक्त था। उसने संगीत को प्रोत्साहन भी बहुत दिया। अनेक संगीतज्ञ उसके दरबार में आते थे, जिनकी वह स्वयं कभी-कभी संगत करता था। एक ओर वह उर्दू फारसी का विद्वान था, दूसरी ओर संस्कृत का भी वह कम सम्मान न करता था। दरबारी इतिहासकार अब्दुल हमीद लाहौरी के अनुसार गंगाधर व गंगा लहरी के प्रसिद्ध लेखक जगन्नाथ पण्डित शाहजहाँ के राज कवि थे। आचार्य कवीन्द्र सरस्वती उसी के दरबार की शोभा थे। प्रसिद्ध कवि सुन्दरदास तथा चिन्तामणि भी उसी के आश्रित थे। इससे स्पष्ट है कि जहाँ तक साहित्य का सम्बन्ध है वह कहीं भी असहिष्णु नहीं कहा जा सकता।

(६) **कला प्रेमी**--साहित्य का अभिन्न अंग कला है, और कला का क्षेत्र साहित्य है।

साहित्य सेवी को कला प्रिय होना स्वाभाविक है। शाहजहाँ का भी कला से विशेष अनुराग था। वह स्वभाव से ही कला और संगीत का स्नेही था। उसकी सर्वोत्तम कृति ताजमहल इसका प्रबल प्रमाण है। इसके अतिरिक्त उसका मयूर सिंहासन, लालकिले के अन्दर भवन दीवान-ए-आम, दीवाने-ए-खास, मोतीमस्जिद आदि उसकी कलात्मक रुचि के ज्वलंत उदाहरण हैं। उसने चित्र कला आदि को भी बहुत प्रोत्साहन दिया, यद्यपि उसके समय में कहा जाता है कि चित्र कला में मौलिकता का अभाव है, पर इसमें सन्देह नहीं कि उसने इस क्षेत्र का संस्करण तो अवश्य किया।

(७) **परिवार प्रेमी**--शाहजहाँ पुत्रवत्सल पिता, पत्नी व्रती पति, तथा स्वभाव से स्नेहशील था। यद्यपि उसे अपने पिता तथा बन्धुओं से ही लड़ना पड़ा, पर उसको इस संघर्ष के लिए विवश होना पड़ा। उसने अपनी

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पत्नी की स्मृति तो अमर कर दी। उसकी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् उसका प्रेम पितृ-भक्ता पुत्री जहाँनारा पर चला गया था। बर्नियिर और टैवरनियर जैसे लेखकों ने उसको इस विषय में बहुत दुर्बल बताया है, पर इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं। अपने पुत्रों में शाहजहाँ दारा को सबसे अधिक चाहता था, उसके लिए उसने जो भी सम्भव रियाअतें थीं, सभी कीं। अन्त में भी उसी का पक्ष लेने के कारण उसे स्वयं कष्ट उठाना पड़ा।

(८) **उसके चरित्र के दो पक्ष**--शाहजहाँ के व्यक्तित्व के दो पक्ष हैं। एक ओर तो वह अपने पितामह की भांति योग्य तथा उदार था, दूसरी ओर औरंगजेब की भाँति कट्टर था। स्मिथ का कथन है कि वह आज्ञाकारी पुत्र न था। उसके अनुसार वह शासक और मनुष्य दोनों ही रूप से असफल था। शाहजहाँ के दरबार की भव्यता उसकी असफलताओं पर पर्दा नहीं डाल सकती। पर यह भी सन्देहहीन है कि वह एक महत्वाकांक्षी सम्राट था। विदेशी यात्रियों के कथनानुसार शाहजहाँ महान् तथा सफल शासक था। यदुनाथ सरकार ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक स्टडीज इन मुगल इण्डिया में जो वर्णन किया है, उससे यह अवश्य सिद्ध हो जाता है कि शाहजहाँ बड़े ठाट-बाट का शौकीन तथा आमोद प्रिय होते हुए भी एक परिश्रमी सम्राट था। उसमें पारिवारिक स्नेह तथा धार्मिक असहिष्णुता की दुर्बलता को छोड़ कर कोई दोष ढूढ़ना असंभव होगा। अपने पुत्रों के बीच ही भिन्न स्नेह होना पिता के लिए स्वाभाविक है।

(९) **दुर्बल बुद्धि**--एक कठोर शासक होते हुए भी उसे दुर्बल बुद्धि इसलिए कहा गया है कि वह उत्तराधिकार युद्ध को न रोक सका, दारा के मोह में पड़ा रहा। दारा का ही सदा साथ देता रहा।

(१०) **पक्षपाती**--निःसन्देह शाहजहाँ में पक्षपात की भावना थी और वह अपने ही मतावलम्बियों के कारण थी। वह शिया तथा हिन्दू प्रजा को अपनी प्रजा न समझ सका।

प्रश्नावली

१--शाहजहाँ के शासन काल में वैदेशिक नीति का वर्णन करिये।

२--शाहजहाँ की मध्य एशियाई नीति का वर्णन करिये। उसे इसमें सफलता क्यों न मिली?

३--दक्षिण में मुगल साम्राज्य का प्रसार दिखाइये।

४--शाहजहाँ के शासन काल ने मुगल साम्राज्य तथा तत्कालीन आर्थिक अवस्था के पतन की घोषणा कर दी थी, कहाँ तक ठीक है?

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

५—शाहजहाँ शान व शौकत का सम्राट था, स्पष्ट करिये ।

६—वास्तु कला के क्षेत्र में शाहजहाँ का काल स्वर्ण युग था समझाइये ।

७—उत्तराधिकार युद्ध का वर्णन करिये, इस बन्धु विरोध के लिए शाहजहाँ कहाँ तक उत्तरदायी था ?

कुछ आवश्यक तिथियाँ

शाहजहाँ का राज्यारोहण	६-२-१६२८ ई०
मुमताज महल का देहावसान	७ जून १६३१ „
महाबत खाँ की मृत्यु	अक्टूबर १६३४ „
ओरछा का विध्वंस	२२ नवम्बर १६३४ ई०
बीजापुर तथा गोलकुंडा से सन्धि	१६३६ „
वल्ख पर अधिकार	१६४६ „
कन्धार का संघर्ष	१६५२-५३ „
शाहजहाँ का अस्वस्थ होना	६ सितम्बर १६५७ „
घरमत का युद्ध	मई १६५८ „
सामूगढ़ का घेरा	१६५६ „
दारा को मृत्यु दण्ड	३० अगस्त १६५६ „
मुराद का अन्त (ग्वालियर)	१६६१ „
शाहजहाँ का अन्त	२२ जनवरी १६६६ „

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद ७

औरंगजेब (१६५८–१७०७ ई०)

प्रारम्भिक जीवन––औरंगजेब के जीवन पर प्रकाश डालने वालों में प्रमुख लेखक डा० यदुनाथ सरकार का कथन है कि, **"औरंगजेब का इतिहास वस्तुतः भारत का ६० वर्ष का इतिहास है।"** * उसका जीवन ही नहीं केवल शासन-काल सत्रहवीं सदी का उत्तरार्ध है। उसी के काल में मुग़ल साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुँच सका जिस में गज़नी से लेकर चटगाँव तथा कश्मीर से लेकर कर्नाटक तक का भाग सम्मिलित था। ये सीमाएँ अशोक, हर्ष और समुद्रगुप्त सभी के साम्राज्यों से अधिक थीं। औरंगजेब का जन्म ३ नवम्बर सन् १६१८ ई०† में उज्जैन में हुआ था। अपने पिता के विद्रोह के समय औरंगजेब तथा दारा को बहुत कष्ट उठाना पड़ा था, क्योंकि इन दोनों को नूरजहाँ के पास बन्धक के रूप में रख दिया गया था, और जब शाहजहाँ ने आत्मसमर्पण कर दिया था, तो ये भी मुक्त कर दिये गये थे। फिर भी उसकी शिक्षा आदि का समुचित प्रवन्ध कर दिया गया था, पर वह १० वर्ष की आयु में प्रारम्भ हो सकी थी। पढ़ने लिखने में वह कुशाग्र बद्धि था। थोड़े ही समय में वह अरबी तथा फ़ारसी सीख गया। उसकी विशेष रुचि धार्मिक विषयों में थी। ललित कलाओं की ओर उसका झुकाव बिल्कुल न था। पर सैनिक शिक्षा में वह पीछे न रहा और शीघ्र एक कुशल सैनिक बन गया। सन् १६३४ ई० में उसे १०००० ज़ात और ४००० सवार के मंसब पर नियुक्त कर दिया गया।

औरंगजेब

* "The history of Aurangzeb is practically the history of India for 60 years." *J. N. Sarkar,*

† डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार।

१०२८ हिज़री अर्थात् सन् १६१६ ई०, डा० शर्मा के अनुसार।

१५ वेज़ि० १०२७ हिज़री अर्थात् सन् १६१८ ई० का २४ अक्टूबर डा० यदुनाथ सरकार के अनुसार।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

जैसे कहा जाता है कि सूर्य के मध्याह्न के अनन्तर बहुत समय पश्चात् यह विदित हो पाता है कि अब दिन ढल रहा है, उसी प्रकार शाहजहाँ के शासन काल में निश्चित रूप से मुग़ल साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर था, पर उसका उतार औरंगजेब के समय में विदित हुआ। इसी के आधार पर तो इसके शासन काल को अवतरण काल कहा गया है। एक राजकुमार के रूप में तो औरंगजेब अनेक भावी आशाओं का प्रतीक था। भाग्य से उसके जीवन का प्रारम्भ अच्छे रूप से ही हुआ, उसे शेरशाह बाबर या अकबर की भाँति प्रारम्भिक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। अपने राज्यारोहण से पूर्व वह दो बार तो दक्षिण जैसे प्रान्त का राज्यपाल रह चुका था। उस समय उस की आयु तो प्रौढ़ावस्था को भी पार कर चुकी थी (४०)। अतः पूर्ण रूप से एक अनुभवशील व्यक्ति के रूप से और महान संघर्ष के पश्चात् वह राज्य का स्वामी बन सका था।

उसके शासनकाल की घटनाएँ

१. **प्रारम्भिक प्रबन्ध**—राज्य प्राप्ति के पश्चात् औरंगजेब ने अनुभव किया कि राज्य की व्यवस्था ठीक नहीं है। उत्तराधिकार के प्रति संघर्ष के कारण राज्य में गड़बड़ी फैल चुकी है। प्रजा नित्य नये करों से बोझिल है। इसका देश के व्यापार पर भी प्रभाव आ गया है, अतः उसने सर्वप्रथम **"राहदारी"** कर हटा दिया। यह कर देश के हर राजमार्ग पर सीमा को लाँघने के रूप में लिया जाता था। इससे राज्य को पर्याप्त धन का लाभ था, पर औरंगजेब ने उसे उठा लेने ही में राज्य का कल्याण समझा। उसने भूमिकर तथा गृहकर भी उठा लिये। इस प्रकार के लगभग ८० कर उसने हटा दिये। इनमें से काफी खाँ ने १४ का उल्लेख किया है। औरंगजेब इस्लाम का कट्टर अनुयायी था। पहले सिक्कों पर कलमा लिखा जाता था, जो उसके अनुसार इस्लाम को न मानने वाले के हाथ भी पड़ जाता था, अतः उसने सिक्कों पर कलमा लिखाना बन्द कर दिया। उसने फारस के पर्व नौरोज का मनाना जो यहाँ भी मनाया जाता था, बन्द कर दिया। उसने कुछ धर्माधिकारियों की नियुक्ति की (**मुहत्तसिब**)। इनका कार्य प्रजा के चरित्र पर देख-रेख रखना था। उनका प्रमुख लक्ष्य यह देखना था कि कोई कुरान के विरुद्ध तो आचरण नहीं करता। वे मदिरापान आदि मादक वस्तुओं पर जो कुरान में वर्जित हैं रोक रखते थे। उसने इस्लाम की उन्नति के लिए मस्जिदों तथा खानकाहों के जीर्णोद्धार की भी आज्ञा दी। इमाम और मुअज्जिमों को उसने नियमित रूप से वेतन दिलाना प्रारम्भ किया। साथ ही दारा के साथी सूफियों को उसने दण्ड दिलवाया।

२. **पूर्वी सीमा पर युद्ध (१६६१–६६ ई०)**—सन् १६३६ ई० की सन्धि

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

के पश्चात् पूर्व में बहुत समय तक शान्ति रही। पर जब शुजा के कुप्रबन्ध तथा उत्तराधिकार युद्ध के कारण इस प्रदेश में अव्यवस्था हुई, तो स्थानीय राजा ने भी सर उठाने का अवसर पा लिया। सन् १६५७ ई० में कूच बिहार के शासक प्रेमनारायण ने मुग़ल सीमा के अन्दर आक्रमण कर दिया। दूसरे ही वर्ष कामरूप की राजधानी को आसामियों ने लूट लिया और उस पर अपना अधिकार कर लिया। पारस्परिक कलह के कारण मुग़ल इनके विरुद्ध सन् १६६० ई० तक कुछ न कर सके। सन् १६६० ई० में औरंगजेब ने अपने कुशल सेनानायक मीर जुमला को बंगाल का राज्यपाल नियुक्त किया। उसको औरंगजेब ने आदेश दिया कि विद्रोहियों को शीघ्र से शीघ्र दबा दे।

सन् १६६१ ई० में मीर जुमला ने पूर्वी अभियान प्रारम्भ किया। उसकी सेना में १२००० घोड़े; ३०००० पदाति और ३०० नावें थीं। उसने एक सप्ताह के अन्दर कूच बिहार को ले लिया तथा उसने कूच बिहार की राजधानी का नाम आलमगीर नगर रख दिया। वहाँ का मन्दिर तुड़वा कर उसके स्थान पर मस्जिद का निर्माण कराया। उसका सारा राज्य अपने अधीन कर लिया। इसके अनन्तर उसने गढ़गाँव के राजा को मार भगाया। तमाम धन-धान्य तथा युद्ध सामग्री उसके हाथ लगी। दैवयोग से इसी समय ज्वर फैल गया, वर्षाकाल प्रारम्भ हो गया। बात की बात में मुगलों की सेना क्षीण होने लगी, लाखों की संख्या में नरनारी स्वर्गधाम सिधार गये। रोगियों की चिकित्सा भोजन आदि का भी प्रबन्ध न किया जा सका। मीर जुमला ने इस विषम स्थिति का बड़े धैर्य से सामना किया। उसकी विजयलालसा तो पूरी न हो सकी, पर सन् १६६२ ई० में उसने राजा अहोम को सन्धि करने पर विवश किया। राजा ने उसे अतुल धन आदि भी उपहार स्वरूप दिया।

थोड़े समय के अनन्तर मीर जुमला इस संसार से चल बसा। यदुनाथ सरकार ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है। आपका कथन है कि--

"उस युग में किसी सेनानायक ने मीर जुमला की भाँति न्याय तथा मानवता को ध्यान में रख कर युद्ध नहीं किया, न किसी ने अपने निजी सेवक, सैनिक, तथा सेनापतियों को इस प्रकार के अनुशासन ही में रख पाया था। कोई भी सेनानायक इतनी भयंकर परिस्थिति में, तथा संकट काल में अपने कर्मचारियों में अन्त तक स्नेह व विश्वास न जमाये रख सकता था। जिसके पास २० मन हीरे जवाहरात हों, जो बंगाल जैसे खुशहाल प्रान्त का स्वामी हो, वह यदि एक साधारण सिपाही की भाँति भोजन करे और उसके साथ प्रयाण करे, तो अश्चार्य नहीं और क्या है। मीर जुमला ने इसी आचरण से अपनी अकाल मृत्यु को निकट बुला लिया था, उसने कभी आराम का जीवन

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

बिताना सीखा ही न था। उसने सदा परिश्रम करना सीखा था। उसका आदेश था कि व्यभिचार, लूट और दमन न होगा, और उसने देखा कि उसके इस आदेश का अक्षरशः पालन हुआ। †

इसके पश्चात् बंगाल में दक्षिण का गवर्नर शायस्ता खां भेजा गया उसने देखा कि पुर्त्तगाली तथा वर्मा वाले लुटेरों की भाँति आचरण करते हैं। वे ढाका प्रान्त तक को लूट ले जाते हैं। अतः उसने बंगाल की जलसेना को सबल किया, तथा अराकान के ऊपर आक्रमण कर वहाँ के शासक को चटगाँव का प्रान्त देने पर विवश किया (१६६६ ई०)। इसी प्रकार सोद्वीप की लूट मार को समाप्त किया गया। इस द्वीप को भी मुग़लों ने अपने अधीन कर लिया। काश मुग़लों की यही नीति विदेशियों के सम्बन्ध में बनी रहती तो इसके पश्चात् की परिस्थिति सर्वथा भिन्न होती।

३. **उत्तरी पश्चिमी सीमा नीति**——उत्तर पश्चिम की जातियाँ सदा से भारत के लिए दुःखद और समस्या के रूप में रही हैं। ये किसी राष्ट्र के स्वरूप में तो रहीं नहीं। अतः उनके विभिन्न वर्गों ने उनका एकीकरण और भी न होने दिया। १६वीं तथा १७वीं सदी में इन्होंने उत्तर पश्चिम की राजनीति में विशेष भाग लिया। आये दिन इन्होंने लूट मार की तथा मुग़लों को भी तंग किया। मुग़लों ने इनको हर तरह से दबाने की चेष्टा की। उन्होंने रुपये से इन्हें वश में किया, जहाँ रुपये से काम न चला तो युद्ध किया। इस ओर अकबर को पर्याप्त सफलता मिल गयी थी। जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में कन्धार, बल्ख और बदख़शां के अभियानों में तो अतुल धन फूंका गया, पर मुग़ल सदैव सफलता का वरण न कर पाये। हाँ, इन पर मुग़लों की सत्ता

---

† "No other general of that age conducted war with so much humanity and justice, nor kept his soldiers, privates and captains alike under such discipline no other general could have retained to the last the confidence and even affection of his subordinates amidst such appalling sufferings and dangers. The owner of 20 maunds of diamonds, viceroy of rich province of Bengal, he shared with the meanest soldier the privations of the march, and brought premature death on himself by scorning delights and living laborious days. He issued strict orders forbidding plunder, rape, oppression of the people and saw to it that his orders were obeyed."

J. N. Sarkar.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

का भय अवश्य काम करता रहा। शाहजहाँ के शासन काल के अन्त में इन्होंने पुनः झगड़े खड़े कर दिये।

औरंगज़ेब ने इस विषय में उग्र नीति से काम लिया। पहले तो उसने भी पैसे के बल से इन्हें शान्त करना चाहा पर ये सीधे मानने वाले न थे। सन् १६६७ ई० में यूसुफजाइयों ने अपने नेता भागू के सेना-पतित्व में विद्रोह किया। उन्होंने अटक के पास सिन्धु को पार करके हज़ारा ज़िले पर आक्रमण किया। कुछ लोगों ने पेशावर और अटक के ज़िले लूट लिये। अप्रेल १६६७ में अटक के सेना-नायक कामिल खां ने इन्हें पराजित किया। इसके अनन्तर ये ५ वर्ष तक शान्त रहे।

१६७२ में पुनः एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ। यह अफरीदियों ने अकमल खां के नेतृत्व में किया था। उसने अपने को राजा ही घोषित न किया बल्कि मुग़लों के विरुद्ध जिहाद बोल दी। इसमें उसने समस्त पठानों से सहयोग की प्रार्थना की। इस बार उसने मुग़ल सूबेदार अमीन खां पर आक्रमण किया और उसे अली मस्जिद पर पराजित किया। इस पराजय से मुग़लों की प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा। अफरीदियों ने अमीन खां की स्त्रियों तक को गुलाम बना लिया। अकमल खां का उत्साह इससे और भी बढ़ गया। अटक से कन्धार तक का सारा भू-भाग विद्रोह की अग्नि से जल उठा। इसमें उनके सब से बड़े सहयोगी खट्टक जाति के लोग थे। खट्टकों का नेता खुशहाल खां था। इनमें से कुछ कविता से भी अभिरुचि रखते थे। अतः इन्होंने न केवल तलवार के ज़ोर से बल्कि अपनी लेखनी व ओजस्विनी वाणी से भी देश-वासियों को प्रोत्साहित किया।

"खुशहाल खां इस राष्ट्रीय विद्रोह का प्राण था, जिसने अपने देश-वासियों को खड्ग तथा लेखनी से समान रूप से प्रोत्साहित किया।"* सन् १६७४ में शुजातखां के नेतृत्व में मुग़ल सेना पर अफगानियों ने आक्रमण कर दिया। इसमें शुजातखां तो काम आया, पर उसकी सेना को जसवन्त सिंह ने किसी प्रकार बचा लिया। निःसन्देह इसमें भी मुग़लों की मानहानि थी, पर औरंगज़ेब इससे साहस छोड़ने वाला न था। उसके चित्त में यह अवश्य आया कि इस

* "Khushhal Khan became the leading spirit of the national rising and inspired the tribesmen with his pen and sword alike."

An Advanced History of India by Majumdar, Chaudhuri & Datta. P. 414.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

प्रदेश को शान्त करने के लिए अधिक यत्न करना पड़ेगा। १६७४ ई० की जुलाई में वह स्वयं हसन अब्दाल गया। यहाँ उसने अपनी सैन्य शक्ति तथा कूटनीति दोनों से काम लिया। उसने अनेक अफ़ग़ानों को भेंट, जागीरें, पद और पेंशनें देकर अपनी ओर मिला लिया। उसने अमीरखां को काबुल का सूबेदार नियुक्त किया, तथा अनेक विद्रोहियों को दबा दिया। ख़ुशहाल ने अपना संघर्ष उस समय तक तो जारी रखा जब तक उसी का लड़का विरोधी दल में न जा मिला, पर जब उसी के पुत्र ने उसे मुग़लों के हाथ सौंप दिया, तो वह विवश हो गया। एक बन्दी के रूप में भी उसने ये शब्द कहे थे। **"मैं ही वह हूँ जिसने औरंगज़ेब के हृदय को भारी चोट पहुँचाई है। मुग़लों ने खैबर के दर्रे को बहुत बड़ी कीमत पर खरीद पाया है।"*** इस प्रकार औरंगज़ेब ने धन तथा फूट से काम लेकर इस प्रदेश को अपने अधीन कर लिया। सन् १६७५ ई० तक जब स्थिति शान्त हो गयी, तो वह पंजाब की ओर लौट आया। इसकी सफलता का श्रेय सबसे अधिक अमीनखां तथा उसकी पत्नी को है। उसकी पत्नी साहिबजी थी, जो अलीमर्दां की पुत्री थी। अमीनखां इस प्रांत में १६७७ से १६९९ ई० तक रहा। उसने अपनी कूटनीति के बल पर इस प्रदेश में शान्ति रखी, इसके लिए उसे हर यत्न से काम लेना पड़ा।

"उसने सहायतार्थ धन दिया, एक जाति को दूसरे से लड़ा दिया बल्कि उसी के शब्दों में उसने ईंट को ईंट से भिड़ा दिया।" †

इस नीति से मुग़लों की आन्तरिक व्यवस्था पर भी प्रभाव पड़ा जैसा कि सरकार महोदय लिखते हैं।

'जिस प्रकार अफगान युद्ध मुग़ल आर्थिक व्यवस्था के लिए घातक था, उसी प्रकार वह राजनीति के लिए भी था। इसके कारण भावी राजपूत युद्धों में अफगान वीरों को उपयोग में न ला सका। फिर इसने शिवा जी का

---

* "I am he who has sorely wounded Aurangzeb's heart, Khaiber's pass, have I made to the Mughals their dearest purchase."

Khush-hal-Khan.

† "By following the policy of subsidies, or by setting up one clan against another, or to use his own metaphor breaking two bones by knocking them together."

Datta & Ray Chaudhuri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

संकट भी कम कर दिया, क्योंकि इस युद्ध के लिए दक्षिण से बहुत सी मुग़ल सेनाओं को हटाना पड़ा।*

इसका अर्थ यह हुआ कि इस प्रदेश में मुग़लों की सफलता कोई गर्व की चीज़ नहीं कही जा सकती। मुग़लों की प्रतिष्ठा तो बच गयी, पर उन्हें जन धन की हानि उठानी पड़ी।

औरंज़ेब तथा इस्लामी जगत--सन् १६६१-६७ के बीच औरंगज़ेब ने दूर देशों से इस्लाम के नाम पर उपहार ग्रहण किये। उसने मक्का शरीफ से, फारस के सम्राट से, बल्ख, बुखारा, काशगर, उरगंज, (खीवा) के राजाओं से, बसरा के शासक शहर ए-नान से, दमन, मोवा, तथा हदरामात के राजपालों से आये दूतों का स्वागत किया। कुस्तुनतुनिया का दूत १६९० में आया। यदुनाथ सरकार के शब्दों में उसे **"सर्व प्रथम इन विदेशी राजाओं को तथा उनके दूतों को बहुमूल्य भेंट देकर अपने भाइयों के प्रति किये गये दुर्व्यवहार को भुला देना था, अथवा भारतवर्ष की अपार सम्पत्ति के स्वामी बनकर विशेषकर जब वह इस सम्पत्ति का अकेला स्वामी था, एक कर्मण्य पुरुष के प्रति उनमें श्रद्धा प्रदर्शित करा देना था।**

५. धार्मिक औरंगजेब--औरंगजेब के जीवन में उसकी धार्मिक वृत्ति का गहरा प्रभाव रहा है, अतः इस विषय में कुछ कहना असंगत न होगा। औरंगजेब ने अपने पूर्वजों की धार्मिक नीति में बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया। वह इस्लाम के विरुद्ध कभी चलना सीखा ही न था। अतः उसने निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दिया।

(१) उसने अपने शासन काल की गणना के लिए इलाही सौर-वर्ष समाप्त कर दिया।

उसके शासन काल के ११ वें वर्ष से दरबार के संगीतज्ञ दरबार में उपस्थित हो सकते थे, पर नृत्य गान आदि कुछ भी न कर सकते थे। कुछ समय पश्चात् तो वे उपस्थित ही न हो सकते थे।

(२) औरंगज़ेब ने झरोखा से दर्शन देने की प्रथा को भी हटा दिया। उसका विश्वास था कि झरोखे के दर्शन से मनुष्य को तृप्त नहीं हो सकती,

* "Ruinous as the Afghan war was to the imperial finances, its political effect was even more harmful. It made the employment of the Afghans in the ensuing Rajput war impossible.........More over it relieved the pressure on Shivaji, by draining the Deccan of the best Mughal troops for service on the north west frontier."

J. N. Sarkar.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उसकी तक़लीफ तो सीधी बात सुनने से दूर होगी । झरोखे के दर्शन का अर्थ तो मनुष्य की पूजा हुई जो इस्लाम का सिद्धान्त नहीं है।

(३) अपने शासन काल के १२ वें वर्ष से उसने अपने को सोने में तुलवाना भी समाप्त कर दिया । उसका विश्वास था कि यह रीति हिंदुओं से ग्रहण की गयी थी, पर कोई हिन्दुओं का सिद्धान्त शुद्ध इस्लाम में उसकी समझ की बात न थी। पहले तो वह दशहरा के उत्सव में सम्मलित हो लेता था। प्रत्येक नये हिन्दू राजा के मुग़ल दरबार में उपस्थित होने पर वह टीका लगा दिया करता था पर इसे भी हिन्दू रीति मान कर उसने त्याग दिया।

(४) उसने राज ज्योतिषियों तथा खगोल के विद्वानों को ही पदच्युत कर दिया, तथा दरबार से स्वर्ण और रजत के धूप पात्र हटवा दिये।

(५) वेश्याओं तथा नृत्य बालाओं को विवाह करने की आज्ञा दी गयी, यदि वे ऐसा न कर सकें तो उन्हें राज्य से निकल जाने को कहा गया।

(६) औरंगज़ेब ने मादक वस्तुओं के खुले रूप से प्रयोग पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। उसने द्यूत के खेलने को अपराध घोषित कर दिया।

(७) उसने उस समय की वेश भूषा पर भी प्रतिबन्ध लगाये । दाढ़ी की लम्बाई निर्धारित कर दी गयी । एक आज्ञा के अनुसार नियम विरुद्ध लम्बाई की दाढ़ी रखने वालों की दाढ़ी काटी जा सकती थी । ज़री के वस्त्र पहनना वर्जित था। पाजामा की लम्बाई निर्धारित कर दी गयी थी।

(८) विशेष हिन्दू तथा मुसलमान पर्वों पर पशु, पक्षी, स्त्री तथा पुरुषों की झाँकीं निकालने पर रोक लगा दी गयी। यही नहीं उसने पूज्य सन्तों की क़ब्र पर दीपक जलाना भी मना कर दिया । इसी सम्बन्ध में एक फकीर अपनी जान से हाथ धो बैठा क्योंकि वह अपने को भगवान से कम न समझता था।

(९) हिन्दू पर्वों की गणना ही क्या, उसने १६६९ में, कहा जाता है, मुहर्रम मनाया जाना बन्द कर दिया। अहमदाबाद के राज्यपाल को तो इसी अपराध में (मुहर्रम मनाने के) पदच्युत होना पड़ा था। कुछ लोगों को खलीफाओं के प्रति अशिष्ट व्यवहार के लिए ही मृत्यु दण्ड भोगना पड़ा। इसी प्रकार एक पुर्तगाली को इस्लाम मान कर पुनः अपने धर्म में जाने के लिए मृत्यु का सामना करना पड़ा था।

(१०) औरंगजेब ने उच्च पदों पर हिन्दुओं की नियुक्ति रोक दी। उसने राजस्व विभाग से उनके एकाधिकार को समाप्त कर दिया। उसने इस निमित्त एक विशेष राजाज्ञा निकाली। इस प्रकार हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन के

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

लिए प्रोत्साहित ही नहीं किया बल्कि विवश किया। विशेषरूप से जिस विभाग में मुसलमान कार्य करते थे, उसमें हिन्दू उच्च पद पर नहीं रह सकते थे।

(११) औरंगजेब ने हिन्दू मन्दिरों को नष्ट भ्रष्ट करने की आज्ञा दी। फरवरी १६५६ में उसने काशी के प्राचीन मन्दिरों के सम्बन्ध में जो निर्णय दिया वह इस प्रकार है।

"हमारे कानून के अनुसार यह निर्णय किया जाता है, कि बहुत प्राचीन मन्दिरों को न तोड़ा जाय, पर कोई नया मन्दिर बनने भी न दिया जाय।"*

"हमारी शाही आज्ञा है, कि तुम देखो कि भविष्य में कोई मनुष्य गैर कानूनी रूप से इन स्थानों के ब्राह्मणों तथा अन्य हिन्दुओं को तंग न करे, न उनके कार्य में अनुचित हस्तक्षेप ही करे।"†

औरंगजेब के शासन काल के प्रारम्भ में ही सोमनाथ का मन्दिर नष्ट कर दिया गया। १६६५ में उसने गुजरात के उन मन्दिरों को तोड़ने का आदेश दिया जिन्हें उसने अपनी सूबेदारी के समय नष्ट करा दिया था, पर जो पुनः बनवा लिये गये थे।

उड़ीसा के राज्यपाल को भी इसी प्रकार की आज्ञा हुई कि सम्राट को मिदनापुर के तिल कुट्टि ग्राम में एक मन्दिर बनने की सूचना प्राप्त हुई हैं, अतः उसे तुरन्त गिरवा दिया जाय, यही नहीं हिन्दू काफिरों को पुराने मन्दिरों की मरम्मत भी न करने दी जाय। १०, १२ वर्ष के बीच जो भी मन्दिर बने हैं, सभी गिरवा दिये जांय। इसी प्रकार मथुरा के प्रमुख मन्दिर भी तोड़े गये। उनको तोड़ कर मस्जिदों का निर्माण किया गया। इस प्रकार के मन्दिरों में केशव देव का एक मन्दिर विशेष उल्लेख नीय है, यह एक प्रसिद्ध मन्दिर था। इसका पत्थर का कटहरा दारा शिकोह ने बनवावा था। पर १६६६ में मथुरा के फौजदार ने उसे राजाज्ञा के अनुसार तुड़वा दिया। मथुरा का एक दूसरा मन्दिर वीर सिंह बुन्देले का था। इसे केशव राय का मन्दिर कहते थे इसे ढहा दिया गया, तथा इसके स्थान पर मस्जिद का निर्माण किया गया। सन् १६५६ में औरंजजेब को विदित हुआ कि मुलतान, सिन्ध, तथा बनारस के मन्दिरों में

---

* "It has been decided according to our canon law that long standing temples should not be demolished but no new temples be allowed to be built,"

Aurangzeb.

† "Our Royal command is that you should direct that in future no person shall be in unlawful ways, interfere with or disturb the Brahmins and other Hindu residents in those places." *Aurangzeb.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ब्राह्मण पठन पाठन करते हैं। उसने आज्ञा दी कि उन शिक्षकों को दण्ड दिया जाय, **"इस्लाम के कानून के अनुसार उसने राज्यपालों को आदेश दिया कि वे हिन्दुओं के मन्दिर तथा पाठशाले नष्ट कर दें, साथ ही उनके अध्ययन तथा उनकी पूजा आदि को बन्द करवा दें।"***

सन् १६६९ में बनारस में विश्वनाथ का मन्दिर ढहा दिया गया, इसी प्रकार वहाँ के गोपीनाथ मन्दिर को गिरवा दिया गया। इसी वर्ष जोधपुर के राजा जसवन्त सिंह की मृत्यु हो गयी, उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी जायदाद जब्त कर ली गयी तथा वहाँ के मन्दिर तोड़ दिये गये। उनकी मूर्तियों को दिल्ली भेजा गया। इसके अतिरिक्त उदय सागर झील के किनारे के मन्दिर तोड़े गये। अकेले उदयपुर राज्य में तोड़े गये मन्दिरों की संख्या २३५ थी। जयपुर राज्य में भी हिन्दू मन्दिरों को तोड़ने की आज्ञा दी गयी। लगभग ६६ मन्दिर आम्बेर में तोड़े गये। औरंगजेब ने महाराष्ट्र के मन्दिर तुड़वाने के लिए एक विशेष पदाधिकारी की नियुक्ति की। उसने द्वारिका के प्रसिद्ध मन्दिरों में पूजा करना ही बन्द करवा दिया। अयोध्या तथा हरद्वार के मन्दिर भी तोड़े गये।

(१२) हिन्दुओं को इससे भी अधिक हानि पहुँचाने के लिए उन पर कुछ कर लगा दिये। तीर्थ यात्रा कर जो अकबर के समय उनसे हटा दिया गया था, उसने पुनः लगा दिया। उनके होली, दिवाली, जैसे त्यौहारों के मनाने पर रोक लगा दी गयी। अहमदाबाद में साबर मती के किनारे तो हिन्दुओं की अंत्येष्टि क्रिया ही बन्द करा दी गयी। हिन्दू मुसलमानों की भांति अच्छे वस्त्र पहनने से वर्जित कर दिये गये।

राजपूत तथा मरहठों को छोड़कर अन्य हिन्दू पालकी हाथी, तथा ईरानी घोड़े का प्रयोग न कर सकते थे। हिन्दू अपनी अँगूठी पर देवी देवताओं के चित्र न बनवा सकते थे, बन्दर गाहों पर हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों को केवल आधा कर देना पड़ता था। कहीं-कहीं वे उससे भी मुक्त थे। इन करों में सबसे बुरा कर जजिया था। यह कर अप्रैल १६७९ में पुनः लगाया गया, इस कर से ब्राह्मण भी मुक्त न थे। प्रत्येक हिन्दू को जजिया कर देना अनिवार्य था। औरंगजेब कुरान शरीफ में लिखी आज्ञा का अक्षरशः पालन चाहता था।

---

* "Orders in accordance with the organization of Islam were sent to the Governors of all the provinces, that they should destroy schools and Temples of the infidels and put an end to their educational activities as well as the practice of the religion of the kafirs."

Massair Alam

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उसमें लिखा है **"कि इस्लाम न मानने वालों से युद्ध करो, जब तक कि वे दीन होकर अपने हाथ से जजिया अदा न करें।"**† इसके लिए सारा जन वर्ग तीन श्रेणियों में विभक्त कर दिया गया था।

(१) २०० दिरहम सम्पत्ति वाला, जिसे १२ दिरहम कर देना पड़ता था।

(२) २०० दिरहम अर्थात् ५२ रुपये से २५०० रु० की सम्पत्ति वाले को २४ दिरहम देना पड़ता था।

(३) जिनकी सम्पत्ति १०००० दिरहम से अधिक थी, उन्हें ४८ दिरहम देना पड़ता था।

इससे यह सिद्ध हुआ कि अधिक सम्पत्ति वाले को कम प्रतिशत कर देना पड़ता था। बच्चे, स्त्री, अनाथ, भिखारी, अन्धे, दास आदि इस कर से मुक्त थे। इस कर के लगाने का कुल मन्तव्य हिन्दुओं को इस्लाम मानने के लिए विवश करना था। यहाँ तक सम्भव था कि यदि किन्हीं दो हिन्दुओं में किसी सम्पत्ति पर झगड़ा हो गया, तो यदि उनमें से कोई मुसलमान बनना स्वीकार कर लेता, उसी को सारी सम्पत्ति दे दी जाती थी। कभी कोई बनिया यदि किसी मुसलमान को कर्ज दे देता तो भी आपत्ति का सामना करना पड़ता था। वह मुसलमान उसे रुपये न देकर उसकी शिकायत कर देता था, कि यह रसूल को गाली देता है, इसके लिए दो झूठे साक्षी खड़े कर देता था, जिस पर उस बनिये को मुसलमान बनने पर बाध्य होना पड़ता था। वूल्जले हेग के अनुसार **"औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीति घातक थी।"**‡

उसके प्रपितामह ने सहिष्णुता की नीति अपनाई थी, उसके पितामह तो हिन्दू माँ की सन्तान ही थे, उसके पिता भी उसके समान अन्धे मुसलमान न थे, पर औरंगजेब तो सभी सीमाओं को पार कर गया।

इस नीति का प्रभाव:—औरंगजेब कितना कट्टर था, यह तो उसने अपनी गुजरात की सूबेदारी में ही सिद्ध कर दिया था, जब सन् १६४४ ई० में उसने चिन्तामणि का मन्दिर तुड़वाकर, उसमें गोहत्या करवा कर उसे मस्जिद में परिणत कर दिया था। इसके विपरीत इस्लाम के मानने वालों को

† "Fight those who do not profess the true faith till they pay Jizia with the hand in humility."

Quran (IX-29)

‡ "The Religious policy of Aurangzeb was disastrous."

Sir Wolsley Haig

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उसने सदा सम्मान प्रदान किया, अतः इस सबका प्रभाव उसके लिए ही घातक सिद्ध हुआ। स्थान-स्थान पर अग्नि सुलगने लगी । इस ओर सबसे अधिक प्रभावित होने वाले तत्व राजपूत, सिक्ख, मरहठे और सतनामी थे।

राजपूत संघर्ष :—औरंगज़ेब हिन्दुस्तान को सदियों पूर्व पाकिस्तान बना देना चाहता था, पर उसके कुछ ऐसे सहायक भी थे, जिनके सामने वह खुल्लम-खुल्ला विरोध नहीं कर सकता था । इन सहायकों में सबसे प्रमुख जोधपुर नरेश महाराज जसवन्त सिंह थे । पहले तो यही जसवन्त सिंह औरंगज़ेब के विरुद्ध धरमत के मैदान में लड़े थे, पर औरंगज़ेब राज्य के प्रति उनकी भक्ति को समझ गया था, अतः उसने उनको क्षमा कर दिया था । वे अपनी शक्ति का परिचय देने के लिए अफगानिस्तान की मुग़ल चौकियों पर रक्षा के लिए नियुक्त किये गये थे। सन् १६७८ में वे स्वयं तो स्वर्ग सिधार गये, पर अपने बच्चों के लिए एक समस्या छोड़ गये । उनके मरते ही औरंगज़ेब ने मारवाड़ पर अपना आधिपत्य जमाना चाहा, क्योंकि वह तो यह मना ही रहा था कि कब सुअवसर मिले, अतः उसने इस घटना का स्वागत किया। औरंगज़ेब स्वयं अजमेर गया, उसने मारवाड़ को अपने अधीन करके वहाँ मुसलमान अधिकारी नियुक्त कर दिये। साथ ही मन्दिरों के ध्वंस करने तथा जज़िया की वसूली के लिए आज्ञा निकाल दी। इसके फल का अनुमान निम्नलिखित शब्दों से हो जायगा। **"दूसरे माह खान-ए-जहाँ राजधानी के मुल्लाओं द्वारा कुचले जाने के लिए टूटी मूर्तियों से भरी गाड़ी लेकर जोधपुर से आया। दीन मारवाड़ को इससे भी अधिक ठेस पहुँचाने के लिए जसवन्त सिंह के सिंहासन को ३६ लाख में नगर के मुखिया के हाथ बेच दिया गया जिस पर वह शाही संरक्षण में २६ मई १६७९ को बैठा।"*** तदनन्तर जसवन्त सिंह का एक नाती इन्द्रसिंह ३६ लाख रुपये देने के उपलक्ष्य में राज्य का उत्तराधिकारी मान लिया गया। यह घटना १६७९ में घटी पर इसी वर्ष विदित हुआ कि जसवन्त सिंह के दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं, जिनमें से एक जामरूद (जहाँ जसवन्त सिंह फौजदार था) से लाहौर की ओर आ रहा है, दूसरा अकाल मृत्यु से चल बसा है। जो

* "Next month Khan-i-Jahan returned to court taking with him cartloads of broken idols from Jodh-pur to be trodden underfoot by pious muslims at the capital. To complete the work of humilating Marwar the throne of Jaswant Singh was sold to the chief of Nagar for 36 lakhs of Rs. and the latter occupied it on 28th of May 1676 under Imperial escort.

Mughal Empire in India by S. R. Sharma. P. 542

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

लाहौर की ओर आ रहा था उसका नाम अजीत सिंह था । यही जोधपुर का सच्चा अधिकारी था । औरंगज़ेब ने अजीत सिंह को उसकी मां के साथ दिल्ली बुलवाया और हरम में रखा । वह उसका लालन-पालन इस्लाम के अनुसार चाहता था । राजपूतों को जब यह विदित हुआ तो उनके क्रोध का ठिकाना न रहा । दिवंगत राजा के मंत्री का एक पुत्र था, जिसका नाम था दुर्गादास । वह नीतिकुशल ही न था, रणकुशल भी था । उसने पहले तो औरंगज़ेब से कहा कि वह अजीत सिंह के उत्तराधिकार को मान ले पर जब औरंगज़ेब ने एक न सुनी तो उसने अजीत सिंह की मुक्ति का उपाय सोचा । दुर्गादास के लिए डा० ईश्वरीप्रसाद लिखते हैं :--

"दुर्गादास का नाम राजपूतों के इतिहास में सदा अमर रहेगा । मारवाड़ के राज घराने के प्रति भक्त, तथा उच्च कोटि का वीर और राजनीतिज्ञ होने के नाते, दुर्गादास की प्रतिष्ठा बहुत भारी थी, उसने कभी शत्रु के साथ भी अपना वचन भंग न किया था । अथवा कभी अपने मन्तव्य की पूर्ति के लिए किसी को धोखा देना, चाल चलना तो सीखा ही न था ।" †

दुर्गादास ने अपनी जान हथेली पर रख कर यह कार्य किया । उसने रानियों को पुरुष के भेष में बाहर निकाल कर, तथा उनके स्थान पर कुछ सेविकाओं को छोड़कर दिल्ली से रास्ता लिया । इस कार्य में उसने इतनी तत्परता दिखाई कि जब वह ९ मील दूर निकल चुका था तब कहीं औरंगज़ेब को समाचार प्राप्त हो सका । औरंगज़ेब ने उसका पीछा करने की आज्ञा दी, पर चिड़िया हाथ से निकल चुकी थी, अतः उसके रक्षकों से बीच में मुठभेड़ होने के अतिरिक्त कुछ और न हो सका । दुर्गादास अजीत सिंह को सुरक्षित रूप से जोधपुर तक ले गया । अतः औरंगज़ेब को एक ग्वाले के बालक को उसके स्थान पर रखकर ही सन्तोष करना पड़ा । उसने उसका नाम मुहम्मद राज रखा और घोषित कर दिया कि दुर्गादास का अजीत सिंह नकली है, असली तो उसी के पास है, किन्तु औरंगज़ेब को यह कैसे सहन हो सकता था ? उसने मारवाड़ के ऊपर तुरंत आक्रमण किया, वह स्वयं अजमेर तक गया ।

---

† "Devoted to the royal house of Marwar and endowed with valour and statesmanship of no mean order Durga Das was a man of stainless honour who never broke his word and even in dealing with his enemies never employed treachery or base intrigue to accomplish his ends."

Dr. Ishwari Prasad.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस अभिमान की बाग डोर उसके पुत्र अकबर तथा अजमेर के फौजदार तहाबर खां के हाथ थी। राजपूतों ने बड़ी वीरता से मुग़लों का सामना किया।

मारवाड़ का नेतृत्व इस बार राजसिंह कर रहा था। वह थर्मापली का ल्योनीडाज़ था जो पुष्कर झील के किनारे विष्णु बाराह देव के मन्दिर पर जमा था। उसके गिरने के पश्चात् मारवाड़ का हर घर एक दुर्ग बन गया। धीरे-धीरे वहाँ के मन्दिर ढहाये गये तथा उनके स्थान पर पग-पग पर मस्जिद की स्थापना होने लगी। मारवाड़ की यह विजय मेवाड़ के पतन की सूचिका थी। अतः राठौरों की भाँति सीसोदिया पीछे न रहे। इसका विशेष कारण यह था कि अजीतसिंह की माता मेवाड़ की राजकुमारी थी। राजसिंह ने बड़े व्यापक रूप से युद्ध की तैयारी की। उसने राजधानी को मार्ग देने वाले देववाड़ी पर पड़ाव डाल दिया। उधर औरंगज़ेब कम चण्ट न था। उसने सर्व प्रथम उदयपुर के लिए प्रस्थान किया, तथा १६८० ई० में (४ जनवरी) देववाड़ी पर जाकर अधिकार कर लिया। राजपूत यह देखकर राजधानी छोड़कर पर्वतों में उतर गये। इससे उदयपुर पर भी मुग़लों का अधिकार हो गया। मन्दिरों का ध्वंस मुग़लों का पहला काम था। उदयपुर के १७३, तथा चित्तौड़ के ६३ मन्दिर धराशायी किये गये। मार्च के माह में औरंगज़ेब दिल्ली लौट आया। उसके पश्चात् अकबर उसका प्रतिनिधित्व करने लगा।

अकबर औरंगज़ेब की भाँति कुशल न था, न उसकी पिता से इतनी बनती ही थी। राजपूतों ने उसे तंग करना प्रारंभ किया। आखिर मुग़ल सेना को पुनः सशंकित होना पड़ा। अतः अकबर की नियुक्ति मारवाड़ में की गयी। मेवाड़ की बागडोर आज़म को दी गयी, शेष दो राजकुमार इनकी सहायतार्थ रखे गये। आखिर मारवाड़ पर तीसरी बार पुनः आक्रमण किया गया। पर इस बार एक नयी समस्या खड़ी हो गयी। अकबर ने अपने पिता के विरुद्ध ही झंडा खड़ा कर दिया। उसने अपने को सम्राट घोषित कर दिया तथा अपने पिता को इस्लाम के विरुद्ध आचरण करने का आरोप लगाया। उसने राजपूतों से मैत्री कर ली। दुर्गादास उसका नेता हो गया। इस बात की चर्चा जब राजकुमार मुअज्ज़म ने पिता से की, तो औरंगज़ेब ने कहा कि तुम व्यर्थ के आरोप लगाते हो। कालान्तर में जब यह बात सत्य सिद्ध होने लगी तब तो औरंगज़ेब के होश ही उड़ गये। फिर भी उसने धैर्य से काम लिया। उसने अकबर के नाम एक पत्र लिखा और राजपूतों के पास पहुँचा दिया। उसका सारांश यह था।

"बेटे अकबर! राजपूतों को ठग कर तुमने ठीक ही किया, यही तो मैंने

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

तुमसे कहा था, अब इतना और करो कि राजपूत हमारी तुम्हारी दोनों की फौजों के बीच आ जायँ, बस इसी में तुम्हारी विजय है।"

इस प्रकार का पत्र राजपूतों को अकबर से अलग होने के लिए बहुत था। वे सभी उसका साथ छोड़ने लगे, अकबर ने उन्हें बहुत समझाया, पर वे एक न माने। दूसरे औरंगज़ेब ने दूसरी तरकीबों से उसके परम सहायक मुसलमानों को भी अलग कर दिया, किसी को धमकी दी, किसी को लालच दिया। तहावर खां को कहा गया कि वह दरबार में उपस्थित हो, अन्यथा उसके स्त्री बच्चे कुत्ते की मौत मारे जायँगे, अथवा बाज़ार में बिकेंगे। तहावर खां गया, पर वह अपने अंग के अस्त्र-शस्त्र न छोड़ना चाहता था, इस सन्देह में कि कहीं औरंगज़ेब का मन्तव्य खराब न हो। इसी बात पर उस पर लोग टूट पड़े और उसके टुकड़े टुकड़े कर दिये गये।

आखिर अकबर के सामने अब चारा ही क्या था, वह स्वयं भाग खड़ा हुआ। दुर्गादास ने हिन्दुत्व की मर्यादा का परिचय दिया, उसने अकबर के परिवार की रक्षा की। उसे शम्भा जी के यहाँ भेज दिया। औरंगज़ेब ने वहाँ भी उसका पीछा कराया। उसने अपने दक्षिण के राज्यपाल को आदेश दिया कि अकबर को किसी भी रूप में (मृत या जीवित) उपस्थित करे। अतः अकबर एक अंग्रेज़ी जहाज पर सवार होकर फारस के लिए चल पड़ा, भाग्य का मारा वह जहाज़ ही मश्कत के इमाम के पास जा टकराया। इमाम ने उसे बड़ी आवभगत से रखा, पर चोरी से औरंगज़ेब को लिख दिया कि तुम्हारा शत्रु मेरे हाथ है, यदि २ लाख रुपये भिजवा दो, तो उपस्थित कर दिया जायगा। औरंगज़ेब राजी हो गया, और अकबर उसके हाथ पड़ना ही चाहता था कि फारस के शाह ने मश्कत के इमाम को धमकाया, तथा अपने अभ्यागत को अपने यहाँ बुला लिया। वहाँ से अकबर हुमायूँ की भाँति पुनः आचरण करता पर वह इतने अधिक दिन स्वयं इस संसार में न रहा।

इस नयी घटना से दिल्ली का तख्त न बदला हो पर राजपूतों को चैन मिल गया। १६८० ई० में राजसिंह की मृत्यु हो गयी, उधर दक्षिण में शिवाजी की मृत्यु से नयी आशाएँ बँधने लगीं। राजसिंह के उत्तराधिकारी जयसिंह में दम न था कि वह बहुत टिक सके अतः दोनों दल सन्धि के लिए इच्छुक हो गये। आखिर मेवाड़ से सन्धि हुई जिसमें जयसिंह को राजा मान लिया गया। कुछ भू भाग (बदनूर तथा चन्दलगढ़) मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया गया, तथा जजिया से उसे मुक्त कर दिया गया।

पर इस सन्धि से मारवाड़ का प्रश्न हल न हो सका, मारवाड़ का प्रश्न तो

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अजीत सिंह के उत्तराधिकार से बिंधा था। अत: राठोरों का युद्ध औरंगज़ेब के शासन के अन्त तक चलता रहा। राठोर रात को हमला करते, दिन को छिप जाते, मुग़ल उन्हें पकड़ न पाते थे। धीरे-धीरे मारवाड़ की सत्ता क्षीण हो गयी, दुर्गादास को दक्षिण की शरण लेनी पड़ी, युद्ध फिर भी चलता रहा, जब तक कि औरंगज़ेब मर न गया। अपने जीते जी वह दुर्गादास को तोड़ने के प्रयत्न करता रहा, पर सफल न हो सका। जब औरंगज़ेब का देहावसान हुआ तभी अजीतसिंह जोधपुर का सिंहासन पा सका, हाँ दुर्गादास का २५ वर्ष का श्रम सफल हुआ।

(आ) सतनामी विद्रोह--औरंगज़ेब की इस्लाम भक्ति ने दूसरा विद्रोह सतनामियों द्वारा कराया। सतनामी अपने को सच्चे नाम के भक्त कहते थे। इनके विषय में इतिहासकारों की विचित्र-विचित्र धारणाएँ हैं। एक समसामयिक इतिहासकार ने तो इनको दुष्ट तथा गन्दा भी कह डाला है। ये हिन्दू मुसलमान का भारी विभेद नहीं मानते थे। न उन्हें पाप पुण्य का ही भेद भाव था। मआसीर-ई-आलमगीरी के लेखक के अनुसार उनमें सुनार, लुहार बढ़ई, भंगी, मोची, तथा अन्य नीच कोटि के लोग थे। इनके पास अस्त्र-शस्त्र रहते थे। ये अपने प्राण सदा न्यौछावर कर सकते थे। ये नारनौल तथा मेवाड़ के पड़ोस में अधिक रहते थे। खफ़ी खां उन्हें हिन्दू धर्म की एक शाख बतलाता है। ये विशुद्ध ढंग से ही धन उपार्जन कर सकते थे, किसी निम्न कोटि के साधन से नहीं।

वस्तुत: ये धार्मिक प्रवृत्ति के लोग थे, जो एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे। ये अपना सर, चेहरा तथा भोंह तक मुड़वा देते थे। इनके विद्रोह का कारण एक लगान वसूल करने वाले अधिकारी से व्यक्तिगत झगड़ा था। एक सैनिक ने एक सतनामी की हत्या कर दी थी। फलत: वे उस सैनिक पर टूट पड़े, उन्होंने उसे अधमरा कर दिया तथा विद्रोह कर दिया। इस झगड़े ने धार्मिक विद्रोह का रूप धारण कर लिया। आखिर नारनौल के फौजदार को उसका प्रबन्ध करना पड़ा, किन्तु एक बार उसे भी उन्होंने उल्टे पाँव लौटा दिया। यही नहीं इसके अनन्तर सम्राट की भेजी हुई टुकड़ी को भी उन्होंने मुंह की खिला दी। मुग़लों को अब सन्देह होने लगा कि वे कहीं जादू मन्त्र तो नहीं कर देते, आखिर बात क्या है वे सभी को मार भगाते हैं। औरंगज़ेब को एक सूझ आयी, उसने कुछ उल्टी सीधी चीज़ें लिख कर शाही झंडों में बँधवा दीं तथा युद्ध का प्रारम्भ कराया। लगभग २००० सतनामियों का संहार किया गया। शेष युद्ध क्षेत्र से भाग खड़े हुए। इस प्रकार इस विद्रोह को शान्त कर दिया गया।

(इ) गोकुल जाट का विद्रोह १६६९ ई०--इस प्रकार विद्रोह की अग्नि

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

की दूसरी चिनगारी जाटों की थी । वस्तुतः इनका विद्रोह प्रथम विद्रोह था । इन्होंने सम्राट के ही प्राण लेने चाहे थे पर वे सफल न हुए थे। इस विद्रोह का कारण यह था कि एक साधु उद्धव वैरागी के किसी शिष्य ने काज़ी अब्दुल मुकराम को स्वर्गधाम पहुँचा दिया क्योंकि उसने वैरागी को बन्दी कर लिया था। इस पर औरंगज़ेब की आज्ञा से साधु के ही प्राण हर लिये गये।

इस समय मथुरा का फौजदार अब्दुलनवी था । उसने एक मन्दिर गिरा कर उसके स्थान पर मस्जिद बनवा दी थी, इससे जनता पहले से ही विक्षुब्ध थी। अतः जाटों की सहनशक्ति समाप्त हो चुकी थी। वे गोकुल की प्रेरणा से उठ खड़े हुए। जब अब्दुलनवी ने गोकुल को दबाना चाहा तो वह स्वयं ही अपने प्राण खो बैठा । अतः मुग़लों के क्रोध की भी सीमा न रही । उन्होंने केशवराय के मन्दिर को भूमि में मिला दिया । यह मन्दिर वीरसिंह बुन्देले का बनवाया था । इसकी कसक से प्रेरित हो कर गोकुल के २०००० साथी बन गये। पर शाही सेना के समक्ष वे बहुत दिन न टिक सके । एक भयंकर युद्ध छिड़ा जिसमें हज़ारों का संहार हुआ । गोकुल के टुकड़े-टुकड़े हो गये। उसके परिवार को जबरदस्ती मुसलमान बना डाला गया। खूब लूटमार हुई।

इस हत्याकाण्ड से कुछ समय के लिए शान्ति की स्थापना हो गयी, पर अग्नि सुलगती रही। सन् १६८१ ई० के लगभग मथुरा के दूसरे फौजदार से भी लोग ऊब गये, क्योंकि उसके अत्याचारों की भी कोई सीमा न थी। गोकुल के मरने पर उसके स्थानापन्न अन्य लोग खड़े हो गये। १६८६ ई० में राजाराम इनका मुखिया बना। राजाराम की शक्ति भी सीमित थी । उसको शीघ्र ही दबा दिया गया। कालान्तर में उसे भी मौत के घाट उतारा गया । अतः यह अग्नि बुझ तो न सकी, पर समय-समय पर इसमें घृताहुति ही होती रही।

(ई) बुन्देले :—बुन्देलखण्ड के राजपूत अपने घने जंगलों के बल पर अपने को सदा सुरक्षित गिनते रहे। इस कारण उन्होंने अपनी स्वतन्त्र प्रवृत्ति को सदा बढ़ाये रखा । १६०२ ई० में वीरसिंह बुन्देले ने तो अकबर जैसे सम्राट का विरोध किया था। सबसे बड़ी बात यह थी कि अकबर उसे दण्ड भी न दे पाया था । इसी प्रकार औरंगज़ेब के समय महेवा–(मध्यप्रदेश) के चम्पतराय ने विद्रोह किया, किन्तु वह अपनी प्राणरक्षा न कर सका था। चम्पतराय के चार पुत्र थे, जिनमें एक छत्रसाल था । छत्रसाल बड़ा पराक्रमी हुआ । अपने पिता की मृत्यु के समय वह केवल ११ वर्ष का था । राजा जयसिंह ने उसको तथा उसके भाई को अपने दल में रख लिया था । उनकी वीरता से प्रसन्न होकर जयसिंह ने उन्हें उच्च पद प्रदान किये थे। छत्रसाल को तो देवगढ़ के विरुद्ध युद्ध में दिलावरखां ने ही अपनी सेना में रखा था,

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पर कुछ ही समय में छत्रसाल ने अनुभव किया कि यह उसकी स्वतन्त्रता पर आघात है। वह भी शिवाजी की भाँति स्वतन्त्र राज्य स्थापित करेगा। उसे इस ओर पर्याप्त सफलता मिली। जनता ने उसे हिन्दी, हिन्दू तथा गो ब्राह्मण का रक्षक माना। उसने अनेक स्थलों पर विजय प्राप्त की तथा पूर्वी मालवे में एक छोटा सा राज्य स्थापित करने में वह सफल हुआ। १७३१ ई० तक उसने बुन्देलखण्ड से मुग़ल साम्राज्य की नींव हिला दी। इसके उपरान्त वह स्वयं इस संसार से चल बसा।

(उ) सिख:--अन्य लोगों की भाँति सिख भी औरंगज़ेब द्वारा पीड़ित हुए। सिखों की वस्तुतः उत्पत्ति ही इस्लाम की हिन्दू विरोधी नीति का फल था। इनका विस्तृत वर्णन पृथक् परिच्छेद में है, पर यहाँ उनकी सम्बन्धित कड़ी की खोज ही अभिप्रेत है। गुरु तेगबहादुर सिखों के नवें गुरु थे। इन्होंने होशियार पुर ज़िले के आनन्दपुर नामक स्थान पर अपना मुख्य स्थल चुना। इन्होंने औरंगज़ेब की हिन्दू विरोधी नीति का विरोध किया। इस पर औरंगज़ेब ने इनके मन्दिर गिरवाने तथा कर वसूल करने वालों को नगर से बाहर करने की आज्ञा दी। आखिर गुरु को दिल्ली बुलाया गया। १६७५ ई० में उनसे इस्लाम स्वीकार करने को कहा गया, पर वह सहमत न हुए। इसी बात पर उन्हें मृत्यु का आलिंगन करना पड़ा। कुछ लोगों का कथन है कि उनसे दो बातें कहीं गयीं, या तो वे इस्लाम स्वीकार कर लें या कोई चमत्कार दिखावें। इस पर उन्होंने चमत्कार दिखाना स्वीकार करके एक कागज पर कुछ लिख दिया, जब उनका सर अलग किया गया तो वही कागज निकला। उस पर लिखा था कि मैंने सर दिया है, पर ईमान नहीं दिया। जो हो इस दुःखद घटना से सिख ही नहीं समस्त देश एक बार थर्रा गया।

इसके पश्चात् उनके उत्तराधिकारी गुरु गोविन्द सिंह हुए। उन्होंने पिता की मृत्यु का बदला लेने की ठानी। उन्होंने इस समाज को सैनिक रूप में ढाल दिया, युद्ध करना, तथा दुर्ग बनाना प्रारंभ कर दिया। आखिर उनकी विजयें मुग़लों को खटकने लगीं। फलतः उनके विरुद्ध मुग़ल सेना भेजी गयी, जिसमें उन्हें पराजय का वरण करना पड़ा, उनको दर-दर भटकना पड़ा तथा उनके दो पुत्रों को कठोर यातनाएँ सहन करनी पड़ीं।

औरंगज़ेब अपने अन्तिम समय इस स्थिति को बदलना चाहता था, पर वह गुरु का केवल आमंत्रण भर दे पाया। गुरु ने पहले तो उसका आमन्त्रण स्वीकार ही नहीं किया बल्कि कहा कि अपने किये अत्याचार गिन लें. तो विचार करें कि कोई किस भाँति तुम्हारे पास आ सकता है, पर औरंगज़ेब ने उन्हें सम्मानपूर्वक भेंट का आश्वासन दिया। कहते हैं कि गुरु जी मार्ग में ही

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

थे कि औरंगज़ेब चल बसा । अन्ततः वह एक ऐसी जड़ जमा गया जो आज तक नष्ट नहीं हुई ।

(ऊ) **मराठे** :--औरंगजेब ने उत्तर में ही अपने शत्रु उत्पन्न नहीं किये बल्कि दक्षिण में उससे कहीं प्रबल शत्रु बना दिये । मराठों का अभ्युदय हो चुका था । यदि औरंगज़ेब विशुद्ध इस्लाम का भक्त था तो शिवाजी हिन्दुत्व के पुजारी । शिवाजी ने, कहते हैं कि इस बात का व्रत लिया था कि इस्लाम को देश से समाप्त कर देंगे । उनके गुरु की शिक्षा दीक्षा ऐसी ही थी । यद्यपि वे इस उद्देश्य में पूर्ण सफल न हो सके । शिवाजी ने इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुत्व में प्राण फूंका, उन्होंने नीति तथा शौर्य दोनों से काम लिया, पर देश इतना विशाल तथा जकड़ा था जिसे किसी पाश से मुक्त करना सम्भव न था । मराठों के अभ्युदय में इसका विशेष विवरण उपस्थित किया गया है ।

(६) **औरंगजेब की दक्षिण नीति**--इस बात का संकेत किया जा चुका है कि दक्षिण में शिया रियासतें थीं और औरंगज़ेब कट्टर सुन्नी था । अपने जीवन के प्रारम्भ में वह वहाँ रह भी चुका था, उसे दक्षिण का पूरा पूरा ज्ञान था ! अतः जिन समस्याओं को वह अपने पिता के शासन काल में न सुलझा सका था, उसने उनको अपने शासन काल में सुलझाना चाहा । उसके वायसराय काल में आदिल शाह ने दारा की बदौलत सन्धि कर ली थी । इसमें बीजापुर के शासक ने १ करोड़ रुपया तथा बीदर, कल्याणी और परेन्दा के क्षेत्र देना स्वीकार किया था, किन्तु औरंगज़ेब के पीठ देते ही, यह सारी स्थिति बदल गयी थी । आखिर मीर जुमला को उल्टे पैर औरंगाबाद का रास्ता लेना पड़ा था, इधर औरंगजेब उत्तर में अटक गया था, अतः बिना दूसरे संघर्ष के दक्षिण में शान्ति सम्भव न थी ।

औरंगज़ेब ने अपने उत्तराधिकार संघर्ष समाप्त होते ही दक्षिण की ओर ध्यान दिया । उसने जयपुर नरेश जयसिंह को बीजापुर भेजा (१६६५ ई०)। इसके पूर्व जयसिंह शिवाजी से सुलझ चुका था, बल्कि उसको बीजापुर से अलग करके उससे यह वचन ले चुका था कि आवश्यकता पड़ने पर वह (शिवाजी) बीजापुर के विरुद्ध उसकी सहायता करेगा (पुरन्दर की सन्धि) । साथ ही कुतुबशाह को अलग कर दिया गया था, अतः जयसिंह ने सारी स्थिति को अनुकूल समझ कर बीजापुर पर आक्रमण किया । धीरे धीरे वह बढ़ता गया और बीजापुर दुर्ग से केवल १२ मील दूर रह गया । बीजापुर सुल्तान ने अपनी सुरक्षा भी भली भाँति की, उसने अपने दुर्ग से ६ मील तक खाने पीने का कोई साधन ही न रहने दिया, जिससे शत्रु आगे न बढ़ सके । जयसिंह बीजापुर पर एकाएक आक्रमण करना चाहता था, पर आगे विषम स्थिति देख कर उसे लौटने का

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

निश्चय करना पड़ा। उधर बीजापुरियों ने मौका पाकर उस पर उल्टा आक्रमण कर दिया। आखिर जयसिंह को दो बार युद्ध करना पड़ा, जिसमें उसे अपार क्षति उठानी पड़ी। इस क्षति के पश्चात् वह औरंगाबाद लौट आया। डा० सरकार ने इस स्थल पर लिखा है, **"इस युद्ध से न इंच भर भूमि मिली, न दुर्ग के नाम पर पत्थर का टुकड़ा, आर्थिक दृष्टि से तो यह और भी विनाशक सिद्ध हुआ क्योंकि शाही कोश से प्राप्त ३० लाख रुपये के अतिरिक्त जयसिंह ने १ करोड़ से अधिक तो अपनी जेब से खर्च कर दिया था"।***

अतः जयसिंह के स्थान पर औरंगज़ेब ने मुअज़्ज़म तथा राजा जसवन्त सिंह को भेजा।

(अ) बीजापुर में अशान्ति–कुछ समम के लिए बीजापुर बच गया था, पर बकरी की माँ कब तक ख़ैर मना सकती थी। इस रियासत में अफगानी, एबीसीनियाई और दक्षिणी मुसलसान थे, जो मराठों से लोहा लिया करते थे, अतः शान्ति जैसी चीज़ वे जान ही न पाते थे। जब तक अली आदिल शाह द्वितीय बीजापुर का शासक रहा तब तक भी गनीमत रही क्योंकि वह योग्य शासक था, पर १६७२ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके पश्चात् सिकन्दर आदिल शाह उसका ४ वर्ष का पुत्र गद्दी पर बिठाया गया। इस स्थिति में बीजापुर के सामन्त भी दो दलों में बँट गये, एक में अफ़गानी थे, तथा दूसरे में अबीसीनिया वाले और दक्षिणी मुसलमान थे। इस परस्पर कलह से लाभ उठा कर मुग़लों ने उस पर पुनः आक्रमण करना चाहा।

पहले तो १६७६ ई० में बहादुर खां ने आक्रमण किया, पर वह पराजित हुआ, अतः उसके स्थान पर औरंगज़ेब ने दिलेर खां को भेजा। दिलेर खां ने वीरता तथा कूटनीति दोनों से काम लिया। उसने बीजापुर के मंत्री मसूद को अपनी ओर मिला लिया, इसके फलस्वरूप बीजापुर की पुत्री शहर बानू मुग़ल हरम में भेजी गयी, जिसका विवाह औरंगज़ेब के पुत्र आज़म से हुआ। इस शिया राजकुमारी का सुन्नी परिवार में आना ही बीजापुर की श्री का हरण था, उसको बिदा करते समय सभी के आँसुओं की धारा बह रही थी, किन्तु यह

---

* "Not an inch of territory, not a stone of a fortress, not a piece of indemnity was gained by it. As a financial speculation it was even more disastrous. In addition to 30 lakhs of rupees from the imperial treasury, Jai Singh had spent more than a crore out of his own pocket." Sarkar—
Short History of Aurangzeb. P. 246.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मसूद और दिलेर की सन्धि बहुत दिन न टिकी, मसूद ने गुप्त रूप से शिवाजी से सन्धि कर ली। पहले तो समय पर मराठे उसके सहायक न हो सके, पर जब दिलेर खां ने आक्रमण किया, तो शिवाजी की सहायता आ चुकी थी। १६७६ ई० के युद्ध में आखिर दिलेर खां से मराठों से मुठभेड़ हुई, जिसमें दिलेर खां जयसिंह की सीमा से ज़रा भी आगे न बढ़ सका, हाँ, उसने आक्रान्त स्थल में हाहाकार मचा दिया, स्त्री बच्चे जो मिले उन्हीं को तलवार के घाट उतार दिया, अनेक स्त्रियाँ तो अपमान के भय से कुओं में कूद पड़ीं। उसने निरपराध कृषकों को भी न छोड़ा, अतः औरंगजेब ने उसे भी वापस बुला लिया और १६८० में यह देखकर कि शाहज़ादे मुअज्जम की सूबेदारी में न कुछ हुआ, न होने की आशा है, स्वयं दक्षिण गया और मुअज्जम के स्थान पर आज़म की नियुक्ति की।

औरंगजेब ने पहुँचते ही सिकन्दर को लिखा कि वह मुग़ल सेनाओं को बीजापुर होकर मार्ग दे दे, जिससे कि वे मराठों को ठीक कर सकें; पर उसने एक न सुनी। आखिर मुहम्मद आज़म ने उस पर आक्रमण किया। आज़म को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा क्योंकि बीजापुरियों ने उनके आने के पूर्व ही उनके लिए खाना पानी कुछ न छोड़ा था। इस स्थिति में आज़म के शब्द स्मरणीय हैं—**"मुहम्मद आज़म अपनी बीबी और अपने दो बच्चों सहित युद्ध क्षेत्र से वापस न होगा, जब तक उसमें प्राण हैं। मेरी मृत्यु के पश्चात् सम्राट मेरा शव यहाँ से कब्र के लिए उठवा दें, तुम मेरे साथी चाहो साथ दो या चले जाओ।**†

आखिर बीजापुर का घेरा १५ माह तक चलता रहा। एक दिन दुःखी होकर बीजापुर के मुल्लाओं ने औरंगज़ेब से कहा कि आप तो इस्लाम के भक्त हैं, कुरान की आज्ञा के बिना कुछ नहीं करते, फिर यह इस्लाम धर्मियों के विरुद्ध लड़ाई कैसी? औरंगजेब ने भी बहुत शान्त चित्त होकर उत्तर दिया, तुम ठीक कहते हो पर वह काफिर (शिवाजी) जो तुमने अपने में छिपा रखा है, जो तुम्हारा एक मात्र सहायक है, जो यहाँ से दिल्ली तक लूटता है, उसे कहाँ ले जाओगे। उसे समर्पित कर दो, दूसरे ही क्षण घेरा उठा लिया जायगा, किन्तु इन बातों का कोई फल न निकला और घेरा चलता रहा। आखिर एक

† "Muhammad Azam with his two sons and Begum will not retreat from the post of danger as long as he has life. After my death, His Majesty may come and order my corpse to be removed for burial."

Muhammad Azam.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

दिन (१२ सितम्बर १६८६ ई०) बीजापुर सुल्तान सिकन्दर श्रीहीन होकर औरंगजेब के सामने उपस्थित किया गया। उसका राज्य मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया गया, तथा उसे १ लाख पेंशन दे दी गयी। बीजापुर की विभूति विनष्ट कर दी गयी। कला तथा कारीगरी के नाम को भी न रखा जा सका। बीजापुर सा सुन्दर नगर एक दिन वीरान होकर भयावह बन गया।

(अ) गोलकुण्डा की कुतुबशाही का पतन--बीजापुर से निश्चिन्त होकर औरंगजेब ने गोलकुण्डे की ओर ध्यान दिया। इस राज्य का भी सबसे बड़ा अपराध यही था कि वह शिवाजी का सहायक रहा था और गोलकुण्डा में हिन्दुओं का विशेष प्रभाव था। वहाँ के अन्तिम शासक हसन ने अपना शासन भार ब्राह्मण मन्त्री मदन्न के हाथ में सौंप दिया था और स्वयं मौज किया करता था। इसके अतिरिक्त औरंगजेब को अधिक खटकने वाला उसका एक पत्र था, जो उसने अपने दूत को लिखा था, उसने उसमें लिखा था कि औरंगज़ेब कायर व नीच है जिसने एक असहाय बच्चे (बीजापुर का सिकन्दर) को अपनी अतुल वाहिनी से दबा लिया और उसका राज्य हड़प लिया। औरंगजेब तो बहाना चाहता ही था, इतना कारण पर्याप्त था। औरंगजेब ने स्वयं इस युद्ध के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा है, "**इस (हसन) ने शासन की बागडोर दुष्ट अत्याचारी काफिरों के हाथ सौंप दी है। यह सय्यद, शेख और दूसरे धार्मिकों का दमन करता है, उन्हें कष्ट देता है, स्वयं खुले रूप से आमोद-प्रमोद और व्यभिचार में भाग लेता है, रात दिन सुरा का पान करता है। उसे इस्लाम और काफिरों के धर्म, न्याय तथा अन्याय में, नीचता तथा भक्ति में कोई भेद ही नहीं दिखाई दिया। काफिरों की सहायता के लिए उसने युद्ध किया आदि-आदि।**" *

औरंगजेब ने उससे दो बहुमूल्य हीरे माँगे, जिन्हें हसन न दे सका, क्योंकि उन्हें तो उसके पूर्वजों ने पहले के सम्राटों को दे डाला था, साथ ही उसने हसन

---

* "Placing the reins of authority and Govt. in the hands of vile tyrannical infidels, oppressing and afflicting the Saiyids, Shaikhs and other holy men, openly giving himself upto excessive debauchery--and depravity, indulging in drunkenness and wickedness night and day, making no distinction between infidelity and Islam, tyranny and justice, depravity and devotion, waging obstinate war in defence of infidels."

Aurangzeb.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

को लिखा कि वह मदन्न तथा अकन्न को निकाल दे या बन्दी बना ले तथा कुछ परगने मुगलों को अर्पित कर दे, पर हसन कुछ न कर सका। कर भी कैसे सकता था, यह तो मेमने को खाने के लिए भेड़िये के बहाने थे। इन कारणों के हटने पर दूसरे कारण उपस्थित हो सकते थे। अतः युद्ध अवश्यभावी था।

राजकुमार मुअज्ज़म पर युद्ध का भार था। वह पहले तो युद्ध से स्वयं बचना चाहता था, पर जब कोई युक्ति दिखाई न दी तो उसने आक्रमण किया। उसने हैदराबाद को खूब लूटा। कहा जाता है कि "शाही सेनाओं ने सूर्योदय से पूर्व ही नगर पर आक्रमण कर दिया उन्होंने भयंकर लूट-मार और विनाश का दृश्य उपस्थित किया। नगर के प्रत्येक भाग में अबुल हसन और उसके सामन्तों का कीमती सामान बिखरा पड़ा था। यथा–असंख्य रुपया, चीजें, कालीन, घोड़े, हाथी ये सब खूब लूटे गये। कहा नहीं जा सकता कि कितने हिन्दू मुसलमान स्त्री-बच्चे बन्दी बनाये गये, कितनी ही स्त्रियों की ऊँचे घराने की रहीं या छोटे की, लाज लूटी गयी। जो गलीचे बहुत भारी थे, उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। उनके हर टुकड़े पर परस्पर कलह हुआ।" †

यह घटना सन् १६८७ ई० की है, जब कि औरंगजेब के विशेष प्रयत्नों से गोलकुण्डे का ८ माह पश्चात् पतन हुआ। अबुल हसन बन्दी बनाया गया। इस घेरे को सफल बनाने के लिए औरंगजेब ने कोई कृत्य छोड़ा न था। उसे गोलकुंडा अधिकारियों को रिश्वत देनी पड़ी। मदन्न और अकन्न का विश्वास-घात के साथ बध कराना पड़ा, अपार जन-राशि को बलिवेदी पर चढ़ाना पड़ा। इसमें अबुल हसन के एक सेनापति अब्दुर रज्ज़ाक की वीरता सराहनीय थी। खफी खाँ ने लिखा है—

"अब्दुर रज्ज़ाक लाही ने जैसे ही सुना कि फाटक खुल गया है, वह एक

---

† "Before the break of the day, the imperial forces attacked the city and frightful scene of plunder and destruction followed, for in every part and road and market there were lakhs upon lakhs of money, stuffs, carpets, horses, elephants belonging to Abul Hasan and his nobles. Words cannot express how many women and children of Musalmans and Hindus were made prisoners, and how many women of high and low degree were dishonoured, carpets of great value which were two heavy to carry were cut to pieces with swords and daggers and every bit was struggled for."

Khafi Khan.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

बिना जीन के घोड़े पर बैठ कर, एक हाथ में तलवार तथा दूसरे हाथ म ढाल लेकर दस-बारह साथियों के साथ उस फाटक की ओर गया जिससे होकर शाही सेना बादल की भाँति उमड़ रही थी। उसके साथी अलग कर दिये गये, फिर भी वह समुद्र में बिन्दु की भाँति गिरता हुआ अथवा सूर्य के प्रकाश में अणु की भाँति संघर्ष करता हुआ; बढ़ते हुए शत्रुदल पर टूट पड़ा, तथा कल्पनातीत क्रोध और वेग के साथ यह कहता हुआ कि मैं मृत्यु तक अब्दुल हसन के लिए लड़ूँगा, युद्ध करने लगा। पग-पग पर हजारों तलवारें उस पर पड़ती थीं, तलवारों तथा भालों से उसका शरीर क्षतबिक्षत हो गया था, यहाँ तक कि सर के ताज से लेकर पैर के नख तक उसके घाव ही घाव दिखाई देने लगे। केवल चेहरे पर उसके १२ घाव थे। उसके मत्थे का मांस उसकी आँख पर लटक आया था, एक आँख तो सख्त घायल थी। उसके शरीर पर व्रण ऐसे प्रतीत होते थे जैसे आकाश में अगणित सितारे।"*

जब उसकी चिकित्सा की गयी तो ७२ घाव निकले। औरंगजेब ने उस की चिकित्सा का विशेष प्रबन्ध किया, पर जब १५ दिन पश्चात् उससे पूछा कि क्या वह उसके यहाँ नौकरी करेगा, तो अब्दुर रज्जाक ने उत्तर दिया--

"मैं तो जीवन की आशा ही न रखता था, काश आप मुझे पुनर्जीवन दें, तो भी मैं कह नहीं सकता कि सेवा के योग्य हो पाऊँगा या नहीं। यदि हुआ

---

* "Abdur Razak Lari heard this, and springing on a horse without any saddle with a sword in one hand and a shield in the other, and accompanied by ten or twelve followers, he rushed to the open gate, through which the imperial forces were pouring in. Although his followers were dispersed, he alone like a drop of water falling into the sea or an atom of dust struggling in the rays of the sun, threw himself upon the advancing foe and fought with inconceivable fury and desperation shouting that he would fight till death for Abul Hasan. Every step he advanced thousands of swords were aimed at him, and he received so many wounds from the crown of his head to his feet ... ... He received twelve wounds upon his face alone, and the skin of his forehead hung down upon his eyes and nose. One eye was severely wounded, and the cuts upon his body seemed as numerous as the stars."

Elliot VII pp. 332-333.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ही, तो जिसने जीवन भर अबुल हसन का नमक खाया है, जो उसकी उदारता पर जीवित रहा है, वह उसे छोड़कर आलमगीर की सेवा न करेगा।" *

वीरता जो भी थी आखिर अबुल हसन के काम न आयी। उसे तो राज्य छोड़कर दौलताबाद का दुर्ग सेवन करना पड़ा।

(इ) **नीति का परिणाम**—औरंगजेब की दक्षिण नीति के भयंकर परिणाम हुए। जैसे नेपोलियन को स्पेन एक फोड़े के तुल्य खटकता था, वैसे ही औरंगजेब को दक्षिण। स्मिथ ने तो यहाँ तक कह डाला है कि दक्षिण न केवल उसके शरीर के लिए कब्र थी, बल्कि उसके साम्राज्य के लिए भी। बीजापुर तथा गोलकुण्डा के राज्य जीत कर भी उसने भूल ही की, क्योंकि वे स्वतन्त्र रखे जाते तो एक दिन उसके सहायक बन सकते थे। औरंगजेब ने वस्तुतः धार्मिक युद्ध किया, राजनीतिक नहीं। उसे शासन की दृष्टि से धर्म को इतनी प्रधानता न देनी थी। शासक को न जाने कितनी बातें अपनी इच्छा के विरुद्ध करनी पड़ती हैं। ये राज्य उसको मराठों के विरुद्ध रखने थे, उसने इनकी स्वतन्त्रता अपहरण कर वह रोक (Buffer state) समाप्त कर दी। यह विचारने की बात है कि कोई भी सम्राट उस युग में दिल्ली में बैठकर कोंकन में नहीं लड़ सकता था। इससे समस्त साम्राज्य का शासन सूत्र शिथिल हो गया। औरंगज़ेब लगभग २५ वर्ष उत्तर भारत को देख ही न पाया। यही एक प्रमुख कारण था कि उसके पश्चात मुगल साम्राज्य न टिक सका। धीरे-धीरे उसके सामने यह दशा आ गयी थी कि प्रान्तीय शासक सर उठाने लगे थे, वे केन्द्र की आज्ञा की अवहेलना करने लगे थे, उन्हें दबाने के लिए अब कोई शक्ति न रह गयी थी। इसके अतिरिक्त दक्षिण के युद्धों में अतुल धन नष्ट किया गया।

२. इन युद्धों से घास के मैदान तक नष्ट कर दिये गये। मुगलों ने कृषकों को तबाह कर डाला। विचित्र तो यह था कि यदि शाही सेना किसी चीज़ को नष्ट न भी करती थी, तो दक्षिणी सैनिक कर देते थे। उनका मन्तव्य यह रहता था कि मुग़लों के हाथ कुछ न लगे। विशेषकर मराठे इस नीति को अपनाते थे। जिस सम्पत्ति को वे उठाकर न ले जा सकते थे, जला देते थे। यह नीति इस युग में हिटलर के विरुद्ध अंग्रेज तथा रूसियों ने भी अपनायी थी।

---

* "If, however, it pleased the Almighty to spare him and give him a second life, it was not likely, that he would be fit for service, but should he ever be capable of service he felt that no one who had eaten the salt of Abul Hasan and had thriven on his bounty could enter the service of king Alamgir."

Abdur Razzak.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

औरंगजेब के शासन के अन्त तक दक्षिण प्रदेश उजड़कर वीरान हो चुका था। मनुक्की के अनुसार उसने **"अपने पीछे इन प्रदेशों की भूमि को कृषि तथा वृक्ष हीन कर दिया और उनके स्थान पर पशुओं तथा मनुष्यों की हड्डियां बखेर दी।"†** इसका फल यह हुआ कि रणभूमि से बचे हुए अब भूख की ज्वाला से मरने लगे। यहाँ तक कि शाही छावनी में भी खाद्य सामग्री की कमी पड़ने लगी। डाकुओं का दल बढ़ गया, व्यापार बन्द हो गया। शाही डाक और सामग्री भी सुरक्षित तथा समय पर न आती थी। प्रान्तीय राज्यपाल अपनी जेबें भरने में लगे थे। उन्हें देश की उन्नति का कोई ध्यान न था, युगों से चली आ रही दस्तकारियाँ तक नष्ट होने लगीं। इससे भारतीयों का न केवल औद्योगिक व आर्थिक स्तर गिरा बल्कि सांस्कृतिक जीवन भी समाप्त हो गया।

३. धीरे-धीरे साम्राज्य में अव्यवस्था फैल गयी। मुग़ल सैनिक स्वयं मार्ग में आये हुए खेतों को नष्ट कर देते थे। उनकी क्षति पूर्ति का कोई साधन न था। सैनिक नहीं उनके कर्मचारी भी विशेषकर बलोची कृषकों को कम दुःख-दायी न थे। वे किसानों को खुलेआम लूट लेते तथा उन्हें बड़ी निर्दयता से पीटते थे। इनके अपराध की शिकायत सुनने वाला कोई न था। औरंगजेब तो बस एक बात देखता था कि उसके साम्राज्य का प्रसार हो रहा है। उसका धर्म प्रचार हो रहा है, देश की दशा देखने का उसे अवकाश न रह गया था।

४. मुग़ल साम्राज्य की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। अनेक पदाधिकारियों का महीनों का वेतन न मिला था, सरकारी आज्ञाएँ जिनसे जागीर आदि दी जाती थी, कोरे कागज मात्र रह जाते, क्योंकि पूर्व अधिकारी उन से अपना अधिकार ही न छोड़ते थे। मुग़लों के लिए अब धन ही की सहायता देने वाला कोई न रह गया था।

५. सबसे प्रमुख फल तो यह था कि इस लगातार युद्ध से सैनिक थक चुके थे। उनके उत्साह समाप्त हो चुके थे। वे या तो अनैतिक कार्य करने लगे थे या अपने स्थान परिवर्तन के चक्कर में रहते थे, स्थानान्तरण के लिए रिश्वत चलन लगी थी।

६. श्री यदुनाथ सरकार ने तो यहाँ तक कह दिया है कि—

"औरंगजेब समझता था कि सब कुछ प्राप्त हो गया, पर वस्तुतः सब कुछ खो चुका था। बस उसके जीवन के नये अध्याय का प्रारम्भ हुआ था,

---

† "He left behind him the fields of these provinces devoid of trees and bare of crops their places being taken by the bones of men and beasts.

Manucci.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

वस्तुतः मुग़ल साम्राज्य अब इतना फैल चुका था कि एक केन्द्र से उसका शासन सम्भव न था। उसके शत्रु चारों ओर थे, वह उन्हें पराजित कर सकता था पर सदा के लिए समाप्त न कर सकता था।" *

७. अन्त में कहना न होगा कि कला तथा कारीगरी तो उठ सी गयी, इस बीच एक भी कृति न बनायी जा सकी। औरंगजेब ने साम्राज्य की अवनति के साथ सभ्यता की अवनति को भी मानों आह्वान दे दिया।

(ई) असफलता के कारण:--औरंगजेब न तो बाबर की भाँति वीर सेनानायक था, न अकबर की भाँति उसके सहायक राजपूत वीर थे, न वह मराठों की भाँति गुरिल्ला युद्ध ही कर सकता था, फिर उसकी विजय कैसी? यह तो उसकी जिद थी, उसके पास उसके पिता का संचित धन था, जिसे वह बहाता रहा, यह उसके अपार साधन और सैनिक थे जिनके बल पर वह स्वयं टिका रहा। अन्यथा उसी के समय मुहम्मद तुग़लक का सयय लौट आता। उसे किसी पर भरोसा न था, राजपूत, सिक्ख, बलोची सभी उसका साथ छोड़ रहे थे, शिया उसके शत्रु थे ही। अब उसके पुत्र उसके विरुद्ध थे। उसके दरबारी विलासी थे, दौलत उनको मुँह लगी थी, वे आराम पसन्द थे। उन्हें अनुचरों की परम आवश्यकता थी, वे कठोर जीवन बिताना मानों भूल ही गये। उसका कैम्प न था, बल्कि पूरा नगर का नगर चलता था। इसके अधिकारी शत्रुदल से मिल जाते थे और जो साथ भी थे वे मराठों के सम्मुख प्रतिभा सम्पन्न न रह जाते थे। दूसरे दक्षिण का प्रान्त इतना विशाल और पर्वतीय था कि उसमें मुग़लों का बश न चलता था औरंगजेब की धर्मान्धता सदा उसको असफलता की ओर खींचती रही, उसके सहायक भी उसके असहायक हुए और कुछ लोभी तथा स्वार्थी समुदाय को छोड़कर अन्य किसी ने उसका मृत्यु तक साथ न दिया।

७. औरंगज़ेब तथा अँग्रेज--सर टामसरों के समय से ही अँग्रेज़ों ने मुग़लों से अनेक सुविधाएँ प्राप्त कर रखी थीं, उन्हें इस मैत्री से अपनी जड़ें जमाने का पूर्ण अवसर मिल चुका था, साथ ही गिरती हुई मुग़ल सत्ता से लाभ उठाना वे भली

---

* "All seemed to have been gained by Aurangzeb now, but in reality all was lost. Chapter of his new life now opened, the mughal empire had become too large to be ruled by one man or from one centre. His enemies rose on all sides, he could defeat but not crush them for ever."

J. N. Sarkar.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

भाँति जानते थे। सन् १६१६ में उन्हें मछली पट्टम में कारखाना बनाने की आज्ञा प्राप्त हुई थी, सन् १६३९ में फ्रांसिस दे ने चन्द्रगिरि के राजा से कुछ भूमि भी पा ली थी। यहीं कुछ समय पश्चात् फोर्ड सेष्टजार्ज का दुर्ग बना था। इसके अनन्तर शाहजहाँ भी अँग्रेज़ों के प्रति दयालु रहा था। उसने उन्हें १६५०-५१ में कासिम बाज़ार तथा हुगली में कोठियां बनाने की आज्ञा दे दी थी। इसके अनन्तर ईस्ट इंडिया कंपनी ने चार्ल्स द्वितीय से बम्बई का द्वीप ६० पौण्ड वार्षिक किराये पर ले लिया था।

औरंगज़ेब के समय इस स्थिति में घोर परिवर्तन आया। औरंगज़ेब तो स्वयं हर ओर से सतर्क रहता था, दूसरे उसके समय की अव्यवस्था देखकर अँग्रेज़ों ने दुर्ग बनाने प्रारम्भ कर दिये जो उसे खटकने लगे। इंगलैंड स्थित डारैक्टर भी अपने प्रतिनिधियों की नीति का पूर्ण समर्थन कर देते थे। उन्होंने १६८४ में लिखा था कि "**यद्यपि हमारा उद्देश्य केवल व्यापार करना तथा अपनी सुरक्षा करना है पर हम उस स्थल पर निर्भय होकर न व्यापार कर सकते हैं न सामान संग्रह कर सकते हैं जहाँ हमारे दुर्ग सुरक्षित न हों।** *

आखिर १६८५ में बंगाल के राज्यपाल शायस्ता खाँ ने उन पर भी चुंगी लगा दी। कम्पनी ने इसका खुल्लम खुल्ला विरोध किया, अतः अब दोनों में एक संघर्ष स्वाभाविक हो गया। इस समय इंगलैंड में जेम्स द्वितीय का शासन था, कम्पनी वालों ने उसे जहाज़ आदि की सहायता प्रदान करने को राज़ी कर लिया था। औरंगज़ेब इसका पता पाते ही आगबबूला हो गया। उसने आज्ञा दी कि इनको सबक पढ़ा दिया जाय। अँग्रेज़ों में इस समय युद्ध की आवाज़ उठाने वालों में प्रमुख सर जोशिया चाइल्ड था, जो कम्पनी का गवर्नर था। अंग्रेज़ों ने जोन चाइल्ड की अध्यक्षता में पश्चिमी तट पर मुग़लों के जहाज छीनने की चेष्टा की, बस फिर क्या था, हुगली और मछली पट्टम की कोठियां छीन लीं गयीं। पश्चिनी तट पर भी उन्हें घेर लिया गया। इतने ही में उनके होश ठिकाने आ गये। वे बड़े दूरदर्शी थे। तुरंत उन्होंने क्षमा याचना की, औरंग-ज़ेब भी उनसे मिलनेवाली दौलत छोड़ना न चाहता था, अतः उन्हें क्षमा करने को राज़ी हो गया। सन्धि में अंग्रेज़ों, को लगभग १॥ लाख रुपया हर्जाना देना पड़ा। बंगाल में शायस्ता खां के पश्चात् इब्राहीम गवर्नर हुआ। उसने जौन चारनौक को बुला कर १६९० में एक बस्ती बनाने की आज्ञा प्रदान की, जिसके

* "Though our business is only trade and security, we dare not trade boldly, nor leave great stocks, where we have not the security of forts."

Directors.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

फलस्वरूप उस स्थल पर कलिकटा ग्राम का आज कलकत्ता नगर बन गया। इसके अनन्तर लगभग ५० वर्ष तक अँग्रेज़ों ने भारत की राजनीति म किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया, पर देश की गिरती दशा ने उनमें पुनः प्राण फूंक दिया। उनके नये-नये कार्यकर्त्ता आये, जिन्होंने सदा उंगली पकड़ कर प्रकोष्ठ पकड़ लेने की कहावत चरितार्थ की।

औरंगज़ेब के अन्तिम दिन––४६ या ५० वर्ष (१६५८ से १७०७ ई०) जिसने शासन किया, (१६१८–१७०७) ८६ वर्ष की जो आयु पा सका, उसे अन्तिम समय में क्या विचारना, पर इस संसार में अन्त तो सभी का आता है। दक्षिण के युद्धों से क्षीण होकर औरंगज़ेब अपने अन्तिम दिनों में पहले देवपुर चला आया था, वहां, उसे ज्वर ने सताया, जिसे उसने गुप्त रखना चाहा, पर जब न रख सका तो वह अहमद नगर के दुर्ग तक गया (२० जनवरी १७०६ ई०)। उसके पुत्रों ने उसकी सेवा सुश्रूषा करनी चाही पर उसे अपने पिता के अन्तिम दिन स्मरण थे अतः उसने उन्हें पास न फटकने दिया। आखिर ऐसी विषम स्थिति को उसने एकाकी सहन किया। लगभग एक वर्ष के कष्ट के बाद २० फरवरी १७०७ में वह इस संसार से चल बसा। चलते समय उसने जो लिखा है वह स्मरणीय है (काम वख्स के प्रति)।

"ए मेरी आत्मा के प्राण! आज में अकेला जा रहा हूँ, मैं तुम्हारी असमर्थता के लिए दुःखी हूँ, किन्तु इससे लाभ ही क्या? में ने हर अत्याचार किया, हर पाप किया, हर बुराई मैंने की, उसका फल मैं लेकर जा रहा हूँ, आश्चर्य तो यह है कि मैं इस संसार में खाली हाथ आया था, पर पापों का पहाड़ सर पर लिये जा रहा हूँ, जब कभी मैं देखता हूँ मुझे ईश्वर ही दिखाई देता है, तुम मेरी अन्तिम वसीयत स्वीकार करो। देखो कहीं मुसलमान न मारे जायँ, जिससे मेरी भर्त्सना हो, मैं तुम्हें व तुम्हारी सन्तति को अल्लाह के सहारे छोड़कर तुमसे विदा लेता हूँ।"

† "Soul of my soul, now I am going alone, I grieve for your helplessness. But what is the use? Every torment I have inflicted, every sin I have committed, every wrong I have done, I carry the consequence with me. Strange that I came with nothing into the world and now go away with the stupendous caravan of sin. Whenever I look, I see only God, you should accept my will. It should not happen that Musalmans be killed and the reproach should fall upon the head of his useless creature, I commit you and your sons to the care of God and bid you farewell." *Aurangzeb.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

औरंगज़ेब का चरित्र

१. विशुद्ध इस्लाम धर्मी
२. हिन्दुओं के प्रति असहिष्णु
३. युद्ध प्रेमी
४. शासन में कुशल
५. दूरदर्शी
६. नीतिज्ञ
७. धर्मभीरू,
८. समय के साथ न चल सकने वाला
९. उसके प्रति विद्वानों के विभिन्न मत
१० असफल शासक

औरंगज़ेब का चरित्र---औरंगज़ेब का प्रारंभिक जीवन लिखते समय उसके स्वभाव तथा गुणों का विवेचन किया जा चुका है, पर एक नवयुवक राजकुमार तथा सम्राट में अन्तर स्वाभाविक है। औरंगज़ेब किन्हीं बातों में तो आदर्श की ओर चलता दिखाई देता है, पर किन्हीं में धर्मान्ध हो उठता है, अतः उसके चरित्र की विवेचना में बड़ी सतर्कता वर्तनी होगी।

(१) औरंगज़ेब अपने जीवन में पवित्र तथा सादा था। उसके समकालीन उसको दरवेश कहते थे। विलासिता से वह कोसों दूर था। उसकी पत्नियों की संख्या चार भी न थी, जब कि अन्य मुग़ल सम्राटों ने सैकड़ों रखीं। वह क़ुरान का परम भक्त था। युद्ध-स्थल में भी रोज़ाना नमाज़ का पाबन्द था, उसे क़ुरान में वर्जित संगीत आदि से भी प्रेम न था, जिसके कारण उसे कला का घातक तक कहा गया है। वह न तो शराब पीता था, और न किसी व्यसन में फँसा था, जो उस समय के सम्राट के लिए साधारण बात थी। वह जन्म से ही विद्या प्रेमी था। वह अरबी और फारसी का अच्छा ज्ञाता था तुर्की तथा हिन्दी भली भाँति बोल सकता था। उसे पुस्तकों से अनुराग था, तथा अपने आत्मसंयम, आत्मज्ञान और आत्मसम्मान का सदा ध्यान रहता था। उसकी स्मृति बहुत अच्छी थी। एक बार उसके सम्मुख आई हुई बात उसे कभी भूलती ही न थी। अपने अन्तिम समय में वह थोड़ा कम सुनने लगा था तथा उसके चलने में दोष आ गया था, वस्तुतः वह तलवार तथा लेखनी दोनों में सिद्धहस्त था। उसका लेख भी बहुत सुन्दर था, उसकी ही देखरेख में इस्लाम विधि का अपूर्व ग्रंथ फतवा-ए-आलमगीरी लिखा गया था।

(२) कभी-कभी इतिहासकारों ने उसके सच्चे चरित्र पर पर्दा डालने का प्रयास भी किया है, उसे हिन्दुओं के प्रति सहिष्णु कहा है, उसको बताया है कि उसने हिन्दुओं के मन्दिर केवल युद्धकाल में ही गिराये, अन्यथा उनकी जागीरों को बनाये रखा, वे कहते हैं उसमें धार्मिक कट्टरता थी ही नहीं, वे उसके देश भक्त तथा राजनीतिज्ञ होने की दुहाई देते हैं, उनके अनुसार वह भारत की एकता को बनाये रखने के लिए सब कुछ करता रहा, उसने एक ओर यदि हिन्दू मंदिर गिरवाये तो दूसरी ओर इस्लामी राज्य बीजापुर और गोलकुंडा को भी ध्वस्त किया।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इसके पीछे दो बातें सम्भव हैं, एक तो सामाजिक शान्ति तथा स्नेह की पीढ़ी का निर्माण, दूसरे राजनीतिक एकता की भावना का सृजन करना। पर क्या इसके लिए इतिहास को बदला जा सकता है, वस्तुतः नहीं। औरंगज़ेब के विषय में सबसे बड़े लेखक यदुनाथ सरकार इन बातों से सहमत नहीं, उनके अनुसार ये तर्क, तथा आधारहीन कोरी कल्पनाएँ हैं। इतिहास में हमें नायक नहीं खोजना वलिक यथातथ्य वर्णन कर सच्चा चित्र उपस्थित करना है। फिर समकालीन लेखक भी तो इन बातों की पुष्टि नहीं करते। डा० स्मिथ के अनुसार तो वह पूर्ण रूप से असफल ही था और उसकी असफलता का मुख्य कारण उसकी धर्मान्धिता थी। यह निश्चित है कि वह विधर्मियों के प्रति असहिष्णु था, हिन्दुओं के लिए उसके यहाँ कोई स्थान न था, किसी भी हिन्दू को वह उच्चपद पर न देख सकता था। राजा जयसिंह और जसवन्त सिंह को वह न जाने कैसे सहन कर सका, इसका प्रमाण उसने जसवन्त सिंह की मृत्यु पर उसकी सन्तान के साथ दुर्व्यवहार से दिया। उसके स्थान पर दूसरा होता तो उसकी सन्तति का सम्मान करता, उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता, पर उसने उसको सर्वथा मिट्टी में मिलाना चाहा, इससे अधिक और कृतघ्नता क्या हो सकती है। जसवन्त सिंह उसके परिवार का सदा से सेवक रहा जिसने कभी धोखा देना सीखा ही न था। काश औरंगज़ेब किसी इस्लामी साम्राज्य का सम्राट होता तो निश्चित सफल होता। उसने सबसे बड़ी भूल यही की थी, कि जिस कार्य को अकबर जैसा महान् सम्राट न कर सका था, उसको वह करना चाहता था। फिर अकबर ने तो एक मिली जुली संस्कृति की खोज की थी, औरंगज़ेब केवल इस्लाम का पाठ पढ़ा था। वह स्वभाव से अविश्वासी था, न उसे अपने अधिकारियों पर भरोसा था, न अपने पुत्रों पर, न पिता पर। उसने अपने पिता की प्रार्थनाएँ भी ठुकरा दी थीं। इसी अविश्वास के अन्तर्गत उसकी अपने भाइयों से न बनी। मुराद को तो उसने धोखा देकर समाप्त किया, दारा को निर्दयता से यमपुर पहुँचाया। शुजा स्वयं चण्ट था अतः भाग निकला। इस प्रकार वह अकेला था और अकेला मनुष्य कहाँ तक सफल हो सकता है। इसका फल यह भी होता था कि उसे अधिक कार्यभार सम्हालना पड़ता था। उसकी चातुरी तथा वीरता ऐसी स्थिति में उसकी असफलता को रोक न सकी।

एक सैनिक के रूप में वह अच्छा सैनिक था। यदि इस गुण की उसमें जरा भी कमी होती तो दारा अथवा शुजा उसे राजसिंहासन पर ही न बैठने देते। इसी की बदौलत उसने अपने पिता के समय सम्मान प्राप्त किया था। इसी की बदौलत वह बाद को अनेक युद्धों में विजय प्राप्त कर सका। उसने सारे युद्ध अपनी निश्चित योजना के अनुसार किये। उसे जब भी कभी अपने

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सेनानायकों पर भरोसा न होता था तो वह स्वयं रणस्थल की ओर चलता था। अपने जीवन का अधिकांश समय उसने युद्धों में ही बिताया। वह सदा एक संघर्ष करता रहा। उत्तर पश्चिम तथा दक्षिण और राजपूतों के साथ युद्धों में उसने वीरता ही नहीं दिखाई बल्कि बुद्धि से काम लिया। वह कहीं जरा भी चूक जाता तो उसका किया-कराया उलट सकता था। उसने राजपूतों को एक जाली पत्र लिखकर ही ठग लिया। वह स्वयं अनुशासन प्रेमी था तथा सरकारी कार्य को बड़ी तन्मयता से करता था। बस उसका कोई-कोई युद्ध व्यर्थ ही छेड़ा गया, क्योंकि जितनी हानि उसके विजय न करने से थी उससे अधिक विजय करने से हुई।

शासक के रूप में जैसा कि संकेत किया जा चुका है, वह सफल शासक न था। वह अपने शासन को किसी प्रकार टिकाये रहा। लेनपूल का कथन है–

"मुगलों ने अपने सम्राट में सर्व प्रथम एक कट्टर मुसलमान का व्यक्तित्व देखा और उस सम्राट में जो अपने सम्बन्धियों के लिए ही नहीं बल्कि अपने लिए भी उतना ही दमन करने वाला था, जो अपने धार्मिक विश्वास के लिए अपने राजसिंहासन की भी बाजी लगा सकता था, साथ ही जिस भयावह मार्ग को उसने अपनाया उसके प्रति जो पूर्णतया जागरूक रहा होगा तथा हिन्दुओं के विरुद्ध उनकी भावनाओं से खिलवाड़ करने, अपने सर्वोत्तम फारसी साथियों की आशाओं पर तुषारपात करने व विलासितामय दरबार की विलासिता कुचल कर उनका शत्रु बनना विप्लव के प्रति सीधा आह्वान न था तो और क्या ?"*

इसका फल यह हुआ कि उसके शासन में किसी को श्रद्धा न रह गयी थी, यह तो भय था जिस पर शासन टिका था। इस्लाम में कुछ दण्ड वर्जित हैं,

* "For the first time in their history the Mughals beheld a rigid muslim in their emperor. A muslim as sternly repressible of himself as of his people around him, a king who was prepared to stake his throne for the sake of his faith. He must have been fully conscious of the dangerous path he was pursuing and aware that to run a tilt against every Hindu sentiment, to alienate his Persian adherents, the flower of his general staff by deliberate opposition their cherished ideals, and to disgust his nobles by suppresing the luxury of a jovial court was to invite revolution.',
Lanepoole.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अतः वह उन दण्डों का प्रयोग न करता था और दण्ड के बिना शासन कैसा ? खफी ने तो उसे **"तिमूर वंश के नहीं बल्कि समस्त दिल्ली सम्राटों में राजभक्ति तपस्या तथा न्याय में सर्वोच्च कहा है।" उसने उसे साहस, कष्टसहिष्णुता, न्यायप्रियता आदि गुणों में अद्वितीय कहा है** । पर यह कथन कहाँ तक युक्ति-संगत है, यह उसकी कृतियाँ स्वयं बता रही हैं। इसके विपरीत डा० स्मिथ ने उसे रूखा चालाक-प्रवृत्तिमय कहा है तथा शासन कार्य में पूर्णतया असफल बताया है। उसके दक्षिणी युद्धों की ओर संकेत करते हुए आपने उसे उपहास का पात्र समझा है। वस्तुतः उसके जीवन में कोई ऐसी विशेषता नहीं रही जिससे उसके बाद की पीढ़ियाँ उसे महान् कहने को उद्यत रहें, उसका मन और मस्तिष्क एक अनिश्चित दिशा में चलता रहा।

भारत जैसे विभिन्न हितों के देश में इस प्रकार का शासन कैसे टिक सकता था ? उसकी नीति से अधिकारियों को भ्रष्टाचार का अवसर मिला, वे अकर्मण्य हो गये। उसके वृद्ध सामन्तों की मृत्यु के साथ ही स्पष्ट वक्ता तथा भक्त विलीन हो गये। **"वह केवल ईमानदार व परिश्रमी कहा जा सकता था न राजनीतिज्ञ वा विशिष्ट शासक-जिसका अर्थ यह हुआ कि वह किसी विभाग का मुख्य अधिकारी हो सकता था न कि सम्राट जिसे एक नई कल्याणकारी नीति का निर्माण कर भावी सन्तति के जीवन और विचारों का ध्यान रखकर संचालन करना होता है,"** †

प्रश्नावलि

१--औरंगज़ेब की उत्तराधिकार प्राप्ति का वर्णन करिये।

२--औरंगजेब की दक्षिण नीति पर प्रकाश डालिये।

३--क्या औरंगजेब की दक्षिण नीति को राजनीतिक भूल कहा जा सकता है ?

४--औरंगजेब ने कौन-कौन सी राजनीतिक भूलें कीं ?

५--औरंगजेब की विशुद्ध इस्लाम भक्ति का वर्णन कीजिय तथा उसका प्रतिफल सूक्ष्म में बताइये।

---

† "Such a king cannot be called a political or even an administrative genius. He had merely honesty and plodding industry. He was fit to be an excellent departmental head, not a statesman initiating a new policy and legislating with prophetic foresight for moulding the life and thought of unborn generations in advance.

J. N. Sarkar.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

६—औरंगजेब का एक राजनीतिक तथा व्यक्ति के रूप में विभेद करते हुए चरित्र चित्रण कीजिये।

७—राजपूतों के विरुद्ध औरंगजेब के अभियान का वर्णन करिये।

८—औरंगजेब की उत्तरी पश्चिमी नीति का विवेचन कीजिये।

९—औरंगजेब के समय हिन्दू विरोधी नीति की प्रतिक्रिया का वर्णन करिये।

१०—औरंगजेब की दक्षिण नीति का मुगल शासन पर क्या प्रभाव पड़ा ?

कुछ प्रमुख तिथियाँ

(१) औरंगजेब का जन्म	३ नवम्बर १६१८ ई०
(२) औरंगजेब का राज्याभिषेक	१६५८ ई०
(३) पूर्वी सीमा पर युद्ध	१६६१–६६ ई०
(४) राजपूत संघर्ष	१६७९–८१ ई० ८१–८७ ई० ८७–१७०१
(५) जाटों का विद्रोह	१६६९ ई०
(६) सतनामी विद्रोह	१६७२ ई०
(७) तेगबहादुर को मृत्यु दण्ड	१६७५ ई०
(८) औरंगजेब का दक्षिण अभियान	१६८२–१७०७ ई०
(९) औरंगजेब और अंग्रेज	१६८८ ई०
(१०) औरंगजेब की मृत्यु	२० फरवरी १७०७ ई०

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद ८

मुग़ल तथा मरहठे

मराठा शक्ति का विकास एक विशेष अवसर पर हुआ और इसका श्रेय बहुत कुछ शिवाजी को है, किन्तु इसके लिए अन्य परिस्थितियां कम उत्तरदायी नहीं। डा० ईश्वरी प्रसाद का कथन है--**"शिवाजी का उदय जितना व्यक्तिगत साहस व वीरता की बदौलत था, उतना ही दक्षिण की विचित्र भौगोलक स्थिति तथा एक सूत्र में बांधने वाले धार्मिक सूत्र के भी जिन्होंने १५ वीं व १६ वीं शताब्दियों की जनता में प्राण फूंक दिये थे और नई-नई आशाएँ जगा दी थीं।†**

अतः दक्षिण का उस समय का भौगोलिक तथा धार्मिक स्वरूप जान लेना भी परम आवश्यक है।

दक्षिण की भौगोलिक स्थिति--दक्षिण का प्रान्त प्राकृतिक सीमाओं में बंधा है। इसकी पर्वतमालाएँ इस देश की बाहरी आक्रमण से रक्षा करती हैं। ये ही यहां के निवासी को निर्भीक भी बनाये हैं। यहां की वर्षा की न्यूनता से जीवन में कुछ कठिनाइयां भी आती हैं, पर वे कठिनाइयाँ मनुष्य को परिश्रम-शील बनाने में सहायक होती हैं। इन्हीं से उसे आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ने को मिला है। जिन मार्गों से मरहठे सरलता से निकल गये, वहीं मुगलों का जीवन दूभर हो गया। उनकी पर्वतमालाओं ने उन्हें छापामार युद्ध भी सिखा दिया। इनकी टूटी हुई पर्वत शृंखलाएँ ही उनके दुर्गों का काम देती थीं। आक्रमण के समय ये ही उनके शरणस्थल होते थे। वस्तुतः पश्चिमी घाट की स्थिति तथा उत्तर में विंध्य पर्वत का प्रसार इनको सुरक्षित किये था। सादा जीवन यापन करना सीख कर उन्होंने सदा शत्रु के दाँत खट्टे किये। बहुत समय

† "Shivaji's rise to power was as much the result of personal daring and heroism as of the peculiar geographical conditions of the Deccan country and the unifying religious influences that were animating the people with new hopes and aspirations in the 15th and 16th centuries."

Muslim Rule, P. 455, *by Dr. Ishwari Prasad.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पश्चात् मुगलों को इस बात का ज्ञान हुआ कि उनसे उलझना कभी लाभकर न होगा।

श्री यदुनाथ सरकार का कथन है–**"प्रकृति ने मराठों में आत्मविश्वास, साहस, अध्यवसाय, सहिष्णुता, अत्यन्त सादगी, स्पष्टवादिता तथा सामाजिक एकता उत्पन्न कर दी थी, फलतः उन्हें मनुष्य होने का आत्मसम्मान था।"**† इसमें सन्देह नहीं कि मरहठों में इन गुणों के होते हुए भी किसी प्रकार का गर्व न था। वे अपने समाज को एक समझते थे। उसकी उन्नति का उन्हें ध्यान था, बल्कि उन्होंने हिन्दूमात्र को, चाहे वह उत्तर का रहा हो या दक्षिण का, अपना ही समझा। उनको अपने रक्त तथा अपनी जातीयता के संरक्षण का सदा ध्यान रहा। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इतना अवश्य है कि उन्होंने कभी भी साधन की ओर नहीं देखा। उनका विचार था कि उनका ध्येय सही है, उसकी पूर्ति उन्हें करनी है, जैसे भी हो। मानापमान के पचड़े में पड़कर वह अपने लक्ष्य को कभी न छोड़ सके। इस दृष्टि से वे एक भयानक शत्रु भी रहे।

संत प्रभाव––इसके अतिरिक्त कुछ मानसिक प्रेरणाएँ भी उन्हें ऐसी मिलीं, जिन्होंने उनमें एकसूत्रता उत्पन्न कर दी। मुसलमानों के अत्याचार से जनता अपने स्वत्व को खो रही थी, अतः उनमें प्रतिहिंसा की प्रेरणा भी जगी। उसी समय अनेक साधु संतों ने उनकी भावना में योग दिया। इन संतों ने मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम, प्रभु के प्रति अखण्ड विश्वास उत्पन्न कर दिया। इन संतों में तुकाराम, रामदास, वामन तथा एकनाथ विशिष्ट हैं। रामदास शिवाजी के गुरु थे। शिवाजी पर रामदास जी का अमिट प्रभाव था। रामदास केवल धर्म गुरु न थे, बल्कि एक राष्ट्र-निर्माता भी थे।

संत तुकाराम की विशेषता यह थी, कि उनके पद बिना भेद-भाव के सभी श्रेणी के लोगों में गाये जाते थे। ये पद मराठी लिपि तथा भाषा में लिखे गये थे, अतः वे परोक्ष रूप से संगठन में सहायक रहे। श्री यदुनाथ सरकार के अनुसार **"शिवाजी के द्वारा किये गये राजनीतिक संगठन से पूर्व ही सत्रहवीं सदी में महाराष्ट्र में एक भाषा, एक रीति रिवाज तथा एक ही प्रकार के समाज का सृजन हो चुका था। इसके पश्चात् भी उनकी एकता में जो कमी रह गयी थी, वह शिवाजी तथा उनके पुत्रों के दिल्ली आक्रमणकारियों से**

---

† "Nature developed in the Marathas self-reliance, courage, perseverance, a stern simplicity, a rough straight-forwardness, a sense of social equality and consequently a pride in the dignity of man as a man."
J. N. Sarkar.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

संघर्ष, पेशवाओं के अन्तर्गत मरहठा सामाज्य की उन्नति तथा एकराष्ट्रीय समाज की स्थापना ने पूर्ण कर दी ।"*

इसके अतिरिक्त मरहठे शासन तथा युद्ध-विद्या में निपुण थे। इस प्रकार की शिक्षा इन्हें दक्षिण के मुसलमान सुल्तानों के यहाँ रह कर मिल गयी थी। मरहठे इन राज्यों में उच्च पदों पर कार्य कर चुके थे। यथा–मुरार राव, मदन पंडित और राजराय कुटुम्ब के कई सदस्य गोलकुंडा राज्य में मंत्री रहे। नरसो काने तथा यशु पण्डित बीजापुर राज्य के दरबारियों में थे। अहमदनगर राज्य में अनेक ब्राह्मण व राजपूत नियुक्त किये गये थे। जहाँगीर तथा शाहजहाँ के काल में अहमदनगर तथा बीजापुर राज्यों के राजनीतिक दाव-पेचों में शाह जी भोंसला, जगदेव तथा मुरार राव का प्रमुख हाथ था। इसी प्रकार अन्य स्थानों में भी मरहठे जागीरदार प्रबल थे। उनकी मैत्री किसी के लिए भी सहारा हो सकती थी, साथ ही उनकी शत्रुता उतनी ही कठोर विनाशक भी। मुगलों ने इनको समूल नष्ट करना चाहा, पर युक्ति से काम न लिया। उस समय स्थिति ऐसी थी कि चाहे तो मुगल मरहठों को मिटा देते या शिया राज्यों को। दोनों से शत्रुता मोल लेना बुद्धिमानी न थी।

शिवा जी के माता-पिता––शिवा जी के पूर्वज मराठा जाति के भोंसला वंश के थे। ये पूना जिला में हिंगनी, वरेडी तथा दिवालगाँव ग्रामों के मुखिया थे। ये ग्राम उस समय अहमद नगर के निजाम शाही सुल्तान के अधीन थे। १६ वीं सदी के मध्य में इस परिवार का प्रधान पुरुष बाला जी था। बाला जी के दो पुत्र हुए––१– मालो जी तथा २–वीतो जी। ये दोनों दौलताबाद की पर्वती सीमा पर स्थित एरोला नामक ग्राम में आ बसे थे। ये अहमद-नगर सुल्तान के सामन्त यादवराव की अधीनता में साधारण सिपाही थे। मालो जी का पुत्र शाह जी था। एक बार कहीं यादव राव ने मालो जी से कहा कि तुम्हारा पुत्र शाह जी तो मेरी कन्या जीजाबाई के योग्य वर है। मालो जी प्रसन्नतापूर्वक तैयार हो गया। पर यादव राव ऐसा कैसे कर सकता था। उसने मालो जी को अपनी सेवा से ही बंचित कर दिया। कुछ ही समय

---

* "Thus a remarkable community of language creed and life was attained in the Maharashtra in the 17th century even before political unity was conferred by Shivaji. What little was wanting to the solidarity of the people was supplied by his creation of national state, the long struggle with the invader from Delhi under his sons and the imperial expansion of the race under the Peshwas." *J. N. Sarkar.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

में मालो जी को गुप्त कोष मिल गया जिससे वह सम्पन्न हो गया। धीरे-धीरे उसने निजी सैनिक रखना प्रारम्भ किया और स्वयं अहमद नगर के सुल्तान के यहाँ नौकर हो गया। इस प्रकार मालो जी को उन्नतशील देखकर सिन्ध खेर के यादवराव ने अपनी कन्या जीजाबाई का विवाह शाह जी के साथ कर दिया। आगे चल कर यही शाह जी अहमदनगर के प्रमुख सेनानायक बने। इनको मुगलों से अनेक युद्ध करने पड़े। एक बार ये खान देश पर आक्रमण करने के लिए भेजे गये, जब कि शाहजहाँ दक्षिण विजय के लिए प्रयत्नशील था इन्होंने मुगलों के सम्पर्क से लाभ उठाया, तदनन्तर उन्होंने बीजापुर सुल्तान के यहाँ नौकरी कर ली। वहाँ उन्हें प्रसिद्ध मराठा सरदार जगदेव का सम्पर्क प्राप्त हुआ। उस समय अहमद नगर का पतन हो रहा था, अतः उन्होंने पूना, चकन तथा अन्य समीपवर्ती प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। बीजापुर सुल्तान की सहायता से अगस्त १६३३ ई० में उन्होंने अहमद नगर राजवंश के एक बच्चे को गद्दी पर बिठा कर राज्य किया। पर कुछ ही समय पश्चात् उसे मुगलों के हाथ सौंपना पड़ा और स्वयं उन्होंने बीजापुर के यहाँ नौकरी कर ली। धीरे-धीरे वे बीजापुर के प्रमुख सामन्त बन गये। उन्होंने अपने लिए पूर्वी कर्नाटक में एक बड़ी रियासत भी प्राप्त कर ली।

शिवा जी का जन्म तथा बाल्यकाल—यही शाह जी शिवा जी के पूज्य पिता थे। इनकी माता शाह जी की प्रथम पत्नी जीजाबाई थीं। शिवाजी का

जन्म शिवनेर दुर्ग में १० अप्रैल सन् १६२७ ई० को हुआ था। आपकी माता बड़ी धार्मिक बुद्धि की महिला थीं। आपके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया था, अतः शिवा के पालन-पोषण का अधिक भार इनकी माता पर ही पड़ा। जीजाबाई ने शिवा जी को प्रारम्भ से ही रामायण महाभारत की कहानियाँ सुनायीं, तथा शिवा के मस्तिष्क को वीर सेनानी पुरुषों के कृत्यों की गाथाओं से भर दिया। उन्होंने उसे इतना प्रेरित और प्रोत्साहित किया कि वह भी बड़ा होकर उनका अनुकरण करे। इन भावनाओं में कुछ योग देने वाले शिवा जी के गुरु दादा जी कोंणदेव थे जिनका शिवा जी पर कम प्रभाव न पड़ा। ये शिवा जी के पिता की पूना की जागीर के प्रशासक थे, तथा शिवा जी को अपने पुत्र की भाँति मानते थे। आपने ही शिवा जी को अस्त्र-शस्त्र विद्या सिखाई थी। यद्यपि शिवाजी को कभी पढ़ने-लिखने का बहुत सौभाग्य प्राप्त

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

नहीं हुआ, फिर भी उनका मस्तिष्क अकबर की भाँति ज्ञान से भरपूर था। उन्हें धर्म ही नहीं शासन की बातें भी सिखा दी गयीं थीं। साथ ही उन्हें, अश्वारोहण, अस्त्र-शस्त्र चलाना तथा अन्य व्यायाम भली भाँति सिखाये गये थे। इनको बीजापुर की राजधानी में रहने का मौका मिला, इससे इन्हें उस पतनोन्मुख साम्राज्य की दुर्बलताओं का भी ज्ञान हो गया।

इसी बीच स्वामी रामदास का सम्पर्क भी उन्हें मिला। स्वामी रामदास गौ, ब्राह्मण के परम भक्त थे। अतः उन्होंने शिवा जी को भी उसी रूप-रेखा में ढाल दिया। शिवा जी ने अपने मन में ठान लिया कि वे बड़े होकर हिंदुत्व की रक्षा करेंगे, गो, ब्राह्मण की रक्षा करेंगे। उनको यवन आक्रमणों से तथा उनके अत्याचारों से घृणा हो गयी। यही पुकार उस समय उनके अन्य सम-कालीनों की थी, अतः उनके पूर्व स्थित मानसिक अंकुर को अनुकूल वातावरण मिला। कहा जाता है कि इस अंकुर का बीजारोपण उनके धर्म गुरु रामदास जी ने किया था, पर यह सर्वथा सत्य नहीं है।

निःसन्देह **"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"** अर्थात् **"मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है।"** यह मन्त्र रामदास जी द्वारा ही शिवा जी को मिला था। आपका कहना था—

"देव, गो, ब्राह्मण तथा धर्म की रक्षा करनी है। इसी निमित्त ईश्वर ने तुम्हें उठाया है, यदि धर्म का नाश हो गया तो जीने से मरना अच्छा। धर्म के ह्रास के पश्चात् जीवन से लाभ ही क्या? धर्म नहीं तो जीवन क्या? अतः ऐ मराठो! संगठित हो, धर्म का पुनरुत्थान करो, अन्यथा तुम्हारे पूर्वज स्वर्ग में तुम्हारी हँसी करेंगे। †

इस प्रकार शिवा जी को एक दृढ़व्रती, हिन्दू, गौ, तथा ब्राह्मण का रक्षक बना दिया गया।

---

† "Mother and mother country are dearer than heaven itself, Gods, and cows, Brahmans, and the faith, these are to be protected, therefore God has risen you up; when faith is dead death is better than life, why live when religion has perished, gather ye, therefore the Marathas together. Make the Dharma live again, for otherwise our forefathers will laugh at us from heaven."

Ram Das.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शिवा जी का प्रारम्भिक कार्य

(१) तोरण
(२) राजगढ़
(३) चकन
(४) कोडाना
(५) पोरबन्दर
(६) बारामति
(७) इन्दुपुरा
(८) कल्याण
दुर्गों पर अधिकार।

जब शिवा जी १६ वर्ष के थे, बीजापुर रियासत में अशांति थी। अतः उन्होंने सबसे पहले सन् १६४६ ई० में इस अशान्ति से लाभ उठाकर **तोरण** नामक दुर्ग पर अधिकार किया। इस दुर्ग में उन्हें बहुत सारा कोष प्राप्त हुआ। इसके सहारे उन्होंने तोरण से ५ मील दूर **राजगढ़** नामक दुर्ग ले लिया तथा उसका जीर्णोद्धार कराया। दैवयोग से इसी बीच दादा जी कोंणदेव का स्वर्गवास हो गया, अतः शिवा जी ने अपने पिता की सारी जागीर पर अधिकार कर लिया। धीरे-धीरे उन्होंने **चकन, कोडाना, पोरबन्दर, बारामति, इन्दुपुरा,** आदि दुर्गों पर अधिकार कर लिया। जब बीजापुर सुल्तान को यह समाचार मिला तो वह बहुत क्रुद्ध हुआ, पर उसके मन्त्री पहले ही शिवा जी के पक्ष में आ चुके थे। शिवाजी ने उन्हें लालच देकर अपनी ओर मिला लिया था। उन्होंने यह कहकर बात टाल दी कि ये दुर्ग शिवाजी ने अपनी पैतृक जागीर की रक्षा के लिए लिये हैं उससे किसी भय की बात नहीं है। पर शिवा जी अपने कार्य में दत्तचित्त रहे। उन्होंने अपना ध्यान कोंकण की ओर किया। कुछ ही समय में इस प्रदेश के मुख्य नगर कल्यान पर भी उनका अधिकार हो गया। इस अभियान का नेता आवजी था। जब धीरे-धीरे आवजी कोलावा जिले की ओर बढ़ने लगा, तो बीजापुर सुल्तान के पुनः कान खड़े हुए। उसने शिवा जी की गति रोकनी चाही और उनको दण्ड देने का प्रयत्न करने लगा।

बीजापुर सुल्तान से संघर्ष—बीजापुर सुल्तान ने सबसे पहले शिवाजी के पिता को पदच्युत कर बन्दी बना लिया। श्री सरकार का कथन है कि उसने इन घटनाओं के पूर्व ही शाहजी को पदच्युत कर दिया था। इसका कारण यह था कि जिज्जी के घेरे के समय शाह जी ने बीजापुर के सेनापति मुस्तफा खां की आज्ञा उल्लंघन की थी। पर दूसरे इतिहासकारों का कहना है कि शाहजी पर शिवाजी को बढ़ावा देने का तथा उसे सहारा देने का आरोप था और इसी अपराध में वह बन्दी बनाया गया। यह घटना १६४८ ई० के लगभग हुई। अतः शिवाजी की गतिविधि कुछ समय (१६४८–५५ ई०) के लिए रुक गयी।

अपने पिता के संकट को दूर करने के लिए शिवाजी ने छापे मारना बन्द कर दिया। साथ ही उन्होंने मुगलों से अपना सम्पर्क स्थापित किया। उन्होंने

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस बात का प्रयत्न किया कि दक्षिण का सूबेदार मुराद बीजापुर सुल्तान पर शाह जी को मुक्त करने के लिए दबाव डाले, पर शाहजहाँ ने इस बात की अनुमति न दी, अन्ततः शिवाजी को बंगलौर और कोंड़ाना के दुर्ग सुल्तान को लौटाने पड़े और सुल्तान ने कुछ शर्तों के साथ शाह जी को मुक्त कर दिया (१६४६ ई०)। इस प्रकार शिवाजी को १६५५ ई० तक शान्त बैठना पड़ा। इसके अनन्तर शिवाजी ने जावाली के दुर्ग पर अधिकार करने की चेष्टा की। जावाली दुर्ग उस समय एक अन्य मराठा सरदार के अधीन था, किन्तु वह सरदार सुल्तान का भक्त था, अतः शिवाजी के लिए घातक सिद्ध हो सकता था। शिवाजी ने गुप्तरूप से उसका वध करवा दिया तथा जावाली के दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। जावाली की विजय पर सरकार ने शिवाजी पर छल कपट का आरोप लगाया है। आपका कहना है कि शिवाजी की शक्ति उस समय कम थी अतः वह अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए विवेकपूर्ण साधनों को न अपना सका। इतना अवश्य है कि उसने इस विषय में पाखंड नहीं किया। जो हो, जावली की विजय शिवाजी के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इस विजय के पश्चात् ही दक्षिण पश्चिम में उसके राज्य के विस्तार के लिए द्वार खुल गये। साथ ही इस विजय से उसकी सैनिकशक्ति बहुत बढ़ गयी थी।

बीजापुर का नवाब मुहम्मद आदिल नवम्बर सन् १६५६ ई० में मर गया, तथा उसके पश्चात् उसका नवयुवक पुत्र गद्दी पर बैठा। उस समय औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार था। उसने इस अवसर से लाभ उठाना चाहा। मीर जुमला की सहायता से औरंगजेब ने बीदर, कल्याणी तथा परिन्दा के दुर्गों पर अधिकार कर लिया। पर बीजापुर सुल्तान ने बुद्धि से काम लिया और कुछ धन-राशि देकर उससे सन्धि कर ली।

शिवाजी तथा अफजल खाँ--(१६५९ ई०) थोड़े ही समय में औरंगजेब उत्तर में चला आया। अतः बीजापुर सुल्तान को शिवाजी से बदला लेने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। उसने अपने सेनापति अफजल खां के नेतृत्व में एक बड़ी सेना एकत्र की, और शिवाजी को जीवित या मृत लाने का आदेश दिया। अफजल खां ने भी अपनी विकत्थना करते हुए कहा कि वह **"पहाड़ी चूहे"** को अविलम्ब पकड़ कर ले आयगा, किन्तु जब अफजल खां उस ओर गया तो विदित हुआ कि वह अपने पराक्रम के बल पर कुछ न कर सकेगा। अतः उसने कूटनीति से काम लिया। उसने कृष्ण जी भास्कर को शिवाजी के पास लालच देने भेजा तथा शिवाजी से भेंट करने की इच्छा प्रकट की।

शिवाजी को जब अफजलखां का पत्र मिला जिसका आशय यह था **"मैं तुम्हें अपनी सरकार से अधिक सामान तथा सैनिक सामग्री दिलवाऊँगा।**

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

यदि तुम दरबार में उपस्थित हो जाओगे तो तुम्हारा स्वागत होगा और अपने सभी अपराधों से मुक्त कर दिये जाओगे।" तो वे बड़े असमंजस में पड़ गये। इस विषय में मराठा सरदारों में भी मतभेद हो गया। कुछ अधिकारियों ने समर्पण करने की सलाह दी, कुछ ने न मिलने की। शिवाजी बहुत बुद्धिमान थे, उन्होंने कृष्ण जी भास्कर को हिन्दुत्व की शपथ देकर वस्तुस्थिति ज्ञात की। भास्कर ने अधिक तो न बताना चाहा, पर इतना संकेत कर दिया कि अफजल खां की नियत अच्छी नहीं है। यह जानकर शिवाजी ने कुछ शर्तों के साथ मिलना स्वीकार किया। उन्होंने अफजल खां से अपनी सुरक्षा का सच्चा विश्वास चाहा, अफजल खां ने उनको मनचाहा विश्वास दे दिया। इस पर भी शिवाजी ने अपना एक दूत भेजकर ज्ञात कर लिया कि अफजल खां उनको बन्दी बनाना चाहता है। शिवाजी ने निश्चय किया कि प्रतापगढ़ से दक्षिण एक मील दूर पार नामक ग्राम में भेंट की जाय। अफजल खां पार जाने को राजी हो गया। दुर्ग के नीचे एक ऊँचे स्थान पर पण्डाल बनाया गया। शिवाजी ने अपने चुने हुए सैनिक आस-पास की झाड़ियों में छिपा दिये। अपने अंगरखे के नीचे उन्होंने कवच धारण कर लिया तथा पगड़ी के नीचे फौलादी टोपी पहन ली। साथ ही अपने बायें हाथ में बघनख और दाहिने बगल में एक कटार छिपा ली। उन्होंने अपने साथ जीव महाल और शम्भूजी दो साथी भी ले लिये। ये भी अस्त्र-शस्त्र से सज्जित थे। अफजल खां भी हजारों निशानेबाज तथा बन्दूकची लेकर निश्चित स्थल पर पहुँचा। यह देखकर शिवाजी के दूत गोपीनाथ ने खान से कहा कि वह अपनी सेना को दूर रखें अन्यथा शिवाजी मिलने को तैयार न होंगे। अतः ऐसा ही किया गया। अफजल खां भी शिवाजी की भांति दो शस्त्रधारी सेवकों सहित पण्डाल में आया। वस्तुतः वह एक अच्छे तलवार चलानेवाले को और भी साथ रखना चाहता था, पर शिवाजी ने उसे पाण्डाल से हटवा दिया। अफजल खां के आते ही शिवाजी ने झुककर सलाम किया, अफजलखां ने उन्हें गले से लगा लिया, और अवसर पाते ही उनको अपनी बाहुओं में दबा लिया। शिवाजी अफजल खां के कन्धे तक ही पहुँचते थे, पर सतर्क थे। अफजल खां का इरादा बदला उसने एक हाथ से अपनी तलवार का वार किया किन्तु मराठा सरदार का कवच साथ दे गया, पर अब शिवाजी की बारी थी, उन्होंने भी अपने बघनख से अफजल खां के बाहुपाश को ढीला किया, तथा छिपी हुई अपनी तेज कटार से उसको यमपुर पहुँचा दिया। इस द्वन्द्व को देखते ही दोनों सेनापतियों के अंगरक्षकों में मुठभेड़ हुई—और इसी के साथ मराठी सेना अफजल खां की सेना पर बुरी तरह टूट पड़ी तथा उसका संहार किया। **यह घटना २ नवम्बर सन् १६५९ ई० की है।**

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

आज बहुधा यह प्रश्न उपस्थित होता है कि अफजल खाँ की हत्या कहाँ तक युक्ति संगत थी ? खाफी खां के अनुसार शिवाजी धोखे तथा षडयन्त्र के दोषी हैं और इन्हीं का समर्थन श्री ग्रांट डफ ने भी किया है, पर शिवाजी ने जो कुछ भी किया वह आत्मरक्षा के निमित्त। आज तक के अनुसन्धान से यह निश्चित हो गया है कि अफजल खां के इरादे निश्चित रूप से खराब थे, वह तो उसका बस न चला, अन्यथा स्थिति दूसरी ही होती। श्री यदुनाथ सरकार का कथन है—**"मराठों के लिए यह युद्ध राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के लिए तथा देवालय भ्रष्ट करने वाले के विरुद्ध धर्म युद्ध था। उनके लिए अफजलखां मनुष्यमात्र तथा ईश्वर की अवहेलना करने वाला था, तथा दुष्ट, भयानक और विश्वासघाती था। प्रारंभ से ही उनके इतिहासकारों को इसमें हत्या की गंध नहीं मिलती, बल्कि यह घटना एक चतुरता, साहस, तत्परता, दूरदर्शिता, का प्रतीक थी, जिसमें उनके राष्ट्र नायक ने अपने प्राणघातक के षडयन्त्र को विफल ही न कर दिया बल्कि उसके ही ऊपर उलटा प्रयोग कर देवालयों के अपमान का बदला लिया।"†**

अफजल खां की असफलता के फलस्वरूप शिवाजी ने पंहाला के दक्षिण का भूभाग जीत लिया, इस पर बीजापुर सुल्तान ने एक दूसरी सेना शिवाजी के दमन के लिए भेजी पर उसको भी मुँह की खानी पड़ी। इस प्रकार शिवाजी के दमन के स्थान पर उनकी शक्ति और बढ़ गयी। बीजापुर सुल्तान ने इस पर तीसरी बार पुनः एक सेना भेजी, किन्तु उसकी भी वही दशा हुई। यह युद्ध इसी प्रकार १ वर्ष तक चला, बीजापुर ने स्वयं भी इसकी बागडोर सम्हाली पर अन्त में वह शिवाजी से सन्धि करने पर विवश हुआ। शिवाजी द्वारा जीते गये प्रदेश उन्हीं के अधिकार में रहे।

शिवाजी तथा मुग़ल—इसके अनन्तर शिवाजी ने मुगलों को तंग करना

---

† "To the Marathas the fight with Afzal has always appeared as at once a war of national liberation and a crusade against a desecrator of temples. To them Afzal Khan typifies the bold bad man who combines treachery with frightfulness and defies God and man alike. Their historians from the earliest times have seen no element of murder in the incident but always described it as glorious example of sagacity courage and agility with which their national hero averted a trechrous plot against his own life made the treachery recoil on the plotter's head and avenged the outraged shrines of their Gods." *J. N. Sarkar.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

प्रारम्भ किया। इस समय दिल्ली सिंहासन का स्वामी औरंगजेब था। उसने अपने मामा शायस्ता खां को सन् १६६० ई० में दक्षिण का गवर्नर नियुक्त किया और आज्ञा दी कि मराठों की शक्ति का दमन करे। शायस्ता खां ने बहुत शीघ्र मरहठों को कुछ युद्धों में हराया तथा उसने उनके कुछ किले भी छीन लिये, किन्तु मरहठे भी उन्हें आये दिन तंग करने लगे। अतः शायस्ता खां ने वर्षाऋतु पूना में बिताने का निश्चय किया। दुर्भाग्यवश शायस्ता खां ने अपना निवास उस भवन में रखा जहाँ शिवाजी का बचपन व्यतीत हुआ था। शिवाजी ने एक बड़ी साहसिक योजना बनायी। उन्होंने ४०० चुने हुये सिपाहियों की एक बारात सजायी और रात के समय पूना में प्रवेश किया (१६६३ ई०)। जब उन्हें मुगलों ने रोका तो उन्होंने उत्तर दिया कि वे शाही सेना के ही मराठे सिपाही हैं जो अपने अपने स्थान पर जा रहे हैं। आखिर वे एक छोटे से दरवाजे को तोड़कर अर्धरात्रि में शायस्ता खां के महल में प्रविष्ट हुए। यह देखकर शायस्ता खां की एक दासी ने उसे जगाया। शायस्ता खां ने जागते ही अपने अस्त्र सम्हाले पर शिवाजी बहुत सतर्क थे, उन्होंने शायस्ता खां का एक तीर से अगूंठा काट दिया, इस पर शायस्ताखाँ की दूसरी परिचारिका ने प्रकाश बुझा दिया। अतः अन्धकार में हीं युद्ध होता रहा। मराठों ने मुगलों का खूब संहार किया और जैसे ही देखा कि मुगलों की पूरी सेना जग गयी, अपना मार्ग लेकर चल दिये। शायस्ताखाँ निःसन्देह इस अवसर पर मुँह की खाकर भाग खड़ा हुआ। उसके एक पुत्र अब्दुलफतह ने उसकी रक्षा करनी चाही, पर स्वयं ही वह अपने प्राण खो बैठा। इस घटना से शिवाजी का आतंक छा गया। दूसरे ही दिन जसवन्तसिंह शायस्ताखाँ से भेंट करने गया तो शायस्ताखाँ ने कहा कि मैं तो समझता था कि आप कल रात को मेरी रक्षा करते हुए काम आये। उसका विचार था कि उस घटना में जसवन्तसिंह का भी हाथ था। जब यह समाचार औरंगजेब के पास पहुँचा तो वह और भी विक्षुब्ध हुआ, उसने तुरत शायस्ताखाँ को वापस बुलाकर बंगाल का राज्यपाल बनाकर भेज दिया। श्री यदुनाथ सरकार का मत है कि इस आक्रमण में जो साहस और चतुरता मरहठों ने दिखायी उससे शिवाजी का सम्मान बढ़ गया। उनके विषय में यह विख्यात हो गया कि वे शैतान के अवतार हैं, कहीं भी पहुँच सकते हैं, और कुछ भी कर सकते हैं। समस्त देश में उनके साहस की चर्चा थी।

सूरत पर आक्रमण १६६४ ई०—उपर्युक्त निर्भीक घटना के उपरान्त शिवाजी ने सूरत को लूटने का विचार किया। दूसरे ही वर्ष उन्होंने सूरत पर आक्रमण कर दिया। यहाँ के गवर्नर इनायत खां ने भाग कर दुर्ग में शरण

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ली। शिवाजी ने नगर को खूब लूटा। उस समय सूरत में अंग्रेजों की कोठी बन गयी थी। शिवाजी ने उनको आगाह कर कह दिया कि या तो वे शान्त बैठें, या ३ लाख रुपये हरज़ाने के रूप में दें अन्यथा उनका भी वही हाल होगा, पर वहाँ के गवर्नर ओक्सेंडैन ने एक भी शर्त न मानी, किन्तु जब तक उसका सन्देश शिवाजी के पास तक आया, उनकी सेना पर्याप्त धन लूट चुकी थी, अतः उस धन को लेकर मराठे लौट गये। कहते हैं इस धन में करोड़ों की दौलत थी, उसमें रत्न, हीरे, जवाहरात सभी थे।

जयसिंह तथा शिवाजी--जिस समय राजकुमार मुअज्ज़म दक्षिण का सूबेदार था, उसने राजा जयसिंह को शिवाजी से सुलझने के लिए भेजा। सन् १६६५ ई० में राजा जयसिंह ने शिवाजी पर आक्रमण की तैयारी प्रारम्भ कर दी। धीरे-धीरे उन्होंने शिवाजी को घेरना प्रारम्भ किया और उनके राज्य की सीमा पर पहुँच गये। जब शिवाजी ने देखा कि बचने का कोई अन्य चारा नहीं है, उन्होंने जयसिंह से सन्धि कर ली तथा अपने अधिकृत २३ दुर्ग मुगलों को दे दिये और केवल १२ अपने अधिकार में रखे। उनके पुत्र शम्भाजी को मुग़ल दरबार में पंचहज़ारी मनसब देने का निश्चय हुआ। शिवाजी को दरबार में उपस्थित होने को बाध्य न किया गया साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि यदि शिवाजी को कोंकण तथा बलाक के प्रदेश दे दिये जाँय, तो वे औरंगज़ेब को ४० लाख हुण १३ वर्ष में अदा करेंगे, और बीजापुर से मुग़ल संघर्ष होने पर वे मुग़लों का साथ देंगे। इसे पुरन्दर की सन्धि कहते हैं। यह सन्धि राजा जयसिंह के लिए बड़ी भारी राजनीतिक जीत समझी गयी।

इसके अनन्तर जयसिंह ने बीजापुर पर आक्रमण किया। सुल्तान-बीजापुर इस बार सतर्क था। उसने बहुत सी खाद्य-सामग्री दुर्ग में भर ली, तथा दुर्ग से सात मील दूर तक के प्रदेश को खूब उजाड़ दिया, यहाँ तक कि शत्रु को छाया, खाना, पानी, कुछ भी न मिले। जयसिंह बहुत दिन इस आशा में घेरा डाले रहा कि शत्रु निकलेगा, अथवा उसे बढ़ने का अवसर प्राप्त होगा, पर कुछ न हुआ। आखिर उसे उल्टे पाँव और खाली हाथ लौटना पड़ा। इसके पश्चात् उन्होंने शिवाजी को पन्हाला का दुर्ग लेने को भेजा। शिवाजी अपने बचन के अनुसार गये, किन्तु उनके सहायक उचित समय पर न पहुँच सके अतः यह यत्न भी विफल हो गया।

इस अभियान में असफल होने पर राजा जयसिंह ने विचार किया कि शिवाजी कहीं बीजापुर सुल्तान से मिल न जाये, अतः उनको अनेक प्रलोभन दिलाकर उन्हें इस बात पर राज़ी कर लिया कि वे औरंगज़ेब से मुग़ल राजधानी में जाकर भेंट करें। शिवाजी ने इस बात को केवल जयसिंह के कहने मात्र से

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

तो वहीं, बल्कि मुग़ल शक्ति का सही अनुमान लगाने तथा उनके प्रबंध को देखने की दृष्टि से मान लिया। राजा जयसिंह ने उनके जीवन रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। शिवाजी निर्भीक तो थे ही, उन्होंने बड़े विश्वास के साथ चलना स्वीकार किया। आखिर अपने राज्य का भार उत्तरदायी अधिकारियों को सौंप कर शिवाजी ने १६ मार्च सन् १६६६ ई० को अपने सबसे बड़े पुत्र शम्भूजी, पाँच बड़े अधिकारी तथा ३५० अन्य सैनिकों के साथ यात्रा आरम्भ की।

२० मई को शिवाजी आगरा पहुँच गये। रामसिंह पर विशेष रूप से उनकी रक्षा का भार था। दैवयोग से रामसिंह को उस दिन दरबार में उपस्थित रहना था। अतः वह शिवाजी का समुचित स्वागत न कर सका। आखिर दूसरे दिन शिवाजी को दूसरे मार्ग से ले जाकर दरबार में उपस्थित किया गया। चूंकि समय अधिक हो गया था, औरंगजेब उस समय तक दीवाने आम को छोड़कर दीवाने खास में पहुँच चुका था। शिवाजी ने जाकर एक सहस्र मुहर और दो हजार रुपये निछावर के रूप में औरंगजेब को भेंट किये। औरंगजेब ने कुछ न कहते हुए उपहार पर एक दृष्टि डाली। इसके पश्चात् शिवाजी को पंच हजारी मंसबदारों की पंक्ति में खड़ा कर दिया गया। यह पंक्ति तीसरी थी। उनके सामने की पंक्ति में जसवन्तसिंह खड़ा था। उसकों सामने देखते ही शिवाजी बोले **"इस जसवन्तसिंह की पीठ तो मेरे सिपाहियों ने देखी थी, उसी के पीछे मुझे खड़ा होना पड़ रहा है।"** पर किसी ने उनकी बात पर ध्यान न दिया। इसके अनन्तर खिलत का समय आया, तो शिवाजी को छोड़कर सभी को बाँटी गयी। इस पर शिवाजी का क्रोध और भी बढ़ गया। औरंगजेब ने इस बात को ताड़ कर रामसिंह से उनके विषय में पूछा। रामसिंह ने शिवाजी को समझाने का प्रयास किया, पर शिवाजी अत्यन्त क्रुद्ध हुए, और बोले तुमने मुझे देखा, तुम्हारे पिता ने मुझे देखा, तुम्हारे बादशाह ने मुझे देखा, फिर भी मेरे साथ यह वर्ताव किया गया। ऐसा कहते हुए वे दरबार से मुँह मोड़ कर चल दिये। रामसिंह ने उन्हें बहुत मनाया, पर वे न माने। आखिर औरंगजेब से रामसिंह ने सारी बात कह दी। इस पर औरंगजेब ने शिवाजी को शान्त करने के लिए तीन सामन्तों के साथ खिलत भेजी और अपने सामने उपस्थित होने को कहा पर शिवाजी ने कुछ भी स्वीकार न किया। इस को देख कर सरदारों के मन में खलभली मच गयी कि कुछ अनिष्ट न हो, पर अन्होंने बात बना कर औरंगजेब से कहा कि मरहठा सरदार स्वच्छन्द वायु का सेवन करता रहा है, यहाँ का वायु मण्डल उसके अनुकूल नहीं पड़ा, अतः कुछ अस्वस्थ है, इस पर औरंगजेब ने उसे रामसिंह के निवास स्थान पर

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ठहराने को कहा। औरंगजेब का अन्तःकरण शिवाजी के प्रति शुद्ध न था, किन्तु वह इस कार्य को इतनी निपुणता से करना चाहता था कि कोई जान न सके तथा जिससे जनमत उसके विरुद्ध न हो। उधर रामसिंह शिवाजी से उनकी सुरक्षा के लिए वचन बद्ध था, अतः उसे इसकी चिन्ता हुई।

दरबार का एक दल राजा जयसिंह के विरुद्ध था, वह भी यह मनाता था कि जयसिंह को कलंक लगे। सम्राट की बहन जहानआरा इस विषय में उसके साथ थी। अतः शिवाजी को रामसिंह की सुरक्षा से हटाकर एक प्रसिद्ध निर्दयी रादन दाज के यहाँ रखने की आज्ञा दी गयी, पर रामसिंह ने औरंगजेब के इस निर्णय का विरोध किया और शिवाजी के आचरण का तब तक पूरा भार अपने ऊपर ले लिया जब तक वे आगरा में रखे जाते हैं। इस पर औरंगजेब ने उन्हें कड़े पहरे में रख दिया।

कुछ ही दिनों में औरंगजेब ने शिवाजी को अफगानिस्तान के युसुफ जाई और कबीलों से युद्ध करने को भेजना चाहा और विचार किया कि मार्ग में किसी दुर्घटना के बहाने उनका अन्त कर दिया जायगा, किन्तु शिवाजी ने मन्त्रियों को लम्बी-लम्बी रिश्वतें देकर अपने पक्ष में कर लिया। मन्त्रियों ने शिवाजी की ओर से क्षमा माँगी और अफगानिस्तान भेजने की आशा रद्द करा दी। पर उनका पहरा सख्त करा दिया गया। इसके पश्चात् शिवाजी की ओर से सम्राट को दो करोड़ रुपये देने का वचन दिया गया यदि सम्राट उनके समस्त दुर्ग उनको देकर मुक्त कर दे। साथ ही उन्होंने बीजापुर के विरुद्ध मुगलों को सहायता देने का वचन दिया। पर औरंगजेब ने एक न सुनी। इस प्रकार अब शिवाजी अतिथि से बन्दी बना दिये गये।

शिवाजी ने भी स्थिति का सही अध्ययन किया, तथा अपनी मुक्ति की योजना बनायी। उन्होंने अस्वस्थ होने का बहाना बनाया, तथा आरोग्य लाभ के निमित्त दोनों को नित्य मिठाई भिजवाना प्रारम्भ किया। एक दिन आखिर (१६ अगस्त १६६६ ई०) वे सफल हुए। उन्होंने अपने स्थान पर एक अन्य पुरुष सुला दिया, उसके हाथ में अपना कड़ा पहना कर उसके शरीर को ढक दिया, पहरेदार उनको देखने आया, तथा उस पुरुष को देख कर निश्चित हो गया। मिठाई की टोकरी भी बहुत दिन से जाते-जाते अब बिना तलाशी निकलने लगी थी, अतः शिवाजी अपने पुत्र सहित टोकरिओं में बैठ कर बाहर आये। आगरा से ६ मील चल कर टोकरी सुन सान में उतारी गयी, जहाँ पर उन्होंने सन्यासी का वेश धारण किया, आगरा से वे मथुरा तक घोड़े से गये। अपने पुत्र को वे मथुरा में ही एक मरहठा परिवार की देख रेख में छोड़कर स्वयं

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इलाहाबाद की ओर चल दिये, वहाँ से वे बुन्देल खण्ड होते हुए गोंडवाना गये, गोंडवाने से गोलकुंडा होते हुए २२ सितम्बर को रामगढ़ पहुँच गये।

आगरा में लगभग १० बजे शिवाजी के भागने का समाचार फैल गया। सम्राट को समाचार दिया गया कि शिवाजी पहरेदारों की आँखों में धूल झोंककर निकल गया, अथवा धरती या आकाश में समा गया। उसके स्थान पर सोने वाला हीरो जी भी निकल कर बाहर आया और पहरेदारों से कहता हुआ कि शोर मत करो शिवाजी सो रहा है, बहुत बीमार है, चला गया। पर औरंगजेब ने तुरन्त दक्षिण जाने वाली सभी सड़कों पर रोक लगा दी किन्तु सब व्यर्थ था क्यों कि शिकार निकल चुका था। इस घटना से रामसिंह का उत्तरदायित्व और भी बढ़ गया। उनको पदच्युत कर दरबार से निकाल दिया गया। इससे जयसिंह की प्रतिष्ठा को भी बहुत धक्का लगा। उससे दक्षिण की सूबेदारी का कार्य भार भी छीन लिया गया तथा उसके स्थान पर राजकुमार मुअज्जम को रखा गया।

मुगलों से सन्धि तथा युद्ध (१६६७-१६७० ई०)--कुछ समय बन्दी रहने तथा यात्रा के कष्टों के कारण शिवाजी दो माह तक अस्वस्थ रहे। इस समय सूबेदार मुअज्जम दक्षिण का स्वामी था किन्तु वह आरामतलब था। उसका दाहिना हाथ जसवन्तसिंह अपने अन्तःकरण से शिवाजी के साथ था। औरंगजेब स्वयं उत्तर पश्चिम के यूसुफजाइयों के झंझटों से मुक्त न था। अतः शिवाजी को पुनः अपनी शक्ति के संगठन का अवसर मिल गया। कुछ समय पश्चात् उन्होंने औरंगजेब को लिखा कि वे उसकी ओर से दक्षिणी रियासतों से युद्ध करने को तैयार हैं, यदि सम्राट उनकी स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करले। राजकुमार मुअज्जम ने भी इसी का समर्थन किया, अतः १६६७ ई० में दोनों में अल्पकालीन सन्धि हो गयी। इसके अनुसार शम्भू को बरार की जागीर दे दी गयी, तथा शिवाजी को राजा की उपाधि प्रदान की गयी। यह सन्धि-काल केवल तीन वर्ष चला। १६७० ई० में शिवाजी ने पुनः अपनी पुरानी रूपरेखा प्रारम्भ की। उन्होंने दक्षिण में मुगलों को दुर्बल देखकर कोंदन. पुरन्दर, मइली, तथा नन्देर आदि के दुर्ग छीन लिये तथा सूरत को पुनः लूटा। तमाम कारोबार अस्त-व्यस्त कर दिया। धीरे-धीरे उन्होंने खानदेश को जीत लिया और जहाँ से निकले वहीं मुगल सल्तनत को हानि पहुँचायी। औरंगजेब ने महताबखाँ तथा बहादुरखाँ जैसे सेनापतियों को दक्षिण भेजा पर वे सभी असफल हुए। कुछ ही समय में शिवाजी ने अपने सभी दुर्ग वापस ले लिये।

शिवा जी का राज्याभिषेक १६७४ ई०--सन् १६७४ ई० तक दक्षिण

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

में मुगल सत्ता लुप्तप्राय हो गयी। १६ जून १६७४ ई० को वैदिक रीति के अनुसार रायगढ़ दुर्ग में शिवा जी का राज्याभिषेक हुआ। वे सारे महाराष्ट्र के छत्राधिपति घोषित हुए। एक बार पुनः हिन्दू राष्ट्र की नींव डाली गयी। विजय नगर राज्य के पतन के पश्चात् यह पहला राज्य था, जिसमें हिन्दू समाज को शरण खोजनी थी। हिन्दू रीति के अनुसार राज्याभिषेक के जो भी विधि विधान हो सकते थे वे सभी पूरे किये गये। उनके क्षत्रिय न होने के कारण जो आपत्तियाँ थीं वे दूर की गयीं। उनको प्रसिद्ध वैदिक पंडित गागभट्ट द्वारा छत्रपति की उपाधि प्रदान की गयी। इसके अनन्तर उन्होंने दानादि वितरण, भेंट, अनेक पुण्य कार्य किये।

मुगलों से पुनः युद्ध--शिवा जी ने अपने राज्याभिषेक में अपार धन व्यय किया। उन्होंने सारा कोष लुटा दिया। अतः धन की पुनः आवश्यकता पड़ी। इसके लिए उन्होंने अपनी पूर्व परिचित नीति अपनायी। उन्होंने कभी मुगलों को, कभी दक्षिणी रियासतों को लूटना आरम्भ किया। इस पर सुल्तान बीजापुर तथा मुगलों ने मिलकर उन पर आक्रमण करना चाहा, पर वह उनके परस्पर मत-भेद के कारण क्रियान्वित न हो सका। शिवा जी ने अपने आक्रमण जारी रखे और कोल्हापुर पर अधिकार कर लिया। बीजापुर सुल्तान भी तंग आ गया था एक ओर शिवा जी दूसरी ओर मुगल सेनापति बहादुर खाँ उसे चैन न लेने देते थे। अतः बीजापुर सुल्तान ने शिवा जी से सन्धि कर ली। उसने शिवा जी को अपार धन दिया, पर उस की निजी दशा बहुत दिन ठीक न रही, जिससे यह सन्धि अधिक दिन न टिकी।

कर्नाटक आक्रमण १६७७–७८ ई०--सन् १६७७ ई० में शिवा जी ने पूर्वी करनाटक पर आक्रमण किया। चूंकि उत्तर में मुगल उनकी गति का अवरोध कर रहे थे अतः उन्होंने दक्षिण के इस समृद्ध भूभाग पर दाँत लगाया। इस आक्रमण का एक कारण और भी था। शिवा जी का एक सौतेला भाई व्यंको जी उनसे जलता था और उसने कर्नाटक के एक भाग पर अधिकार कर रखा था। शिवा जी का कथन था कि वे अपने भाई से पैतृक जायदाद का कुछ हिस्सा लेने जा रहे हैं। व्यंकोजी ने गोलकुंडा से सन्धि कर रखी थी, वह गोलकुंडा के साथ मिलकर शिवा जी को ही पराजित करना चाहता था।

आखिर उनका आक्रमण सफल हुआ। उन्हें भेंट पर भेंट मिलने लगी। एक के पश्चात् दूसरा प्रदेश उनके अधिकार में आने लगा। धीरे-धीरे तुंगभद्र से लेकर कावेरी तक का प्रदेश उनके अधिकार में आ गया। १६७८ ई० में व्यंको जी भी उनसे आ मिला, पर अपने मंत्री रघुनाथ पन्त हनुमन्ते के भड़काने पर वह पुनः भाग खड़ा हुआ। थोड़े समय तक वह इधर-उधर

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

भटका और दक्षिणी रियासतों की शरण रहा, पर उससे जब कार्य सिद्धि न हुई तो वह अपने भाई से पुनः आकर मिल गया। शिवाजी ने भी उसे क्षमा कर दिया, तथा यह शर्त रख दी कि वह मुसलमानों के चंगुल में पड़कर उनकी कठपुतली कभी न बनेगा। अन्ततः व्यंको जी ने तन्जौर का भाग लेकर संतोष किया।

शम्भू जी का परित्याग—शम्भू जी शिवाजी का ज्येष्ठ पुत्र था। उसका लालन पालन उचित रीति से किया गया था, पर उसका आचरण फिर भी ठीक न था। जब किसी प्रकार उसमें कोई परिवर्तन न आया, तो शिवाजी ने उसे १६७८ ई० में पन्हाला दुर्ग में बन्द कर दिया। यहाँ पर मुग़लों ने उसे गुप्त रूप से अपनी ओर मिलने का लालच दिया। शम्भू उनकी बातों में आकर पन्हाला से निकल भागा और मुग़लों के शिविर में चला गया। मुग़लों ने इस बात पर बड़ी खुशी मनायी। मुग़ल सेनापति दिलेर खां ने शम्भू से मिलकर बीजापुर पर आक्रमण किया और अपार धन लूटा। दिलेर खां ने खूब लूट-मार की तथा हिन्दू स्त्रियों पर अत्याचार किये। इस विषय में दिलेर खां की नीति से शम्भू जी सहमत न हुए। पर शम्भू जी की एक न चली, उल्टे उन्हीं पर मुग़लों की निगरानी रहने लगी। शम्भू जी ने जब अपने को इस संकट में देखा तो वे मुग़ल शिविर को छोड़कर पुनः अपने पिता से आकर मिल गये। शिवाजी भी उनको पाकर प्रसन्न हुए। थोड़े ही समय पश्चात् शिवाजी ने देखा कि शम्भू का आचरण ठीक नहीं है, अतः उन्हें पुनः नज़रबन्द करना पड़ा। इस प्रकार अपने उत्तराधिकारी का आचरण देखकर शिवाजी के अन्तिम दिन अच्छे न बीते। एक ओर उनकी पत्नी सोयरा बाई शम्भू जी को उत्तराधिकार से वंचित कर अपने अल्पवयस्क राजाराम को गद्दी पर बिठाना चाहती थी, दूसरी ओर मराठे मन्त्री मोरोपन्त पिंगले और अन्नाजी परस्पर कलह में उलझे थे। शिवाजी ने इन गुत्थियों को हल करना चाहा, पर एकाएक वे अस्वस्थ हो गये और १३ अप्रैल १६८० ई० को इस संसार के मायाजाल को त्यागकर चल दिये।

> **शिवाजी का शासन प्रबन्ध**
> १–सम्राट
> २–राजत्व का स्वरूप
> ३–उसकी परिषद्, अष्टप्रधान

शिवाजी का शासन प्रबन्धः—शिवाजी ने कुल ६ वर्ष शासन किया। इस अल्पकाल में उस अशान्त वातावरण में हो ही क्या सकता था। कुछ इतिहासकार तो उन्हें शासक गिनते ही नहीं हैं। उनका कथन है कि वह एक लुटेरे से अधिक कुछ नहीं गिने जा सकते। पर रालिन्सन के शब्दों में **"शिवाजी भी, सभी महान योद्धाओं की भांति**

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

४–स्थानीय स्वशासन
५–सैनिक व्यवस्था
६–मालगुजारी प्रबंध
७–न्याय प्रबंध
८–धार्मिक नीति
६–उपसंहार

जिनमें नैपोलियन का एक ज्वलंत उदाहरण है एक महान शासक थे, क्योंकि जिन गुणों के आधार पर मनुष्य सेनानायक बनता है उन्हीं से एक सफल संगठनकर्त्ता तथा शासक बनता है* वस्तुतः वे एक कुशल राजनीतिज्ञ तथा शासक थे। उन्होंने अपने जीवन के प्रारंभिक काल से ही शासन कला सीख रखी थी। उनके गुरु ने उन्हें सब कुछ सिखा रखा था। उन्हीं का यह काम था कि वे उस झंझावात में एक हिन्दू राज्य की स्थापना कर सके। उनके शासन या विधान में यदि कोई त्रुटि होती तो वे राज्य क्या अपने प्राण ही खो बैठते। उनका राज्याभिषेक करके उन्हें सर्वथा एक स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया गया था। शिवाजी को भी एक आन्तरिक प्रेरणा थी कि वे अपनी मातृभूमि की सेवा करें।

वे एक निरंकुश शासक थे, किन्तु वे प्रजा के हित का सदा ध्यान रखते थे, अतः दयालु निरंकुश कहे जा सकते हैं। शासन प्रबन्ध में अपनी सहायता के लिए उन्होंने आठ मन्त्री नियुक्त कर रखे थे। इस मन्त्रिमण्डल को अष्ट-प्रधान कहते थे। यह अष्टप्रधान आजकल के मन्त्रिमण्डल के समान नहीं कही जा सकती क्योंकि उसे केवल सलाह देने का अधिकार था। शिवाजी उसकी सलाह मानने को वाध्य न थे। फिर भी इनके हाथ बहुत सा कार्य सोंप दिया गया था। नीति निर्धारण के अनिरिक्त शिवाजी उनके कार्यों में बहुत कम हस्तक्षेप करते थे। इन मन्त्रियों का कार्य विभाजन इस प्रकार था।

(१) **पेशवा अथवा प्रधान मन्त्री**––इसका कार्य समस्त राज्य की देख-भाल करना था। सभी कर्मचारियों पर इसका नियन्त्रण रहता था। विशेषकर राजा की अनुपस्थिति में वही सब राज्य कार्य देखता था।

(२) **अमात्य अथवा वित्तमन्त्री**––इसका कार्य आय-व्यय का लेखा रखना, तथा मुख्य-मुख्य जिलों के हिसाब की जाँच-पड़ताल करना था।

(३) **मंत्री या वाकया नवीस**––यह राज्य के दैनिक कार्यों को लिखता

* "Like nearly all great warriors--Nepoleon is a conspicuous example--Shivaji was also a great administrator, for the qualities which go to make a capable general are those which are required by the successful organiser and statesman." *Rawlinson*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

था। इसकी दृष्टि, राजा की सुरक्षा के लिए उसके पास आगन्तुकों तथा उसके खाने पीने की चीजों पर रहती थी।

(४) **सामन्त अथवा विदेश मंत्री**--यह विदेशों से सन्धि तथा युद्ध की चर्चा में राजा को सलाह देता था। यही विदेशी राजदूत तथा प्रतिनिधियों की देख-रेख रखता था। गुप्तचरों द्वारा यह दूर-दूर समाचार भिजवाता था।

(५) **सचिव या गृहमंत्री**--यह राजा के पत्र व्यवहार को सम्हालता था। समस्त राजकीय पत्र संदेश आदि लिखना इसी का कार्य था।

(६) **पण्डितराव**--इसे दानाध्यक्ष अथवा धर्माधिकारी भी कहा जा सकता ह। धार्मिक संस्कारों की तिथि निश्चित करना, ब्राह्मण आदि को दान देना तथा चारित्रिक बातों पर ध्यान रखना इसका कार्य था।

(७) **न्यायाधीश**--इसके अधीन राज्य का न्याय-भार सम्हालना था।

(८) **सेनापति**--इसके आधिपत्य में सेना का प्रबन्ध था। यही भर्ती करता, संगठन करता, तथा अनुशासन देखता था। सैन्य संचालन का आदेश तो उस समय राजा के ही अधीन रहता था, बहुधा वही आगे चलता था क्योंकि सेना की हार का अर्थ अपनी स्थिति ही खोना था।

इन मन्त्रियों में दानाध्यक्ष तथा न्यायाधीश को छोड़कर अन्य सभी यथा अवसर सेना के साथ भी जाते थे। ये सैन्य संचालन तथा आक्रमणों में भाग लेते थे। एक बात इस प्रबन्ध में और भी विशेष थी कि राजकीय घोषणाओं पर राजा, पेशवा तथा चार अन्य मन्त्रियों की (मंत्री, सामन्त, सचिव, आमात्य) मुद्रा लगती थी। राज्य के कुल १८ विभाग थे जो विभिन्न मन्त्रियों के अधिकार में थे। इन सबके आदेश राज्य के आदेशों का ध्यान रखकर ही होते थे।

(१) **स्थानीय शासन**--शिवाजी का राज्य चार प्रान्तों में विभक्त था। प्रत्येक प्रान्त का सर्वोच्च अधिकारी एक राज्यपाल होता था। उत्तरी प्रान्त में डौग, बगलान, कोली प्रदेश, दक्षिणी सूरत, कोंकण, उत्तरी बम्बई तथा पूना की ओर का दक्षिणी पठार का भू भाग था। इसका राज्यपाल मोरो त्रिम्बक पिंगले था। दक्षिणी प्रान्त में कोंकण, दक्षिणी बम्बई, सामन्तवाडी और उत्तरी कनारा का समुद्री तट सम्मिलित था। इसका राज्यपाल अन्ना जी दत्तो था। दक्षिणी पूर्वी प्रान्त में दक्षिणी पठार के सतारा और कोल्हापुर के जिले, कर्नाटक में तुंगभद्रा के पश्चिम में देलेगाँव, तथा धारवार और कोपल जिले थे। इसका राज्यपाल दत्तो जी पन्त था। चौथे प्रान्त में वर्तमान मैसूर राज्य का उत्तरी, मध्यवर्ती और पूर्वी भाग, वेलारी के मद्रासी जिले चित्तूर तथा अर्काट सम्मिलित थे। यह भूभाग हाल ही जीता गया था अतः सैनिक

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

प्रशासन में था। ये प्रान्त बहुत से परगने तथा तरफों में बँटे थे। शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम था, जो अपने स्वायत्त शासन में सर्वथा स्वतंत्र रहता था। ग्रामों के समूहों पर देशमुख या देशपाण्डे नियुक्त थे। इनका पद पैतृक होता था। शिवाजी ने लगान वसूल करने के लिए मलिक अम्बर की पद्धति अपनायी थी। उनका किसानों से सीधा सम्पर्क रहता था। वे उपज का ३/१० भाग लगान के रूप में लेते थे।। यदा कदा आवश्यकता पड़ने पर यह दर २/५ तक कर दी जाती थी। पर इसके अतिरिक्त वे अपने पड़ोसी राज्यों से सर देशमुखी और चौथ लेते थे। सरदेशमुखी मालगुज़ारी के १/४ तथा चौथ १/१० भाग को कहते थे। उनका इन करों के लेने में तर्क यह यह था कि चूँकि तुम्हारा सम्राट मुझे अधिक सेना रखने को बाध्य करता है अतः मैं तुम्हारी ही रक्षा के लिए यह व्यय भार उठाता हूँ, जिसका एक अंश तुमसे ले लेता हूँ। इस प्रकार शिवाजी ने अपने शासन काल में देश की सुव्यवस्था की तथा धनिकों से लेकर निर्धनों और पीड़तों तक धन पहुँचाया।

(२) **सैनिक व्यवस्था**–शिवाजी के पूर्व मराठा सेना सुव्यवस्थित न थी। वह लगभग ६ माह कृषि करने में बिताती थी, और शेष वर्ष सैनिक अभियानों में। शिवाजी ने सबसे पहले इसी बात पर ध्यान दिया। वे स्वयं एक कुशल सेनानायक थे। उनका कहना था कि सैनिक को सैनिक बनकर ही रहना चाहिये, किसान नहीं। उसे वर्ष भर का वेतन मिलना चाहिये, वर्षाकाल में उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये। अतः उन्होंने एक क्रमशः श्रेणीबद्ध सेना का संगठन किया। उनकी सेना में पैदल, घुड़सवार, हाथी, नौसैनिक सभी थे। उनकी मृत्यु के समय उनकी सेना में ४५००० पागा, ६०००० सिलेदार घुड़सवार, एक लाख मावले सिपाही और १२६० हाथी थे। इनमें हाथियों की संख्या विवाद ग्रस्त है।

इस सैनिक संगठन का स्वरूप इस प्रकार था। सेना का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग राजकीय घुड़सवारों का प्रसिद्ध पागा होता था। पच्चीस साधारण सैनिकों के ऊपर † एक हवलदार, हर पाँच हवलदारों पर एक जुमलादार और हर दस जुमलादारों पर एक हज़ारी होता था। इस प्रकार एक हज़ारी के अधीन (२५×५×१०) १२५० सैनिक रहते थे। पागा में सबसे बड़ा पद पंचहज़ारी होता था। समस्त पागा सेना पर सर-ए-नौबत अर्थात् सेनापति होता था। इसके अतिरिक्त सिलेदार घुड़सवारों की एक और सेना थी।

† २५ घुड़सवारों की एक टुकड़ी को घट कहते थे।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सिलेदार अपने घोड़े तथा अस्त्र-शस्त्र अपने पास से खरीदते थे। ये राजकीय पागा से हीन समझे जाते थे, पर ये भी अश्वसेना के सेनापति के आधीन रहते थे।

इसी भाँति पदाति सेना की टुकड़ियों का भी संगठन था। इसमें ९ सिपाहियों (पाइक) के ऊपर एक नायक, हर पाँच नायकों पर एक हवलदार, दो या तीन हवलदारों पर एक जुमलादार रहता था। दस जुमलादारों पर एक हज़ारी रहता था। सात हज़ारियों पर एक सरेनौवत होता था। शिवाजी की सेना में दुर्गों की बड़ी प्रमुखता थी। उनके अधीन लगभग २८० दुर्ग कहे जाते हैं। वे इनकी मरम्मत तथा सुरक्षा का पूरा ध्यान रखते थे। इसके अतिरिक्त उनके पास एक नौसेना भी थी। इसमें लगभग २०० वीर सैनिक रहते थे। शिवाजी के तोपखाने की संख्या का ठीक ज्ञान नहीं है। आनर्म के अनुसार उनके पास ८ तोपें थीं जिन्हें उन्होंने सूरत के संचालक से खरीदा था।

शिवाजी की सेवा में हिन्दू-मुसलमान सभी थे। यदा कदा वे अपने अधीन अमीरों की टुकड़ियाँ भी बुला लेते थे, पर उन पर वे बहुत भरोसा न करते थे। सिपाहियों को बहुधा नकद वेतन दिया जाता था। उन्हें अपने अधिकारियों पर पूर्ण विश्वास रहता था। विशेष परिश्रम तथा उत्साह के लिए सदा पारितोषिक दिया जाता था। शिवाजी की सेना में अपूर्व अनुशासन तथा तत्परता थी। इसी की बदौलत वे अनेक विजयें कर सके।

(३) **मालगुजारी प्रबन्ध**--शिवाजी का मालगुजारी प्रबन्ध रैयतवाड़ी कहा जाता है। शिवाजी जागीरदारी तथा ज़मीदारी के विरुद्ध थे। वे किसानों को जागीरदारों, देशमुख व देशपाण्डे के प्रभुत्व में न रखना चाहते थे बल्कि किसानों से सरकार का सीधा सम्बन्ध चाहते थे। उन्होंने सारी भूमि को काठी द्वारा नपवा दिया था। उन्होंने पुराना सूबा, सरकार, परगना और मौजे वाला विभाग हटाकर प्रांत, तरफ और मौजे वाला प्रबन्ध रखा था। तरफ में लगान का अधिकारी कारकुन तथा प्रान्त में सूबेदार होता था। सूबेदार ४०० हून वेतन तथा ४०० हून भत्ते के निमित्त हर वर्ष पाता था। शिवाजी ने पहले-पहल लगान की दर उपज का $\frac{३}{१०}$ भाग निश्चित किया था, पर जब सभी अन्य कर हटा दिये जाते थे तो यह $\frac{४}{१०}$ अर्थात् $\frac{२}{५}$ कर दिया जाता था। शिवाजी के शासन काल में किसान को कभी कष्ट नहीं हुआ। यदि कभी अकाल पड़ जाता तो सरकार की ओर से तकावी बाँटी जाती थी, जिसे कुछ समय पश्चात् लेने वाला सुविधापूर्वक अदा कर सके। आज भी महाराष्ट्र में शिवाजी की उदा-

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

रता की कहानियाँ सुनने को मिलती हैं। ग्रान्ट डफ भी इसी का समर्थन करते हैं—

चौथ व सरदेशमुखी—इसके अतिरिक्त शिवाजी चौथ तथा सरदेशमुखी भी वसूल करते थे। श्री रानाडे के अनुसार चौथ कोई युद्धदण्ड अथवा उत्तरदायित्व हीन लगान न था। यह विदेशियों के आक्रमण से रक्षा करने के बदले लिया जाता था। आपने इसकी वैलेजली की सहायक सन्धि के धन से तुलना की है। आप लिखते हैं—

"जिन शक्तियों की शिवाजी रक्षा करते थे, उनकी स्वीकृति के अनुसार चौथ की एक निश्चित रकम वसूल की जाती थी। इस रकम से वे एक सेना रखते थे, जो उन शक्तियों की विदेशियों के आक्रमण से रक्षा करती थी। वस्तुतः यह शिवाजी का ही मौलिक विचार था, जिसे मारक्विस बैलेजली १२० वर्ष पश्चात् अपने काम में लाकर सफल हुआ।" †

श्री यदुनाथ का मत इससे कुछ भिन्न है। आपका कथन है—

"चौथ देना मराठा सैनिकों तथा राज्य अधिकारियों की अनवांछित उपस्थिति से बचने का उपाय था, किन्तु इसके देने से शिवाजी पर कोई आंतरिक सुरक्षा अथवा विदेशी आक्रमण से रक्षा का भार लागू न होता था। मराठे केवल अपने लाभ की चिन्ता करते थे, न कि उस पीड़ित शिकार की जिसे वे पैसा लेकर छोड़ देते थे। यह तो बाहरी शत्रु से रक्षा करने के लिए की गयी सन्धि न होकर, एक लुटेरे से अपनी जान बचाने की कीमत मात्र थी।" *

---

† "The demand of chauth was subsequently added with the consent of the powers whose protection was undertaken against foreign aggression on payment of fixed sums for the support of troops maintained for such services. This was the original idea as worked out by Shivaji and it was the same idea which in Marquis of Wellesley's hands bore such a fruit a hundred and twenty years later."

Ranade.

* "The payment of chauth merely saved a place from the unwelcome presence of the Maratha Soldiers and civil underlings, but did not impose on Shivaji any corresponding obligation to guard the district from foreign or any internal disorder. The Marathas looked only to their own gain and not to the fate of

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पर मराठा इतिहासकार सर देसाई के अनुसार चौथ उपद्रव करने वालों से अथवा शत्रु से भेंट के रूप में ली जाती थी। अनेक अन्य आक्रमणकारी भी ऐसा ही धन वसूल करते रहे चाहे उन्होंने उसका नामकरण चौथ न किया हो। शिवाजी वस्तुतः धन की कमी को उस युग में इस शान्ति से न पा सकते थे जिससे आज प्राप्त किया जा सकता है। डा० सेन का मत है कि चौथ वह धन था जो पराजितों से सैनिक वसूल किया करते थे। यह जीते गये राज्य की आय का चौथाई अंश होता था। इसकी अदायगी का अर्थ शिवाजी की प्रभुता मानना था।

देसाई संस्कृत शब्द देश स्वामी का अपभ्रंश है। सर देशमुख अनेक देशमुखों अथवा देसाइयों पर अधिकारी होता था अतः उसकी सेवा के लिए धन दिया जाता था। शिवाजी अपने को वंशाधिकार से सर देशमुख कहते थे। अतः वे १०% सर देशमुखी वसूल करते थे। पर यह कोई युक्तिसंगत बात नहीं।

न्याय प्रबन्ध--इस शासन प्रबन्ध में न्याय-व्यवस्था प्राचीन प्रणाली के अनुसार थी। ग्रामों में पंचायतें न्याय का कार्य करती थीं। फौजदारी के अभियोग पटेल सुना करता था। पर फौजदारी तथा व्यावहारिक दोनों ही प्रकार के अभियोगों की अपील न्यायाधीश ही सुनता था। न्यायाधीश स्मृतियों के आधार पर न्याय करता था। अपराधियों को कड़े दण्ड दिये जाते थे। न्याय के लिए अन्तिम अपील हाज़िर मजलिस में होती थी। न्याय शीघ्र और पक्षपातहीन होता था।

धार्मिक नीति--शिवाजी की धार्मिक नीति उनके कट्टर हिन्दू होते हुए भी सहनशीलता की थी। उन्होंने किसी मुसलमान को नमाज और रोजे से न रोका था। उनके शिविर में कभी यवन कन्या आ गयी तो उसे तुरन्त उसके माँ-बाप के समीप भेजा गया। उनकी सेना में हिन्दू-मुसलमान सभी थे। यदि उनके सैनिकों के हाथ कुरान पड़ जाती थी तो वे उसे अपने मुसलमान सहयोगियों को पढ़ने के लिए दे देते थे। इतिहासकार खफी खां जो शिवाजी से श्रद्धा नहीं करता था, शिवाजी की धार्मिक सहिष्णुता की प्रशंसा करता है। शिवाजी राज्य कर्मचारियों की नियुक्ति करते समय भी कोई भेद भाव न रखते थे। अन्यथा वे भक्त हिन्दू थे, जो अपने धर्म की रक्षा के लिए अपना जीवन दे सकते थे। वे गो ब्राह्मण के पुजारी थे, उनके गुरु सन्त रामदास थे, जिनसे

---

their prey after they had left. The chauth was only a means of buying off one robber and not a subsidiary system for the maintenance of peace and order against all enemies."

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उनको धार्मिक विश्वास और चेतना मिली थी। कहते हैं एक दिन गुरु जी को भिक्षा माँगते जाते देखकर शिवाजी ने अपना सारा राज्य ही उन्हें समर्पित कर दिया, पर गुरु ने उसे प्रसाद रूप लौटा कर उन्हें ही उसके संचालन का भार सौंप दिया।

उपसंहार—सत्रहवीं शताब्दी में इस बात की परम आवश्यकता थी कि कोई नर नायक उत्पन्न होता। शिवाजी ने अपने युग की स्थिति को बहुत शीघ्र सही रूप से पढ़ लिया तथा उसी के अनुसार कार्य किया। वे बाल्यकाल से ही एक नयी नीति अपनाने के लिए कटिबद्ध थे। परिश्रमी भी वे कम न थे, अतः अपने अध्यवसाय तथा अपनी चतुरता के बल पर उन्होंने सामने आयी सभी विपत्तियों का डट कर मुकाबला किया। उन्होंने अपने बाहुवल से एक नये साम्राज्य की सृष्टि की। उसके संगठन का उचित ध्यान रखा। अपनी सैनिक व्यवस्था ठीक की तथा कृषि आदि की उचित देख-रेख रखी। अपने ६ वर्ष के शासन काल में वे अपनी प्रजा के प्रिय बन गये। उनके उदार शासन की कथाएँ आज भी सुनने को मिलती हैं।

शिवाजी के इतना प्रयत्न करने पर भी उनका राज्य चिरस्थायी न हुआ। वह उनके पूर्व हुए अलाउद्दीन खिलजी अथवा उनके सौ वर्ष बाद आये रणजीत सिंह की भाँति सैनिक संगठन पर आधारित था। इसका कारण बहुत स्पष्ट है कि उनका सारा समय अपने शत्रुओं का दमन करने तथा उनसे कड़ा मुकाबला करने में ही निकल गया। मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर भी तो सारी उम्र लड़कर ४ ही वर्ष शासन कर पाया था। इसके अतिरिक्त मराठा समाज में एक समाज सुधारक की घोर आवश्यकता थी, अतः उसकी पूर्ति भी शिवाजी ही कर सके, उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं। मराठों के परस्पर कलह ने ही उनके पश्चात् देश को दूसरों के हाथ बेच दिया। शिवाजी इन सब को अपने नियंत्रण में रख सके थे। उन्हें अपनी मातृभूमि से श्रद्धा थी। श्री यदुनाथ सरकार के अनुसार तो शिवाजी की राजनीतिक सफलताओं ने ही उनकी नींव खोखला कर दी थी। आपका कहना है कि उनके हिन्दू राज्य का आधार स्तम्भ धार्मिक रूढ़िवाद पर टिका था। अतः इसके बीज में ही उसका विनाश छिपा था। श्री टैगोर के अनुसार भी शिवाजी की स्थिति सुदृढ़ न थी। आपका कहना है कि जब कभी सारे देश में उत्तेजना छा जाती है, तो धारणा हो जाती है कि देश संगठित हो गया, किन्तु उस उत्तेजना से हमारे सामाजिक शरीर में छिद्र हो जाते हैं। उसमें दरारें पड़ जाती हैं, वे गुप्त रूप से हमारा विनाश करती रहती हैं। इसी प्रकार शिवाजी ने एक उत्तेजना फैलाकर वर्ण भेद को हटाने का प्रयत्न किया किन्तु समाज में पूर्व से गढ़ा हुआ वर्णाश्रम धर्म

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मिटने वाला न था। भारत जैसे विशाल देश को एक सूत्र में बाँधना सरल न था। महाराष्ट्र को शिक्षित बनाना तथा उनका मानसिक स्तर उठाना सरल न था। शिवाजी के लिए यह एक रेत की रस्सी थी जो कभी भी टूट जाती। साथ ही उनके उत्तराधिकारियों में इतना बल न था कि उनके प्रारम्भ किये हुए कार्य को वे पूरा कर सकते। शिवाजी को भी हुमायूँ की भाँति यदि कोई अकबर मिलता जो नया साम्राज्य खड़ा कर अपने पैतृक राज्य को साम्राज्य बनाता तो स्थिति दूसरी ही होती।

शिवा जी का चरित्र

१- प्रतिभापूर्ण महा-मानव
२-हिन्दू राष्ट्र संस्थापक
३- कूटनीतिज्ञ
४-उच्च नैतिकस्तरयुक्त
५-एक जन्म जातनेता। निर्भय नहीं
६- उत्तम शासक व प्रबन्धक
७- कुछ सम्मतियाँ

मुसलमानी रियासत के एक छोटे से जागीरदार से उन्नत होकर छत्रपति बनना शिवाजी की प्रतिभा का ही द्योतक है। उस अशान्त और धूमिल वातावरण में प्रकाश प्रदान करना शिवाजी का ही कार्य था। उन्होंने मराठों को संगठित किया। उन्हें राष्ट्र का स्वरूप प्रदान किया। उनका नैतिक स्तर बहुत उच्च था। वे कभी किसी विलासता में न फँसे। उन्हें मराठे दैवी गुणों से परिपूर्ण मानते हैं। वस्तुतः उन्होंने ही मराठों को मुसलमानों के चंगुल से मुक्त किया था। वे उनके लिए महामानव थे, जिनकी आज भी वे ही नहीं समस्त हिन्दू जनता पूजा करती है। वे गो ब्राह्मण के संरक्षक कहे जाते हैं। राजनीति के पण्डित उनमें कोई भी त्रुटि ढूंढ़ निकालें, पर समाज के लिए वे एक आदर्श व्यक्ति थे।

शिवाजी की टीका-टिप्पणी सबसे अधिक खफी खां ने की है, और उसका समर्थन यूरोपीय लेखकों ने किया है। पर आज नवीनतम शोधों के आधार पर इनके विचार भ्रमपूर्ण सिद्ध हो चुके हैं। शिवाजी को हैदरअली तथा रणजीतसिंह का अग्रदूत कहा जा सकता है। उन्हों ने इतने महान विरोध तथा प्राणघातक आपत्तियों का सामना करके अपने विरोधियों को मुँह तोड़ उत्तर दिया तथा उनके विरुद्ध राज्य की स्थापना की। उनकी लूट-खसोट शत्रु को आतंकित करने को थी। उनमें केवल आदर्शवाद न था, वे क्रियात्मकता को खूब समझते थे। दिल्ली सम्राट की कूटनीति उनकी समझ में भली-भाँति आ गयी थी। उसका प्रतिरोध उन्होंने आयोजनाएँ बना कर किया। यदि उनका एक निश्चित मन्तव्य न होता तो वे भी अन्य हिन्दू अमीरों की भाँति मुग़लसत्ता के एक सेनानायक होते। पर उनको मन्दिरों तथा मूर्तियों का अपमान सह्य न था, अतः उन्होंने हर कदम उसी के प्रतिकार के लिए उठाया।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उन्होंने उस मन्तव्य की क्रियात्मकता का अनुमान लगाकर ही सदा कार्य किया, जिससे वे उसमें बहुत अंशों तक सफल भी हुए।

लूट-मार में उनका अमोघ विश्वास था, पर अपने सैनिकों को उनका आदेश रहता था कि वे कभी स्त्री, बच्चों पर हाथ न उठायेंगे। कभी किसी की धार्मिक पुस्तक का अनादर न करेंगे। इन विषयों में उनकी आज्ञाएँ कठोर थीं। यदि इनका कोई उल्लंघन करता तो दण्ड का भागी होता था। श्री सरकार का मत है कि कोई भी लुटेरा राज्य की स्थापना नहीं कर सकता था। पर यह कहना युक्तिसंगत नहीं क्योंकि हम देखते हैं कि उनके पश्चात् रणजीत सिंह तथा सिंधिया जैसेवीरों ने विदेशी सहायता का सहारा लिया, जबकि शिवाजी के लिए यह सम्भव ही न था। शिवाजी ने तैमूर या नादिरशाह की भाँति कहीं अमानुषिक अत्याचार भी नहीं किये। महाजन ने लिखा है कि **'शिवाजी केवल मराठा जाति के ही निर्माणकर्त्ता न थे, अपितु वे मध्यकालीन भारतवर्ष के निर्माणकर्त्ता थे। शिवाजी जैसे सच्चे राष्ट्रनायक राजा की गाथा समस्त मानव जाति को एक महान ऐतिहासिक देन है, जो युग-युगान्तर तक भावी युगों के मस्तिष्कों को नई कल्पना, नई स्फूर्ति, नई विचारधारा, और नई कर्मशक्ति की प्रेरणा देती रहेगी।"**

वे हिन्दू समाज के जन्मजात नायक थे। उनमें जन्मजात नेता का व्यक्तिपूर्ण आकर्षण था, जिससे उनके सम्पर्क में आने वाला सदा मुग्ध हो जाता था। उनके अधिकारी बड़ी भक्ति से उनकी आज्ञाओं का पालन करते थे। उनको मनुष्य स्वभाव का इतना अच्छा अध्ययन था कि उनका चुनाव कभी असफल नहीं हुआ। रालिन्सन के अनुसार **"उनका समय अन्धकारमय तथा भयंकर था। कम से कम शिवाजी के हाथ औरंगजेब की तरह अपने कुटुंबियों के रक्त से न सने थे। वे कभी भी जान-बूझ कर अथवा क्रोधान्ध होकर अत्याचारी नहीं बने। स्त्रियों का, मस्जिदों का, न लड़ने वालों का सम्मान रखना, युद्ध के पश्चात् व्यर्थ का रक्त पात न होने देना, युद्ध बन्दी अधिकारियों और सैनिकों को मानपूर्वक छोड़ देना कुछ, कम चारित्रिक महानताएँ न थीं।"***

---

* "His was a dark and violeut age and atleast Shivaji's hands were not stained like those of Aurangzeb with the blood of his kindred. He was never deliberately or wantonly cruel. To respect women, mosques, and non-combatants, to stop promiscuous slaughter after the battle, to release or dismiss with honour captured officers and men—these are surely no light virtues." ... ... *Rawlinson*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शासक और प्रवन्धक के रूप में शिवाजी उत्तम कोटि के व्यक्ति थे। उन्होंने एक शक्तिशाली राज्य का निर्माण किया। उसमें अच्छी शासन व्यवस्था की तथा अपनी प्रजा का पितातुल्य ध्यान रखा। उनकी शासन व्यवस्था का स्वरूप ऐसा संगठित था कि उनकी अनुपस्थिति में वाधा न पड़ती थी। उनमें कार्य करने की वह तत्परता की कि उनके शत्रु भी देखकर दंग रह जाते थे। सबसे बड़ी वात तो यह थी कि उनको न उनकी सफलताओं ने, न राजत्व ने ही कभी अन्धा वना पाया। वह सदा स्थिर चित्त और उदारता से कार्य लेते रहे। उनके पश्चात् उनके राज्य की अवनति का कारण उनकी त्रुटि न थी, बल्कि एक सैनिक संगठन से बना हुआ शासन विशेष योग्यता का व्यक्ति ही सम्हाल सकता है, दुर्बल नहीं, दूसरे मराठा जागीरदार उठ खड़े हुए थे, वे अपने अपने स्वार्थ में तल्लीन थे। समय भी अशान्त था।' यूरोपीय जातियों ने अपना कुचक्र प्रारम्भ कर दिया था अतः उनका बोया बीज पनप भी न पाया था कि मुरझा गया। अन्त में ग्राण्ट डफ तथा सरकार के शब्द स्मरणीय हैं।

"शिवाजी ने जो प्रदेश जीता, अथवा जो धन एकत्र किया, मुगलों के लिए वह इतना भयंकर न था जितना उनका निजी आदर्श। मराठों में जगायी उनकी एक नई प्रणाली तथा विचार-धारा, उनमें फूँकी हुई एक नवीन प्रेरणा और स्फूर्ति हुई।"*

"नये सिरे से प्रारम्भ किये गये अत्याचार के उस युग में हिन्दू संसार के लिए शिवाजी आकाश में नवीन नक्षत्र की भाँति उदित हुए। वे हिन्दूधर्म चिह्न मस्तक पर तिलक तथा ब्राह्मण के रक्षक सिद्ध हुए। उनका ही नहीं उनके पश्चात् उनका दरबार औरंगजेब के विरोधियों का गढ़ बन गया।†"

---

* "The territories and the treasures, however, which Shivaji acquired were not so formidable to the Mughals as the example he had set the system and habits he had introduced and the spirit he had infused into a larger proportion of the Maratha people."

Grant Duff.

† "To the Hindu world in that age of renewed persecution, Shivaji appeared as the star of new hope, the protector of the ritualistic paint mark *(Tilak)* on the forehead of the Hindus and the saviour of Brahmans. His court, as later his sons, became the rallying point of the opposition to Aurangzeb."

J. N. Sarkar.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शिवाजी के उत्तराधिकारी

शम्भूजी वा सम्भा जी १६८०–८६ ई०––शिवाजी के देहावसान के पश्चात् उनका बड़ा पुत्र सम्भा जी गद्दी पर बैठा। वह अपने पिता के आरम्भ किये हुए कार्य को पूरा न कर पाया। जिस समय औरंगज़ेब दक्षिणी रियासतों के विनाश में लगा था, उस समय वह यह न समझ सका कि यह उसके विनाश की भी पहली सीढ़ी होगी। उसका राज्यारोहण भी संकटमय रीति से हुआ।

शिवाजी शम्भू जी के कृत्यों से प्रसन्न न रह सके थे अतः उन्होंने उसे बन्दी बना रखा था। उनकी मृत्यु के समय उनकी दूसरी पत्नी से पुत्र राजाराम केवल दस वर्ष का था, पर उनकी स्त्री सोयराबाई ने उसी का अभिषेक किया। उधर पन्हाला में बन्द शम्भू जी ने किलेदार की हत्या करा दी तथा किले पर अधिकार कर लिया। साथ ही उसने प्रधान सेनापति हम्मीर राव मोहिते को अपनी तरफ मिला लिया। उसने मोरोपन्त पिंगले के पुत्र नीलोपन्त को अपना पेशवा नियुक्त किया। कुछ ही समय में (३० जनवरी १६८१ ई०) वह राज्य का स्वामी हो गया। सम्भा जी विलास-प्रिय था, अतः उसके अधिकारी उससे प्रसन्न न रह सके। उसके कुटुम्बी तो उसे हटाना ही चाहते थे, उसकी हत्या का षडयन्त्र रचा जाने लगा, किन्तु उसको इनकी गन्ध मिल गयी और सारा भंडा फूट गया। सम्भा जी ने सभी विरोधियों को कड़े दण्ड दिये। इनमें उनकी एक सौतेली माता भी थी। धीरे-धीरे अपने पिता के सेवकों से उसका विश्वास उठ गया। अतः उसने कन्नौज के एक प्रसिद्ध कवि कलश को अपना सलाहकार चुना।

उसके शासन काल की एक विचित्र घटना है। औरंगज़ेब का पुत्र अकबर अपने पिता के विरुद्ध हो गया। उसने मराठों की शक्ति से लाभ उठाकर मुग़ल सिंहासन छीनना चाहा। इसके लिए उसने सम्भा जी को लिखा। सम्भा जी उसके स्वागत के लिए प्रस्तुत हो गया। अकबर दक्षिण गया, उसकी सम्भा जी से सलाह हुई, पर सम्भा जी को उस पर भरोसा न हुआ। वह यह विचार करने लगा कि कहीं यह भी औरंगज़ेब का ही एक यत्न न हो, जिससे वह उसकी शक्ति को नष्ट कर सके। इसके अतिरिक्त मराठे इस स्थिति में न रह गये थे कि वे उत्तर के किसी अभियान को चला सकें। औरंगज़ेब भी अपने पुत्र के भागने पर सतर्क हो गया था, उसने भी उनकी मित्रता में भेद उत्पन्न कराने की चेष्टा की, साथ ही उत्तर का मार्ग पूर्णरूप से अवरुद्ध कर लिया। उसने अकबर को उत्तर की ओर बढ़ने का कोई रास्ता न छोड़ा, बल्कि मराठों के दुर्ग छीनना प्रारम्भ कर दिये।'

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अकबर ने बहुत चाहा कि वे दोनों औरंगज़ेब के प्रधान स्थानों पर सम्मिलित आक्रमण करें, पर उसे कोई प्रोत्साहन न मिला। इसी बीच उसने देखा कि मुग़लों ने दक्षिणी रियासतों को (बीजापुर, गोलकुंडा) अपने अधीन कर लिया, अतः अकबर एक अँग्रेजी जहाज़ के सहारे ईरान चला गया (१६८७ ई०)। इस प्रकार उसका ६ वर्ष का दक्षिण अभियान व्यर्थ सिद्ध हुआ।

इसी बीच (१६८१–८३ ई०) सम्भा जी ने जंजीरा के सिद्दियों तथा पुर्तगालियों पर आक्रमण किया क्योंकि औरंगज़ेब ने उन्हें उसके विरुद्ध लड़ने को भड़का रखा था। सम्भा जी ने पुर्तगालियों को हरा कर उनका दुर्ग छीन लिया, किन्तु उधर से मुग़ल दबाव बढ़ गया अतः सम्भा जी को अपना घेरा उठाना पड़ा।

इसके अनन्तर औरंगज़ेब ने मराठा सरदार को बन्दी बनाने का पूरा जाल फैला दिया। इसका फल यह हुआ कि मराठों को मुग़लों से ही सीधे-सीधे युद्ध करना पड़ा। मराठों ने मुग़लों के औरंगाबाद से लेकर बुरहानपुर तक के प्रदेश उजाड़ दिये। यह देख कर औरंगज़ेब ने सतारा पर आक्रमण किया। इस युद्ध में मराठों का प्रधान सेनापति हम्मीर राव मोहिते मारा गया। अब तो मुग़लों ने मराठों को और भी घेरना प्रारम्भ किया अतः शम्भू जी अब अपनी रक्षा के हेतु भागने लगा। उसे आशा थी कि वह विशालगढ़ में कवि कुलेश के समीप सुरक्षित होगा, वह उससे जा मिला, किन्तु होनहार कुछ और ही था। उसके शरण-स्थल का मुग़लों को पता लग गया। वे अचानक उस पर टूट पड़े। मुकर्रब खां नामक एक सेनापति ने सम्भा जी को कवि कुलेश सहित बन्दी बनाया तथा उनको औरंगज़ेब के समक्ष प्रस्तुत किया। औरंगज़ेब ने उनकी जो दुर्दशा की वह इस प्रकार है :—

"शिविर से चार मील दूर सम्भा जी तथा कवि कुलेश को विदूषकों के कपड़े पहना कर, उनके सिरों पर मूर्खों की लम्बी नोकदार पट्टियाँ बाँधकर, टोपियाँ पहिना कर, ऊँटों पर बिठाकर, तुरही, नगाड़े बजाते हुए उन्हें बहादुरगढ़ लाया गया। लाखों दर्शकों ने सम्भा जी को सड़क से इस प्रकार देखा जैसे कोई किसी दानव या वन्य पशु को देखने आया करता है। इस प्रकार अपमानित कर बन्दियों को सारे शिविर में घुमाया गया और अन्त में दरबार में शान से बैठे हुए सम्राट के सम्मुख लाया गया। उनको देखते ही औरंगज़ेब अपने सिंहासन से उतरा तथा गलीचे पर आकर घुटने के बल बैठ गया और उसने महान

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

विजय के दाता परमेश्वर को शतशः धन्यवाद दिया । ध्यान से देखने के पश्चात् बन्दियों को बन्दीगृह में भेज दिया गया ।†

खफी खां के अनुसार कवि कुलेश ने औरंगज़ब की इस भक्ति को देख कर एक छन्द पढ़ा, जिसका अभिप्राय था कि ए राजन् ! आपको देखकर आलमग़ीर अपने सिंहासन पर न टिक सका, उसे आपके सम्मान के लिए आखिर उतर कर आना पड़ा ।

कहा जाता है कि औरंगज़ेब ने सम्भा जी से ज्ञात कराया कि उसका गुप्त पैतृक धन कहां रखा है, तो सम्भा जी ने औरंगज़ेब तथा उसके पूर्वजों को गाली दी और कहा कि अपनी मित्रता के मूल्य में सम्राट उससे अपनी कन्या विवाह क्यों न दे । इस पर औरंगज़ेब ने उसे तथा उसके साथियों को कठोरता से मृत्यु के घाट उतार दिया । उनका अंग-अंग काटकर कुत्तों को खिलाया गया किन्तु इसका परिणाम औरंगज़ेब के लिए ही अच्छा न हुआ । जो कार्य सम्भा जी स्वयं न कर सका वह उसकी निर्दय मृत्यु ने कर दिया । इसके कारण मरहठे पुनः संगठित हो गये । उन्होंने मुग़लों से निरन्तर युद्ध करने की ठान ली । मुग़लों ने भी मरहठों के विरुद्ध अपना संघर्ष जारी रखा । उन्होंने पुनः अनेक दुर्ग जीत लिये । इक्तिदा खां ने रायगढ़ जीत लिया और सम्भा जी के पुत्र साहू सहित उनके परिवार को पकड़ लिया । अतः शिवाजी की दूसरी पत्नी से उत्पन्न पुत्र राजाराम योगी के वेष में भागकर करनाटक के जिंजी के किले में जा डटा ।

---

† "Four miles outside the encampment Sambhaji and Kavi Kulesh were dressed as buffoons with long fool's cap and bells placed on their heads, mounted on camels—and brought to Bahadurgarh with drums beating and trumpets pealing. Hundreds of thousands of spectators lined the roads to gaze at Sambhaji as a new kind of wild beast or demon. Thus degraded the captives were slowly paraded through the entire camp and finally brought to the emperor who was sitting in full Darbar for the occasion. At the sight of the prisoners Aurangzeb descended from the throne and kneeling down on the carpet bowed his head to the ground in double thankfulness to the giver of this crowning victory. After he had looked at them the captives were removed to prison."

J. N. Sarkar.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(२) राजाराम (१६८९-१७०० ई०)--पहले संकेत किया जा चुका है कि अपने पिता की मृत्यु के समय राजाराम केवल १० वर्ष का था। इसके अनन्तर वह अपने भाई सम्भा जी का बन्दी रहा। अतः उसकी समुचित शिक्षा दीक्षा भी न हो सकी थी। सौभाग्य से उसे सलाहकार अच्छे मिल गये थे। रामचन्द्र पन्त और प्रहलाद नीरो इनमें प्रमुख थे। शान्ता और धन्ना जैसे वीर उसके अन्य सहायक थे जो रणक्षेत्र में उसकी सहायता करते थे। शम्भू की गिरफ्तारी को देखकर उसके सहायकों ने राजाराम को राजा घोषित किया। राजाराम ने गद्दी पर बैठते ही मुग़लों के विपरीत युद्ध आरम्भ कर दिया। मराठे भी अपने राष्ट्र को पतनावस्था में देखकर एक बार पुनः सन्नद्ध हो गये।

शीघ्र ही राजाराम ने चौथ और सरदेशमुखी वसूलना प्रारम्भ कर दिया। यह वसूली केवल मराठा प्रान्तों से ही नहीं बल्कि मुग़ल प्रान्तों से भी की जाने लगी। औरंगज़ेब ने यह देखकर अपने सेनापति जुल्फिकार को उसके विरुद्ध जिंजी तक भेजा पर जिंजी का दुर्ग बहुत मज़बूत था, अतः कोई आश्चर्य नहीं कि राजाराम ने मुग़लों को खदेड़ दिया। जब जुल्फिकार का वश न चला, और कामवख्श पर से औरंगज़ेब का विश्वास उठ गया, तो उसने दोनों को वापस बुला लिया। १६९४-९७ ई० के बीच औरंगज़ेब ने अपने कई सेनापति इस अभियान में भेजकर आजमाये, पर उसे कोई सफलता न मिली। इसका प्रमुख कारण यह था कि मराठों की शक्ति एक स्थल पर केन्द्रित न थी, जो मराठा सरदार जिधर चाहता था, उधर ही लूट-मार कर देता था।

पर मुग़लों के अपार साधन चुक न गये थे, वे १६९८ तक हताश न हुए और जिंजी के दुर्ग को घेरे रहे। आखिर राजाराम को वहाँ से चल कर सतारा में शरण लेनी पड़ी। उसका जाना था कि जिंजी का घेरा जीत लिया गया। १७०० ई० तक वह सतारा को रख सका, पर इसी वर्ष उसकी मृत्यु हो गयी। इसकी मृत्यु के पश्चात् सतारा का दुर्ग भी मुग़लों के हाथ चला गया। उसके पश्चात् कोई युवक ऐसा न था जो मराठा शक्ति का संगठन करता, अतः राजाराम की पत्नी तारावाई ने पहले अपने पुत्र कर्ण को गद्दी पर बिठाया, पर कुछ सप्ताह के पश्चात् ही उसकी मृत्यु हो गयी; जिससे उसे अपना दूसरा पुत्र शिवाजी द्वितीय गद्दी पर बिठाना पड़ा। साथ ही उसकी रक्षा का भार उसे स्वयं उठाना पड़ा।

ताराबाई--ताराबाई का पुत्र अभी केवल ४ वर्ष का था, अतः संरक्षक का कार्य उसी को करना पड़ा। उसने अपने पति की मृत्यु का शोक भी न मना पाया था कि उस पर भी आपत्ति के बादल आ गये। इस समय पन्हाला और विशाल गढ़ के दुर्ग मराठा राज्य की राजधानी का कार्य कर रहे थे। अतः

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

औरंगज़ेब ने अपनी सेना को पन्हाला जीतने की आज्ञा दी। ताराबाई ने बड़ी वीरता तथा निर्भीकता से सेना का संचालन किया। उसके समय में भी मराठों ने बड़े जोश के साथ लड़ना प्रारम्भ कर दिया। आये दिन वे मुग़लों को लूटने लगे। खफी खाँ के अनुसार उसने मुग़ल प्रदेशों को नष्ट करने के लिए मालवा और मन्दसौर तक सेनाएँ भेजीं। औरंगज़ेब के यत्न विफल होने लगे। उन्होंने १७०३ ई० में बरार पर तथा १७०६ में गुजरात पर आक्रमण किया। मुग़लों को जो दुर्ग मिले वे वीरान होने के वाद ही मिल सके। कहा जाता है कि कुछ भूभाग तो इस बुरी तरह उजाड़ दिया गया कि ४-५ दिन यात्रा करने पर भी कहीं दीपक का पता न चलता था। १७०४ ई० में एक अन्य दैवी आपत्ति भी आ गयी। दक्षिण में वर्षा नहीं हुई, और महामारी फैल गयी। लाखों मनुष्य यमपुर चले गये पर इसमें सन्देह नहीं कि ताराबाई किसी भी आपत्ति से न घबराई। उस समय वह मराठा संगठन की प्राण बन गयी। वह स्वयं एक दुर्ग से दूसरे तक जाती थी। अपनी देखरेख में कार्य कराती थी, किन्तु उसका संचालन भी बहुत दिन न चला।

औरंगज़ेब की मृत्यु के साथ ही मुग़लों की वीरता तथा कूटनीति भी चल बसी थी, फिर भी उन्होंने मराठा संघर्ष में हाथ डाला। उन्होंने मराठों में फूट डालने का प्रयत्न किया। मराठों की आन्तरिक दशा उस समय कुछ इसके उपयुक्त ही हो गयी थी। सन् १७०७ ई० में सम्भाजी के पुत्र साहू को मुक्त कर दिया गया तथा ताराबाई से मराठा राज्य की माँग कराई। ताराबाई का कहना था कि साहू धोखा देकर चला गया था, अतः उसका राज्य पर कोई अधिकार नहीं है। तत्कालीन राज्य उसके पति की कृति है जिसका सही अधिकारी उसी का पुत्र है। इसी विषय को लेकर मराठों के दो दल हो गये। इनमें दूसरा दल शान्त होकर बैठने वाला न था। उसने साहू को ताराबाई से युद्ध करने भेजा। ताराबाई ने भी धन जी के सेनापतित्व में साहू को रोकने के लिए सेना भेजी। अभाग्य से ताराबाई पराजित हुई अतः उसे शिवाजी द्वितीय सहित कोल्हापुर जाना पड़ा।

सन् १७१२ ई० में शिवाजी द्वितीय की मृत्यु हो गयी। अतः साहू जो सतारा की गद्दी से मराठों का शासक घोषित किया गया था, वह क्षीण मराठा राज्य का स्वामी बना। साहू के अन्दर अपने पूर्वजों के गुण न थे, वह अपने रनिवास से ही अवकाश न पाता था। फलतः उसका शासन-भार मन्त्रियों के ऊपर रहने लगा। ये मन्त्री भी कुशल शासक हुए। यहीं से पेशवाई का प्रारम्भ होता है (१७१३ ई०) जिसमें वाला जी विश्वनाथ जैसा योग्य व्यक्ति अपने स्वामी साहू का मन्त्री बनता है। इसकी चर्चा तृतीय भाग में होगी।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

प्रश्नावली

१. "शिवाजी एक राष्ट्र नायक थे, उनकी कल्पना राष्ट्र-निर्माण थी" इस कथन की पुष्टि करिये ।

२. शिवाजी का जीवन चरित्र लिखिये । वह मुग़ल सत्ता के बीच एकाएक स्वतंत्र राज्य कैसे खड़ा कर सके ?

३. शिवाजी वस्तुतः दक्षिण के हिन्दुत्व आन्दोलन के नेता थे, इसकी आलोचना कीजिये ।

४. १६६२ ई० से १७०७ ई० के बीच के मुग़ल तथा मराठों के संघर्ष का वर्णन करिये । दोनों की त्रुटियों पर प्रकाश डालिये ।

५. अफजल खां के काण्ड से शिवाजी कैसे बचे ? क्या उसका घात न्यायसंगत था ? इसका परिणाम क्या हुआ ?

६. शिवाजी के शासन-प्रबन्ध की समीक्षा करिये ।

७. शिवाजी के युग को एक ऐसे ही शिवाजी की आवश्यकता थी जैसे सिक्खों को रणजीत सिंह की । इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

८. शिवाजी का राज्य बहुत समय तक क्यों न टिका इसकी आलोचना करिये ।

९. मराठा युद्धों में औरंगज़ेब की असफलता के कारण बताइये ।

कुछ आवश्यक तिथियाँ

१.	शिवाजी का जन्म	...	१० अप्रैल, १६२७ ई०
२.	शिवाजी की प्रथम विजय	...	१६४६ ई०
३.	शिवाजी तथा अफजल खाँ की भेंट	...	१६५९ ई०
४.	सूरत पर शिवाजी का आक्रमण	...	१६६४ ई०
५.	शिवाजी का आगरा को प्रस्थान	...	१६ मार्च, १६६६ ई०
६.	आगरा में शिवाजी		२० मई से १९ अगस्त, १६६६ ई०
७.	मुग़लों से सन्धि	...	१६६७ ई०
८.	शिवाजी का राज्याभिषेक	...	१६ जून, १६७४ ई०
९.	शिवाजी का देहावसान	...	१६८० ई०
१०.	सम्भा जी	...	१६८०–८९ ई०
११.	राजाराम	...	१६८९–१७०० ई०
१२.	ताराबाई	...	१७००–१७०७ ई०
१३.	साहू का राज्यारोहण	...	१७०७ ई०

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद ९

मुग़ल तथा सिख

गुरु नानक–(१४६९–१५३९ ई०)* सिख धर्म हिन्दुओं पर मुसलमानों के प्रभाव का प्रतिफल है। भाई गुरुदास के शब्दों में —

"हिन्दू तथा मुसलमानों में से कोई भी सत्य को नहीं पहचानता क्योंकि दोनों भटक गये हैं, किन्तु जब वे धर्मान्धता छोड़ देते हैं तो दोनों सिख हो जाते हैं।" †

इस धर्म के प्रवर्त्तक गुरु नानक थे इनका जन्म १४६९ ई० में पश्चिमी पंजाब के तलवन्डी नामक गाँव में हुआ था। इस ग्राम को आज हम ननकाना साहब भी कहते हैं। इनके माता पिता तृप्ती और कालू मेहता थे। जब ये सात वर्ष के हुए, इन्हें गाँव के विद्यालय में पढ़ने के लिए भेजा गया। कहते हैं कि ये सदैव गम्भीरता से रहते थे पर इनका मन पढ़ने लिखने में बहुत न लगा। अतः कुछ समय के लिए इन्हें खेती-बाड़ी की देख-रेख भी करनी पड़ी! यह कार्य भी उनके लिए उतना ही दुष्कर था। इसलिए उन्हें व्यवसाय में लगाने की चेष्टा की गयी। व्यवसाय में भी इनका मन न लगा, ये तो सच्चा सौदा खोजा करते थे, बहुधा निर्धनों को धन बाँट देते थे। व्यापार में धन लगाने की अपेक्षा उसे निर्धन को देना अधिक प्रिय समझते थे। पुत्र की इस प्रकार की मनोवृत्ति देखकर इनके पिता ने इनका सुलक्षणी नामक कन्या से विवाह कर दिया जिससे इनके दो पुत्र भी हुए। विवाह के उपरान्त भी इनकी मनोवृत्ति में कोई परिवर्तन न हुआ। इसके अनन्तर ये अपने बहनोई के यहाँ भेजे गये, जहाँ इनको भंडारी का कार्य मिल गया। यह स्थान सुल्तान-पुर था। सुल्तानपुर के निकट ही वई नदी के तट पर १४९९ ई० में इनको ज्ञान प्राप्त हुआ।

---

* तिथि कनिंघम के आधार पर, देखिये सिखों का इतिहास, पृष्ठ ४४।

† "Truth is hidden from the Hindus and the Mohammadans; both sects have gone astray. But when they lay aside superstition they form one body of Sikhs." *Bhai Guru Das.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ज्ञान प्राप्ति होते ही इन्होंने देश का भ्रमण प्रारम्भ कर दिया। इनकी पहली यात्रा लगभग १२ वर्ष पश्चात् समाप्त हुई। ये ईमानाबाद, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, बनारस और आसाम की ओर गये। इसके उपरान्त दक्षिण की ओर लंका तक गये। यही नहीं, वहाँ से आकर ये धुर उत्तर कैलाश तक गये। कहते हैं कि ये मक्का मदीना भी गये, पर यह निश्चित है कि अन्त में इन्होंने पाकपट्टन, दिपालपुर, कसूरपट्टी, वीरोवाल, पसरूर, डेराबाबा की यात्रा की। १५३६ ई० में इनका स्वर्गवास हो गया। प्रसिद्धि है कि बाबर ने इन्हें तथा इनके एक शिष्य मरदाना को वन्दी बना लिया था, किन्तु जब उसे ज्ञात हुआ कि बन्दी सन्त हैं, तो उसने उन्हें तुरन्त छोड़ दिया।

(१) **नानक के उपदेशः**--नानक जी का सदुपदेश एकेश्वरवाद का प्रतिपादक था। उनका कहना था, कि प्रभु एक है, अनेक नहीं, व्यर्थ ही कोई शिव, विष्णु और अल्ला का विभेद करता रहे। वह ईश्वर ही जगत का स्वामी है, वही संसार का नियंत्रण करता है। वह अजर, अमर तथा अभय है। वही आज से पहले था, वही आज है, वही आज के पश्चात् रहेगा। कोई उसका सानी नहीं है, वही साकार है, वही निराकार।

(२) वह दयामय है, उसको श्रद्धा तथा सच्ची भक्ति से प्रसन्न किया जा सकता है। वह आपत्ति के समय मनुष्य की सहायता कर सकता है। वह ऐसा नहीं जिसकी कल्पना व्यर्थ हो।

(३) ईश्वर के प्रकाश से ही यह जगत प्रकाशित है, वही सब में विद्यमान है। उसकी ज्योति के विषय में उनके शब्दों का निकटतम अनुवाद इस प्रकार होगा।

"ज्योति वह जो सभी में है, तेरी है, ए ज्योति के स्वामी।
बस उसी के प्रकाश से है प्रकाशित सभी–हे अन्तर्यामी॥" *

(४) मनुष्य के पाँच शत्रु हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार। इन्हीं के वशीभूत होकर वह भूल करता है, अतः उसे इनसे बचना चाहिये। यदि प्रभु को पहचानना चाहते हो, तो अपनापन खो दो, उसकी शरण में जाओ, वह तुरन्त मिलेगा।

(५) नानक गुरु की महत्ता में भी विश्वास करते थे। उनका कहना

---

* "The Light which is in everything is Thine
O Lord of Light.
From the brilliancy everything is brilliant."
Nanak.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

था कि गुरु ही उसके समीप तक पहुँचा सकता है। गुरु के आदेश की परम आवश्यकता है, बिना गुरु के मार्ग ही न सूझेगा। गुरु में बल होता है कि वह प्रभु का साक्षात्कार करा दे।

(६) इसके अतिरिक्त उन्होंने कर्म पर ज़ोर दिया। उनका कहना था कि सदाचार के बाहरी चिह्न व्यर्थ होते हैं, संन्यासी का वेश सदाचार नहीं होता। संन्यासी न बनकर, संसार में रहो, पर सांसारिक न बनो। शुभ कर्म करो, आडम्बर का त्याग करो। **"कर्म प्रधान विश्व रच राखा"** का स्मरण रखो।

(७) न कोई हिन्दू है, न कोई मुसलमान, सभी मनुष्य हैं, सबके साथ मनुष्यता का व्यवहार करो। जाति-पाँति मनुष्यकृत भेद है, ईश्वर कृत नहीं।

इससे सिद्ध होता है कि नानक पर इस्लाम का प्रभाव बहुत था। वे धर्म की गहराई को अथवा दर्शन को ऊपरी दृष्टि से देखते थे। उन्हें वस्तुतः क्रियात्मकता में बड़ा विश्वास था, किसी गहन विद्वत्ता में नहीं।

नानक धर्मप्रचारक या क्रान्तिकारी

कुछ इतिहासकारों का मत है कि नानक हिन्दू-धर्म के ही सुधारक थे। वे हिन्दुओं की रूढ़िवादिता का फल देख चुके थे। उन्हें इससे कष्ट हुआ था, अतः वे चाहते थे कि हिन्दू समाज में समय के परिवर्तन के साथ कुछ परिवर्तन हो जाय। यह मत डाक्टर गोकुल चन्द, नारंग और पैने (Payne) का है। दूसरी विचारधारा के अनुसार नानक एक क्रांतिकारी थे इसका समर्थन तेजसिंह, खानसिंह तथा मैकलिफ करते हैं।

पहले दृष्टिकोण के अनुसार नानक भक्ति आन्दोलन के एक अंग थे। उनकी शिक्षाएँ लगभग वही थीं जो भक्ति आन्दोलन के सुधारकों ने दी थीं। यथा कबीर। नानक ने हिन्दुत्व के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध कुछ नहीं कहा, बल्कि उसकी कुछ कुरीतियों की ही भर्त्सना की। उन्होंने हिन्दू अवतारों का कहीं अनादर नहीं किया, बल्कि उन्होंने हिन्दुओं के बहुदेवतावाद की टीका टिप्पणी की। उनके अनुसार एकेश्वर की उपासना सब कुछ थी। उनका कहना था कि ईश्वर के समकक्ष अन्य कोई नहीं हो सकता। उन्होंने वेद और पुराण की दार्शनिक महत्ता को कभी हेय नहीं कहा। उनका कहना था कि वेदों की थोथी पूजा न करके उनकी कही हुई बातों को चरितार्थ किया जाय। उनकी शिक्षाओं में अनेक बातें नामदेव तथा कबीर की कही हुई हैं। इसका अभिप्राय यह निकलता है कि वे विशुद्ध हिन्दुत्व की प्रतिष्ठा करते थे, निन्दा नहीं। पैने

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

के अनुसार भी **"नानक का उद्देश्य हिन्दू धर्म को मिटाना न था, बल्कि इसकी प्राचीन पवित्रता प्राप्त कराना था।"** †

मार्टिन लूथर के समान वह मूर्तिपूजा, अन्धविश्वास, कोरे पाखण्ड आदि के विरोधी थे किसी धर्म के नहीं।

दूसरे मत के अनुसार नानक एक क्रान्तिकारी थे। वे अपने रूढ़िवादी समाज को उखाड़ फेंक देना चाहते थे। वे उसके स्थान पर एक सर्वथा नूतन समाज खड़ा करना चाहते थे। वे हिन्दू धर्म की आधारभूत जाति-पाँति के ही विरोधी थे। कभी भी उन्होंने इसके विभाजन के मूल को समझने की चेष्टा न की। इसीलिए उन्होंने एक रसोई (लंगर) की व्यवस्था की। यही नहीं; हिन्दू धर्म के संन्यास पक्ष का भी उन्होंने घोर विरोध किया। उनका व्रत आदि के संयमों में विश्वास न था। उनकी दृष्टि में तीर्थयात्रा का भी कोई महत्व न था।

वस्तुतः नानक न तो किसी नये धर्म की स्थापना चाहते थे, न वे किसी के कट्टर विरोधी थे, बल्कि उनके अनुयायियों ने उनको यह स्वरूप प्रदान कर दिया, उनके अनुगामियों की बदौलत ही एक नये धर्म का सृजन हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि वे एक विशिष्ट पुरुष थे, जो समाज कल्याण चाहते थे।

इतिहास में नानक का स्थान--नानक को भारतवर्ष का लूथर कहा जा सकता है। भारतीय समाज को एक नया मोड़ देने का दुःसह कार्य आपने किया। आपका स्थान केवल सिख जाति के इतिहास में ही गौरवपूर्ण नहीं है, बल्कि समस्त भारतीय इतिहास में प्रमुख है। आपने संसार को कोई विशिष्ट धर्म न सिखाना चाहा था, अपितु उसे प्रेम, सहनशीलता और क्षमा का सन्देश दिया था। गोकुलचन्द जी नारंग का कथन है--**"पंजाब के हिन्दुओं को नानक ने अपने अन्तिम समय पहले से कहीं अच्छी अवस्था में छोड़ा। उनके (हिन्दुओं के) धार्मिक विचार उच्च हो चुके थे, उनकी उपासना-विधि पूत हो गयी थी। उनके जाति-पाँति बन्धन काफी शिथिल हो गये थे। उनके मस्तिष्क में अधिक शान्ति थी तथा भविष्य में नानक के उत्तराधिकारियों द्वारा प्रतिपादित उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए वे अब अधिक उपयुक्त थे।**+

---

† "The aim of Nanak was not to sweep away Hinduism but to restore to it its ancient purity."

Payne.

+ "Nank left the Hindus of the Punjab immensely better than he found them. Their belief had been ennobled their worship purified, the rigidity of caste considerably relaxed, their minds greatly

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

वस्तुतः नानक एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे। वे सच्चे व्यवहार को सबसे बड़ा धर्म और उस अनन्त शक्ति को ईश्वर मानते थे। कनिंघम के शब्दों में वे ऐसे महापुरुष थे "जिन्होंने अपने अनुगामियों को युगों के एकत्र अन्धकार से निकाला, उन्हें बौद्धिक उपासना तथा चारित्रिक श्रेष्ठता की प्रेरणा प्रदान की। उन्होंने उनको एक स्वतन्त्र, उद्यत, निष्पक्ष हृदय, रूढ़िवेड़ी से सर्वथा मुक्त तथा सच्चे भक्तों के संगठित रूप म छोड़ा।"†

नानक ने स्वयं कभी यह न सोचा था कि उनके विचार किसी राजनीतिक संगठन के प्रतीक होंगे, पर जो बीज वे बो गये, वह कालान्तर में विकसित, पुष्पित तथा फलान्वित हुआ।

(२) गुरु अंगद १५३९–५२ ई०—जब नानक का अन्तिम समय आया तो उन्होंने अपने शिष्यों की परीक्षा ली। एक दिन वे अनेक शिष्यों के साथ भ्रमण को निकले, मार्ग में उन्होंने एक मनुष्य का शरीर पड़ा देखा। देखते ही उन्होंने शिष्यों से उसका मांस खाने को कहा। एक लहना को छोड़ शेष सभी शिष्य हिचकिचाने लगे। लहना ने मांस खाने के लिए उस मुर्दे को खोला, तो देखता क्या है कि वहाँ मुर्दा नहीं है, बल्कि उसके स्थान में गुरु नानक ही हैं। गुरु ने अपने शिष्य को गले लगाया और कहा कि आज से वे स्वयं लहना में बास करेंगे। धीरे-धीरे लहना का नाम भी अंगीखुद अर्थात् अपना ही अंग अथवा अंगद में बदल दिया गया। इस कहानी में कितनी सत्यता है यह तो नहीं कहा जा सकता! पर तभी से आज तक सिखों का विश्वास है कि गुरु नानक की आत्मा उनके प्रत्येक गुरु में रहती है। निश्चय ही अंगद सिखों के दूसरे गुरु हुए। कुछ ही समय में नानक के पुत्र श्रीचन्द ने उदासी धर्म की स्थापना करके पिता की आशंका को सार्थक कर दिखाया।

---

emancipated; and they have now become more fit to enter on the career of natural progress to which Nanak's successors were destined to lead them."

Dr. Gokul Chand Narang.

† "Thus Nanak extricated his followers from the accumulated errors of ages and enjoined upon them devotion of thought and excellence of conduct as the first of duties. He left them erect, free, unbiassed in mind, and unfettered by rules to become an increasing body of worshippers."

Cunningham, History of Sikhs. P. 41.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अंगद क्षत्रिय जाति की निहान शाखा से थे। आप ने गुरुमुखी लिपि को जन-साधारण तक पहुँचाया। नानक से सुनी हुई शिक्षाओं का आपने संग्रह किया। आपने नानक का जीवन चरित्र लिखवाया तथा उदासियों को सिख मत से अलग कर दिया। आपने सिखों में अनुशासन की भावना भी उत्पन्न की तथा अनुशासन में न रहने वालों को कठोर दण्ड दिया। कहा जाता है कि हुमायूँ भी अंगद से आशीर्वाद लेने गया था। सन् १५५२ ई० में अंगद परलोक सिधार गये।

(३) **गुरु अमरदास १५५२-७४ ई०**--अंगद के पश्चात् सिखों के तीसरे गुरु अमरदास हुए। आप मल्ल वंश के क्षत्रिय थे। पहले तो नानक के पुत्रों ने आपके गद्दी पर बैठने का ही विरोध किया किन्तु आपकी शान्त मनोवृत्ति से वह विरोध शीघ्र ही दब गया। आपने सिख धर्म का प्रचार किया। आपका वक्तव्य इतना प्रभावोत्पादक था कि अकबर भी आपकी बात को ध्यान से सुनता था। आपने गोइन्दवाल में एक बावड़ी खुदवाई जो सिखों की प्रमुख तीर्थ बन गई। अपने धार्मिक साम्राज्य को आपने २२ मञ्जीयों में बाँट दिया था। प्रत्येक मञ्जी एक सिख के अधिकार में रख दी गयी। आपने सिखों के जन्म तथा मृत्यु के संस्कार भी बदल दिये। ये संस्कार हिन्दू संस्कारों से भिन्न थे। आपने सती प्रथा को रोका और मदिरापान वर्जित किया। धीरे-धीरे आपने सिखों को ऐसे रीति-रिवाज़ों से बाँध दिया कि वे हिन्दुओं से पृथक होने लगे। लगभग २२ वर्ष कार्य करके आप परलोक सिधारे गये।

(४) **रामदास १५७४--८१ ई०**--गुरु रामदास अमरदास के जामाता थे। आपका जन्म सन् १५२४ ई० में तथा विवाह १५४२ ई० में हुआ था। आप के द्वारा अमृतसर की नींव १५७७ ई० में डाली गयी थी। आप सोधी वंश के क्षत्रिय थे। आपको गुरु तथा शिष्य तो चाहते ही थे, सम्राट अकबर भी आप का बड़ा सम्मान करता था। अकबर ने आपको स्वल्प धन लेकर ५०० बीघे भूमि प्रदान की जिसमें आपने एक तालाब खुदाना प्रारम्भ किया। इस तालाब के निर्माण के लिए आपके शिष्य सुदूर प्रान्तों तक धन एकत्र करने गये। इसी तालाब का नाम अमृतसर पड़ा जिसका अर्थ है **अमृत का सरोवर**। इसके चारों ओर बसाई हुई बस्ती को पहले रामदासपुर कहते थे, कालान्तर में यहीं अमृतसर नगर बस गया। यह नगर अपने छोटे से जीवन में न जाने कितने उत्थान-पतन देख चुका। गुरु रामदास बहुत लोकप्रिय हुए यद्यपि आप अपने धर्म को बहुत व्यापक न बना सके। आप अपने ७ वर्ष के गुरुत्वकाल में धर्म का कोई प्रसार भी न कर पाये। १५८१ ई० में आप इस असार संसार से स्वयं चल बसे।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(५) गुरु अर्जुन (१५८१–१६०६ ई०)––गुरु अर्जुन गुरु रामदास के पुत्र थे। सम्भवतः रामदास जी के तीन पुत्र थे, पृथ्वीचंद, अर्जुन तथा महादेव। इनमें पृथ्वीचन्द बड़े थे। हो सकता है कि बड़े होने के नाते इन्होंने उत्तराधिकार का दावा किया हो। यहाँ तक कहा जाता है कि इन्होंने गुरु अर्जुन को विष आदि देकर अपने मार्ग से हटाना चाहा, पर वे सफल न हो सके। १५८१ ई० में अर्जुनदेव गद्दी पर बैठे, यही उनकी माता (अमरदास की पुत्री) की कामना थी। अर्जुन पहले गुरु थे जिन्होंने नानक की शिक्षाओं को ठीक से समझा। उन्होंने अमृतसर को अपने धर्म का केन्द्र स्थल चुना। धीरे-धीरे यह सिखों का तीर्थ बन गया। अर्जुन ने अपने पूर्ववर्तियों के लेखों का संग्रह भी किया। इसमें उन्होंने कुछ अन्य उपदेशकों के उपदेशों को भी सम्मिलित किया तथा कुछ अपना लिखा अंश मिला कर उसे 'ग्रंथ' का स्वरूप दिया। यही आगे चल कर सिखों की धर्म पुस्तक बन गयी। यह कार्य १६०४ ई० में समाप्त हुआ था। इसमें सिखों के ५ गुरुओं, १८ हिन्दू भक्तों तथा कबीर, फरीद, नामदेव, रैदास आदि के उपदेशों का संग्रह है। खुशवन्त सिंह के अनुसार **"यह ग्रन्थ अद्वितीय ऐतिहासिक ग्रंथ है। सम्भवतः सारी धर्म-पुस्तकों में यही केवल ऐसा धार्मिक ग्रन्थ है, जिसमें बिना प्रक्षेपों के अथवा किसी बनावट के धर्म का साहित्य मौलिक रूप में सुरक्षित है। इसने उस समय के अन्य कवियों की रचनाओं को मनुष्य की स्मृति की भूलों से बचा कर रखा है। यह उनका प्रमुख पूज्य ग्रन्थ है, पर हिन्दुओं को मूर्ति अथवा कैथोलिक चर्च के क्रास की भाँति नहीं। चूँकि इसमें सिखों के गुरुओं के उपदेश हैं इसलिए वे इसकी पूजा करते हैं, पर यह उनके ज्ञान की पुस्तक है उनके लिए ईश्वर का वाक्य नहीं। यह साधन है, साध्य नहीं।"***

---

* "The granth is a unique historical document. It is perhaps the only kind of writing of scriptural nature which has preserved without embellishment the original writings of the religious literatures. It has saved the literary works of other poets of the time from the vagaries of human memory. The Granth Saheb is not like the idol of a Hindu or a Cross in a Catholic church. It is a source and not the object of prayer or worship Sikhs rever it because it contains the teaching of their Gurus. It is more a book of divine wisdom than the word of God."

Khushwant Singh.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पहले सिख यदा-कदा गुरु को भेंट दिया करते थे, किन्तु गुरु अर्जुन ने एक नियमित कर के समान धन देने की प्रथा चलाई। इस प्रथा को मसन्द प्रथा कहते हैं। इसके अनुसार प्रत्येक सिख को अपनी आय का दसवां भाग गुरु को देना होता था। इस धन को एकत्र करने के लिए गुरु अपने प्रतिनिधि नियुक्त करता था, जो स्थान-स्थान से धन ले आते थे। यह धन वार्षिक पर्व वैसाखी के दिन अमृतसर भेज दिया जाता था। गुरु अर्जुन ने अपने दल को विदेशों तक भेजा, जहाँ वे धर्म-प्रचार, धन संग्रह तथा व्यापार सभी कुछ करते थे।

गुरु अर्जुन तथा अकबर के सम्बन्ध तो अच्छे रहे, पर जहाँगीर के समय उनमें भारी परिवर्तन हो गया। कहा जाता है कि लाहौर के मुग़ल राज्य के वित्त प्रबन्धक चन्दू साहब अपनी पुत्री का विवाह गुरु के पुत्र से करना चाहते थे; पर गुरु ने उसे अस्वीकार कर दिया। इस पर चन्दू साहब ने जहाँगीर से गुरु की शिकायत कर दी। जहाँगीर उनसे रुष्ट हो गया पर उसकी रुष्टता का केवल यही एक कारण न था। गुरु ने उसके विद्रोही पुत्र खुसरो को आशीर्वाद भी दिया था, जो जहाँगीर को सहन न हो सकता था। अतः गुरु को सचेत किया गया। उनसे २ लाख रुपये दण्डस्वरूप देने को कहा गया, तथा ग्रन्थ से हिन्दू तथा मुसलमानों के विरुद्ध अंश निकालने को कहा गया। गुरु ने ऐसा करने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। इस पर उन्हें बन्दी बना लिया गया। जहाँगीर का कथन है **"वे उसे गुरु कहते हैं, सभी ओर से मूर्ख लोग उसकी पूजा करते हैं, वे उसमें पूर्ण विश्वास और श्रद्धा रखते हैं। तीन-चार पीढ़ियों से उन्होंने इस आध्यात्मिक उत्तराधिकारियों की दूकान को गरम कर रखा है। कई बार मेरे चित्त में आ चुका कि मैं इस चकल्लस को समाप्त कर दूँ अथवा उसे इस्लाम के अन्तर्गत कर लूँ।"**† अन्ततः गुरु के प्राण हर लिये गये। वस्तुतः उनके कारावास जीवन ने उन्हें कृश काय (क्षीण) कर दिया था, पर सिखों का विश्वास है कि वे रावी में नहाने के निमित्त आज्ञा लेकर गये तथा पहरेदार पहरा देते रहे और वे वहीं अदृश्य हो गये। जो हो, गुरु अर्जुन के समय सिख धर्म ने एक नियमित स्वरूपग्रहण कर लिया। सिख धन तथा शक्ति का संचय करना सीखने लगे, साथ ही वे नानक को अधिक श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से पूजने लगे।

---

† "They called him Guru, and from all sides stupid people crowded to worship and manifest complete faith in him. For three or four generations of spiritual successors, they had kept their shop warm. Many times it occurred to me to put a stop to this vain affair, or to bring him into the Assembly of the people of Islam." *Jahangir.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(६) **हरगोविन्द** (**१६०६–१६४५ ई०**)—गुरु अर्जुन की मृत्यु के पश्चात् उसके भाई पृथी चन्द ने गुरु की मान्यता प्राप्त करनी चाही, क्योंकि गुरु अर्जुन का एकमात्र पुत्र अभी छोटा था और उत्तराधिकार का नियम कठोर न था, किन्तु पृथीचन्द इसमें सफल न हो सका। अतः हरगोविन्द जो अभी ११ वर्ष का बालक था उत्तराधिकारी बना।

गुरु हरगोविन्द ने केवल धार्मिक क्षेत्र को ही अपना कार्य-क्षेत्र न रखा। उन्होंने सिखों को सशक्त करने का प्रयास किया। उन्होंने लाहौर के वित्त-प्रबन्धक चन्दू शाह को स्वर्गधाम पहुँचवा दिया। चन्दू शाह का वध सम्राट की आज्ञा से हुआ अथवा केवल गुरु की आज्ञा से यह निश्चित रूप से, नहीं कहा जा सकता। गुरु ने अपने अनुयायियों को शस्त्र धारण करने तथा मुग़लों के अत्याचार का सामना करने का आदेश दिया। स्वयं उन्होंने **"सच्चा पाद शाह"** की उपाधि धारण की। उन्होंने राजाओं की भाँति छत्र तथा शस्त्र धारण करना प्रारम्भ किया। उनके पास दो तलवारें रहती थीं, एक उनकी धार्मिक-सत्ता बतलाती थी, दूसरी राजकीय-सत्ता की प्रतीक थी। भेंट के रूप में वे धन न लेकर घोड़े और अस्त्र लेने लगे। नानक ने अपने अनुयायियों के लिए लोकोपयोगी बातें बतायीं थीं, अर्जुन ने उन्हें क्रियान्वित किया था। हरगोविन्द को एक कदम और आगे चलना पड़ा क्योंकि उनके पिता की मृत्य ने उन्हें इस ओर प्रेरित किया। उन्होंने लोहगढ़ की मोर्चाबन्दी की, प्रभु का सिंहासन स्थापित किया तथा बड़ी संख्या में सैनिक सेवक भर्ती किये। नानक तो मांसाहारी न थे, पर हरगोविन्द एक सुन्दर शिकारी और मांसाहारी हुए। हरगोविन्द के अनुयायी भी इस ओर चलने लगे। कुछ लोगों का आरोप है कि हरगोविन्द धार्मिक पथ से भ्रष्ट हो गये तथा भौतिकवाद में पड़ गये। पर विचारपूर्वक देखा जाय तो ज्ञात होगा कि यह उनकी बड़ी दूरदर्शिता थी। सिखों का उत्थान तो अकबर के समय बहुत हुआ था, पर अकबर ने कभी उसमें कोई रुकावट न डाली थी। गुरु अर्जुन ने इस बात को पहले पहल समझा था कि उन्हें शक्ति की आवश्यकता होगी, अतः वे इस ओर कुछ यत्नशील भी हुए थे, पर उनकी मृत्यु ने तो यह सर्वथा सिद्ध कर दिया कि उनके अनुयायियों को शक्ति संचय करना होगा। फलतः "**हरगोविन्द सदा सतर्क रहते थे। उनके पास ८०० घोड़ों का अस्तबल था, और ३०० सशस्त्र अश्वारोही सदा उनके साथ रहते थे,** जब कभी उन्हें अपने वध की आशंका होती थी तो ६० वीर उनकी अंगरक्षा में रहते थे। *

---

* "He had a stable of eight hundred horses, three hundred mounted followers were constantly in

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस प्रकार गुरु हरगोविन्द ने सिखों को हिन्दुओं से सदा के लिए पृथक् कर दिया। उन्होंने सिखों को धार्मिक बन्धन में ही नहीं बाँधा बल्कि उन्हें एक लड़ाका जाति का स्वरूप दे दिया।

जहाँगीर हरगोविन्द की सैनिक नीति को सहन न कर सका। उसने उन्हें ग्वालियर के दुर्ग में बन्दी कर दिया, किन्तु मियाँ मीर और वजीर के बीच में पड़ने से जहाँगीर ने गुरु को मुक्त कर दिया। इसके पश्चात् दोनों के सम्बन्ध मैत्री पूर्ण हो गये तथा अन्त तक ऐसे ही रहे।

शाहजहाँ के समय इस सम्बन्ध में पुनः परिवर्तन हुआ। शाहजहाँ असहिष्णु था। उसने लाहौर में सिखों की बावली नष्ट करवा दी थी। आरम्भ में मुग़लों और सिखों में घोड़ों और बाजों के प्रश्न पर झगड़ा हुआ।* यह संघर्ष इतना बढ़ा कि दोनों दलों के हज़ारों आदमी मारे गये। ये युद्ध अमृतसर तथा कर्त्तारपुर आदि स्थानों पर हुए। अन्त में गुरु हर गोविन्द पहाड़ पर तपस्या करने चले गये।

(७) हर राय (१६४५-६१ ई०)—हरगोविन्द का ज्येष्ठ पुत्र गुरदित बहुत लोकप्रिय था, किन्तु उसका देहावसान पिता के जीवनकाल में ही हो गया था। अतः उसका एक पुत्र (हरगोविन्द का पौत्र) गुरु का उत्तराधिकारी बना। उसका नाम गुरु हरराय रखा गया। मुग़लों से गुरु हरराय के सम्बन्ध ठीक रहे, क्योंकि इन्होंने शान्तिमय नीति अपनायी। ये किरातपुर में रहते थे। यहाँ से इनको कहलूर के राजा के विरुद्ध युद्ध के लिए जाना पड़ा था। तदनन्तर इन्होंने दाराशिकोह से मैत्री की, दारा स्वयं असफल हुआ, उसके साथी उसे छोड़ गये, गुरु को भी उसकी मैत्री की कीमत चुकानी पड़ी। इन्हें अपने बड़े पुत्र को मुग़ल दरबार भेजना पड़ा। इस समय औरंगज़ेब मुग़ल साम्राज्य का स्वामी था। उसने गुरु पुत्र से "ग्रंथ साहब" के इस्लाम के विरुद्ध किसी अंश का अर्थ पूछा। उसने सम्राट को प्रसन्न करने के लिए कुछ बदल कर अर्थ

---

attendance upon him, and a guard of sixty matchlock-men secured the safety of his person, had he ever feared or thought of assassination."

Dabistan (ii) P. 277.

टिप्पणी—हरगोविन्द का एक शिष्य तुर्किस्तान से कुछ घोड़े ले आया। मुग़ल अधिकारियों ने उन्हें छीन लिया तथा उनमें से एक लाहौर के न्यायाधीश को दे दिया। गुरु ने खरीदने के बहाने उसे मँगाया तथा न लौटाया, इसी प्रकार अन्य विवाद भी उठ खड़े हुए। कभी-कभी स्त्रियों के अपहरण के कारण भी इनमें घृताहुति हुई।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

समझा दिया । इससे सम्राट तो प्रसन्न हो गया पर गुरु को बहुत बुरा लगा । गुरु ने उसे अपने उत्तराधिकार से ही बंचित कर दिया ; पर गुरु हर राय का काल बहुत स्वल्प रहा अतः कोई उल्लेखनीय घटना न हो सकी ।

(८) **हर किशन (१६६१-६४ ई०)**--गुरु हरराय के दो पुत्र थे, राम राय जो लगभग १५ वर्ष का था--और हर किशन जो ६ वर्ष का था । उनका बड़ा पुत्र अभिजात कुल कन्या से न था, साथ ही वह उचित आचरण भी न कर सका था अतः गुरु ने उसे उत्तराधिकार से बंचित कर दिया था । इस प्रकार उनके छोटे पुत्र हर किशन को उनका उत्तराधिकार मिला । यह उत्तराधिकार परस्पर कलह की जड़ भी बन गया । इसका निर्णय सम्राट औरंगजेब को करना पड़ा । सम्राट तो उसे न चाहता था, पर उसके अन्तःपुर के संकेत के आधार पर वह गुरु घोषित किया गया । हर किशन लौट कर अपने घर भी न पहुँच सके थे कि उनको चेचक ने घेर लिया जो उनके प्राण ही हर ले गयी । जब हरकिशन मरणासन्न थे, तो कहा जाता है कि उन्होंने अपने उत्तराधिकारी के लिए व्यास नदी के तट पर गोविन्दबाल के समीप वकल ग्राम में खोजने का संकेत कर दिया था । इस गाँव में हरगोविन्द के कई सम्बन्धी तथा उनका पुत्र तेग बहादुर था । तेग बहादुर पटना की ओर भ्रमण करके वहाँ आ बसे थे । इस समय तक रामराय उत्तराधिकार के प्रति अपना हक घोषित तक रहे थे, पर किसी ने उनका साथ न दिया । आखिर तेगबहादुर ही नवें गुरु हुए ।

(९) **तेगबहादुर (१६६४-७५ई०)**--तेगबहादुर का जीवन शान्तिमय न रहा । उनको तो संघर्ष का उत्तराधिकार ही मिला था । शीघ्र ही उन्हें दिल्ली दरबार बुलाया गया । उनसे कहा गया कि वे वस्तुतः उत्तराधिकारी नहीं है, शान्ति में विघ्न डालते हैं, किन्तु राजा रामसिंह ने उनको औरंगजेब का कोप-भाजन शीघ्र न बनने दिया । रामसिंह ने उनकी बड़ी प्रशंसा की और उन्हें अपने साथ बंगाल ले जाना निश्चित किया । तेगबहादुर रामसिंह के साथ आसाम तक गये । वहाँ उन्होंने ब्रह्मपुत्र तट पर समाधि लगायी तथा कामरूप (असम) के राजा को इतना प्रभावित किया कि वह उनका अनुयायी हो गया । इसके अनन्तर तेगबहादुर पंजाब लौट आये । वहाँ उन्होंने सतलज के किनारे किरातपुर के समीप कुछ भूमि ली जिस पर अपना डेरा जमाया । रामराय का विरोध इस समय तक समाप्त न हुआ था, अतः तेगबहादुर को इधर-उधर भ्रमण करना पड़ा । इस बीच एक मुसलमान सन्त अदम हाफिज से उनकी भेंट हुई । दोनों ने धनिकों से धन लेना प्रारम्भ किया, जिससे सम्राट के कोष को क्षति पहुँची, इस पर उन्हें बन्दी कर लिया गया । हाफिज अदम तो निकाल

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

दिये गये, पर तेगबहादुर को मृत्यु के घाट उतारना निश्चित किया गया। मार्ग में तेगबहादुर ने अपने पुत्र से भेंट की, उसे अपना उत्तराधिकार सौंपा, तथा मुसलमानों के विरुद्ध सदा युद्ध करने का आदेश दिया। उन्होंने कहा कि मैं तो अब काल के गाल में जा रहा हूँ, पर तुमको सिखों का भार दिये दे रहा हूँ। तुमको मैं गुरु हरगोविन्द की कृपाण सौंपता हूँ। दिल्ली जाकर वे सम्राट के सम्मुख उपस्थित किये गये। सम्राट ने उनसे मज़ाक में कहा कि अब कोई चमत्कार दिखाओ अथवा इस्लाम को स्वीकार करो। गुरु ने कहा मैं और तो कुछ न करूँगा, एक पर्चे पर एक जादू लिखूंगा। जिस गर्दन पर यह पर्चा बँधा होगा उस पर तलवार गिर कर भी कुछ न करेगी। आखिर उनकी गर्दन को तलवार से अलग किया गया तो सामने पर्चे पर लिखा था कि मैंने "सर दिया है पर सिर (भेद) नहीं दिया" (१६७५)। तेगबहादुर के बलिदान से सिखों में प्रतिशोध की अग्नि फैल गयी।

डा० जी. सी. नारंग के अनुसार **"गुरु का वध समस्त देश के हिन्दुओं द्वारा उनके धर्म के प्रति बलिदान माना जाता है, इससे सारा पंजाब अपमान तथा प्रतिशोध की ज्वाला से जल उठा था।"**†

कुछ इतिहासकारों का मत है कि गुरु ने समस्त पंजाब को उजाड़ दिया था, जिसके कारण उनको बन्दी बना लेने की आज्ञा दी गयी थी। बनर्जी के अनुसार गुरु की हत्या राजनीतिक कारणों से नहीं बल्कि धार्मिक कारणों से की गयी। गुरु स्वभाव से शान्त थे तथा एक सन्त का जीवन व्यतीत करते थे। उनके विषय में यह विचार करना कि उन्होंने पंजाब उजाड़ दिया, बहुत बड़ा अन्याय होगा।

१०– **गुरु गोविन्द सिंह** (१६७५–१७०८ ई०) जिस समय तेगबहादुर को स्वर्गधाम पहुँचाया गया, उनका एकमात्र पुत्र गोविन्द १५ वर्ष का था। एक तो गुरु का आदेश, दूसरे उनका बलिदान गोविन्द पर अमिट छाप छोड़ गया। गोविन्द की इन भावनाओं को देश की तत्कालीन स्थिति ने और भी उभाड़ दिया। गोविन्द मुसलमानों के कट्टर शत्रु बन गये। पर गोविन्द की अभी आयु ही कितनी थी, उनको शत्रु से घिरा जानकर उनके मित्रों तथा सहायकों ने उनकी रक्षा की। उनको सुरक्षित स्थान में रखा, पढ़ाया, (फारसी) उन्हें

---

† "His execution was universally regarded by the Hindus as a sacrifice for their faith. The whole of the Punjab began to burn with indignation and revenge."

Dr. G. C. Narang.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शस्त्र-अस्त्र की शिक्षा दी। इस समय तक गोविन्द गुरु नहीं, बल्कि एक उत्तम शिकारी तथा वीर पुरुष था। इस अज्ञातवास में उसे लगभग २० वर्ष रहना पड़ा। इस बीच उसका अनुभव बढ़ा, उससे उसकी निर्णयात्मक बुद्धि बढ़ी, साथ ही उसने अपने देश तथा अपनी जाति के उत्थान का मार्ग सोच निकाला।

१६९९ ई० की वैसाखी के दिन गुरु गोविन्द सिंह ने खालसा का निर्माण किया। उन्होंने उसे शक्ति प्रदान करने के लिए, कहते हैं, दुर्गादेवी का आवाहन किया; यद्यपि सिख स्वयं इस बात को नहीं मानते। उन्होंने आनन्दपुर में सिखों का भारी सम्मेलन किया, और पाँच आदमी चुने जिन्हें पञ्च प्योर कहा जाता है। इसके पश्चात् सिखों का एक वेश निश्चित कर दिया गया और उन्हें अपने साथ पाँच वस्तुएँ अर्थात् केश, कृपाण, कच्छा, कंघा और कड़ा रखना आवश्यक हो गया। गुरू का कथन है **"हम सबको एक होना है, छोटे से छोटा बड़े से बड़े के बराबर है। जाँति-पाँति भूल जाओ। सभी को गुरु से सीख लेनी है। तुर्कों को नष्ट करना है तथा बने हुए सन्तों का सम्मान नहीं करना।"***

सिखों की इस प्रकार बढ़ती हुई शक्ति को देखकर पर्वतीय प्रदेश के सामन्तों ने गुरु पर आक्षेप किया। वे गुरु के विरुद्ध शत्रु दल से मिल गये। फलतः सन् १७०१ ई० में आनन्दपुर का प्रथम युद्ध हुआ जिसमें पर्वतीय राजा हार गये तथा गुरु की विजय हुई। इस पर इन सामन्तों ने सम्राट औरंगज़ेब से सहायता माँगी। औरंगज़ेब ने भी शीघ्र ही पंजाब के मुग़ल अधिकारियों को आदेश दिया कि वे गुरु के विरुद्ध कार्यवाही करें। आखिर सरहिन्द के गवर्नर वज़ीर खां ने गुरु के विरुद्ध सेना भेजी। १७०३–४ ई० में आनन्दपुर पर दूसरा युद्ध हुआ।

सिखों ने मुग़लों का कड़ा प्रतिरोध किया, पर उन्हें आनन्दपुर छोड़ना पड़ा। गुरु के दो पुत्र बन्दी बना लिये गये तथा उनको सरहिन्द ले जाकर जीवित दीवाल में चुनवा दिया गया। इसके अनन्तर चमकौर में युद्ध हुआ जिसमें गुरु के अन्य दो पुत्र काम आये। १७०६ ई० में खिदरना में पुनः युद्ध हुआ जिसके अनन्तर गुरु तलवन्डी में आकर बस गये।

---

* "All must become as one, the lowest were equal the highest, caste must be forgotten, they must accept the *Pahul* or initiation from him, and the four races must eat as one out of one vessel. The Turks must be destroyed and the graves of those called saints neglected." The History of Sikhs, p. 63. by J. D. Cunningham

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

१७०७ ई० में औरंगज़ेब की मृत्यु हो गयी, उसका उत्तराधिकारी बहादुरशाह हुआ। गुरु से बहादुरशाह के सम्बन्ध अच्छे रहे किन्तु गुरु का भी अब अन्त आ गया था, वे दक्षिण गये हुए थे। सन् १७०८ ई० में एक पठान द्वारा गोदावरी के तट पर गुरु की हत्या कर दी गयी। अन्तिम समय गुरु के शब्द थे। **"मैं तुमको अमर प्रभू को सौंपता हूँ; सदा उसी के संरक्षण में रहना, अन्य किसी पर भरोसा न रखना, जहाँ कहीं भी ५ सिख इकट्ठे हों समझना कि मैं उनके बीच में हूँ, अतः आज से गुरु खालसामय होगा और खालसा गुरुमय। मैंने अपने ज्ञान और अपनी आत्मा को ग्रंथ साहब तथा खालसा में रख छोड़ा है।** *

गुरु गोविन्द सिंह का चरित्र

१–एक दैवी गुणसम्पन्न व्यक्ति
२–जनता के कल्याण के लिए सतत प्रयत्नशील
३–साहसी व कर्मठ
४–दूरदर्शी
५–कवि तथा विद्वान
६–संगठन कर्त्ता
७–खालसा को नया रूप प्रदानकर्त्ता
८–परम शहीद

गुरु गोविन्द सिंह अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण न कर सके थे, कि एक निर्मम हत्यारे ने उनके प्राण हर लिये। क्या ऐसा ही कष्ट ईसामसीह को न हुआ होगा। वे भी जनता का कल्याण चाहते थे, जनता की अज्ञानता पर तरस खाते थे, उसके लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देते थे। क्या मक्का से भागन पर मुहम्मद साहब को किसी अरब द्वारा इस प्रकार स्वर्गधाम पहुँचाने पर विश्व का इतिहास न बदल जाता, वही चोट सिख जाति को अपने दसवें गुरु, संगठन कर्त्ता तथा परमहितैषी के प्राण हर लेने पर लगी।

कनिंघम ने लिखा है **"सिखों के अन्तिम धर्म गुरु अपनी आशाओं को पूरा होते देखने के लिए जीवित न रह सके। फिर भी उन्होंने एक मृत जाति की प्रसुप्त शक्तियों को झकझोर कर जगा दिया और उसे सामाजिक स्वतन्त्रता और जातीय अभिमान प्राप्त करने की महान् कामनाओं से अनुप्राणित कर दिया। यही वस्तुतः नानक**

---

* "I have entrusted you to the immortal God. Ever remain under his protection and trust none besides whereever there are 5 sikhs assembled, know that I am in the midst of them. Henceforth the Guru shall be in the Khalsa and the Khalsa in the Guru. I have infused my mental and bodily spirit into the Granth Saheb and the Khalsa."

Guru Govind Singh.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

द्वारा उपदेश दी गयी भक्ति की पवित्रता का स्वरूप था, गुरु ने बुझी हुई ज्वाला को दैवी शक्ति से पुनः प्रज्ज्वलित कर दिया।

गुरुगोविन्द सिंह स्वयं साहसी, उदार और कर्मण्य थे। उनको अहंकार अथवा पाखण्ड छू भी न गया था। वे बड़े दूरदर्शी थे। उनके हृदय में जनता के अन्दर आचरण की भ्रष्टता देखकर बड़ी कचोट उठती थी। उन्हें इस्लाम से अश्रद्धा न थी, बल्कि मुग़ल सम्राटों के अत्याचार से थी। वे एक महान संगठनकर्त्ता थे। वे समय की पुकार को समझते थे। उसी को देखकर उन्होंने एक नये मार्ग का सृजन किया। उन्होंने हिन्दूवर्ग की रक्षा की; हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन पर रोक लगाने का कार्य सर्वप्रथम उन्होंने ही किया। उनका मन्तव्य कभी भी सैनिक संगठन करना न था, पर परिस्थिति ने उन्हें इसके प्रति विवश किया था। उन्हें अपने अनुयायियों के लिए सही मार्ग खोजना था। वे स्वयं एक विद्वान तथा कवि थे। फारसी, पंजाबी तथा हिन्दी में उनकी रचनाएँ उपलब्ध हैं। उनमें सबसे बड़ी बात यह थी कि वे प्रजातांत्रिक भावनाओं से ओत प्रोत थे। अतः उन्होंने खालसा को सर्व सम्मति पर चलने का आदेश दिया तथा किसी को अपना उत्तराधिकारी भी निर्दिष्ट न किया। सिख जाति ही नहीं हिन्दू भी उनके ऋण से आज ऋणी हैं।

बन्दा बहादुर १६७०-१७१६ ई०—बन्दा बहादुर एक डोंगरा राजपूत था। उसका असली नाम लक्ष्मण दास था। वह दक्षिण का निवासी था।† युवावस्था में ही वह वैरागी हो गया था। १७०८ ई० में उसकी गुरु गोविन्द सिंह से भेंट हुई। उन्होंने उसे अपना ही बन्दा बना लिया। गुरु गोविन्द सिंह ने उसे उत्तर में जाकर खालसा के शत्रुओं से लोहा लेने का आदेश दिया। बन्दा ने आज्ञा पाते ही पंजाब के प्रति प्रस्थान कर दिया। जिस समय वह पंजाब पहुँचा, देश के कोने-कोने के सिख उसकी ध्वजा के नीचे एकत्र हो गये।

कैथल, समाना, शाहाबाद और अम्बाला आदि को लूटकर सुधरा के स्थान पर बन्दा जाकर जम गया। वहाँ भी उसे विजय प्राप्त हुई। इसके अनन्तर सन् १७१० ई० में सरहिन्द का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। इसमें भी बन्दा की विजय हुई। यह युद्ध बहुत भयानक था। अनेक सामन्त बन्दा के सहायक थे। उनकी सहायता से बन्दा ने हजारों मुसलमानों को यमपुर भेज दिया। उसे गुरु के पुत्रों का बदला चुकाना था। स्वयं मुग़ल राज्यपाल वज़ीर खां के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और उसके शव को एक वृक्ष से लटका दिया गया। सिखों ने नगर को भी लूटा तथा अनेक प्रतिशोध कार्य किये।

† कनिंघम के आधार पर। सिखों का इतिहास, पृष्ठ ७१

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस विजय के पश्चात् बन्दा ने बाजसिंह को सरहिन्द का राज्यपाल बनाया तथा गुरु के नाम से सिक्के प्रचलित कराये। धीरे-धीरे अन्य स्थानों पर सिखों ने विद्रोह किया जिसे बहादुर शाह जैसा दुर्बल सम्राट न दबा सका। बहादुर शाह स्वयं थोड़े दिन का मेहमान था। सन् १७१२ ई० में वह लाहौर जाकर चल बसा। उसके अनन्तर उसका बड़ा पुत्र जहाँदार शाह १ वर्ष किसी प्रकार टिक सका, और मुग़ल सत्ता उसके भतीजे फरूखसियर के हाथ चली गयी। फरूखसियर ने कुछ कड़ाई से काम लिया। उसने लगभग ६०००० सैनिक अमीनखां के नेतृत्व में १७१६ ई० में बन्दा के विरुद्ध भेजे जिन्होंने बन्दा को लोकगढ़ के दुर्ग में घेर लिया। घमासान युद्ध के उपरान्त भी मुग़लों की अपार संख्या उनका साथ देती रही फलतः बन्दा को पर्वतों की ओर भागना पड़ा। मुग़लों ने उनका पीछा न छोड़ा और गुरुदास नंगल पर जाकर उसे पुनः घेर लिया। सिखों ने पुनः डट कर सामना किया, पर उनकी खाद्य सामग्री उनका साथ न दे सकी, अतः उन्हें आत्म-समर्पण करना पड़ा। आखिर बन्दा बन्दी बना तथा दिल्ली लाया गया। जून सन् १७१६ ई० में उसे अन्य सिखों के साथ गलियों में घुमाया गया तथा अन्त में मौत के घाट उतार दिया गया। कहते हैं बन्दा के पुत्र के टुकड़े-टुकड़े किये गये तथा बन्दा का माँस गर्म चिमटों से खींच-खींच कर उसे मारा गया।

यह घटना हिन्दू तथा सिख दोनों के लिए बड़ी अपमानजनक थी। बन्दा नीरो और अट्टिल्ला की भाँति कोई अत्याचारी न था। वह अपने प्रारंभिक जीवन में एक सन्त था, उसे तो परिस्थितियों ने सैनिक बना दिया था। डा० नारंग का कथन है कि--

"गुरु गोविन्द सिंह ने अपने अनुयायियों का ध्यान हल से तलवार की ओर कर दिया था। वे जो बीज बो गये थे, उसकी फसल बन्दा ने काटी। गुरु गोविन्द ने केवल सिद्धान्त भर बताये थे, बन्दा ने उन्हें क्रियान्वित किया। गुरु गोविन्द ने मुग़लों की निरंकुशता का भय भगा दिया था, बन्दा ने तो उनकी अजेयता ही मेंट दी।" †

† "Guru Govind Singh had diverted the attention of the followers from the plough to the sword. He had sown the seed, Banda reaped the harvest. The Guru had enumerated principles, Banda carried them into practice. Govind had destroyed the awe inspired by Mughal despotism, Banda completely broke the charm of its invincibility."

G. C. Narang.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

किन्तु कनिंघम के अनुसार ऐसी बात न थी। कनिंघम का कथन है "बन्दे की स्मृति का सिखों के हृदय में बहुत समादर नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह मलिन स्वभाव का पुरुष रहा, किन्तु अपने अनुयायियों से व्यक्तिगत सहानुभूति न पाकर भी उसकी आज्ञाएँ उसके साहसिक और तेजस्वी नेता होने कारण अक्षरशः पालन की जाती थीं। कदाचित् वह नानक और गुरु गोविन्द के सुधारों का सामान्य रूप ही भली-भाँति न समझ पाया। उसके जीवन पर संकुचित धर्म की भावना छाई हुई थी।" ‡

बन्दा के पश्चात् सिखों की दशा--बन्दा की मृत्यु के पश्चात् सिखों के दो दल हो गये। बन्दे, जो बन्दा के अनुगामी थे, और तत खालसा जो कट्टर सिख थे। सन् १७२१ ई० में भाई मनीसिंह के प्रयत्नों के फलस्वरूप ये भेद मिट गये। सन् १७२६-४५ ई० के बीच इन पर मुग़लों के विशेष अत्याचार हुए। कुछ मुग़ल अधिकारी इन्हें मिटा ही देना चाहते थे। एक बार भिलोवाल के युद्ध में मुग़लों को उनसे हार भी खानी पड़ी। उस समय इनके दो दल थे वृद्ध दल और तरुण दल, जिसमें वृद्ध दल बड़े आदमियों की सेना थी, जब कि तरुण दल में केवल नवयुवक थे। ये दल नवाब कपूर सिंह के नेतृत्व में चल रहे थे। इनमें से तरुण दल के पाँच जत्थे थे, जिसमें से प्रत्येक जत्थे में लगभग १६००-२००० तक व्यक्ति थे। इस दल ने एक बार (१७३९ ई०) नादिर शाह की दिल्ली से लौटती हुई फौज पर आक्रमण कर दिया तथा उससे तमाम लूट का माल छीन लिया। नादिर शाह ने इनकी शिकायत पंजाब के गवर्नर जकरिया खान से की और कहा कि एक दिन ये विद्रोही सारे देश पर छा जायेंगे अतः इनका शीघ्र ही दमन कर दो। जकरिया ने सिखों को समूल नष्ट करने के लिए आदेश निकाले। सिखों के मारने, पता लगाने आदि के लिए पारितोषिक वितरण किये गये, सिखों को खोज-खोज कर मारा जाने लगा, पर जैसे-जैसे दमन हुआ वैसे ही वैसे वे फैलते रहे, अन्ततः इनकी बारह मिसलें बन गयीं जिनका विवरण अगले भाग में होगा।

---

‡ "The memory of Banda is not held in much esteem by the Sikhs, he appears to have been of a gloomy disposition and he was obeyed as an energetic and daring leader without being able to engage the personal sympathies of followers. He did not perhaps comprehend the general nature of Nanak's and Govind's reforms, the spirit of sectarianism possessed him." **History of Sikhs, by Cunningham p. 79.**

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद १०

मुग़ल कालीन सभ्यता व संस्कृति

भारत में लगभग पौने दो सौ वर्ष मुग़लों का सूर्य अपनी प्रदीप्त आभा से चमका (१५२६ ई० से १७०७ ई० तक), इसके अनन्तर भी मुग़लों का शासन भारतवर्ष में रहा पर एक क्षीण आभा के साथ, क्योंकि उनका सूर्य औरंगजेब के देहावसान के साथ अस्ताचल को चल चुका था। इनके उन्नति काल में ६ बड़े-बड़े सम्राट हुए जिनका विशेष विवरण हम पिछले परिच्छेदों में पढ़ चुके हैं। इनमें से कुछ सम्राट जैसे बाबर, हुमायूँ तथा अकबर साम्राज्य की स्थापना में ही आजीवन व्यस्त रहे। उनको अपनी स्थिति के लिए तथा साम्राज्य की सत्ता के लिए अनेक संघर्ष करन पड़े। इनके अनन्तर कुछ ऐसे सम्राट हुए जिनके शासन काल में पिछले सम्राटों की अपेक्षा अधिक सुख, शान्ति और समृद्धि मिली, यद्यपि इन्हें भी गृह-कलह और अनेक आंतरिक झगड़ों के कारण चैन न रहा, पर इसमें कोई संदेह नहीं, कि मुग़लों के इस शासन काल में भारत के इतिहास ने एक नया मोड़ लिया। इसके पूर्ववर्ती सुल्तानों ने अपने शासन को तलवार की धार पर टिकाये रखना चाहा था, आखिर वह कितने दिन टिकता। समय की गति ने उसमें शीघ्र परिवर्तन उपस्थित किया, एक के पश्चात् दूसरा राजवंश आता और जाता रहा, किसी ने यही न जाना कि प्रजा क्या चीज़ है। इसके ठीक विपरीत मुग़लों ने इस भावना को जगाया कि प्रजा का हितचिंतन राज्य की सुरक्षा के लिए उतना ही उपयोगी है, जितना किसी सैनिक बल का रखना, अथवा धन संचित करना। उन्होंने इस बात का अनुभव किया, कि उन्हें इसी देश का बासी होकर रहना होगा तथा अपने देश की चिंता छोड़नी होगी। यहाँ से लूट-खसोट कर उन्हें गज़नवी और गोरी की तरह दूसरा देश नहीं सजाना। कहना न होगा, कि वे अपने उद्देश्य की पूर्ति में बहुत सीमा तक सफल हुए। उन्होंने यहाँ की शासन व्यवस्था को सुव्यवस्थित किया। राष्ट्रीय भावना चाहे वे न उत्पन्न कर सके हों, पर देश को एक सूत्र में बाँधने की तो उन्होंने कोशिश की ही और यदि औरंगजेब जैसा कट्टर इस्लामी उनके बीच न आया होता, तो वही शासन न जाने कितने दिनों और टिकता। जो हो उन्होंने कला और कारीगरी को प्रोत्साहन दिया, शिक्षा तथा संस्कृति के कार्य भी किये। कुछ काल तक धार्मिक स्वतन्त्रता भी रही। अतः यह परम अपेक्षित है, कि हम मुग़ल कालीन सभ्यता तथा संस्कृति का विशेष रूप से अध्ययन करें,

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

जिससे उस समय का सामाजिक चित्रण हमारे समक्ष सच्चे स्वरूप में उपस्थित हो सके।

मुग़लों का शासन और उसके सूत्र

(अ) मुग़ल शासन व्यवस्था वस्तुतः अकबर की चलाई पद्धति के अनुसार ही रही–

इस विषय में हमें अनक सूत्र सामग्री प्रदान करते हैं। इस सामग्री का सबसे बड़ा सूत्र आईन-ए-अकबरी है, पर उसमें शासन सम्बन्धी पूरा वृत्त नहीं मिलता—इसके अतिरिक्त **दुस्तूर-उल-अमल** (सरकारी नियमावलि) मुतमादखान का **इकवाल नामा जहाँगीरी**, अब्दुलहमीद लाहोरी का **पादशाह नामा**, निज़ामुद्दीन की **तुजुके जहाँगीरी, तवकाते अकबरी**, बदायूँनी की **मुन्तखब-उत-तवारीख** से बहुत सी सामग्री प्राप्त होती है। इन्हीं की पुष्टि वर्नियर, टामस रो और मुनक्की तथा हाकिन्स आदि के यात्रा विवरणों से होती है।

शासन प्रणाली—मुग़ल शासन प्रणाली सैनिक थी। उनका शासन केन्द्रित व निरंकुश था। तथापि मुग़ल शासक केवल इस्लाम धर्मियों का धार्मिक नेता तथा शासक था, पर हिन्दुओं को भी न सताता था। उसे तो केवल अनुशासन का ध्यान था। मुग़लों ने वस्तुतः विदेशी पौधे को भारत में लगाना चाहा, जैसा कि सरकार ने लिखा है।

"मुग़लों के शासन में हमें भारतीयता तथा विदेशी तत्वों की एक सम्मिलित झलक मिलती है। बल्कि यों कहना चाहिये कि यह भारतीय लवास में फारसी तथा अरबी पद्धति थी।" †

उनके शासन सिद्धान्त, उनकी धार्मिक नीति, उनके कर आदि प्रशासकीय प्रबन्ध ही नहीं बल्कि उनके अधिकारियों के पद भी विदेशों से ज्यों के त्यों लिये गये थे। साथ ही उसे सफल बनाने के लिए भारतीय पद्धति के अनुकूल बनाने की चेष्टा की गयी थी। उन्होंने स्थानीय आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखा। बस इतना अवश्य था कि जहाँ तक वे इस्लाम के नियमों के विरुद्ध न पड़ते थे, वहीं तक उनका ध्यान रखा जा सका था। इसमें सन्देह नहीं कि यह शासन पद्धति भारतीय पद्धति के ऊपर आधारित थी, पर उसने अपने सैनिक स्वरूप को सदा बनाये रखा।

सम्राट की स्थिति—अकबर ने यह पद्धति ईराक के अब्बासी खलीफाओं

† "The Mughal Administration presented a combination of Indian and extra-Indian elements; or 'more correctly' it was the Perso Arabic System in Indian setting."
J. N. Sarkar

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

से अथवा मिश्र के खलीफाओं से ग्रहण की थी। इस पद्धति के अनुसार सम्राट ही राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होता था। वैसे तो उसके अधिकार असीम थे, पर उसने सदैव अपने समीपवर्ती अथवा अन्य सहयोगियों का ध्यान रख कर ही आज्ञाओं का पालन कराया। साथ ही उसकी यह उदारता इस लिए भी थी, कि कहीं विद्रोह न उठ खड़ा हो, कुरान के हिसाब से उलेमा को अधिकार था कि वह सम्राट को पदच्युत कर दे, लेकिन मुग़ल शासन में यह नियम बस कागज पर ही रहा। अकबर ने न जाने कितनी बार उलेमाओं की चिंता न करके स्वेच्छा से कार्य किये। वस्तुतः वह तो उलेमाओं का आचरण देखकर खिन्न हो जाता था। उसके पूर्ववर्ती सम्राट बाबर और हुमायूँ ने तथा परवर्ती सम्राट शाहजहाँ और औरंगज़ेब ने उलेमाओं की बातों पर ध्यान दिया, पर अकबर इनसे सदैव बचता रहा, क्योंकि अकबर का कहना था कि **"कोई कितना भी गुण सम्पन्न क्यों न हो, पर वह सम्राट जैसे उच्च पद को तब तक धारण करने का अधिकारी नहीं हो सकता है, जब तक कि वह अपनी समस्त प्रजा के धार्मिक भेद-भाव को हटाकर समदृष्टि से नहीं देखता अथवा सभी की शांति का प्रबन्ध नहीं करता।"** *

यही नहीं अकबर का यह विश्वास था कि सम्राट मनुष्यों में श्रेष्ठ है और **ईश्वर का प्रतिबिम्ब तथा प्रतिनिधि है। अबुलफ़जल का कहना था "राजत्व ईश्वर से ही निकली हुई एक ज्योति है वह ऐसे सूर्य की किरण है जो सबको प्रकाशित करता है। सम्राट ही पूर्णता के ग्रंथ का एक तर्क है और समस्त गुणों का आगार है।"** †

इस विषय में मुगलों की एक कमजोरी भी थी। उनके उत्तराधिकार का कोई निर्धारित नियम न था। इसके कारण जैसा कि पिछले परिच्छेदों में देखा जा चुका है मुग़ल शासन में आये दिन झंझट उठ खड़े हुए और अकबर के पश्चात् औरंगजेब ने तो अपने ही पिता के विरुद्ध आवाज़ उठाने का प्रयत्न किया। औरंगजेब ने अपने पिता को आठ वर्ष कारागार में रखा। कहा जाता है कि सबसे बड़ा लड़का उत्तराधिकारी होता था, पर इस नियम में भी कोई बल न रहा और इसके विपरीत आचरण किये गये।

---

* "Cannot be fit for this lofty office, if he does not inaugurate universal peace and if he does not regard all classes of men and all sets of religions with a single eye for favour." —*Akbarnamah*

† Royalty is a light emanating from God, a ray from the sun, the illumination of the universe an argum ent of the book of perfection." *Abul Fazl*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उल्लेखनीय तो यह है कि मुगल सम्राट के लिए खलीफा का पद बहुत बड़ा न रह गया था। राज्याभिषेक के समय सम्राट के लिए जय जयकार की ध्वनि होती थी, जिसमें लोग सम्राट के कल्याण की इच्छा करते थे (बादशाह सलामत)। ऐसे अवसर पर बहुधा सम्राट नई उपाधि धारण कर लेते थे जैसे सलीम ने जहाँगीर, खुर्रम ने शाहजहाँ तथा औरंगजेब ने आलमगीर की उपाधि धारण की थी। राज्याभिषेक के उपरांत नये सम्राट के नाम से खुतबा पढ़ा जाता था और उसी के नाम से सिक्के प्रचलित होते थे। सम्राट को कुछ विशेषाधिकारों का उपभोग मिलता था। यथा एक ऊँचे अधिकारी के नेतृत्व में एक सैनिक दल रात दिन उसकी रक्षा करता था, सम्राट के बाहर जाने पर उसकी आगाही करता था, सम्राट एक निश्चित समय पर प्रजा को दर्शन देता था।

इसमें संदेह नही कि मुगल सम्राट बहुत परिश्रमी रहे। उनकी दिनचर्या का अधिक समय प्रजा हित चिंतन में ही जाता, दीवाने खास और दीवाने आम में बैठकर प्रजा के सामने ही राज्य कार्य देखते थे, यह राज्य कार्य चार प्रकार से किया जाता था। विशेष मंत्रणा के लिए वे अपने विशेष अधिकारियों और मंत्रियों को बुलाते और गुसलखाने में मंत्रणा करते। जब कभी सेनापति मोर्चाओं पर भेजे जाते तो यहीं बुला कर उनको समझाया जाता। गुसलखाने का एक व्यवस्थापक होता था, जो आने वालों में बैठने का समुचित प्रबन्ध करता था। कभी कभी सम्राट उच्च अधिकारियों को अपने ही कक्ष में बुलाता था और महत्त्वपूर्ण कार्यों का निर्णय करता था। सप्ताह में वह एक दिन न्याय दरबार करता था और यह दरबार बुधवार के दिन होता था जिस दिन दीवाने आम और खास न्यायालय का स्वरूप उपस्थित करते थे। शर्मा के अनुसार **"यद्यपि मुगल बाहर से आये और उन्होंने भारत की भूमि विजय की, किन्तु उन्होने ऐसी परम्पराएँ स्थापित की जिससे वह भारतीयों के प्रिय बन गये।"**† इस प्रकार कहा जा सकता है कि मुग़ल शासन के स्वरूप के निम्नलिखित मुख्य चिह्न थे।

(अ) विदेशी प्रभाव

(ब) सैनिक शासन

(स) भूमि कर की प्राचीन व्यवस्था

†"qhough the Mughals came to India as conquerors and foreigners, they set up traditions which were calculated to endear them to their Indian subject.'

S. R. Sharma

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(द) केन्द्रीय निरंकुश शासन

(ई) धर्म से अप्रभावित

(फ) उत्तराधिकार के नियम का प्रभाव

मुगलों की मंत्रिपरिषद--मुग़लों का मंत्रिमण्डल बहुत शक्तिशाली था। यदुनाथ सरकार ने अपने मुग़ल शासन में निम्नलिखित मंत्रियों का ब्योरा दिया है, जो केन्द्र में अलग अलग विभागों के अध्यक्ष थे।

(१) दीवान—कोष तथा राजस्व

(२) खान-ए-सामा-- राजभवन

(३) बक्शी--सैनिक वेतन तथा हिसाब

(४) काज़ी--न्याय, विधि तथा दंड

(५) सदर-ए-सुदूर--दानादि धार्मिक कार्य

(६) मुहतसिब---नैतिकता

(७) मीरआतिश---तोपखाना

(८) दरोग़ा-ए-डाक---गुप्तचर तथा डाक विभाग

(१) **दीवान**--इन मंत्रियों में सबसे अधिक सम्मान का पद दीवान का होता था, बाद के मुग़ल सम्राटों में तो उसने पेशवा की तरह मन चाहे काम किये। वह राजा को केवल मंत्रणा ही न देता था बल्कि उसके कोष का स्वामी होता था, उससे आशा की जाती थी कि वह सैनिक संचालन भी करे यद्यपि उसे इसका कभी अवकाश न मिलता था। अतः यह पद मुख्य रूप से व्यावहारिक रूपों के लिये ही था।

(२) **बक्शी**—दूसरा महत्त्वपूर्ण पद बक्शी का था, जिसका काम समस्त सेना के वेतन का हिसाब रखना तथा वेतन देना था। कुछ समय पश्चात् तो कई बक्शी होने लगे थे, जिनके प्रधान को मीर बक्शी कहते थे। यही मंसबों की नियुक्ति तथा पदोन्नति आदि करता था।

(३) **खान-ए-सामा**—खान-ए-सामा का पद भी कम महत्त्व का न था मनुक्की के अनुसार शाही भवन की छोटी से बड़ी सभी चीज का वही मालिक होता था। सम्राट के सभी व्यक्तिगत अनुचर उसी के अधीन थे कभी कभी तो उन्ही में से वजीर की नियुक्ति होती थी।

(४) **काज़ी उल कुजात**—समस्त साम्राज्य के काजियों की नियुक्ति तथा न्याय का प्रबन्ध करना इसका सबसे बड़ा काम था। इसमें संदेह नहीं कि मुग़ल सम्राटों ने न्याय के कार्य में अपने पूर्ववर्त्ती सम्राटों से अधिक सराहनीय कार्य किया। इसको आज कल के शब्दों में हम महान्यायाधीश भी

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कह सकते हैं। उसका न्यायालय सबसे बड़ा न्यायालय था, वह प्रत्येक बुधवार को कचहरी करता था, तथा इस्लाम के अनुसार न्याय करता था।

(५) **सदर-ए-सुदूर**— सदर-ए-सुदूर के अधीन धार्मिक धन सम्पत्ति निर्धारण तथा दान देना था। उसका प्रमुख कार्य यह था कि धन सही व्यक्ति तथा संस्था को मिले। यह एक प्रकार का व्यावहारिक विषयों का न्यायाधीश था, वह नये आवेदन पत्रों को देखता था स्थानीय सदरों की नियुक्ति करता था। इस पद के लिए अधिक से अधिक पढ़ा लिखा विद्वान तथा धार्मिक ढूँढ़ा जाता था।

(६) **मुहत्तसिब**---इसके अधीन जनता का सदाचार निरीक्षण विभाग था। वह इस्लामिक नियमों के अनुसार जनता की उन्नति का प्रयास करता था, उसका काम खींची गई शराब, भाँग, मादक द्रव्य, जुआ खेलना आदि के प्रयोग के विरुद्ध रोक लगाना था। इस्लाम के विरुद्ध आचरण करने पर मुसलमानों तक को दण्ड देना उसका कार्य था। औरंगजेब के समय में तो उसका मुख्य कार्य मंदिरों को तुड़वाना था।

(७) **मीर आतिश**---मीर आतिश के अधीन तोपखाना विभाग था। इसके अधिकार में राज्य की समस्त तोपें तथा बन्दूकें रहती थीं जिनका वह समय पर समुचित प्रयोग करता था। यह मुख्य रूप से मीर बख्शी का सहायक होता था। पहले इसका पद अलग न रखा जाता था, पर चूँकि इसे दुर्ग की रक्षा करनी रहती थी और सम्राट से सम्पर्क भी रखना पड़ता था इसलिए उसका पद महत्त्वपूर्ण हो गया और अलग कर दिया गया।

(८) **दरोगा-ए-डाक**---मुगल शासन के विभिन्न अंगों में धीरे धीरे इसका भी एक प्रमुख स्थान हो गया। इसके अधिकार में समाचार लेखक गुप्तचर और सम्वाद वाहक होते थे। डाक तथा सूचना ले जाने के लिए स्थान स्थान पर घोड़े रहते थे जो देश के कोने-कोने की सूचना सम्राट तक पहुँचाते थे।

अन्य पदाधिकारी---उपर्युक्त मंत्रियों के अतिरिक्त कुछ अन्य अधिकारी भी थे, जो शासन कार्य में सहायक थे। यथा: मीर बहरी (माल सचिव), मीरबर्र (वन सचिव), कुरबेगी (ध्वजारोही) अख्तबेगी (शाही घुड़साल का दरोगा) मुशरिफ, (जल सेना पति तथा बंदरगाहों के अधिकारी) नाजिरे बुयाताद (शाही कारखानों का प्रबन्धक) मुस्तोफी (मुख्य आय व्यय निरीक्षक), अवर जाह नवीस (दरबार के दैनिक खर्च का लेखा रखने वाला), ख्वां सालार (शाही बावर्चीखाने का दरोगा), और मीर-अर्ज (सम्राट के सम्मुख प्रार्थना पत्र रखने वाला) इत्यादि होते थे।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

प्रान्तीय शासन----मुग़लों की शासन पद्धति वस्तुतः उनके शत्रु शेरशाह की चलाई हुई है। शेरशाह के समय कोई प्रान्तीय शासन जैसा विभाग न था, क्योंकि उसे प्रांतों को अलग करने का समय ही न मिला था। मुग़लों ने उसे अधिक सुन्दर स्वरूप दिया, तथा केन्द्र का ही दूसरा स्वरूप प्रान्तों में भी स्थापित कर दिया। यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि "**मुगल शासन का प्रान्तीय स्वरूप केन्द्र का ही छोटा स्वरूप था।**†

इन प्रांतों की संख्या समय समय पर घटती बढ़ती रही, अकबर के समय में इनकी संख्या पन्द्रह* थी। जहाँगीर के समय में १५, शाहजहाँ के समय में २२ तथा औरंगजेब के समय २१ थी।

सूबे का सबसे बड़ा अधिकारी साहिब-ए-सूबा या नाजिम या सूबेदार कहलाता था। उसकी सहायता, फौजदार के लिए दीवान, बख्शी, कोतवाल, काज़ी, सदर आमिल, वितकची, पोतदार, वाकया नवीस, कानूनगो तथा पटवारी होते थे। सूबे सरकार और परगनों में बटे रहते थे। सूबे का शासन भार सूबे की राजधानी से चलता था। मुगल खास तौर से नागरिक शासन प्रणाली के अभ्यस्त थे। अतः वे गाँवों की देख रेख बहुत न कर पाते थे। गाँवों में रहना उनके लिए दण्ड स्वरूप था। सूबेदार को सैनिक तथा व्यावहारिक दोनों तरह के अधिकार रहते थे। सूबे के अंदर वह सम्राट का प्रतिनिधि होता था, वह भी वैसे ही कचहरी करता था। पर सम्राट की तरह वह झरोखे से दर्शन न देता था। दूसरे वह अपने आप न किसी से संधि कर सकता था न किसी से युद्ध। वह मीर अदल और काज़ी के विरुद्ध अपील सुनता था, पर सरकार की आज्ञा के विना मृत्यु दण्ड न दे सकता था। वही सूबे की सेना का स्वामी होता था। उसी का यह कर्त्तव्य था कि सूबे में शांति रखे, सारा राजस्व वसूल करे और जो शाही फरमान हों, उनको लागू करे। बस वह

†"The administrative agency in the provinces of the Mughal empire was an exact miniature of that of central Govt."

J. N. Sarkar

* १. आगरा	६. अवध	११. विहार
२. दिल्ली	७. लाहौर	१२. अहमदाबाद
३. अजमेर	८. मुल्तान	१३. बरार
४. मालवा	९. काबुल	१४. खानदेश
५. इलाहाबाद	१०. बंगाल	१५. अहमदनगर

अन्तिम तीन दकन की विजय के बाद शामिल किये गये थे।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

दीवान और सदर की नियुक्ति न कर सकता था। न वह धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकता था, विद्रोही जमींदारों को वह दण्ड देता था, साथ ही वह सूबे भर की समस्त सूचनाएँ यथासमय सम्राट को देता था। चूँकि इसके अधिकार इतने व्यापक थे और यह भय था कि कहीं वे स्वयं स्वच्छंद न हो जावें, अतः एक सूबे में किसी को दो तीन वर्ष से अधिक न रखा जाता था, फिर भी उस युग में भौगोलिक दूरी अधिक तथा यातायात के साधन कम होने से वे बहुत स्वतंत्रता से कार्य करते थे। कभी-कभी इस प्रकार की स्वच्छंदता के लिए सम्राट उन्हें दण्ड भी देता था।

(१) **दीवान**--प्रांत का सबसे बड़ा दूसरा अधिकारी दीवान था। सूबेदारों के अधिकारों से कहीं-कहीं इसका संघर्ष हो जाता था। ये दोनों एक दूसरे को रोकने की चेष्टा करते थे। दीवान की नियुक्ति शाही दीवान के द्वारा होती थी। उसका कर्त्तव्य शाही दीवान की आज्ञाओं का पालन करना था जिनमें विशेष कर राजस्व इकट्ठा करना, राजस्व के अभियोगों का निर्णय करना तथा खेती बारी की उन्नति करना उल्लेखनीय हैं। उसे प्रांतीय शासन में सूबेदार को सहायता देनी पड़ती थी। और सूबेदार तथा उसके मत भेद होने पर सम्राट ही निर्णायक होता था।

(२) **फौजदार**--यह अधिकारी भी सूबेदार का सहायक होता था। इसकी नियुक्ति सूबेदार के ही हाथ थी। प्रांत के छोटे भागों पर इसका अधिकार होता था। वस्तुतः यह प्रांतीय सेना का सेना नायक होता था जो प्रांत में शांति बनाये रखने तथा विद्रोही ज़मींदारों को दंड देने के लिए सहायता करता था। यह आमिल के लगान वसूल करने में भी सहायक होता था। यदुनाथ सरकार के अनुसार--

"फौजदार केवल एक प्रांत का सेनापति था जो, विद्रोहों का दमन करता, डाकुओं के दल को भगा देता अथवा पकड़-लेता, सभी प्रकार के बड़े अपराधों की देख रेख रखता, साथ ही अपने बल के आधार पर राजस्व अधिकारियों, फौजदारी के अधिकारियों, तथा मुहत्तसिब आदि के विरुद्ध आंदोलन को दबाये रहता था।" †

---

† "Was the only commander of a military force stationed in the country to put down smaller rebellions, disperse or arrest robber-gangs, take cognizance of all violent crimes, and make demonstrations of force to over-awe opposition to the revenue authorities or the criminal judge or the censor."

J. N. Sarkar.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(३) **सदर**––सदर की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती थी। इसका कर्तव्य सार्वजनिक कार्यों के लिए लगान से बची हुई भूमि का प्रबंध करना था। यह एक धार्मिक तथा विद्वान पुरुष होता था जिसका जनता बहुत सम्मान करती थी और जो अपने अधिकार से भूमि या धन दे सकता था। उसके अधीन काज़ी और आदिल काम करते थे।

(४) **आमिल**––आमिल का मुख्य कार्य लगान वसूल करना था। यह इस बात का भी ध्यान रखता था कि भूमि की उचित नाप हो तथा जो भूमि कृषि के योग्य नहीं है, उसे कृषि योग्य बनाया जाये। वह कारकुनों, मुकद्दमों और पटवारियों के खाते भी देखता था। अपने इलाके का सही ध्यान रखने के लिए, वह अपने हलके का दौरा भी करता था।

(५) **वितिक्ची**––इसका पद आमिल के समान ही होता था। यह आमिल की स्वेच्छाचारिता पर भी रोक लगा देता था। वह हर फसल पर लगान का खाता तैयार करता था तथा केन्द्रीय सरकार के लिए एक वार्षिक ब्यौरा भी देता था। वह कानूनगो के कार्य की देख भाल करता था। उसके लिए यह आवश्यक था कि वह एक अच्छा लेखक और हिसाब जानने वाला व्यक्ति हो साथ ही उसे देश के रीति रिवाजों का सही ज्ञान भी हो।

(६) **पोतदार या खिज़नदार**––इसका काम किसानों से रुपया लेकर खजाने में जमा करना होता था। वह रुपयों की अदायगी के लिए रसीदें देता था जिस पर दीवान के हस्ताक्षर होते थे।

(७) **बख्शी**––यह प्रांतीय सेना का वेतन अधिकारी था, जो मीर बख्शी के अधीन वेतन बाँटने का काम करता था।

(८) **कोतवाल**––कोतवाल के कर्त्तव्य आईन-ए-अकबरी के अनुसार बहुत व्यापक थे। मुख्य रूप से वह पुलिस अधिकारी था किंतु कुछ विषयों में उसको न्यायाधीश के अधिकार भी थे। उसका सबसे बड़ा काम शांति तथा सुरक्षा रखना था। वह नगर के मकानों की सूची रखता था। नगर में गस्त लगाता था। नाप तौल के बाटों को देखता था। खोये हुए का, मृतक का या जिसका उत्तराधिकारी न हो, उसकी सम्पति का ब्यौरा रखता था। यही नहीं वह प्रजा के आय व्यय तक का ब्यौरा रखता था। मनुक्की के अनुसार––**"उसका काम शराब बनने पर रोक लगाना, वैश्याओं पर नगर में रोक लगाना तथा वह समस्त सूचना प्राप्त करना था, जो सम्राट को भेजी जाती थी। इस प्रकार की सूचना प्राप्त करने का साधन बहुत विचित्र था। कुछ आदमी हर**

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

घर में दिन में दो बार झाड़ू लगाने जाते थे और सारा समाचार ज्ञात कर **लेते थे।" †**

आईन-ए-अकबरी के अनुसार कोतवाल का धर्म प्रजा के सुख तथा शांति के लिए परम आवश्यक था। रात को उसके गस्त लगाने से तथा चौकसी करने से प्रजा सुख की नींद सो सकती थी, तथा दुष्टों का दमन हो सकता था। इस कार्य के लिए वह अपने गुप्तचर विभाग से काम लेता था। वह चोरों का तथा चुराये धन का पता लगाने के लिए उत्तरदायी था और यदि वह उनका पता न लगा सकता था, तो स्वयं उसे उसकी हानि की पूर्ति करनी पड़ती थी। मादक वस्तुओं के क्रय-विक्रय में वह हस्तक्षेप कर सकता था।

श्री यदुनाथ सरकार के अनुसार "कोतवाल का धर्म था कि वह कारावास में पड़े बंदियों की गणना करे उनके विरुद्ध लगाये गये आरोपों की सफ़ाई प्राप्त करे और जिन लोगों को वह निर्दोष समझे, उनके विषय में ऊँचे अधिकारियों से उन्हें छोड़ने के लिए सिफ़ारिश करे और आज्ञा प्राप्त करे। निर्धन अपराधियों के लिए वह विशेष सुविधा प्रदान कर सकता था।

(९) **वाक़या नवीस**--इसका काम प्रांत में घटित घटनाओं का वर्णन रखना था। वह केवल सच्ची घटनाओं की ही सूचना देता था, क्योंकि उसे यह भय था कि कहीं सम्राट को दूसरे सूत्रों से सच्चाई का पता न लग जावे। उसे यह आदेश था कि वह किसी निषिद्ध कार्य के लिए ऊँचे अधिकारियों के भी विरुद्ध सूचना दे और उस अधिकारी को भी सूचित कर दे कि वह अमुक कार्य बुरा कर रहा है। यदि वह अधिकारी इस पर भी न समझे तो उसका धर्म था कि कोतवाल को सूचना दे और तदनुसार सम्राट को भी लिखे।

सरकार या जिले--प्रत्येक प्रांत बहुत से सरकारों में बँटा था। सरकार का सबसे बड़ा अधिकारी फौजदार होता था। वह सरकार में यद्यपि सरकार का प्रतिनिधि था, पर सूबेदार के अनुशासन में रहकर उसे कार्य करना पड़ता

---

† "It is his business to stop the distillation of spirits. He has to see that there were no public women in the town or anything else forbidden. He attains information about all that goes on so as to be able to send in his report. For this purpose there are throughout the Mughal empire certain persons known as house scavengers.

These men are under obligation to go twice a day to clean out every house and they tell a Kotwal all that goes on". *Manucci*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

था । उसकी नियुक्ति स्वयं सम्राट करता था । वह उच्च कोटि का मन्सबदार होता था । उसका कार्य जिले में शांति तथा सुव्यवस्था रखना था । उसके आधिपत्य में एक छोटी सी सेना रहती थी जिसके सहारे वह छोटे मोटे विद्रोहों का दमन करता था ।

परगना या महल--प्रत्येक सरकार परगनों में बँटी थी । प्रत्येक परगने में एक सिक़दार, एक खजान्ची, एक आमिल, एक अमीन और कुछ वितक्ची होते थे । सिकदार परगने के पूरे प्रबंध का अधिकारी होता था और जैसे सरकार के लिए फौजदार सुख तथा शांति का उत्तरदायी था, उसी प्रकार परगने में सिकदार होता था । इसके पास भी एक छोटी सी टुकडी होती थी जिसके सहारे वह शांति की व्यवस्था करता था । सिकदार को न्यावाधीश के भी अधिकार होते थे, पर बड़े सीमित । आमिल का सीधा सम्बंध किसानों से होता था । उसका मुख्य कार्य राजकर लगाना तथा वसूल करना होता था । वह शांति व्यवस्था में सिकदार की मदद भी करता था । वितक्ची का आजकल का पर्याय लिपिक लिया जा सकता है ।

राजस्व विभाग--मुगल शासकों ने राजस्व विभाग का समुचित प्रबंध किया था । उस समय राज्य की आय का मूल स्रोत राजस्व ही था । यद्यपि इसके अतिरिक्त चुंगी, सिक्के, उत्तराधिकार, भेंट आदि से कम रुपया न आता था । आईन-ए-अकबरी के अनुसार कुल आय तीन सौ तिरेसठ (३६३) करोड़ थी जिसमें भूमि का लगान ९०७४४००० रुपये के लगभग था । यह अनुमान १५८० का १२ सूबों का है । अकबर के राज्य संगठन के पूर्व देश के विभिन्न भागों में लगान वसूल करने के विभिन्न तरीके थे, किंतु १५७३ में टोडरमल ने गुजरात के प्रबंध के लिए एक पद्धति चलाई जो आगे चल कर समस्त देश के लिए लागू की गई । लेनपूल का कथन है--

"मध्यकालीन इतिहास में आज तक टोडरमल के नाम से अधिक प्रसिद्ध और कोई नहीं हुआ, क्योंकि अकबर के सुधारों से जनता को जो कुछ सुख शांति मिली वह केवल टोडरमल के माल विभाग के सुधारों के कारण ।"*

---

† "There is no name in mediaeval history, more renowned in India to the present day than that of Todar Mall, and the reason is that nothing in Akbar's reforms more nearly touched the welfare of the people than the great financier's reconstruction of revenue system"

Lane poole, Mediaeval India p. 261

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सन् १५७५-७६ में बंगाल, बिहार और गुजरात को छोड़कर समस्त देश की भूमि की पैमाइश हुई और उसे १८२ हिस्सों में बाँटा गया। इनमें से प्रत्येक हिस्से से लगभग १करोड़ टंका अथवा २॥ लाख रुपया लगान आता था। यह इकाई १ करोरी के अधीन रहती थी, किंतु, इसमें प्रशासक को बहुत सुविधा न हुई अतः १५७९ और ८० में समस्त देश का विभाजन १२ सूबों में किया गया।

इस प्रबंध के पूर्व मालगुजारी अनुमान से लगायी जाती थी और आवश्यकता पड़ने पर घटा बढ़ा भी दी जाती थी, पर इससे किसानों को बहुत कष्ट होता था। या तो उन्हें बिना उपज के लगान देना पड़ता था या अधिक लगान देना पड़ता था, अथवा रिश्वत देनी पड़ती थी। इन सब कठिनाइयों को दूर करने के लिए यह विभाग मुज्जफर खाँ और टोडरमल को सौंपा गया जिन्होंने कानूनगोओं द्वारा मालगुजारी फिर से निश्चित की। इस निश्चय के उपरांत भी किसानों का कष्ट कम न हुआ, क्योंकि उन्हें बहुत लगान देना पड़ता था, साथ ही वसूल करने वालों को भी असुविधा हुई अतः अकबर ने एक नया मार्ग निकाला जिसके अनुसार १० वर्ष के लिए प्रबंध कर दिया गया। उसने पिछले १० वर्षों की मालगुजारी को जोड़कर औसत निकलवाया और तदनुसार मालगुजारी निश्चित कर दी। इसके अतिरिक्त भूमि की नाप की ईकाइयों में भी उसने पर्याप्त सुधार किया; गज, तनव, और बीघे की नाप निश्चित कर दी गई, साथ ही भूमि की उर्वरता के आधार पर लगान निश्चित कर दिया। इस आधार पर भूमि को चार वर्गों में बाँटा गया (१) **पोलज**, वह भूमि, जिस पर प्रति वर्ष हर फसल में खेती होती है क्योंकि उसकी उर्वरता में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। (२) **परती**, वह भूमि, जिसकी ऊबर्रता शक्ति बनाये रखने के लिए भूमि को कभी कभी खाली छोड़ दिया जाता है। (३) **चाचर**, इस भूमि में तीन या चार वर्ष के लिए खाली छोड़ने की व्यवस्था रहती है क्योंकि इसमें उर्बरता बहुत कम होती है। (४) **बंजर**, यह भूमि सबसे निकृष्ट होती है जिसे पाँच या अधिक वर्ष के लिए खाली छोड़ना पड़ता है। इनमें से प्रथम दो प्रकार की भूमि पुनः तीन भागों में बाँटी गयीं थी जो उपज के अनुसार उत्तम, मध्यम और घटिया कहलाती थीं। इन पर लगान निश्चित करने के लिए हर तरह की भूमि कीं उपज को जोड़कर उसका एक तिहाई औसत मान लिया जाता था। इस उपज का $\frac{1}{3}$ माल गुजारी के रूप में लिया जाता था।

इस पद्धति को जब्त कहते थे और यह दिल्ली, आगरा, इलाहाबाद, अवध, बिहार, मालवा, मुल्तान और लाहौर में प्रचलित की गयी थी। अन्य

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सूबों में पुरानी पद्धति भी चलती थी; विशेषकर काबुल, सिंध तथा काश्मीर में गल्लाबख्श पद्धति चलती थी जिसके अनुसार उपज का एक भाग राजस्व के रूप में लिया जाता था। बंगाल में नसख पद्धति प्रचलित थी। यह पद्धति वर्तमान युग की जमींदारी के पद्धति की तरह थी। टोडरमल को इसके सुधार के लिए बहुत समय न मिल पाया था क्योंकि वह बंगाल की ओर युद्धों में व्यस्त रहा था।

इस प्रकार टोडरमल की सहायता से अकबर ने राजस्व का सुनिश्चित प्रबंध किया जो शाहजहाँ के काल तक उसी रूप में चलता रहा। औरंगजेब ने इसमें थोड़ा सा परिवर्तन पुनः किया था। मालगुजारी के वसूल करने का प्रबंध नाज़िम के ऊपर था जो पटबारियों और मुकद्दमों से इस कार्य में सहायता लेता था। खेती की नाप और उसकी उपज का हिसाब रखने के लिए कारकुन नियुक्त किये जाते थे, इन्हीं के हिसाब के आधार पर कानूनगो माल गुजारी की रकम निश्चित करते थे। यह रकम पटवारी और मुकद्दम के द्वारा पोतदारों के पास जमा हो जाती थी जो उसे शाही खज़ाने में जमा कर देते थे।

अकबर ने अपनी राजस्व व्यवस्था के आधार पर इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। इस व्यवस्था से किसान और राज्य दोनों को लाभ हुआ। राज्य की तो आय में बुद्धि हुई और किसान का सीधा सम्पर्क राज्य के साथ स्थापित हो गया। इससे जमींदार तथा ठेकेदारों का अत्याचार समाप्त हो गया। किसान का भूमि पर अधिकार सुरक्षित हो गया।

डा० स्मिथ का इस विषय में कथन बहुत ही उपयुक्त है "**यह पद्धति अत्यंत सराहनीय है, इसके सिद्धांत ठोस हैं तथा कर्मचारियों को दिये आदेश अत्यंत सन्तोषजनक हैं**" †

मोरलैंड का कथन है---

"अकबर के प्रबन्ध से किसानों का कल्याण हो गया। राज्य का अंश निश्चित था, अतः हर कृषक को यह ध्यान रहता था कि उसे क्या देना है बस जहाँ तक मनुष्य की बुद्धि तथा चतुरता का प्रश्न है, हर यत्न किया गया था, कि अधिकारियों में भ्रष्टाचार न रहे अतः राज्य के उच्च अधिकारी

---

† "The system was an admirable one. The principles were sound and the practical instructions to officials all that could be desired"

V. Smith, Akbar The Great Mogul. p. *273*.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ईमानदार थे और टोडरमल की पैनी दृष्टि से छोटी से छोटी चीज भी बची न थी" †

न्याय व्यवस्था--"मुगल सम्राट अपने समय का खलीफ़ा होता था अतः वही सम्पूर्ण न्याय विधान का मूल स्रोत माना जाता था। सरकार के अनुसार सम्राट अपील का अंतिम न्यायालय था, पर कभी-कभी वह प्रथम न्यायाधीश का भी काम करता था" *

मीर अर्ज सम्राट के सामने प्रजा की अपील उपस्थित करता था। कहा जाता है कि अकबर के सामने कार्य इतना अधिक था कि सात मीर अर्ज़ रहते थे। इसमें सन्देह नहीं कि मुगल सम्राट न्यायप्रिय थे, किंतु उनके समीप तक पहुँचना एक समस्या थी। जहाँगीर ने इस समस्या को हल करने के लिए एक जंजीर का प्रबंध किया था, पर कितनों को उस जंजीर के खींचने का साहस हुआ यह इतिहास जानता है। अकबर ने तो एक स्थल पर यहाँ तक कहा है कि **"यदि मैं स्वयं अपराध करूँ तो अपने विरुद्ध न्याय के लिए सदैव प्रस्तुत रहूँगा।"** +

अकबर के पहिले न्याय का आधार इस्लाम का कानून था, जो सल्तनत काल से बाबर तथा हुमायूँ तक चलता रहा। अकबर ने यद्यपि इसमें कोई मौलिक परिवर्तन नहीं किया, फिर भी छोटे-मोटे सुधार करके इस्लामी कानून की सीमा को सीमित कर दिया। इसके फल स्वरूप अधिक से अधिक मुकद्दमों का निर्णय देश के सामान्य कानून के अनुसार होने लगा। उसने हिन्दुओं के मुकद्दमों का निर्णय करने के लिए हिन्दू न्यायाधीश भी नियुक्त किये। इस

---

† "Akbar's system conferred a great boon on the peasantry, the state demand was fixed, and every peasant knew what he had to pay. Adequate safegaurds were provided, so far as human skill and statesmanship could go to prevent fraud and corruption on the part of the officers of the state. The highest officials of the crown were honest, and the Argus eyed Todar Mall watched every detail of the management with a meticulous care." *Moreland.*

* "The Mughal emperor was the highest court of appeal and some times acted as the first instance too." *J .N. Sarkar.*

+ "It I were guilty of an unjust act, I would rise in judgement against myself." *Akbar.*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

न्याय व्यवस्था में सम्राट की अदालत के नीचे प्रधान काजी (काजी-उल-कुज़ात) होता था। यह काजी दूसरे काजियों की नियुक्ति करता था, जो प्रत्येक प्रांत में रहते थे। प्रांतीय काज़ी का क्षेत्र भी बहुत बड़ा होता था, फिर भी उसको कोई सहायक नहीं दिया जाता था। साधारण रूप से न्यायालय में तीन अधिकारी होते थे, काज़ी, मुफ्ती और मीरअदल। इनमें काज़ी अभियोग की जाँच करता था, मुफ्ती शरीअत की व्याख्या करता था, तथा मीर अदल उस जाँच और व्याख्या के आधार पर न्यायपूर्ण निर्णय देता था। मुफ्तियों की नियुक्ति हर न्यायालय में नहीं होती थी, काज़ी हिन्दू तथा मुसलमानों के दीवानी तथा फौजदारी के मुक़द्दमे सुना करते थे, पर अधिकतर राजा के सामने माली मुक़द्दमों की अपेक्षा फौजदारी के मुकद्दमें अधिक आते थे, तथा प्रत्येक मृत्यु दण्ड के लिए सम्राट की अनुमति आवश्यक थी। सूबों का अधिपति नाज़िम या सूबेदार भी सम्राट की भांति मुकद्दमों की सुनवाई करता था, फौजदार पकड़े-हुए अपराधियों को उसके समीप भेजता था। राजनीतिक अपराधियों के मुकद्दमें वह स्वयं सुनता था, पर माल के मुक़द्दमें दीवान के पास भेजता था। फौजदारी न्याय पर भी उसका निरीक्षण रहता था। हिन्दुओं के मुकद्दमों में उनके रीति रिवाज़ों का ध्यान रखा जाता था, मुग़ल न्याय व्यवस्था में विधि का निर्धारण आज की भाँति सुनिश्चित न था, इसकी कमी को औरंगज़ेब ने कुछ ठीक करना चाहा था और इस दृष्टि से उसने फतब-ए-आलमगीरी नामक ग्रंथ तैयार कराया था। औरंगज़ेब का आदेश था, कि बिना काज़ी की अनुमति के किसी को कारागार में न डाला जाय न बिना स्पष्टतः अपराध बताये हुए किसी को बन्दी बनाया जाय, तथा बन्दी बनाये जाने पर शीघ्र ही उसका न्याय किया जाय। इसमें सन्देह नहीं कि वह धर्म भीरू था।

सारे अपराध तीन भागों में बँटे थे। (१) प्रभु के प्रति अपराध, (२) राज्य के प्रति अपराध, (३) तथा साधारण व्यक्ति के प्रति अपराध। इन अपराधों के लिए चार तरह के दण्ड दिये जाते थे। हद, ताजिर, किसास, और ताशीर, जिनमें हद प्रभु के प्रति अपराध के लिए दिया जाता था। ताज़िर दण्ड अपराधी को सार्वजनिक रूप से डाट कर अथवा उसे सड़क पर घसीट कर, सार्वजनिक रूप से घृणा का पात्र बनाकर, अथवा पीट कर दिया जाता था। किसास एक प्रकार से प्रतिशोध का स्वरूप था, इसमें पीड़ित व्यक्ति अपनी हानि की पूर्ति की मांग करता था, ताशीर दंड में सर्व-साधारण के सामने अपमान किया जाता था। बहुधा अपराधी का सिर मुड़ा कर उसके मुख पर राख मल कर गले में जूतों की माला पहिनाकर, सारे

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

नगर में घुमाया जाता था। इस प्रकार मुग़लों की न्याय व्यवस्था बहुत स्पष्ट न थी। पश्चात् के लेखकों ने इसकी कटु आलोचना की है। उनका कहना है, कि क़ाज़ी अथवा सूबेदार मनमाना न्याय करते थे। वे भ्रष्ट थे और पैसे के बल पर अपना न्याय बदल देते थे, न्याय विधि का कोई सर्वमान्य स्वरूप न था। न कोई मुक़द्दमों की लिखा पढ़ी का ही हिसाब था। दण्ड विधान बड़ा कठोर था, क़ाज़ी के ऊपर ही सब कुछ निर्भर रहता था। इसी बात का विदेशी यात्री सर टामस रो ने भी समर्थन किया है। श्री यदुनाथ सरकार ने तो यहाँ तक लिखा है:—

"यह विचित्र बात है कि किसी मनुष्य का संहार हो जाना न तो ईश्वर की विधि का विरोध है, और न राजा की शांति में भंग बल्कि यह तो सन्तप्त परिवार के लिए हानि की पूर्ति का विषय है, जो बिना किसी राजा अथवा न्यायाधीश के हस्तक्षेप के मरे हुए व्यक्ति के समीपी सम्बन्धी को हरजाना देकर पूरा हो सकता है।" †

सैनिक प्रबंध—अकबर के पूर्व सैनिक संगठन अत्यन्त दुर्बल तथा दोषपूर्ण था। सारा साम्राज्य कुछ जागीरों में बटा होता था, इनके अधिपति अमीर कुछ सेना रखने के अधिकारी होते थे जो समय पड़ने पर सम्राट की सहायता करते थे। पर ये अमीर जो सैनिक रखते थे वे सैनिक किसी काम के न होते थे। दूसरे आये दिन वे स्वयं विद्रोही हो जाते थे। अतः अकबर का ध्यान इस ओर भी गया। उसने अपनी सेना को बड़े वैज्ञानिक ढंग से संगठित किया।

मुगल कालीन सेना का संगठन मनसबदारी प्रथा के नाम से प्रसिद्ध है। यह प्रथा भारत के लिए सर्वथा नई तो न थी क्योंकि हम देख चुके हैं कि शेरशाह तथा इस्लाम शाह के समय में भी इसी प्रकार का श्रेणी विभाजन था। उनकी सेना में १०००, २००० या इससे भी अधिक टुकड़ियों के सेनापति होते थे। पर अकबर ने इसे एक नया स्वरूप दे दिया। मनसब का अर्थ पद या प्रतिष्ठा है। अतः मनसबदार से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो शाही सेवा में पदवी धारण करे। अकबर के शासन काल में सबसे छोटा मनसब १०

---

† "It is rather strange to note that man-slaughter is not a violation of God's law, nor of the king's peace but only a damage to the family of the murdered man which can be settled by paying money as compensa- to the next of kin of the victim without the executive head of the state or the Judge of the Canon Law having to take any further notice of it."

J. N. Sarkar.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

का और सबसे बड़ा १० हज़ार का होता था। उसके शासन के अंतिम काल तक सबसे बड़ा मनसब १२ हज़ार हो गया था। पाँच हज़ार के ऊपर के मनसब राज कुमारों के लिए ही सुरक्षित रहते थे पर कुछ सरदारों को इस नियम के अपवाद स्वरूप ७ अथवा ८ हज़ार तक के मनसब दिये गये यथा, मानसिंह, तथा टोडरमल। मनसबदार तीन भागों में बटे हुए थे।

(१) १० से ४०० तक का मनसबदार जो केवल मनसबदार कहलाता था।

(२) ५०० से ढ़ाई हज़ार तक का मनसबदार जो उमरा कहलाता था।

(३) ५००० अथवा उससे ऊपर का मनसबदार उमरा-ए-आजम कहा जाता था। इनको सवार भी कहते थे।

इनकी पदोन्नति, नियुक्ति, तथा इनका स्थानान्तरण आदि सभी सम्राट के अधीन था। इनसे आशा की जाती थी कि वे जितने के मनसब हैं, उतने सिपाही नित्य अपने दल में तैयार रखें, पर बहुधा ऐसा होता न था। ये हाथी, घोड़े, बैल (सैनिक संचरण के लिए) सभी कुछ रखते थे। साथ ही यह भी कोई निश्चित नियम न था कि मनसब सबसे छोटे पद से प्रारम्भ करे, यदि कोई सम्राट का कृपा पात्र हुआ तो वह अच्छा पद प्राप्त कर लेता था, अथवा कोई मनसबदार उसके कोप का भाजन हुआ तो उसका मनसब छोटा किया जा सकता था। फिर वह केवल सैनिक पदाधिकारियों को ही न था बलिक व्यावहारिक पदाधिकारियों को भी मिल जाता था।

इस स्थान पर ज़ात तथा सवार के पद भी विवेचनीय हैं, क्योंकि इनके विषय मे इतिहासकारों के मत भिन्न भिन्न हैं। डा० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार अकबर ने मनसबदार को एक विशेष पद देना चाहा था जो ज़ात का था। उसको कुछ अधिक घोड़े रखने का अधिकार होता था, जिसके लिए उसे कुछ अधिक व्यय भी मिलता था। इस प्रकार एक मनसबदार का पद २००० ज़ात और २००० सवार का हो जाता था। इस नियम के अनुसार यदि किसी मनसबदार का पद बराबर ज़ात और सवार का होता था, तो पहले दर्जे का होता था, यदि सवार उसके ज़ात के आधे होते थे तो दूसरे दर्जे का, और अगर सवार ज़ात के आध से भी कम थे तो वह कम श्रेणी का होता था।

ब्लोचमैन का कहना कि जात से तात्पर्य उस संख्या से था जो एक मनसबदार को रखनी चाहिए थी और सवारों का मतलब उस संख्या से था

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

जो वह वस्तुतः रखता था: सही नही जान पडता। कारण यह है कि सवार का पद अकबर ने अपने शासन काल के अंतिम दिनों में प्रचलित किया था। (१६०३--४) दूसरे यह शब्द आईन में आता है पर आईन में कोई तिथिवार ब्यौरा नहीं है, बल्कि वह तो अकबर के शासन का संक्षेपतः वर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर के दक्षिण के युद्धों में उसे कुछ कठिनाइयाँ पड़ी, अतः उसने मनसबदारों को सन्तुष्ट करने के लिए कुछ अधिक धन देना चाहा। साथ ही उनसे अधिक काम लेने के लिए उसने कुछ ज़ात और सवार का योग मिला दिया। डा० आशीर्बादी लाल का कहना है कि मनसबदार को घोड़े और हाथी की जो संख्या रखनी पड़ती थी, उसमें गड़बड़ी होती थी और बहुधा मंसबदार घोड़ों की संख्या पूरी न रखते थे, न वे उन्हें सैन्य प्रदर्शन में ही लाते थे। शायद इसी गड़बड़ी को दूर करने के लिए अकबर ने सवार और जात मन सबों में भेद भाव कर दिया था। जिसके अनुसार जात मनसबदार को घोड़े हाथी और लद्दू जानवर इत्यादि तो निश्चित संख्या में रखते पड़ते थे किन्तु घुड़सवार नही। इसके विपरीत सवार पद के मनसबदार को घुड़सवार नियत संख्या में रखने पड़ते थे। आप इस मत से सहमत नहीं कि जात का पद व्यक्तिगत होता था किन्तु आगे चल कर इस नियम में शिथिलता आ गई और औरंगजेब के उत्तराधिकारियों के समय में यह पद नाम् मात्र के रह गये। मनसबदार को अपनी जाति अथवा कबीले के लोगों को सेना में भर्ती करने का अधिकार था। मुगलकाल में अधिकतर विदेशी तुर्क, ईरानी अफगानी और राजपूत बहुधा मनसबदार होते थे। मीर बख्शी के सामने सेना का प्रदर्शन होता था और उसमें मनसबदार जितने सशस्त्र सैनिक ला सकता था, उन्हीं के अनुसार उसका वेतन निश्चित हो जाता था। यह वेतन बहुत होता था, जिससे वे साज सामान खरीदने के उपरांत भी बचत कर लेते थे।

मुगल सेना के अंग—मुगल सेना पाँच भागों मे बटीं थी अर्थात् पैदल घुड़सवार, तोपखाना, हाथी और जल सेना। इसमें से पैदल सेना को वेतन कम मिलता था, इनका महत्त्व भी कम था। इनके शस्त्रों में तलवार तथा छोटा भाला होता था। घुड़सवार इनसे अधिक महत्त्व के थे। ये भी दो प्रकार के होते थे। पहले प्रकार के घुड़सवार को साज का सामान सरकार से मिलता था और इनको बरगीर कहा जाता था। दूसरे प्रकार के घुड़सवारों को सामान अपनी ओर से लाना पड़ता था, पर वेतन अधिक मिलता था, इनको सिलेदार कहते थे। तोपखाने में बन्दूकची सैनिक होते थे, जो मीर-आतिश अथवा तोपखाने के दरोगा के अधीन रहते थे। इन लोगों के पास

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

हलकी तथा भारी दोनों तरह की बन्दूकें रहतीं थीं। हाथियों का महत्त्व इनसे कम न था, बहुधा सेनापति हाथियों पर बैठ कर युद्धभूमि का निरीक्षण करते थे। हाथियों द्वारा शत्रु पर आक्रमण करने, किले की दीवार पर चढ़ने अथवा फाटक तोड़ने में सहायता ली जाती थी। जल सेना में मुगलों ने बहुत प्रशस्त कार्य नहीं किया। पश्चिमी तट का कार्य तो उन्होंने अबीसीनियनों को सौंप रखा था। पूर्वी ओर बंगाल की सरकार नावों का बेड़ा रखती थी। इन नावों पर तोपें चढ़ी रहती थीं। इनके अधिकारी को मीर-बहर कहते थे। वह नौकाएं बनवाना, नदियों पर सामान उतारना अथवा मल्लाहों की नियुक्ति आदि करने का काम करता था। औरंगजेब के समय में यह बेड़ा बहुत प्रबल था। उसमें ७०० से अधिक तो जहाज थे जो शस्त्र अस्त्र से सुसज्जित रहते थे तथा विदेशी लुटेरों से रक्षा करने के लिए नियुक्त थे। चूँकि मुगलों को जल सेना से विशेष कार्य नहीं लेना पड़ा, अतः उनका यह अंग दुर्बल रहा, जिससे विदेशियों ने पूरा पूरा लाभ उठाया।

शासन व्यवस्था की आलोचना—मुगलों की शासन व्यवस्था बहुधा विदेशी गिनी जाती है और उन पर यह आरोप लगाया जाता है कि उन्होंने विदेशी पद्धति को भारतीय लिवास में उपस्थित किया, पर यह कहना सर्वथा सही नहीं है। प्रारम्भ में निश्चय ही मुगल विदेशी थे, पर अकबर से लेकर आगे के शासक सभी भारतीय भूमि पर उत्पन्न हुए। अतः वे स्वयं भी विदेशी रहे तो उनके नियुक्त किये हुए बहुत से छोटे बड़े पदाधिकारी भारतीय कैसे हो सकते थे। ट्रेवरनियर का कहना है कि **"शाहजहाँ ने अपनी प्रजा पर एक राजा की भाँति राज्य नहीं किया बल्कि ठीक ऐसे किया जैसे एक पिता अपने कुटुम्ब पर करता था।"** †

यद्यपि इसमें विदेशी की उक्ति अतिरंजित है पर इसमें संदेह नहीं कि आजकल का भारत बहुत कुछ मुगल शासन प्रणाली की ही देन है।

इस शासन व्यवस्था पर दूसरा आरोप यह है कि इसके आर्थिक और सामाजिक परिणाम भारतीयों के सुख तथा उनकी समृद्धि के लिए घातक सिद्ध हुए। इस विषय में यह कहा जा सकता है कि मुगल अंग्रेजों की भाँति भारतवर्ष से धन बाहर घसीट कर नहीं ले गये। उन्होंने इस बात का प्रयास किया कि प्रजा को प्रजा समझा जाय और उनका साम्राज्य सुसंगठित और सुरक्षित

---

† "Reigned not so much as a king over his subjects but rather as a father over hls family and children"

Tavernier

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

रहे। एक स्थल पर वे अवश्य न टिक सके और वह था, उनका इस्लाम धर्म। जहाँ कहीं इस्लाम इस्लाम में न्याय का प्रश्न था, वे निष्पक्ष थे, पर इस्लाम और हिन्दुत्व के न्याय में उनमें से बहुतों ने पक्षपात पूर्ण व्यवहार किया। मूरलैंड के अनुसार मुगल काल में जुलाहे नंगे रह कर दूसरों के लिए कपड़े पहना कर परिश्रम करते थे। किसान स्वयं भूख से मरते हुए कस्बों और शहरों का पेट भरने के लिए अथक परिश्रम करता था, पर देश की अवस्था इस बात को पूर्ण रूप से नहीं मानती। अकाल के समय परिस्थिति भले ही कठिन रहती रही हो, अन्यथा मुगल काल में किसी प्रकार की सामग्री का अभाव न था। इसके विपरीत कला, कारीगरी आदि में समुचित उन्नति हुई। मुगलों ने इन विषयों में अपूर्व प्रोत्साहन दिखाया, अतः सरकार के अनुसार मुगल शासन को अत्यंत संकुचित, धन लोलुप और नीरस भी मानना उचित नहीं है।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद—१० (ब)

मुगल कालीन भारतीय कला

मुग़लों की युद्धप्रियता देख कर यह अनुमान लगाना कि उन्हें कला तथा कारीगरी से स्नेह न रहा होगा, भ्रम पूर्ण होगा। वे बहुधा युद्ध भूमि में वीर योद्धा थे, पर अपने रंग महल में (औरंगजेब को छोड़कर) पूर्ण विलासी। उनको संगीत, नृत्य, चित्र वस्तु सभी कलाओं से श्रद्धा थी। कुछ उनमें से स्वयं कला के उपासक ही नहीं साधक भी रहे। इसका कारण उनकी सम्पन्नता तथा मानसिक भावनाओं की उच्चता ही कहा जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि एक तन्त्र में कला को हर युग और हर देश में प्रोत्साहन मिला।

स्थापत्य कला—मुग़लों की स्थापत्य कला के प्रतीक देश में एक नहीं अनेक हैं, उन्होंने अनेक भवन, स्मारक, मस्जिदें तथा उद्यानों का निर्माण कराया। उनकी कला अपनी थी, वे इसे अपने साथ लाये थे, अथवा वह भारतीय थी, इस विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। फरग्यूसन के अनुसार यह विदेश से ही आई, पर हैवेल ने इस मत का खण्डन किया है। उनका कहना है कि भारत के महान भवन निर्माणकर्त्ताओं को कहीं बाहर से प्रेरणा नहीं मिली। स्थापत्य कला के प्रसिद्ध समालोचक जौन मार्शल ने लिखा है, **"बाबर के पश्चात् भारत की स्थापत्य कला पर ईरानी प्रभाव बढ़ गया, और अकबर के समय तक जारी रहा। अकबर के उत्तराधिकारी जहाँगीर तथा शाहजहाँ के काल में स्थापत्य कला पूर्णतया भारतीय हो गयी, वस्तुतः भारतीय शिल्पियों ने ईरानी कला के सिद्धान्तों को इस प्रकार अपने में मिला लिया था कि वे स्वदेशी ज्ञात होने लगे।"**

मध्य एशिया की कला की विशेषता गुम्बद, ऊँची-ऊँची मीनार, महराव तथा डाट थी, जब कि भारतीय शिल्प कला की विशेषता चौरस छत, छोटे खम्भे, नुकीली महराव, और तोड़ों की थी। विदेशी कला का यह स्वरूप मुग़लों से पूर्व ही अन्य आक्रमणकारियों के साथ भारत आ चुका था, बाबर के समय तक वह तीन सौ वर्ष पुराना हो चुका था। पर भारतीय कला पर इसका इतना प्रभाव न पड़ा था, बल्कि भारतीयता का उस पर अधिक प्रभाव था। इसका सीधा सा कारण यह था कि विदेशी शासकों को भारतीय कारीगरों से काम लेना पड़ा, उन्हें बहुत कुछ भारतीय सामग्री अपने भवनों में प्रयोग करनी पड़ी,

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उनके भवनों में भारतीय कारीगरों ने स्वभावतः उस कला का समावेश किया, जो इस देश में बहुत पहले से प्रचलित थी। इसमें सन्देह नहीं कि अतीत काल से भारतीय तथा विदेशी कला का समन्वय होता रहा। मुग़ल काल में यह समन्वय और अधिक हुआ क्योंकि वे स्वतः भारतीय हो गये थे। डा० ईश्वरी प्रसाद तो यहाँ तक कहते हैं कि **"किसी भी शैली को यह कह कर सम्बोधित ही नहीं किया जा सकता कि यह मुगल शैली है"**† ठीक भी है, भारत जैसे विशाल देश में कोई भी कला, अपनी विशालता के कारण एक नहीं दिखाई दे सकती, विभिन्न स्थानों पर एक ही शैली के विभिन्न रूप हो सकते हैं। फिर कला का स्वरूप विभिन्न सम्राटों के निजी दृष्टिकोणों पर निर्भर रहता था, बाबर के पश्चात् निःसन्देह फारसी प्रभाव बढ़ गया था, जो अकबर तक बढ़ता रहा। मुग़ल शैली में अनेक शैलियों का सम्मिश्रण हो चुका था, उसमें नक्काशी का योग विशेषकर आ गया था। **"अपनी चारुता तथा सजावट से यह अपने उन मुग़लों से पूर्ववर्ती शैलियों से सर्वथा भिन्न दिखाई पड़ती है, जो अपनी सादगी तथा विशालता लिये रहती थी।"***

बाबर की कृतियां—प्रथम मुग़ल सम्राट बाबर भवन निर्माण का बड़ा प्रेमी था। वह भारतीय कला को हीन समझता था, और अलबानिया के प्रसिद्ध भवन निर्माणकर्त्ता सिनान के एक शिष्य को कुस्तुनतुनियाँ से बुलाना चाहता था, पर इसमें वह सफल न हुआ। फिर भी उसने कई भवन बनवाये। उसने स्वयं एक स्थल पर लिखा है, **"केवल आगरा में वहीं के निवासी पथर-कटों से ६८० कारीगर मेरे निजी महलों में, तथा आगरा, सीकरी, बियाना, धौलपुर, ग्वालियर और कोइल में प्रतिदिन १४९१ कारीगर काम करते हैं।"** + इस समय इन भवनों में से केवल दो ही शेष बचे हैं। इनमें से एक तो पानीपत में **काबुल बाग की मस्जिद दूसरी सम्भल की जामा मस्जिद है।** बाबर ग्वालियर

† "We cannot fix, however, upon any style and say, this is Mughal style." Muslim Rule. p. 526

* "Its delicacy and ornamentation furnish a striking contrast to the massiveness, and simplicity of the art of Pre-mughal days." Muslim Rule. p. 527.

+ "In Agra alone, and of the stone-cutters belonging to that place only, I every day employed on my palaces 680 persons, and in Agra, Sikri, Biyana, Dholpur, Gwalior, and Koil there were every day employed on my work 1491 stone-cutters."

Babur's Memoir's

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

की शिल्प कला से कुछ प्रभावित हुआ था, जिसे उसने मानसिंह और विक्रमाजीत द्वारा बनवाये हुए महलों में देखा था। वस्तुतः बाबर न भवन अधिक नहीं बनवाये बल्कि मण्डप, स्नानागार, कुए, तालाब, फव्वारे ही बनवाये। अथवा यह सम्भव है कि उसके महल इतने दुर्बल रहे हों जो वर्षा, आतप, वात से ही मिट गये हों, आज उसकी दो ही कृतियाँ हमारे समक्ष हैं। तीसरी कृति अयोध्या में एक बाबरी मस्जिद कही जाती है, पर उसमें शिल्प कला की दृष्टि से कोई विशेषता नहीं है।

हुमायूँ की कृतियाँ—हुमायूँ को बाबर से कम संकट न रहे थे, पर उसने भी कुछ निर्माण कार्य कराया। उसके समय की कृतियों में एक, **पंजाब के हिसार जिले की मस्जिद है जो फतेहाबाद** में है। यह फारसी शैली में टाइलों से जड़ी है, दूसरी कृति उसका दिल्ली का महल **"दीन पनाह"** है। कहा जाता है कि यह बहुत शीघ्रता से बनवाया गया था, अतः इसमें सौन्दर्य का विशेष ध्यान नहीं रखा जा सका।

शेरशाह की कृतियाँ† :—शेरशाह को भी स्थापत्य कला से कम स्नेह न था। शेरशाह की कृतियों में सब से अधिक सराहनीय उसका **सहसराम स्थित मक़बरा है**। इसका बाहरी स्वरूप मुसलमानी ढंग का बना है, पर इसका भीतरी भाग तोड़ों तथा हिन्दू रीति के स्तम्भों से सजा हुआ है। आलोचकों की दृष्टि से यह तुग़लकों के समय की भारी तथा भद्दी और शाहजहाँ के भव्य भवनों के बीच की कड़ी है। शेरशाह ने हुमायूँ के महल **"दीनपनाह"** को गिरवाकर, एक पुराना किला नामक भवन बनवाया, इसका केवल एक ही भाग शेष है, इसके अन्दर एक मस्जिद है, यह मस्जिद कला की दृष्टि से अत्यन्त **प्रशंसनीय** है।

अकबर :—अकबर ने ऐसा कोई क्षेत्र नहीं छोड़ा जिसमें अपना हाथ न लगाया हो। वही वस्तुतः सच्चा सम्राट और शासक हुआ है। स्थापत्य कला के क्षेत्र में भी उसने सराहनीय कार्य किये। उसने हिन्दू शैली के अनुसार आगरा तथा फतहपुर सीकरी में अपने महल बनवाये। फतहपुर सीकरी का अकबर का महल विशेष प्रशंसनीय है। अकबर ने १५६९ ई० में इस नगर की नींव सलीम चिस्ती की स्मृति में डाली थी। इस स्थल पर लगभग १२ वर्ष तक कार्य हुआ जिसमें अनेक भवन बने। इनमें **जामा मस्जिद** तथा **बुलन्द-दरवाजा** बड़े प्रसिद्ध हैं। बुलन्द दरवाजा भारत में सबसे ऊँचा स्मृति द्वार है,

---

† **टिप्पणी**:—शेरशाह मुग़ल न था पर काल के अन्तर्गत आने से समावेश किया गया।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

यह संसार में सबसे बड़ा है। यह १६०२ ई० में अकबर ने अपनी दक्षिण विजय की खुशी में बनवाया था। जामा मस्जिद को तो फतहपुर की शान 'शान-ए-फतहपुर' कहा जाता है। यह १५७१ ई० में बनवाई गयी थी। फतहपुर की दूसरी विशेष कृतियों में बीरबल का महल, अम्बर की राजकुमारी का महल अथवा सुनहरा भवन, तुर्की सुल्तान का महल तथा दीवाने खास हैं। डा० स्मिथ के अनुसार "फतहपुर सीकरी एक निरंकुश सम्राट की उत्तरदायित्व हीन सनक थी, जो सर्वग्राही वहमी भावना के अन्तर्गत कार्य कर रही थी, तथा जो व्यय भार के बन्धन से सर्वथा मुक्त थी"* किन्तु लेनपूल की दृष्टि में "समस्त भारत में इतना मनोहर पर शोकजनक स्थल अन्यत्र नहीं हैं जितना कि यह निर्जन नगर जो एक उजड़े हुए स्वप्न का मौन साक्षी बना हुआ है" ‡

दिल्ली स्थित हुमायूँ के मकबरे की चर्चा भी यहाँ असंगत न होगी। यह अकबर की सौतेली मां हाजी बेगम की देख-रेख में बनवाया गया था। यह ईरानी शैली में बना है। इसमें सर्व प्रथम कुछ उभार के साथ दुहरे गुम्बद का बाहरी घेरा एक ऊँची नोकदार चोटी पर मिलाया गया है। इस प्रकार की शैली समरकन्द के भवनों की है।

अकबर ने आगरा और लाहौर का दुर्ग अपनी देख-रेख में बनवाया। आगरा के किले की दीवारें ७५ फीट ऊँची हैं। यह दुर्ग १॥ मील के घेरे में है। इसमें दो फाटक हैं जो क्रमशः दिल्ली दरवाजा, या हाथी दरवाजा और अमरसिंह दरवाजा कहे जाते हैं। इस दुर्ग के अन्दर अकबर ने लगभग ५०० लाल पत्थर की इमारतें बनवायीं। इनमें से बहुतों को शाहजहाँ ने गिरवा कर उनके स्थान पर सफेद संगमरमर के मण्डप बनवा दिये थे। दुर्ग के अन्दर के भवनों में सबसे प्रमुख अकबरी महल और जहाँगीरी महल हैं। अकबरी महल में बंगाली बुर्ज बने हैं, जहाँगीरी महल राजकुमार सलीम (जहाँगीर) का निवास था, ये लाल पत्थर के बने हैं। इनके बीच में चौकोर आँगन हैं, तथा चारों ओर दुमंजिले कमरे बने हुए हैं, इनकी बनावट की विशेषता उसकी कड़ियों तथा तोड़ों में हैं, यथासम्भव उनमें महराबें नहीं बनवायी गयीं।

* "The freak of an irresponsible autocrat acting under the impulse of overpowering superstitious emotion and enjoying the sensation of absolute freedom from financial limitations."

Akbar the Great Mughal p. 323 *Dr. V. A. Smith.*

‡ "Nothing sadder or more beautiful exists in India than the deserted city, the silent witness of a vanished dream."

Lanepoole.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

जहाँगीरी महल हिन्दू पद्धति पर बना है। आगरा किले की रूपरेखा मानसिंह द्वारा बनवाये गये ग्वालियर किले से मिलती है। इसकी प्रशंसा विदेशियों ने इन शब्दों में की है :—

"हाथी द्वार, अमरसिंह द्वार की छतरियाँ, किले की दीवालों से ऊँचे उठे हुए महल, इन महलों की योजना, तथा खुदाई के कुछ ब्यौरे ऐसे थे जिन्होंने ४० वर्ष पूर्व बाबर को मोह लिया था, तथा जिन्हें उसके भाग्यशाली पौत्र ने एक नमूने के रूप से ग्रहण किया था।†

आगरा और लाहौर के दुर्गों की शैली का सिद्धान्त "बाजू और कड़ी" का है। लाहौर का दुर्ग भी आगरा के दुर्ग के साथ ही बना था, तथा लगभग आगरा के दुर्ग की ही तरह का है, बस लाहौर के दुर्ग की सजावट आगरा के दुर्ग से अधिक है। उसके तोड़ों में हाथी और सिंहों की मूर्तियाँ हैं, और छत के नीचे बनी हुई कारनिस में मोरों के चित्र खुदे हुए हैं। इसके कुछ ही समय पश्चात् इलाहाबाद का दुर्ग बना, इसके अन्दर महलों की नक्काशी भी दर्शनीय है। अकबर ने शिल्पकला को एक नया रूप दिया, क्योंकि वह हिन्दू पद्धति से बहुत प्रभावित हुआ। इसका प्रभाव समस्त राजपूत राजाओं पर पड़ा। अतः उन्होंने अजमेर, बीकानेर, जोधपुर, ओरछा तथा दतिया में अनेक महल बनवाये, जिनमें मुग़ल कला स्पष्ट दिखायी देती है। इस नक्काशी का कुछ प्रभाव वृन्दावन के मन्दिरों पर भी पड़ा।

जहाँगीर—जहाँगीर को स्थापत्य कला से इतना स्नेह न था, जितना उसके पिता या पुत्र को। फिर भी निर्माण कार्य की धारा एकदम बन्द न हुई। उसके समय की स्मृति बनाये रखने को दो भवन अभी भी शेष हैं। एक तो नूरजहाँ का बनवाया हुआ आगरा में एतमादुद्दौला का मकबरा, दूसरे सिकन्दरे में अकबर का मकबरा है। एतमादुद्दौला का मकबरा नूरजहाँ ने अपने पिता की स्मृति में बनवाया था। यह सफेद संगमरमर का बना हुआ है, इसमें रंगीन पत्थर की नक्काशी इसके सौन्दर्य को बढ़ा देती है। यह पहला

---

†"The Elephant gateway, the copulas of Amar Singh gateway, the palaces arising out of the fort walls, the planning of these palaces, and also some of the carved details all indicate that the Rajput citadel which had moved Babur to admiration some forty years before was used freely as a model by his more fortunately placed grand son"

Cambridge History of India Vol. IV P. 538.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मुगल भवन है जो समस्त संगमरमर से बना है। इसकी शैली राजपूती है इसके विषय में परसी ब्राउन महोदय लिखते हैं—

"एतमादुद्दौला के मकबरे को भवन निर्माण कला का अद्वितीय योग कहिये, अथवा स्थापत्य कला में दुर्लभ कार्य कुशलता का प्रतीक, अथवा अपूर्व पितृभक्ति का कलात्मक उदाहरण, इसके प्रत्येक अंश से मुगल कालीन सौन्दर्य भावना टपकती है।†

अकबर अपना मकबरा स्वयं न बनवा सका था, पर उसका नक्शा उसके सामने बन चुका था। यह मकबरा बौद्ध बिहारों की स्थापत्य शैली के आधार पर सिकन्दरे में बना है। इसमें पाँच वर्गाकार चबूतरे नीचे ऊपर बने हैं, और हर दूसरा पहले से छोटा होता गया है। अकबर का विचार था कि अंतिम मंज़िल के ऊपर सुनहरी छत के साथ एक गुम्बद बनवाये पर वह स्वयं इसे कार्यान्वित न कर सका। अतः यह मकबरा जहाँगीर ने १६०५ से १२ के बीच पूरा कराया। इसमें सबसे ऊपरी भाग में फारसी में चुने हुए अशआर खुदे हैं। ये बड़े उच्च दार्शनिक विचारों पर आधारित है।

इसके अतिरिक्त लाहौर के निकट शाहदरे में नूरजहाँ ने जहाँगीर का मकबरा बनवाया था। जहाँगीर को उद्यानों से बहुत रुचि थी, काश्मीर में शालीमार और निशात इनमें उल्लेखनीय हैं।

शाहजहाँ—शाहजहाँ ने अपने पूर्वजों की कृतियों पर मानो पानी ही फेर दिया। शाहजहाँ की कलात्मक रुचि बहुत प्रगाढ़ थी। उसका शासन काल तो मुगल स्थापत्य का स्वर्ण युग था। उनके बनवाये राजभवन, दुर्ग, मस्जिदें, उद्यान सभी हैं, और ये एक स्थान पर नहीं, उसकी अनुपम कृतियां दिल्ली, आगरा, अजमेर, अहमदाबाद, लाहौर, काबुल, काश्मीर तथा कंदहार तक में है।

इनमें दिल्ली और आगरा के भवन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। दिल्ली में लाल किले के अन्दर **दीवाने--ए--आजम, दीवाने खास,** मोती

---

†"Whether regarded as an architectural composition, of matchless refinement, as an example of applied art displaying rare craftsmanship or as an artistic symbol of passionate filial devotion, the tomb of Itma-du-daula expresses in every part of it the high aesthetic ideals that prevailed among the Mughals at the time"

Cambridge History Vol IV p. 55.3

—*Percy Brown*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मस्जिद तथा नगर में अन्यत्र जामा मस्जिद है, इसी प्रकार उसकी आगरा की अनुपम कृतियों में आगरा दुर्ग में **दीवाने आम, दीवाने खास, खास महल शीश महल, मुसम्मन बुर्ज, मच्छी भवन और मोती मस्जिद** तथा बाहर **ताज महल और जामा मस्जिद** हैं। इनमें सर्वोत्तम कृति संसार प्रसिद्ध ताज महल है जो भवनों का ताज स्वरूप ही है।

ताज महल—शाहजहाँ ने अपनी प्रियतमा बेगम अर्जुमन्दबानू अथवा मुमताज महल की पुण्यस्मृति में यह स्मारक जमुना के तट पर आगरा में बनवाया था। मुमताज महल सन् १६३० ई० में परलोक सिधार गयी थी और दूसरे ही वर्ष इस भव्य भवन का निर्माण प्रारम्भ कर दिया गया। इसके निर्माण के पूर्व इसके नक्शे के लिए बड़ी छान बीन की गयी। न जाने कितने नक्शे रद्द कर दिये गये। शाहजहाँ के मन में खाका था, वह उसी को मूर्तिमान देखना चाहता था, कहते हैं, कि इसका नक्शा बनाने में भी विदेशी कलाकारों से समुचित सलाह ली गयी। सन् १६४१ में आगरा आये स्पेन के एक पादरी मानरीक का कथन है कि इसका नक्शा वेनिस निवासी जिरोनियो वैरोनिओ ने तैयार किया था। पर इतिहासकार इससे सहमत नहीं: क्योंकि वह इटली का कलाकार सन् १६४० अगस्त में लाहौर में परलोक सिधार गया था, अतः मानरीक का उससे वार्तालाप तो असंगत हुआ। इसके अतिरिक्त किसी अन्य यूरोपीय ने इस बात की चर्चा नहीं की है कि ताजमहल का नक्शा किसी विदेशी ने बनाया था। सबसे बड़ी बात तो यह है कि पीटर मुंडी जो वैरोनियो को जानता था, जिसने उससे साक्षात्कार भी किया था, वह इस विषय में कुछ नहीं कहता। टैवर्नियर उस समय भारत आया था, जब ताज बनाया जा रहा था, इस बात की कोई चर्चा नहीं करता। एक विदेशी इस बात को अवश्य कहता, यदि वह किसी विदेशी द्वारा बना होता, बल्कि इसके विपरीत थेयेनट का कथन इसके लिए भारतीयों की सराहना करता है। अन्त में कहना न होगा कि किसी भारतीय इतिहासकार ने इस विषय की चर्चा नहीं की।

ताज के निर्माण के पूर्व इसका एक खाका लकड़ी का बनाया गया, जिसके आधार पर इसके कारीगर इसे यह रूप प्रदान कर सके। ये कारीगर भारतीय ही न थे, बल्कि ईरान, अरब, और तुर्किस्तान के भी थे। इन्होने १८' ऊँचे तथा ३१३' वर्गाकार चबूतरे पर इसका निर्माण किया, इसके चारों ओर १३३' ऊँचे मीनार बनाये। मकबरा ११८' वर्गाकार तथा इसके बीच के गुम्बद का व्यास ५४ फीट है। ताज के निर्माण में २२ वर्ष लगे। यद्यपि इसके

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मुख्य द्वार पर सन् १६४७ ई० लिखा है। कहते हैं, शाहजहाँ ने इसमें १ लाख आय की जागीर लगा दी थी और लगभग इतनी ही आय इसकी सराय दूकानों आदि से भी आती थी, जैसे भी हुआ हो इसमें लगभग ३ करोड़ रुपये व्यय किये गये।

इस अनुपम कृति को देख कर दर्शक विभिन्न अर्थ लगाते हैं, कोई इसे "संगमरमर में स्वप्न" कहता है, कोई इसे प्रेम ही मूर्तिमान कहता है, कोई सजीव दाम्पत्य प्रेम बतलाता है। कोई उसे अमरत्व के गाल पर अमर अश्रु-बिन्दु मानता है जो मानव हृदय से टपक कर वहाँ ठहर गया है। अतः इस विषय में कुछ प्रमुख मत उल्लेखनीय है। यथा—

(१) थेयेनट का कथन, "यह उत्कृष्ट स्मारक यह सिद्ध करने को पर्याप्त है, कि भारतीय स्थापत्य कला से अनभिज्ञ नहीं हैं, इसकी शैली यूरोपीयों को विचित्र लग सकती है, पर यह अत्यन्त सुन्दर है और किसी की कलात्मक रुचि की द्योतक है।"†

(२) "यह उल्लेखनीय है कि सम्राट के साम्राज्य के कोने-कोने से मूर्तिकार, संगतराश, राज तथा चित्रकारों के झुन्ड के झुन्ड आ गये थे, तथा हर कला के विज्ञ अपने-अपने सहायकों के साथ इस कार्य में तत्परता से जुट गये थे।" *

(३) परसी ब्राउन—यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसके स्वरूप के निर्माण का कार्य विशेष कर मुसलमानों के हाथ में था, पर इसकी सजावट का कार्य हिन्दू कारीगरों के हाथ था। मुख्य रूप से रंगीन पत्थर के बेल बूटों का कठिन कार्य कन्नौज के हिन्दू कारीगरों द्वारा कराया गया।" +

---

† "This superb monument is sufficient to show that the Indians are not ignorant of architecture, and though the style may appear curious to Europeans, it is good taste and one can only say that it is very fine" *French man, theye not*

* "It may be observed that bands of sculd-tors, lapidaries, inlayers, and fresco-makers, came from different parts of his Majesty's dominions. The experts of each art together with their assistants busied themselves in the task" *Abdul Hamid Lahori*

+ "It may be noted that while the structural portions seem to have been principally in the hands of muhammadans the decoration was mainly the work of

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(४) स्मिथ—यह एशियाई, तथा योरूपीय प्रतिभा के समिश्रण का ही एक प्रतिफल है।" †

(५) आर्नोल्ड एडविन—"ए ताज तुम अन्य भवनों की भाँति भवन नहीं हो, बल्कि किसी सम्राट के प्रेम की वह गर्वित प्रेरणा हो, जिसे चमकते हुए कल्पना जगत के सजीव प्रस्तरों में मूर्तिमान किया गया है, जिसके साक्षात सौन्दर्य रूपी शरीर में आत्मा और मस्तिष्क दोनों ही विश्राम करते हैं।" *

(६) शाहजहाँ—"यदि कोई अपराधी यहाँ शरण ले, तो वह अपने पाप से ऐसे ही मुक्त होगा, मानों वह क्षमा पा चुका। यदि कोई पापी इस भवन तक आये, तो उसके समस्त पिछले पाप धुल जाँय, इस भवन को देखते ही दुःख भरी आहें उठती हैं, सूर्य तथा चन्द्र भी अपने नेत्रों से अश्रु बहाते हैं, इस संसार में यह मन्दिर भगवान की शान का प्रदर्शन करने के लिए ही मानों बनाया गया है।" +

अतः कहना न होगा कि इस कृति को देखने के लिए सभी व्यग्र रहते हैं, यही हमारी आज परम विभूति है, जो कला के क्षेत्र में हमारे मस्तक को समुन्नत किये है। इसमें सादगी है, इसमें सौन्दर्य है, इसमें अनुपम छटा है, जो पूर्णिमा के दिन दर्शनीय होती है। फर्ग्युसन ने लिखा है "आगरा का ताज

Hindu craftsmen, the difficult task of preparing the pietra dura especially being entrusted to a group of the latter from Kanauj."

Percy Brown.
Cambridge History V. IV P. 562

† "The product of a combination of European and Asiatic genius," *Dr. V. A. Smith.*

* "Not architecture; as all others are. But the proud passion of an emperor's love, wrought into living stone which gleams and soars with body of beauty shining soul and thought"

Sir Edwin Arnold.

+ "Should guilty seek asylum here,
Like one pardoned he becomes free from sin,
Should a sinner make his way to this mansion.
All his past sins are to be washed away.
The sight of this mansion creates sorrowing sight.
And makes sun & moon shed tears from their eyes.
In this world like this edifice has been made.
To display thereby the creator's glory."

Shahjahan.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

महल केवल अकेला ही ऐसा स्मारक है, जो अपनी महत्ता को अपनी सादगी के साथ लिये खड़ा है. सम्भवतः संसार भर में कहीं भी ऐसा दृश्य नहीं है, जहाँ प्रकृति और कला ने एक सर्वश्रेष्ट कला को मूर्तिमान बनाने में इतनी सफलता प्राप्त की हो जैसी इस स्मारक के बीच।"

ताजमहल की सुंदरता के पश्चात् मुगल कालीन भवनों पर यदि कहीं दृष्टि पड़ती है, तो दिल्ली के दुर्ग में दीवान-ए-खास पर। इस पर एक लेख खुदा है:—

"अगर फिरदौस वर रूए जमी अस्त।
हमी अस्त, ओ हमी अस्त, ओ हमी अस्त॥"

अर्थात् यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है, तो वह यही है, यही है, यही है। निःसन्देह यह एक अलंकृत और सुन्दर भवन है, इसमें दुहरे खम्भे लगे, हुए हैं। इसकी शोभा उस समय विशेष दर्शनीय रही होगी जब शाहजहाँ अपने मयूर सिंहासन पर बैठ कर यहाँ दरबार करता था। शाहजहाँ की मस्जिदें दो प्रकार की हैं, मोती मस्जिद तथा जामा मस्जिद। इनमें मोती मस्जिद अपनी भव्यता तथा जामा मस्जिद अपनी विशालता के लिए प्रसिद्ध है। मोती मस्जिद विशष कर व्यक्तिगत प्रार्थना के लिए होती है, जब कि जामा-मस्जिद सामूहिक प्रार्थना के लिए। समूह का ध्यान कला और कारीगरी में कहीं न उलझ जाय, अतः जामा-मस्जिद में सादगी रखी गयी है। पवित्रता तथा ललित कला की दृष्टि से आगरा दुर्ग में स्थित सफेद संगमरमर की बनी मोती मस्जिद बहुत उत्तम है। आगरा की जामा मस्जिद में दीवालों की शोभा बढ़ाने वाले एक ही नाप के अनेक गुम्बद वाले मण्डयों की पंक्ति है। १६३८ ई० में **शाहजहाँ ने दिल्ली के समीप शाहजहाँ बाद नामक नूतन नगर बसाया, तथा एक दुर्ग बनवाया, यही दुर्ग आज लाल किला कहलाता है।** इन भवनों में अलंकरणों की ही प्रधानता है। शाहजहाँ के समय सजावट का क्षेत्र भी बहुत उन्नत था।

औरंगज़ेब—शाहजहाँ के पश्चात् औरंगज़ेब के समय स्थापत्य कला उन्नत होने के वजाय अधोगति को चली गयी, औरंगज़ेब ने एक दो स्थलों पर जो निर्माण भी कराये वे इतने भद्दे और भोंड़े बने कि उसे शाहजहाँ की कृतियों की नकल कहने में भी संकोच होता है। औरंगज़ेब ने १६६० में बनारस के विश्वनाथ के मन्दिर को तोड़कर एक मस्जिद बनवायी। १६७४ में उसने लाहौर की बादशाही मस्जिद बनवायी जो दिल्ली की जामा मस्जिद की एक भद्दी नकल है।

दक्षिण की स्थापत्य कला—मुगल काल में उत्तरी भारत ही जागरूक न था, बल्कि दक्षिण के सुल्तान भी बड़े कला प्रेमी हुए। इनमें अनेक सुल्तान

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कवि थे (कुतुब शाह, आदिल शाह आदि) जिन्होंने उर्दू को एक साहित्यिक भाषा बनाने में भारी योगदान दिया। इन सभी को स्थापत्य की कृतियों से भी कम स्नेह न था यद्यपि इनकी अनेक कृतियाँ मिट गयीं फिर भी अपने भव्य युग की स्मृति दिलाने भर को बहुत हैं। इन सुल्तानों में भी विशेष कर बीजापुर और गोलकुंडा के सुल्तान प्रशंसनीय हैं। इन्होंने अनेक मकबरे, मस्जिदें राजप्रासाद, तथा उद्यान आदि का निर्माण कराया। इन भवनों में भी हिन्दू तथा इस्लामी शैलियों का समन्वय दिखाई पड़ता है। बीजापुर में गोल गुम्बद, इब्राहीम रोजा, ताज सुल्ताना का मकबरा, आदिल शाह का मकबरा, गगन महल आदि भवन दिल्ली की भव्यता का सर्वथा अनुकरण करते हैं। इसी प्रकार गोलकुंडे में कुतुबशाह के मकबरे, पाँच मस्जिदें, राजप्रासाद, आदि अनेक भवन हैं। बीजापुर की इमारतों में जामा मस्जिद आदिल शाह प्रथम की बनवायी हुई हैं, मकबरा आदिलशाह द्वितीय का है। गोलकुंडे में कुली कुतुबशाह का मकबरा १६२५ ई० में बनवाया गया था।

मुग़ल कालीन चित्रकला

चित्रकला भारतवासियों की युगों की सम्पत्ति है। पर पूर्व मध्यकालीन भारत में इसे समुचित प्रोत्साहन न मिला, ठीक भी है, सुल्तानों को तलवार से ही कब छुट्टी मिली, जो वे कला और कारीगरी की ओर विशेष झुकते। वस्तुतः सुल्तानों ने कभी इस देश को अपना देश कह कर ही न पुकार पाया। फीरोज तुग़लक इतना सुधारवादी प्रशासक था, पर उसने अपने महल में ही चित्रकारी पर रोक लगा दी थी। मुग़लों को चित्रकला से बड़ी रुचि थी। पर मुग़लकालीन चित्रकला केवल भारत की देन नहीं है। चीन की चित्रकला का तेरहवीं शताब्दी में ईरान में प्रयोग हुआ, साथ ही इस पर बौद्ध तथा मंगोलियन प्रभाव भी पड़ा। कालान्तर में यही शैली मुग़ल फारस से भारत लाये। हिन्दू चित्रकार तथा पश्चिमी या ईरानी चित्रकारों से एक बात में बहुत भिन्न हैं। हिन्दू चित्रकारों की प्रेरणा भारतीय साहित्य, तथा साधारण लोगों के जीवन की देन है, जब कि यह प्रेरणा पश्चिमी चित्रकारों को विलासिता मय दरबारों से मिली है।

बाबर व हुमायूँ -- बाबर की कलाप्रियता तो पैतृक थी। बह चित्रकारी तथा सौन्दर्य का सच्चा उपासक था। वह जब ईरान तक आया तो उपर्युक्त चित्रकला से उसका परिचय हुआ। इसी को वह भारत तक लाया। बाबर का प्रकृति से विशेष अनुराग था, उसे बाग, बगीचे, तथा निर्झर बहु प्रिय थे। उसने अपनी आत्म-कथा को चित्रित करवाया था (अलवर की पाण्डुलिपि)। हुमायूँ की यह रुचि उस समय जगी जब वह अपने निर्वासकाल में फारस

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

गया था। वहाँ से लौटते समय उसने मीर सय्यद अली और ख्वाजा अब्दुस समद को अपने साथ ले लिया। इन चित्रकारों ने उसके समय दरबार की चित्रकारी की। इन कलाकारों ने सुप्रसिद्ध फारसी ग्रन्थ **दास्तान-ए-अमीर-हमजा** को चित्रित किया। इनमें से सय्यद अली हिरात के प्रसिद्ध कलाकार विजहाद का शिष्य था। ये चित्रकार भारत में फारसी चित्रण लाये, जिसके फलस्वरूप ईरानी तथा भारतीय चित्रण का समन्वय सम्भव हुआ। पर बाबर तथा हुमायूँ को इस ओर ध्यान देने का बहुत समय न मिला।

अकबर :—अकबर के समय तक चित्रकला की बड़ी उन्नति हुई। अकबर ने चित्रकला को प्रोत्साहन देने के लिए अब्दुस समद के अधीन एक विभाग बनाया। उस विभाग में देश के कोने-कोने से तथा विदेश से चित्रकार बुलाये गये। ये कलाकार दूर देश से आने के कारण विभिन्न धर्म तथा जाति के थे, पर इन्होंने एक ऐसी चित्रण पद्धति को जन्म दिया, जिसे आज हम मुग़ल चित्रण पद्धति कहते हैं। कहा जाता है कि अकबर के समीप चित्र संग्रह की एक पुस्तक थी, इसी में बहुत सम्भव है, कि उमर शेख द्वारा चित्रित बाबर का चित्र था। अब्दुस समद फारस के नगर सीराज़ का निवासी था, उसे **"शीरी-कलम"** की उपाधि दी गयी थी। अकबर ने उसको टकसाल का भी सर्वोच्च पदाधिकारी बना दिया था। वह अपने कार्य में निःसन्देह बहुत कुशल था। उसने कुरान का ११२ वां अध्याय एक फूल के बीज पर लिखा है। अकबर इन कलाकारों के कार्य को सप्ताह में एक बार अवश्य देखता था। उसके समीप हिन्दू मुसलमान सभी कलाकार थे, हिन्दुओं में **दसवन्त, बसावन, सांवलदास, जगन्नाथ, तथा ताराचन्द**, और मुसलमानों में **अब्दुससमद, मीरसय्यद अली** और **फर्रुखबेग** विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें बसावन की कूची की कुशलता पृष्ठभूमि चित्रण में विशेष थी, साथ ही वह रंगों का विभाजन जानता था तथा व्यक्तिगत चित्र अच्छे बनाता था। दसवन्त बसावन का प्रतिद्वन्दी था। वह भी कम प्रसिद्ध न था। वैसे तो वह एक साधारण जाति का था (कहार) पर उसे चित्रकारी से बचपन से ही बहुत अनुराग था। इन चित्रकारों ने सम्राट के आदेश पर **चंगेज नामा, रज्म नामा, रामायण, नलदमयन्ती कथा** आदि ग्रंथों को चित्रित किया। इसके अतिरिक्त फतेहपुर सीकरी के महलों में दीवारों पर विशेष चित्रण किया गया। अबुल फजल ने इन कलाकारों की बड़ी प्रशंसा की है। उसने लिखा है **"अकबर के दरबार में सौ से अधिक निपुण एवं प्रसिद्ध चितेरे थे। इनमें से जो कम ज्ञान रखते थे उनकी संख्या और अधिक थी। विशेष कर हिन्दुओं की संख्या अधिक थी।"**

आईन अकबरी Vol. I p. 107

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अकबर वीर सेनानी होने के साथ कला मर्मज्ञ भी था। वह चित्रकारों की बड़ी प्रशंसा करता था। उसने एक स्थल पर कहा है **"मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि चित्रकार के पास ईश्वर को पहचानने का एक विचित्र साधन है, क्योंकि कोई चितेरा जीवित का चित्र खींचते समय, तथा उसके अंग प्रत्यंग बनाते समय उसमें जीवन नहीं डाल सकता, अतः इस प्रकार उसे ईश्वर का ध्यान विवश होकर आ जाता है, जिससे उसका ज्ञान बढ़ जाता है।"** †

जहाँगीर—अकबर के समय देश को शासन सूत्र में जकड़ कर बाँध दिया गया था, अतः कलात्मक क्षेत्र में कार्य सरल हो गया था। इसकी विरासत जहाँगीर को अनायस ही मिल गयी। जहाँगीर ने तो अपने जीवन में दुःख जाना ही नहीं। वह पूर्ण राजसी शान से पाला-पोसा गया। इसका फल यह हुआ कि उसके जीवन में आनन्द और अनुराग प्रमुख हो गये। कला से उसे स्वाभाविक स्नेह था। अतः उसने चित्रण कला को और भी अधिक प्रोत्साहन दिया। जहाँगीर स्वयं इतना सूक्ष्मदर्शी था कि अमुक कृति किसकी है यह बिना नाम की कृति देख कर बता सकता था। उसने एक स्थल पर लिखा है कि—

"जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, कला के प्रति मेरी अभिरुचि तथा उसे पहचानने की शक्ति इतनी तीव्र हो गयी है, कि यदि किसी कलाकार की कृति मेरे सम्मुख उपस्थित की जाती है, वह (विगत) मृत कलाकार की हो, चाहे वर्तमान की, मुझे कोई उसका नाम न बतलाये, तो भी मैं तुरंत उसका नाम बता दूँगा।* अर्थात् वह कृति किसकी है यह पहचान लूँगा।"

---

† "It appears to me, as if a painter had quite peculiar means of recognizing God, for a painter in sketching anything that has life and in devising the limbs one after the other must come to feel that he cannot bestow personality on his work, and is thus forced to think of God, the giver of life and thus increase his knowledge." *Akbar*

* "As regards myself, my liking for painting and my practice in judging it have arrived such a point that when any work is brought to me either of the deceased artist or those of present day without the names being told me, I say on the spur a of moment that is the work of such and such man." *Jahangir*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

हो सकता है कि यह आत्म-प्रशंसा ही रही हो, पर इसका प्रमाण उसके शासन काल में आये हुए आंग्ल यात्री सर टामस रो से भी मिलता है। जहाँगीर के समय चित्रकला के स्तम्भ **फरूख बेग**, **मुहम्मद नादिर**, और **मुहम्मद मुराद** थे। अबुल हसन का एक पुत्र था, जिसका नाम आका रज़ा, था वह भी एक प्रतिभा सम्पन्न चितेरा था। जहाँगीर ने उसे **नादिर उल जमन** की उपाधि प्रदान की थी। इसी प्रकार एक दूसरा चित्रकार जिसे **नादिर-उल-असर** का पद प्राप्त था, पक्षियों के चित्रण में सिद्धहस्त था। जहाँगीर के समय हिन्दू चितेरों को बहुत प्रोत्साहन नहीं मिला। जहाँगीर एक चितेरे **विशन दास** की चर्चा करता है, यह व्यक्तियों के चित्र (पोर्ट्रेट) बनाने में एक निपुण चितेरा था। इसके अतिरिक्त **मनोहर** और **गोवर्धन** के नाम प्रमुख रूप से लिये जाते हैं। जहाँगीर स्वयं चित्रकला का विशेषज्ञ था, अतः वह दूर-दूर से कला-विशारदों को बुलाया करता था। उसके समय चित्रकला अपनी चरम सीमा पर थी। इसके समय तक चित्रकला के क्षेत्र में विदेशी तत्व विलीन हो गये और जो रहे भी भारतीयता का रूप लेकर खड़े हो गये। इस काल के चित्रों में व्यक्तियों के चित्र, आखेटों, युद्धों, प्राकृतिक दृश्यों, पशुपक्षियों, तथा वृक्षों के चित्रण उल्लेख नीय है। परसी ब्राउन के अनुसार—

"जहाँगीर के अवसान के साथ मुगलकालीन चित्रकला की आत्मा ही विदा हो गयी। कुछ समय तक इसका बाह्य स्वरूप रह गया जो सुनहले और बहुमूल्य सजावट के रूप में अन्य मुगल सम्राटों के समय तक बना रहा किन्तु इसकी सच्ची आत्मा जहाँगीर की मृत्यु के साथ चल बसी।"†

शाहजहाँ—शाहजहाँ की रुचि भवन-निर्माण में अधिक थी, अतः वह चित्रकला पर अधिक ध्यान न दे सका। उसके दरबार में जहाँगीर की अपेक्षा चित्रकारों की संख्या कम हो गयी थी। जो भी रह गये थे, उनमें प्रमुख **मीर हसन. अनूप चित्र, चिन्तामणि, फकीर उल्ला**, तथा **मीर हाशिम** के नाम लिये जाते हैं। यह देख कर अनेक चितेरों का आश्रय तो उसके अमीरों के पास हो गया था। उसके दरबार में आसफ खाँ को चित्रकारी से बड़ा स्नेह था। आसफ खाँ ने लाहौर में अपना महल बनवाया था, उसकी सजावट प्रशंसनीय

---

† "With his (Jahangir) passing the soul of Mughal painting also departed. Its outward form remained for a time in gold and vestments it lived on under other kings but its real spirit died with Jahangir."
Percy Brown. Mughal Painting p. 68

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

है। शाहजहाँ से अधिक तो शाहजहाँ का पुत्र दारा शिकोह चित्रकारी से स्नेह करता था। दारा की चित्र-संग्रह-पुस्तक आज भी इण्डिया आफिस पुस्तकालय में विद्यमान है। शाहजहाँ को हीरे जवाहरात से अधिक स्नेह था, अतः उसके काल में रंगों की मिलावट में एक विशेष परिवर्तन आया। चितेरे ऐसी रंगसाजी करने लगे कि जो वस्तुतः रंग न प्रतीत हो, बल्कि दूर से मणि प्रतीत हो। अन्यथा रंग की कला की इसके समय कोई उन्नति न हुई। कहा जाता है कि रंगसाजी के पतन का प्रथम चरण शाहजहाँ का काल था।

औरंगजेब—औरंगजेब कुरान का सच्चा पुजारी था। उसे कुरान के विरुद्ध चलने का साहस ही न था। उसने अपने समय में कुछ भी किया हो, पर इस्लाम के विरुद्ध नहीं। वही एक ऐसा मुग़ल सम्राट था जिसकी पत्नियों की संख्या ४ से अधिक न बढ़ी। चित्रकारी कुरान में वर्जित है, अतः उसने चित्रकारी को प्रोत्साहन नहीं दिया तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। यही नहीं कहा जाता है कि उसने बीजापुर के सूर महल के चित्रों को मिटा दिया, तथा अकबर के सिकन्दरा के मकबरे के चित्रों पर चूना फिरवा दिया। औरंगजेब के इस प्रकार के व्यवहार से क्षुब्ध होकर चितेरे अधिकतर प्रान्तीय नगरों में जा बसे यथा-लखनऊ, पटना, मुर्शिराबाद, मैसूर, हैदराबाद आदि। इसी के फलस्वरूप राजपूताने में चित्रकारी फूलती फलती रही। जयपुर और नाथ द्वारा इसके प्रमुख केन्द्र बने। राजपूत चित्रकला जन साधारण की कला है। यह शैली के विचार से उदार और महान है, हिन्दू कलाकारों ने इसमें जन-साधारण के जीवन, धारणाओं रीति रिवाजों का चित्रण किया है। उन्होंने प्रेम, भक्ति सभी को समुचित स्थान दिया है। राजपूत कलाकार सूक्ष्म चित्रकला में श्रेष्ठ थे। उनके बनाये हुए रमणियों के चित्र बड़े भले हैं। इनकी कला के विशेष लक्षण वातावरण की सुन्दरता, रंगों की चमक और सूक्ष्म से सूक्ष्म अंगों की सजावट है।

संगीत—मुग़लों की रुचि संगीत में भी कम न थी। ये संगीत के महान संरक्षक रहे। स्टेनली लेनपूल का कथन है कि बाबर के समय समस्या पूर्ति, फारसी छन्द सुनना, सुन्दर लेख लिखना, तथा मनोहर गीत गाना प्रशंसा की चीजें समझी जाती थीं। बाबर को स्वयं कविता तथा संगीत से अगाध स्नेह था। उसने संगीत पर एक पुस्तक भी लिखी थी। उसने कुछ गीतों की भी रचना की थी। हुमायूँ का यह नियम था कि वह सोमवार तथा बुध को गाना सुनता था। १५३५ में एक बार जब उसने माण्डू पर अधिकार किया, और जब वह समस्त बंदियों के संहार का आदेश दे चुका था, तो उसे ज्ञात हुआ कि बन्दियों में एक संगीतज्ञ "बच्चू" भी है सम्राट ने उसे तुरन्त सामने बुलवाया, तथा संगीत से ऐसा प्रभावित हुआ कि उसको दरबारी गायको में रख लिया।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस दिशा में सूरवंश के सम्राट मुग़लों से कम न थे। वदायूँनी के के अनुसार **"ये सम्राट इन्द्रिय लोलुप विषयों में अपनी आसक्ति के कारण ही साहस और आत्म संयम के मार्ग से पथ भ्रष्ट हो गये।"†** इनमें आदिल शाह संगीत का इतना प्रेमी था कि उसने "भगत नामक एक गायक लड़के को १०००० का मंसब दे दिया था। इस्लाम शाह को भी संगीत में बड़ी रुचि थी। वस्तुतः यह सम्राट की इच्छा नहीं बल्कि समय की पुकार थी जब सम्राटों को दो ही काम रहते थे, युद्ध तथा विलासिता।

महान् सम्राट अकबर इससे अछूता न था। उसके समय तो संगीत को ऐसा प्रोत्साहन मिला कि संगीत की उन्नति हुई। मिर्ज़ा **तानसेन** के नाम से कौन परिचित न होगा। तानसेन का गायन अलौकिक गायन था, उसने अकबर को मोह लिया था। इसके अतिरिक्त अकबर ने मीरा के संगीत को सुनने का जो विचित्र प्रयास किया वह सर्व विदित है। अबुल फज़ल से हमें अकबर के समय के विभिन्न संगीतज्ञों के ३६ नामों का पता चलता है। इसमें मालवा के एक राजा राज बहादुर भी थे उसे अकबर ने उसके संगीत पर प्रसन्न हो कर १००० का मनसब दे रखा था। अबुल फज़ल का कथन है—

"सम्राट संगीत पर बहुत ध्यान देते हैं, तथा जो भी इस मनमोहक कला का अभ्यास करते हैं, उन सभी को संरक्षण देते हैं, दरबार में स्त्री, पुरुष, हिन्दू, इरानी, तूरानी, काश्मीरी सभी प्रकार के संगीतज्ञ हैं, ये संगीतज्ञ ७ हिस्सों में बटे हुए हैं, प्रत्येक भाग एक दिन के लिए निश्चित रहता है" *

"अकबर को संगीत विद्या का इतना अच्छा ज्ञान था कि किसी शिक्षित गवैये को क्या होगा, विशेष कर वह नगाड़ा बजाने में सिद्ध हस्त था।" ‡

---

†"They (members of the Sur dynasty) were enticed from the path of fortitude and self restraint by all sorts of sense ravishing allurements" *Badauni*

*"His Majesty pays much attention to music and is the patron of all who practise this cnchanting art. There are numerous musicians of the court, Hindus. Iranis, Turanis Kashmiris both men and women. The court musicians are arranged in seven divisions for each day of the week" *Abul Fazal*

‡ "Akbar was the master of such knowledge of the science of music as trained musicians do not possess and he had like wise and excellent hand at performing especialy on the Nakarah" (kettle drum)" *Abul Fazal*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

तानसेन के अलावा अकबर के समय के अन्य गायकों में सूरदास, राम दास, तथा बैजू बावरा के नाम उल्लेखनीय हैं। अकबर के समय में संगीत की अनेक शैलियों के समन्वय के पश्चात् एक ऐसी शैली का प्रारम्भ हुआ जिसे पूर्णतः भारतीय शैली कह सकते हैं। इस शैली में तराने, ठुमरी, गज़ल तथा कव्वाली गीतों की तर्जें रखी गयीं। स्वयं अबुल फजल तथा उसके पिता शेख मुबारक बड़े कुशल गायक थे। अकबर के अतिरिक्त उस समम अब्दुर्रहीम खान खाना, राजा भगवान दास, तथा मानसिंह आदि संगीत के बड़े संरक्षक थे। जहाँगीर भी अपने पिता की भाँति बहुत संगीत प्रिय था। उसने भी अपने दरबार में अनेक संगीतज्ञ रख छोड़े थे। वह उन्हें वृत्तियाँ दिया करता था। उसके दरबार में सैकड़ों गायक, तथा नाचनें वाली हर समय उपस्थित रहतीं थीं जिससे किसी भी समय उसके बुलाने में वे उपलब्ध हो सकें। इनकी भी बारी सातवें दिन आती थी, और प्रत्येक दिन का एक विभाजन पहले से ही किया रहता था।

कहा जाता है कि जहाँगीर ने कुछ गीत लिखे भी थे, उसे निःसंदेह कलात्मक रुचि विशेष थी। उसके दरबार के गायकों में **जगन्नाथ**, तथा **जनार्दन भट्ट**, अधिक प्रसिद्ध थे, इकबाल नामा-ए-जहाँगीर में ६ गायकों के नाम दिये गये हैं—

बचपन ही से शाहजहाँ को संगीत से बड़ी रुचि थी। यद्यपि उसके जीवन के घटना चक्रों ने इसमें बहुत संकट उपस्थित किये, पर वह स्वयं गायक था और बड़े २ सूफी उसके गायन को सुनकर मुग्ध हो जाते थे। उसके दरबार मे भी अनेक गायक थे। शाहजहाँ उनके साथ बैठकर संगत करता था। दीवाने-ए-खास में प्रतिदिन वाद्य तथा संगीत से मनोरंजन होता था। कुछ गायक सम्राट के सोने से पूर्व उसको गायन सुनाया करते थे। उसके दरबारी गायकों में **रामदास** और **महापात्र** के नाम उल्लेखनीय हैं एक बार शाहजहाँ जगन्नाथ के गायन से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उसको (जगन्नाथ) सोने से बराबर तौल कर वह सोना उसी को दे दिया। यह कहाँ तक तथ्य है, यह नहीं कहा जा सकता, पर शाहजहां के पास धन की कमी न थी, वह यह कर सकता था। सरकार के अनुसार **"शाहजहाँ का स्वर इतना आकर्षक था कि "संसार के अनेक विरक्त तथा पवित्र हृदय सूफी और सन्त इन संध्याकालीन महफिलों में शाहजहाँ की संगीत स्वर लहरी में अपनी सुध बुध भुला बैठते थे।"** †

†"Many pure souled sufies and holy men with hearts withdrawn from the world who attended these evening assemblies lost their senses in the ecstasy produced by his singing" *J. N. Sarkar*

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

औरंगजेब भी अपने जीवन के प्रारंभिक समय में संगीत प्रेमी रहा, परं उसकी आयु के साथ उसकी रुचि बदलती गयी। वह कुरान का परम भक्त था, उसके आदेश के विपरीत न चल सकता था। अतः एक दिन उसने अपने दरबारी गवैयों को निकाल बाहर किया। उसके समय लोग अपने घरों में गा बजा सकते थे अन्यत्र नहीं। मुग़ल सम्राट की इस प्रवृत्ति से संगीत का ह्रास हुआ। एक दिन तो संगीतज्ञों ने (शुक्र के दिन) संगीत का जनाज़ा निकाल दिया। औरंगज़ेब ने जब यह देखा और उनका रोना-धोना सुना तो उनसे पूछा आखिर क्या बात है ? लोगों ने कहा कि आपकी आज्ञा से संगीत की मृत्यु हो गयी है, उसी को दफनाने जा रहे हैं। औरंगज़ेब बहुत पटु था, उसने भी उत्तर दिया, **"अच्छा इसके साथ इसकी आत्मा की शान्ति के लिए फातिहा पढ़ो, तथा इसको गहराई से दफन करना।"** †

† "They should pray for the soul of music and see that she was thoroughly buried."

Aurangzeb

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद १० (स)

मुग़ल काल का साहित्य

मुग़लों के समय तक भारत में हिन्दी का विकास हो चुका था। संस्कृत इसकी जननी होने के नाते पहले से ही जमी थी। फारसी को मुग़ल अपने साथ लाये। अतः मुग़ल काल में हमें तीन भाषाओं का साहित्य विशेष रूप से मिलता है। इसके अतिरिक्त कुछ साहित्य उर्दू का उठ खड़ा हुआ था, तथा उसके साथ अरबी जुटी थी। मुग़लों को, जैसा संकेत किया जा चुका है, कलात्मक विषयों से बड़ी रुचि थी, इस वंश के सभी सम्राट तो नहीं, पर अधिकांश अच्छे पढ़े-लिखे तथा कुछ कवि और लेखक थे। साहित्य तथा साहित्यसेवियों को प्रोत्साहन देने वाले तो सभी थे। मुग़लों को सबसे बड़ा श्रेय इस बात का है कि यद्यपि वे युद्धों में व्यस्त रहे, उनको बहुधा संकटमय जीवन विताने पड़े, पर उनकी स्वाभाविक अभिरुचि कम न हुई। उन्होंने स्वयं बहुत लिखा, लिखाया तथा जहाँ भी अच्छी सामग्री उपलब्ध हुई उसको अपनी भाषा में अनूदित कराया। इस समय के साहित्य से हमें तत्कालीन परिस्थितियों का भी अच्छा ज्ञान हो जाता है। इनके अनेक दरबारी कवि रत्न कहे जाते थे। और इन रत्नों ने स्थायी मूल्य की रचनाओं का सृजन किया है।

बाबर को अरबी, फारसी तथा तुर्की का ज्ञान था, उसने अपनी आत्मकथा तुर्की में लिखी है। इस साहित्यिक-जीवनी के आधार पर उसे संसार के साहित्यिकों में उच्च स्थान प्राप्त हो गया है। उसको आत्मकथा लेखकों में श्रेष्ठ कहा गया है। एलफिस्टन के अनुसार "**केवल बाबर की जीवनी ही एशिया में सच्ची ऐतिहासिक सामग्री है।**"* वेवरिज का कथन है, "**बाबर की आत्मकथा उन अमूल्य ग्रन्थों में है जो अमर है।**"‡ लेनपूल के अनुसार,

* "Babur's Memoirs were almost the only piece of real history in Asia."

Elphinstone

‡ "It is one of these priceless records which are for all times."

Beveridge

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

"यदि किसी एक ही ऐतिहासिक ग्रन्थ को बिना किसी अन्य सामग्री के सहारे प्रामाणिक मानना है, तो वह बाबर की आत्मकथा हो सकती है।" †

बाबर के पश्चात् हुमायूँ आता है। वह तो पूरा पुस्तकालय ही साथ लिए रहता था। उसका अन्तिम समय ही उसे पुस्तकालय में मिला। पर इन दो प्रारंभिक मुग़ल सम्राटों के शासन काल में अधिक साहित्य सृजन न हो सका। वस्तुतः उन्हें इतना समय ही न मिल सका कि वे कवि और दरबार को देखें और साहित्य की उन्नति करें। हुमायूँ का एक सेवक था **जौहर** जिसने **तज़किरेतुल वाक़यात** की रचना की है।

इसके पश्चात् अकबर के युग में फारसी साहित्य की बड़ी उन्नति हुई। इस काल की कुछ रचनाएँ बड़ी ऐतिहासिक व साहित्यिक महत्ता की हैं। यथा—

(१) अबुल फजल द्वारा लिखित **"आईन-ए-अकबरी"** और **"अकबर नामा"**	
(२) **मुल्लादाउद**	**तारीख-अलफी**
(३) **अबुल वकी**	**मोसिरे-रहीमी**
(४) **निज़ामुद्दीन अहमद**	**तबक़ात-ए-अकबरी**
(५) **बदायूनी अबुलक़ादिर**	**मुन्तखिब-उत-तवारीख**
(६) **फैजी इलहदाद**	**अकबरनामा**
(७) **गुलबदन बेगम**	**हुमायूँ नामा**
(८) **बयाज़ीद सुल्तान**	**तारीख-हुमायूँ**
(९) **अहमद यादगार**	**तारीखे-सलातीने-अफ़गान**
(१०) **असदबेग**	**बाक़यात**

इनमें से अबुल फजल की आईन-ए-अकबरी में जो लेखक की सात वर्ष की गाढ़ी तपस्या का फल है, अकबर के शासन काल के साम्राज्य, संगठन, शासन तथा साहित्य सभी का विस्तार पूर्वक वर्णन है, जैसे—चन्द्रगुप्त मौर्य के लिए चाणक्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र। अबुज फजल कवि, निबन्धकार, आलोचक तथा इतिहासकार सभी कुछ था। गद्य लेखन का तो वह मानों अधिकारी ही था। उसके समकक्ष उस समय कोई अन्य न था। आज भी उसके पत्र आदर्श पत्र समझे जाते हैं। वह एक सूफी था जो सदा सत्य और ज्ञान की खोज में

---

† "If ever there was a case when the testimony of a single historical document unsupported by any other evidence should be accepted as sufficient proof it is the case with Babur's Memoirs,"

Lanepoole

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

रहा। उसने आईन-इ-अकबरी की ललित भाषा में उस समय की सारी परिस्थिति चित्रवत् उपस्थित कर दी है। वैसे तो इस पुस्तक की शैली आदि की बड़ी आलोचना की गयी है, पर डा० स्मिथ जो अकबर के लिए प्रमुख इतिहासकार और आलोचक माने जाते हैं यही इसके विषय में कहते हैं—

"इस पुस्तक में प्रशासकीय आज्ञाओं का संक्षेप, तमाम-वर्णनात्मक तथा सरकारी आलेखों से उद्धृत अनेक सूचियाँ हैं, संक्षेप में इस पुस्तक में साम्राज्य की स्थिति का सही निरूपण तथा प्रकासकीय पद्धति और दरबार का सच्चा खाका है। ऐसी कोई कृति कम से कम एशिया में तो कभी बनी न थी, शायद चीन में भी नहीं, यही नहीं यूरोप में भी ऐसा कोई प्रामाणिक ग्रन्थ उस समय तक नहीं बना जब तक कि गणना सूची और गजैटियर बहुतायत से नहीं बनने लगे।"*

अबुल फजल निःसंदेह फारसी का महान लेखक था, उसकी रचनाएँ मौलिक हैं। पर स्मिथ ने एक स्थल पर यह भी लिखा है, कि अबुल फजल की शैली उसके लिए असहनीय है, उसने लिखा है कि अबुल फजल ने साधारण तथ्यों को व्यर्थ के शब्दाडम्बर में बुरी तरह ढक दिया है, जिसके कारण पाठक के हृदय पर इस बात की अमिट छाप रहती है, कि लेखक ने अपनी रचनाओं में सत्य का पक्ष नहीं लिया। इसके विपरीत आईन के प्रसिद्ध अनुवादक ब्लॉकमैन के शब्दों में **"अबुल फजल एक साहित्यकार के रूप में अद्वितीय हैं। उनकी शैली बड़ी उच्च श्रेणी की है और अन्य लेखकों की कोरी शाब्दिक सुन्दरता से मुक्त है। वस्तुतः उसके शब्दों की गुरुता, वाक्यों का**

---

† "That book gives summaries of many official regulations besides much descriptive matter and copious statistics extracted or compiled from the records of the government. It is in short a descriptive and statistical survey of the empire combined with a detailed account of the court and of the administrative system. Nothing at all resembling such a work was ever compiled in Asia, unless, perhaps in China. Even in Europe it would be difficult to find an authoritative compilation of a like until quite recent times, when the preparation of statistical tables and gazetteers began to be fashionable."

V, A. Smith

Akbar the great Mogul p. 3.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

संगठन, सन्धियों का चुनाव तथा विभिन्न अवधियों की रसिकता इतनी सुन्दर है कि कोई उसकी नकल भी नहीं कर सकता। ‡

जदुनाथ सरकार के अनुसार "अबुल फजल असहनीय शब्दजाल का प्रयोग करते हैं, यदि वह किसी तथ्य को भी लिखना चाहेंगे तो ऐसी आलंकारिक भाषा में तथा घुमाव-फिराव देकर लिखेंगे कि वह उसी में दब जाय। अतः उनके इस ग्रन्थ से हमें उसमें गणना-सूचियों के होते हुए भी प्रशासकीय पद्धति का सही चित्रण नहीं मिलता, यद्यपि उसकी सूचियाँ बहुत सही व व्यौरेवार हैं। जब भी हम आईन पढ़ते हैं, तो हमें उसका थोथापन खलता है। *

पर इसमें सन्देह नहीं कि इस ग्रन्थ में अमूल्य ऐतिहासिक सामग्री है। अबुल फजल का दूसरा ग्रन्थ अकबर नामा है, इसमें उसने अपने नायक का इतिहास लिखा है। इसमें तत्कालीन राजनीतिक तथा सैनिक व्यवस्था का भी अच्छा वर्णन है। अब्दुल्ला उजबेग ने तो एक बार यहाँ तक कह दिया है कि मुझे इतना भय अकबर की तलवार से नहीं लगता जितना अबुल फजल की लेखनी से।" †

---

‡ "As a writer Abul Fazal stands unrivalled. His style is grand and free from the technicalities and flimsy prettiness of other munshies and force of the words, the structure of his sentences, the stableness of compounds, the elegance of his periods are such that it would be difficult for any one to imitate them."

Blochmann

† "He (Abul Fazl) is an insufferable rhetorician and even when he intends to tell a fact, he buries it under a mass of figures of speech and round about expression. His work therefore does not give us much help in drawing detailed picture of the administrative machinary, though in statistical portion it is detailed and correct. We are oppressed by a sense of vagueness and unreality of the picture as we go through the descriptive parts of the Ain."

J. N. Sarkar

* "I am not so afraid of the sword of Akbar as I am of the pen of Abul Fazl."

Abdullah Uzbeg

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मुल्ला दाऊद की तारीख अलफी का अर्थ है इस्लाम का १ हजार वर्ष का इतिहास । चूँकि अकबर के समय तक इस्लाम के जन्म के पश्चात् १००० वर्ष बीत चुके थे अतः इस पुस्तक को कई लेखकों ने मिल-जुल कर अच्छे ढंग से लिखा है । मासिरे रहीमी से अभिप्राय है अब्दुर रहीम खानखाना का जीवन चरित्र । यह पुस्तक खानखाना के एक प्रिय सेवक ने अपने स्वामी की प्रशंसा में लिखी है, तथा स्वामी को ही समपर्ण की है । तबक़ात अकबरी का अर्थ है इस्लामकालीन समय से अकबर के शासन तक की घटनाओं का समय विभाग के अनुसार वर्णन । (तबकात–periods) इसमें सुल्तानों के काल से अकबर के समय तक का वर्णन है । इसका लेखक अकबर का वेतन वितरण करने वाला" सेवक था । उसे भी राज्य शासन का अच्छा ज्ञान था ।

"इस पुस्तक का महत्त्व अकबर के शत्रु द्वारा लिखे जाने के कारण बहुत है, क्योंकि इसमें आईन-ए-अकबरी अथवा मासिरे रहीमी के विपरीत अकबर की चारित्रिक महत्ता और कमज़ोरियों को कहीं अधिक स्पष्ट रूप से दिखाया गया है ।"*

इस काल की एक अन्य प्रमुख पुस्तक **मुन्तखिब-उत-तवारीख** गिनी जाती है । इसे अब्दुल कादिर बदायूनी ने लिखा है । अब्दुल कादिर बदायूँ का निवासी होने के नाते बदायूनी कहलाता है । वह सुन्नी था, अतः उसने इसे उसी दृष्टि-कोण से लिखा है । इसकी यह पुस्तक तीन भागों में है । इसमें गज़नी से लेकर अकबर तक का राजनीतिक इतिहास वर्णित है । इसके अन्तिम भाग में सूफियों तथा साधुओं का विशेष विवरण है ।

"यह पुस्तक नीरस तथा शुष्क है, इसमें बाहरी घटनाओं का वर्णन है । इसमें अकबर की ऊट-पटाँग धार्मिक चेष्टाओं का चित्रण नहीं है, तथा लेखक का ध्यान इसमें वर्णित घटनाओं की आलोचना के विवेचन की ओर कादचित ही कभी गया हो ।"

---

* "It is much prized as written by an enemy of Akbar whose character in its grandness and in its failings is more prominent than is Ani-i-Akbari, or Masir-e-Rahimi."

Blochmann

‡ "This book is dry colourless chronicle of external events. It completely ignores Akbar's religious vagaries and seldom or never attempts to offer reflections or criticism of the events and actions recorded."

Dr. Smith

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस काल में तीन पुस्तकें हुमायूँ के लिए ही लिखी गयी हैं। इसका कारण यह था कि हुमायूँ अपनी भाग दौड़ में कुछ न कर पाया था और यदि उसने कुछ लिखा भी होगा तो सम्भवतः उसके शत्रुओं ने हम तक पहुँचने न दिया। ये पुस्तकें है (i) हुमायूँ नामा, जो हुमायूँ की बहन गुलबदन बेगम ने लिखा है। इसमें अकबर के गद्दी पर बैठने तक का हुमायूँ का पूर्ण इतिहास मिलता है। (ii) तजकिरेतुल वाक़यात जिसका अर्थ है **घटना चक्रों की चर्चा।** इस पुस्तक को हुमायूँ के परम सेवक जौहर ने लिखा है। इसमें तथा हुमायूँ-नामे में एक भारी अन्तर यह है कि जिन बातों को गुलबदन बेगम बहिन होने के नाते न देख या लिख सकी उनका भी सही चित्रण जौहर ने किया है, क्योंकि उसे हुमायूँ के साथ हर समय रहने का अवसर प्राप्त था। (iii) तीसरी पुस्तक तारीख-ए-हुमायूँ है, जो अकबर के सेवक बयाजीद सुल्तान ने लिखी है। इसमें भी हुमायूँ का ही इतिवृत्त है।

इस स्थल पर अफ़गानी शासन पर लिखी गयी पुस्तक की चर्चा करना असंगत न होगा, यह पुस्तक अहमद यादगार द्वारा लिखित मखजने (तारीखे) सलातीने-अफगान है। इसमें अफगान सुल्तान की घटनाओं का कोष है। अन्त में एक पुस्तक की चर्चा और भी अनिवार्य है। वह आजकल की भाँति एक जाँच समिति की रिपोर्ट (वृत्त) है यह जाँच समिति अबुल फजल के हत्या कांड का सही पता लगाने को बिठाई गयी थी। अतः उसकी हत्या के विषय में लिखते समय इसके मुख्य लेखक असदबेग ने इसमें अकबर के काल की अन्तिम वर्षों की चर्चा की है। इसी समय कुछ पुस्तकों का अनुवाद किया गया।

(१) बदायूनी ने बालमीकि रामायण का अनुवाद फारसी में किया,
(२) महाभारत के एक भाग का फारसी में अनुवाद किया गया—
(३) हाज़ी इब्राहीम सरहिन्दी ने अथर्ववेद का फारसी में अनवाद किया,
(४) फ़ैज़ी ने गणित के प्रसिद्ध ग्रन्थ लीलावती का अनवाद किया।

अन्य अनूदित ग्रन्थ राजतरंगिणी, हरिवंश पुराण तथा पंचतन्त्र हैं।

मौलिक फारसी साहित्य में हम गिजाली के **इसरार-ए-मकतब, मिरात-उल-कैनात, नक्श-इ-बदीद,** फ़ैज़ी के **नल ओ दामन, मर-कज-इ-अद्वार मवरीद-उल-कला, सवती,-उल-इल्हाम,** गिन सकते हैं। इनमें से गिज़ाली फारस से दुःखी होकर भागा था। पहले वह दक्षिण गया, वहाँ उसे जब राजकीय संरक्षण न मिला तो वह जौनपुर आया। उसके अनन्तर वह शाही दरबार में आया और राज कवि बना, जिस पद पर वह १५७२ तक रहा। फ़ैज़ी का पूरा नाम अबुल फ़ैज था। वह शेख मुबारक का पुत्र तथा अबुल फजल का

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

भाई था। वह भी अरबी का भारी विद्वान था। उसकी लेखनी में बड़ा बल था। आईन-ए-अकबरी में फारसी के उन ५९ सर्वश्रेष्ठ कवियों के नाम दिये हैं जो अकबर के दरबार में रहते थे। इनमें निशापुर के मुहम्मद हुसेन नाजिरी तथा सय्यद जमालुद्दीन उर्फी के नाम उल्लेखनीय हैं।

अकबर के समय के, उपर्युक्त फारसी साहित्य के अतिरिक्त अन्य बहुत से साहित्य का सृजन भी हुआ। इसमें कुछ तो हिन्दी, उर्दू साहित्य था, कुछ अरबी फारसी या संस्कृत से अनुवाद किया गया साहित्य आता है। मुगल युग हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग था। इसी युग में हिन्दी के सर्व श्रेष्ठ कवि (१) गोस्वामी तुलसीदास जी हुए। (१५३२-१६२३ ई०) उनके विषय में यहाँ बहुत नहीं कहा जा सकता पर बिना कहे भी नहीं रहा जा सकता। इन्हें शासन के संरक्षण से कोई सरोकार न था, ये बांदा में जन्म लेकर बनारस और अयोध्या के वासी हो गये थे। इन्होंने अपने सर्वोत्तम ग्रन्थ रामचरित मानस की रचना करके उसी समय को नहीं बल्कि आज के युग को भी धन्य बना दिया। वह ग्रन्थ जगत प्रसिद्ध रामचरित मानस है। इन्होंने इस ग्रन्थ के प्रारंभ में ही बता दिया है, कि यह अनेक ग्रंथों का निचोड़ है। **'नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि'** पर क्या इसका वृत्त बालमीकि रामायण से लिया गया है? इस विषय में कहा जा सकता है कि बालमीकि ने राम को नर पुंगव मानकर रामायण लिखी थी, पर तुलसी ने उन्हें परम आदरणीय प्रातः स्मरणीय देवता और स्वामी मान कर लिखी है। यह ग्रन्थ अवधी भाषा में लिखा गया है। इसमें राम के जन्म से लेकर लवकुश के जन्म तक का विवरण है, पर इस विवरण के साथ तुलसी ने जो अनूठी उक्तियाँ कहीं हैं वे अमोल हैं। आज यह पुस्तक हर हिन्दू के घर विद्यमान है। हिन्दुओं की बाइबिल है। इसका कारण यह है कि इसमें मनुष्य को शाश्वत मूल्य की वे बातें प्राप्त होती हैं जिनके आधार पर वह अपने कर्त्तव्या-कर्त्तव्य का विवेचन करता है, जब कभी किसी को धर्म संकट आता है तो वह रामायण की ओर निहारता है। सबसे बड़ी बात इस ग्रन्थ की यह है कि इसकी रचना इस प्रकार की सरल और सुबोध भाषा में की गयी है कि साधारण पढ़ा लिखा भी उसे समझ ले? हाँ, कहीं कहीं दर्शन शास्त्र की गुत्थियों को तुलसी जी ने सुलझाने का प्रयास किया है और ऐसे स्थल हर एक की समझ के परे हैं। इसमें गोस्वामी जी ने भक्ति और ज्ञान मार्ग का समन्वय कर दिया है। इसमें आपने तत्कालीन शैव और वैष्णव समस्या को सुलझा दिया है। इसमें उन्होंने समाज का पूरा चित्रण दिया है, साथ ही समाज के लिए एक नौका प्रस्तुत कर दी है। पिता,

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पुत्र मित्र आदि का परस्पर व्यवहार कैसा होना चाहिए, आपने इस बात की इसमें स्पष्ट विवेचना की है।

कहा जाता है कि तुलसी जी का प्रारंभिक जीवन आदर्श न था। उनका जन्म ही अशुभ नक्षत्र में हुआ था। वे अपनी पत्नी पर बुरी तरह आसक्त थे। पर एक दिन उसकी कटु शिक्षा इनको लग गयी। बस ये निकल पड़े और अपने उपास्य देव की खोज में रहने लगे। इन्हें चित्रकूट के स्थल पर दर्शन भी हुआ, पर वे जान न सके। अन्ततः वे साधु संगत में रहने लगे, भगवद् भजन करने लगे। उनका जीवन ऐसा बदल गया कि उन्होंने विश्व के लिए आदर्श उपस्थित कर दिया। डा० स्मिथ ने रामचरित मानस के लिए लिखा है–

इस पद्यमय ग्रंथ के उपदेश उतने ही उच्च हैं, जितने इसके धार्मिक विचार, फिर इसमें आदि से अन्त तक एक भी शब्द अथवा अपवित्र विचार नहीं मिलता, ... उत्तरी भारत के हिन्दुओं के लिए तो यह काव्य साधारण ब्रिटिश इसाइयों के लिए बाइविल से भी अधिक पवित्र है। †

यह किसी बड़े मेधावी की कृति है। यह एक सिद्ध हस्त रचना है।

तुलसी भारत के किसी भी युग के उत्पन्न समाज सुधारक तथा कवियों में सर्वोत्तम है, विशेषकर आधुनिक साहित्यिकों के लिए वह सुधारक तथा कवि दोनों ही हैं। उन्होंने अपना पृथक् धर्म नहीं चलाना चाहा बल्कि वे अपने देशवासियों को अपनें निकट सम्बधियों के बीच ही रह कर अपनी मुक्ति के मार्ग को खोजने के आदेश देने में सन्तुष्ट रहे। पण्डित लोग वेद और उपनिषद की चर्चा कर सकते हैं, कुछ उन्हें पढ़ भी सकते हैं, वे पुराणों में अपना विश्वास रख सकते हैं, पर भारत के विशाल जन समूह के लिए चाहे वह शिक्षित है अथवा अशिक्षित चरित्र का आधार तुलसीकृत रामायण ही है। *

---

† "The morality of the poem is as lofty as the theology and there is not an impure word or idea in it from beginning to end ....The poem is to Hindus of northern India even more than the Bible to the ordinary British Christian."

Dr. Smith.

* "The work of a great genius"

" *The poem is masterpiece*"

George Greirson

"One of the greatest reformer and one of the greatest poets that India has produced—to the present

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इस युग में दूसरा प्रतिभा सम्पन्न कवि, हिंदी विश्व का सूर तथा व्रज की ध्वनि में ध्यान युक्त साधक, कृष्ण का परम उपासक और सखा सूरदास था। सूर को कहीं-कहीं तुलसी से भी अधिक सम्मान मिला है।

सूरदास का जन्म (सम्वत् १५४०-५७) १४८३ ई० के लगभग आगरा से मथुरा जाने वाली सड़क पर स्थित रुनकता ग्राम में हुआ था। चौरासी वैष्णवों की वार्ता" से केवल इतना ज्ञात होता है कि पहले यह गऊघाट (आगरा से मथुरा के बीच) पर एक साधु के रूप में रहा करते थे। गोवर्द्धन पर श्री नाथ जी के मन्दिर बनने के पश्चात् बल्लभाचार्य भी गऊ घाट पर उतरे तो सूरदास ने उनके दर्शन किये और उन्हें अपना एक पद गाकर सुनाया। आचार्य जी ने उन्हें अपना शिष्य बना लिया। सूर की सच्ची भक्ति और पद्य रचना की निपुणता देखकर वल्लभाचार्य जी ने उन्हें अपने श्रीनाथ के मन्दिर की प्रार्थना सौंपी। ये ८० या ८२ वर्ष तक जीवित रहे। अतः इनका देहावसान सम्वत् -१६२० माना जाता है (सन् १५६३ ई०) इससे सिद्ध होता है कि ये अकबर के समकालीन भी थे। "साहित्य लहरी" के अन्त में एक पद है जिसमें सूर ने अपनी वंश परम्परा दी है। उसके अनुसार सूर पृथ्वीराज के कवि चन्दवरदाई के वंशज ब्रह्मभट्ट थे। कहा जाता है कि ये सात भाई थे। इनके अन्य ६ भाई मुसलमानों ने मार डाले थे, अतः ये इधर-उधर भटकने लगे थे। भटकते २ ये अन्धे हुए और एक दिन कुए में गिर गये। वहीं उनको कहते हैं, कि कृष्ण के दर्शन हुए जिससे वे समस्त पाप से मुक्त हो गये। कुछ लोग इन्हें जन्मान्ध भी मानते हैं।

"आईन अकबरी" में अकबर के दरबारी गवैयों आदि की फहरिस्त में बाबा रामदास और उनके पुत्र सूरदास के नाम आते हैं। इनके आधार पर यह भी ज्ञात होता है कि कलाकारों की सात मंडलियाँ थीं, जिनमें से प्रत्येक

---

writer, he is, in both characters the greatest, he disdained to found a church and contended himself with "telling his fellow countrymen how to work out each his own salvation amongst his own kiths and kin. Again pandits may talk of Vedas and Upanishads and a few may even study them, others may say, they find their faith in the Puranas, but to the vast majority of the people of the Hindustan, learned and unlearned alike their sole norm sf conduct is the so called Tulsikrit Ramayan."

Sir George Grierson.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मंडली सप्ताह में एक बार सम्राट का मनोरंजन करती थी। अकबर १५५६ में गद्दी पर बैठा और सूरदास १५२३ई० में ही वल्लभाचार्य के शिष्य हो चुके थे, अतः उनका अकबर दरबार में नौकरी करना सिद्ध नहीं होता। आईन अकबरी का सूरदास दूसरा सूरदास रहा होगा।

"मुंशियात अबुल फजल" नामक अबुलफजल के पत्रों का एक संग्रह है, जिसमें बनारस के किसी संत सूरदास के नाम अबुल फजल का एक पत्र है। बनारस का करोड़ी इस सूरदास के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता था, इससे उन्होंने उसकी शिकायत लिखकर शाही दरबार में भेजी थी, उसका उत्तर अबुल फजल ने इस प्रकार दिया है।

हजरत बादशाह इलाहाबाद में तशरीफ लायेंगे। उम्मीद है कि आप भी शर्फ मुलाजमात से मुशर्रफ होकर मुरीद हकीकी होंगे, और खुदा का शुक्र, है कि हजरत भी आपको हक-शिनास जानकर दोस्त रखते है।" ×

इन शब्दों से ऐसी ध्वनि निकलती है कि ये कोई ऐसे संत थे जिनके अकबर के "दीन इलाही" में दीक्षित होने की सम्भावना अबुलफजल समझता था। सम्भव है कि ये कोई कबीर के अनुयायी संत रहे हों। अकबर दो बार इलाहाबाद गया था। १५८३ ई० तथा १६०४ई० में। यदि यह पत्र पहली यात्रा से भी सम्बधित मान लिया जाय तो भी सूरदास तब न थे, क्योंकि वे १५६३ ई० में स्वर्ग लोक सिधार चुके थे। यदि उन को १५८३ ई० में जीवित मान लें तो उनकी आयु १०० वर्ष सिद्ध होती है, फिर मृत्यु के इतने समीप वे इन झमेलों में क्यों पड़ने लगे। अतः उनके दीन इलाही में दीक्षित होने की कोई सम्भवना नहीं है।

सूरदास ने एक अनुपम ग्रन्थ **'सूर सागर'** लिखा है। इसमें कहते हैं १ लाख पद थे, पर वे उस संख्या में उपलब्ध नहीं हैं। इसमें सूरदास ने जयदेव और विद्यापति की रीति से मुक्तक (अलग अलग) पद लिखे हैं इनकी कथा का आधार श्रीमद भागवत पुराण है और विशेषकर इसका दशम स्कंध। अन्य स्कंधों की कथा संक्षेप में कह दी गयी है। कृष्ण की भिन्न भिन्न परिस्थितियों की लीलाओं को लेकर इस कवि ने हज़ारों पद रच डाले हैं। इन पदों में भाव तथा भाषा दोनों उच्च कोटि के हैं। इनकी भाषा व्रज है। व्रज भाषा का यह पहला काव्य ग्रन्थ है पर इसकी भाषा परिमार्जित है। इसके सामने अन्य कवियों की उक्तियाँ जूठी प्रतीत होती हैं। सबसे बड़ी इनकी

× पृष्ट १५० हिन्दी साहित्य का इतिहास द्वारा रामचन्द्र शुक्ल ग्यारहवाँ सं०।

× फारसी का अनुवाद

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

विशेषता यह है कि इन्होंने कृष्ण के केवल बाल्यकाल पर ही इतना लिख दिया है जितना अन्य कवि पूरे जीवन को लेकर न लिख सकेंगे। ये हिन्दी के उस युग के दूसरे प्रतिभावान कवि थे, जिनके गीतों से जन-साधारण मुग्ध हो जाता था।

इनके अतिरिक्त **बीरबल**,* **रसखान**, **अब्दुररहीम खानखाना**, **कुंभनदास**, **सुन्दर** आदि अनेक कवि इसी युग में हुए। रसखान भी कृष्ण के परम भक्त थे। ये दिल्ली के एक पठान सरदार थे। इन्होंने प्रेम वाटिका में अपने को शाही वंश का बताया है। ये गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के बड़े कृपा पात्र शिष्य थे। इनका वृतान्त दो सौ वैष्णवों की वार्ता में आया है।

उक्त वार्त्ता के अनुसार ये एक बनिये के लड़के पर आसक्त थे। एक दिन इन्होंने किसी को कहते सुना कि भगवान से ऐसा प्रेम करना चाहिये जैसा रसखान का उस बनिये के लड़के पर है। इससे यह ऐसे प्रभावित हुए कि श्रीकृष्ण की खोज में निकल पड़े, गोकुल आकर इन्होंने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली। कुछ लोगों का कथन है कि ये एक स्त्री पर आसक्त थे। वह इनका अनादर किया करती थी। एक दिन ये श्री मद्भागवत् का फारसी अनुवाद पढ़ रहे थे कि एकाएक इनके ध्यान में आया कि उससे स्नेह क्यों न किया जाय जिस पर हज़ारों गोपियाँ मरती हैं। प्रेम वाटिका में इस घटना का संकेत इस दोहे† से बतलाते हैं।

ये अत्यंत सुन्दर सवैये लिखते थे। इनकी भाषा बहुत चलती, सरस और शब्दाडम्बरहीन रही। प्रेम वाटिका का रचना काल (१६७१-५७) १६१४ ई० माना जाता हैं। इनकी कृति परिमाण में बहुत अधिक नहीं, पर जो है वह प्रेमियों को मर्मभेदी है। अबतक इनकी दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, प्रमवाटिका, तथा सुजान रसखान। इनमें से प्रेमवाटिका में दोहे हैं तथा सुजान रसखान में कवित्त और सवैये।

अब्दुररहीम खानखाना—ये अकबर के अभिभावक बैरमखाँ के पुत्र थे। ये संस्कृत, अरबी और फारसी के बड़े विद्वान, तथा हिन्दी काव्य के मर्मज्ञ थे। ये दानी तथा परोपकारी भी ऐसे थे कि अपने समय के कर्ण माने जाते थे। इनकी सभा विद्वानों तथा कवियों से सदा भरी रहती थी। अकबर के समय ये

---

* बीरबल का विशेष परिचय नवरत्नों में पढ़िये।

† "तोरी मानिनी तें हियो फोरि मोहिनी मान।
प्रेमदेव की छबहिं लखि भये मियाँ रसखान॥"
प्रेम वाटिका

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सेना-नायक रहे तथा अनेक युद्धों में भेजे गये। ये जहाँगीर के समय तक रहे। एक बार युद्ध में धोखा देने के अपराध में जहाँगीर के समय इनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। ये भी बन्दी कर लिये गये। कुछ समय पश्चात् ये मुक्त किये गये, पर इनकी आर्थिक स्थिति फिर न सम्भली। इन्होंने ऐसे ही अवसर पर लिखा है।–

"तबही लौं जीबो भलो दैबो होय न धीम।
जग में रहिबो कुचित गति उचित न होय रहीम ॥"

इनका गोस्वामी तुलसीदास जी से बड़ा स्नेह था। ऐसी अनुश्रुति है कि एक बार एक ब्राह्मण अपनी कन्या के विवाह के लिए धन खोजता हुआ तुलसीदास जी के पास पहुँचा, गोस्वामी जी ने उसे निम्नलिखित पंक्ति लिख कर रहीम के पास भेज दिया –

"सुरतिय नरतिय, नागतिय यह चाहत सब कोय"

रहीम ने उस ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर विदा किया और दोहे की दूसरी पंक्ति इस प्रकार पूरी कर दी।

"गोद लियें हुलसी फिरें तुलसी सो सुत होय"

रहीम बड़े वीर सैनिक थे। इन्हें संसार का बड़ा गहरा अनुभव था। अपने उदार और उच्च हृदय को संसार के वास्तविक व्यवहारों के बीच रख कर जो संवेदना इन्होंने प्राप्त की है, उसकी व्यञ्जना इन्होंने अपने दोहे में की है। तुलसी के वचनों के समान रहीम के वचन भी हिन्दी भाषा भाषी भू भाग में सर्व साधारण के मुँह पर रहते हैं। अब तक इनके निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं।

रहीम दोहावली या सतसई, **बरबैनायिका भेद, श्रृंगार सोरठ, मदनाष्टक, रासपञ्चाध्यायी।** इनका एक संग्रह रहीम रत्नावली के नाम से भी निकला है। ये कई भाषाओं में पारंगत थे ही, इन्होंने फारसी में एक दीवान भी बनाया था और **"वाक़यात बाबरी"** का तुर्की से फारसी में अनुवाद भी किया था। इनकी कुछ रचनाएँ खिचड़ी में हैं। यथा रहीम काव्य हिन्दी संस्कृत की खिचड़ी में है।

इसी समय कुछ अष्टछाप के कवि हुए। इनमें सूरदास की चर्चा हम कर चुके हैं। गोस्वामी विट्ठल नाथ जी ने इन आठ कवियों को अष्टछाप में रखा है।

१	सूरदास,	५	चतुर्भुज दास
२	कुम्भन दास	६	नंददास
३	परमानन्द दास	७	छीतस्वामी
४	कृष्ण दास	८	गोविन्द स्वामी

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इनमें कुभंनदास और नंददास की ख्याति बहुत है। चतुर्भुज दास कुभंनदास के ही पुत्र थे। एक बार कुभंनदास को अकबर के बुलावे पर फतेहपुर सीकरी जाना पड़ा। वहां इनका बड़ा सम्मान हुआ, पर इन्हें फिर भी खेद ही रहा। इन्होंने लिखा है कि **"सन्तन को कहा सीकरी सों काम" आवत जात पनहियाँ टूटी, विसर गयो हरिनाम।**

इसी काल में आचार्य केशव दास, और प्रसिद्ध प्रकृतिसेवी सेनापति जी हुए। आचार्य जी सनाढय ब्राह्मण थे। आप कृष्णदत्त के पौत्र तथा काशीनाथ के पुत्र थे। आपका जन्म सन् १५५५ और देहावसान १६१७ ई० के लगभग हुआ। आप ओरछा नरेश महाराजा रामसिंह के भाई इन्द्रजीत सिंह की सभा के दरबारी कवि थे। आपके घर में परम्परागत संस्कृत का अध्ययन होता था। आपके समय तक हिन्दी भाषा जम चुकी थी, अतः आपने इसे अलंकारों से सजाने की चेष्टा की आपका कथन है--

"यदपि सुजात, सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त,
भूषन बिनु न विराजई कविता बनिता मित्त।"

अतः इसी मनोवृत्ति के अनुसार आपने संस्कृत कवि दण्डी, भामह, उद्भट आदि का अनुकरण प्रारम्भ किया। आपने अलंकारों पर कविप्रिया तथा रस पर रसिकप्रिया लिखी। आपका सर्वोत्तम ग्रन्थ रामचन्द्रिका है। कहते हैं इसे आपने एक ही रात में रच डाला था। पर पुस्तक का कलेवर तथा उसकी विभिन्न छन्द रचना देखकर यह विश्वास करना कठिन है। आपके अन्य ग्रन्थ वीरसिंह देव चरित, विज्ञान गीता, रतन बावनी और जहाँगीर-जस-चन्द्रिका हैं। केशव को हृदय नहीं मिला। उनमें भावुकता तथा सरसता न थी। बस ये उक्तिवैचित्र्य और शब्द-क्रीडा के प्रेमी थे।

सेनापति जी अनूपशहर के निवासी थे। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। आपके पिता का नाम गंगाधर था। आपका जन्म संवत् १६४६ अर्थात् १५८९ ई० के लगभग माना जाता है। ये बड़े ही सहृदय कवि थे। आपके ऋतुवर्णन की समता आज भी कुछ ही कवि कर सकेंगे। यही नहीं, आपने अलंकारों का प्रयोग भी ऐसा किया है जिससे कविता कामिनी भूषित होती है, दूषित नहीं। आपकी भाषा का माधुर्य बहुत कुछ ब्रजभाषा का है। आपके भक्ति-प्रेरित उद्गार भी बहुत अनूठे और चमत्कार पूर्ण हैं।

जहाँगीर तथा शाहजहाँ के समय का साहित्य--जहाँगीर स्वयं बहुत पढ़ा लिखा और योग्य सम्राट था। उसने अपने शासनकाल के लिए "तुज़के जहाँगीरी" नाम की पुस्तक लिखी है। इसे वह केवल अपने शासन के १७ वें वर्ष तक ही लिख सका, इसके पश्चात् १८ से २१ वें वर्ष का इतिहास

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मोतमिद खाँ को लिखना पड़ा था, क्योंकि सुरापान के कारण जहाँगीर क्षीण हो चुका था। तुज़के जहाँगीरी अपनी कोटि की दूसरी पुस्तक है जो बाबर की तुज़के बाबरी के बाद गिनी जाती है। जहाँगीर ने इसमें अपनी कमियों का भी बड़े साहस के साथ उल्लेख किया है। जहाँगीर के काल में प्रमुख साहित्यिक **मिर्जा गयास बेग, नकीब खान, नियामत उल्लाह, मोतमिद खां** आदि थे। इनकी रचित पुस्तकें इस प्रकार हैं—

(i) अबुलहक—अखबारूल अखियार।
(ii) मोतमिद खां—इकबालनामा-ए-जहाँगीरी।
(iii) ख्वाजा कामगार हुसेनी—मआसिरे जहाँगीरी।
(iv) नियामत उल्लाह—तारीखे-सलातीन-अफगान।
(v) हिन्दूबेग फिरिश्ता—तारीख़े फिरिश्ता।

इन पुस्तकों में से मआसिरे जहाँगीरी, तारीखे फिरिश्ता तथा तारीखे सलातीने-अफगान बड़े महत्त्व की हैं। मआसिर-जहाँगीर जहाँगीर के समय की तत्कालीन घटनाओं का चित्रण है, इसके वर्णन पक्षपात हीन हैं, क्योंकि इसका लेखक दरबारी लेखक न था। तारीखे फिरिश्ता का वस्तुतः पूरा नाम गुल्शने इब्राहीमी है। इस पुस्तक को उसने इब्राहीम आदिल शाह (१५६५–१५८८) दक्षिण के सुल्तान को समर्पित किया था। इसी को साधारणतः तारीखे फिरिश्ता कहते हैं। यह एक सामान्य इतिहास की पुस्तक है। इसमें आदम के समय से लेकर अकबर के काल तक का वर्णन है। इसमें हिन्दू ग्रंथों तथा देवी देवताओं के नामों की भी चर्चा है। तारीखे-सलातीन-अफग़ान में अफगान सुल्तानों का वर्णन है। इसमें विशेषकर लोदी तथा सूर वंश का उल्लेख है।

शाहजहाँ के काल में भी साहित्य-सृजन कम नहीं हुआ। इसके काल की प्रमुख पुस्तकों में—

(१) अब्दुल हमीद लाहौरी का बादशाह नामा,
(२) कज़बीनी का पादशाह नामा,
(३) मुहम्मद सालेह का अमले सालेह,
(४) इनायत खां का शाहजहाँ नामा
(५) मुन्शी चन्द्रभान ब्राह्मण का चार गुलशन हैं।

ये सभी शाहजहाँ के काल के इतिहास हैं। अब्दुल हमीद लाहौरी का बादशाह नामा शाहजहाँ की आज्ञा से लिखा गया है। इसमें लेखक ने अबुल फजल की भाषा का अनुकरण किया है। साथ ही शाहजहाँ के कुकृत्यों पर

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परदा डालने का प्रयास भी किया गया है। पर कज़बीनी का पादशाह नामा इससे भिन्न है। यद्यपि इसमें भी शाहजहाँ के शासन काल का वर्णन है, पर चूँकि कज़बीनी उसका दरबारी कवि न था, अतः यह सत्य के अधिक निकट है। मुहम्मद सालेह कम्बोह ने भी अपने अमले सालेह में शाहजहाँ के काल का विवरण दिया है। इसमें नियुक्ति आदि के विषय में विशेष उल्लेख है। यह पुस्तक भी बड़ी प्रामाणिक है। इसके अतिरिक्त शाहजहाँ का बड़ा पुत्र दारा उच्च कोटि का विद्वान था। उसने अपने दार्शनिक विचारों की बदौलत अनेक ग्रन्थ संस्कृत से फारसी में अनुवाद किये तथा कराये। यथा--उपनिषद, भगवत्गीता, योग वाशिष्ठ। उसने स्वयं भी कई ग्रन्थ लिखे जिसमें मज़उल बहर तथा सिर्रेअकबर अधिक प्रसिद्ध हैं।

औरंगजेब को इतिहासकारों ने लिखने-लिखाने पर रोक लगाने के लिए बदनाम कर रखा है। वस्तुतः उसके समय भी लेखन बन्द नहीं हुआ। सबसे बड़ा लेखक खाफी खां था जिसने औरंगजेब के समय से लेकर १७२४ ई० तक का वर्णन अपनी मुंतखब उल्लुबाब में किया है। अनेक घटनाएँ उसकी स्वयं देखी हुई थीं, अतः उसके वर्णनों को बड़ा प्रामाणिक माना जाता है। यदुनाथ सरकार ने इसी को अनेक बातों की आधारशिला माना है। इस युग की दूसरी उत्तम पुस्तक खुलासतुत्-तवारीख है। इसका लेखक सुजानराय खत्री था। यह तो इस समय के लिए पूरा गज़ेटियर ही है। इसमें अनेक स्थान सूचक वर्णन हैं। इसके एक अंश का अनुवाद डा० सरकार ने कर दिया है, जो **इण्डिया आव-औरंगज़ेब** के नाम से प्रसिद्ध है। औरंगज़ेब के समय का पूरा इतिहास हमें मआसीरे आलमगीरी से भी मिलता है। इसका लेखक मुस्तईदे खां था। औरंगज़ेब के समय अन्य विद्वान फतूहान-ए-आलमगीरी के लेखक--ईश्वरदास

अलाम-गीर नामा के लेखक **मुहम्मद क़ाजिम** तथा **नुस्खा-ए-दिलकुशा** के लेखक भीमसेन थे। मुहम्मद काज़िम ने औरंगजेब के शासन के पहले १० वर्ष का इतिहास लिखा है, इसे आलमगीरनामा कहते हैं।

उत्तर कालीन हिन्दी साहित्यः-- मुगल काल में जैसा कहा जा चुका है हिन्दी साहित्य का विशेष निर्माण हुआ। इसका सारा श्रेय मुग़लों को न था, बल्कि हिन्दी, उर्दू तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं के उदय का यह समय ही था। इस समय में त्रिपाठी बन्धुओं का नाम सबसे पहले आता है। इनमें भूषण और मतिराम सर्व विदित हैं। भूषण ने तो अपने युग के विपरीत वीरता-पूर्ण कविताएँ लिखकर समय को ही बदल देना चाहा। भूषण

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मुख्यतः हिन्दू जाति का कवि था। इनके नायक महाराष्ट्रकेशरी शिवाजी या पन्नाधिपति छत्रसाल रहे। इन्होंने हिन्दू धर्म की वृद्धि तथा हिन्दुओं में निर्भीकता उत्पन्न करने के ओजिस्वनी कविताएँ लिखी। इनकी प्रमुख पुस्तकें शिवराज भूषण छत्रसाल शतक तथा शिवावावनी हैं इन्हीं के भाई मतिराम थे, मतिराम की रचनाएँ उपमाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। इसी समय महाकवि बिहारी ने अपनी सतसई से संसार को चकित कर दिया। ये ओरछा नरेश के दरबारी कवि थे। इनका समय १६०३-१६६३ ई० था। कहा जाता है कि जयपुर के मिर्ज़ा राजा जयसिंह ने इनको हर दोहे पर एक अशरफी पारितोषिक रूप में दी थी। इसमें सन्देह नहीं ऐसे दोहे फिर कभी किसी ने न लिखे और यह दोहावाली आज भी अद्वितीय है। यह एक श्रृंगार-रस-प्रधान ग्रंथ है। इस सतसई की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि एक दोहे में कवि ने इतनी सामग्री भर दी है जितनी कभी कभी एक ४ पंक्ति के छन्द में भी नहीं समायी जा सकती। इसी युग में इटावा में एक सुप्रसिद्ध कवि देव हुए। ये हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ नौ कवियों में से एक हैं। इन्होंने भी श्रृंगार प्रधान रचनाएँ की हैं। ये रचनाएँ ५० से भी अधिक हैं। औरंगजेब के समय हिन्दी का ह्रास हो गया। मुग़लों का अवसान सुख शान्ति का अवासन था, और सुख शान्ति के अवसान में कला और साहित्य की पूछ कहाँ? हिन्दी तो अधिक नहीं ही पनपी उर्दू के कवि भी उत्तर में न रह सके। दिल्ली से अनेक कवि कलकत्ते, पटना, फैजाबाद, बीजापुर तथा गोलकुंडा चले गये। बीजापुर और गोलकुंडा उर्दू के वैसे भी गढ़ रहे थे।

उर्दू साहित्यः—उर्दू का जन्म वस्तुतः उर्दू के नाम से अथवा इसके वर्तमान स्वरूप से न हुआ था। यह तो दक्षिण में दक्षिणी, उत्तर में अवधी, व्रज और अवधी में हिन्दवी या रेखता के नाम से ज्ञात थी। इसका स्वरूप भी बहुत धीरे-धीरे बना। दक्षिण में बोल चाल की भाषा में फारसी तथा अरबी के शब्दों का प्रयोग होने लगा। उस समय यह भाषा बोल चाल की भाषा रही, इसमें साहित्य सृजन न हुआ। साहित्य के लिए कवि और लेखकों को फारसी या संस्कृत अथवा प्राकृत या स्थानीय भाषाओं का सहारा लेना पड़ता था। जब यहाँ के शासकों को फारसी का वह अभ्यास न रहा, साथ ही उन्हें शासनादि के लिए अधिक जनसम्पर्क की आवश्यकता हुई। तो इसी को लिखने पढ़ने में इस्तेमाल किया जाने लगा। इसी को दखिनी के नाम से पुकारा गया। इसी प्रकार उत्तर के क्षेत्रों में विशेष कर दिल्ली

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मथुरा के बीच वाले प्रदेश में अरबी फारसी के शब्द स्थानीय भाषाओं में प्रयोग किये गये, और धीरे धीरे जब १८ वीं शतीं में इसको नागरी में न लिखकर फारसी के अक्षरों में लिखा जाने लगा तो यह लश्कर की भाषा (उर्दू का अर्थ लश्कर) अथवा हिन्दी के नाम से प्रसिद्ध हुई, इसी प्रकार गुजरात बंगाल की ओर भी फारसी अरबी तुर्की भाषाओं के प्रयोग हुए, पर शब्दो के कुछ कारणों से वे इन्हें स्थानीय भाषाओं से अलग न कर सके। अतः उर्दू का अधिक प्रयोग दोआब तथा दक्षिण प्रदेशों में ही कहा जा सकता है।

पर जैसा संकेत किया जा चुका है इसकी वृद्धि दक्षिण में हुई। इसे बहुत समय तक दक्षिणी भाषा कहते रहे। यदि उर्दू दक्षिण की यात्रा न करती तो उसके साहित्य में यह वृद्धि इतने शीघ्र न होती। दक्षिण में सबसे पहले प्रतिभा शाली कुली मुहम्मद कुतुब शाह की कृति सामने आती है। कविता में यह अपना नाम कुतबा लिखता था। यह पहला दक्षिणी कवि है जिसने फारसी ढंग पर दीवान लिखा है। यह १५८० ई० में अपने पिता की मृत्यु के उपरांत गद्दी पर बैठा था। अभी तक उर्दू साहित्य वेत्ता इसी को प्रथम दीवान लेखक मानते हैं। इनका दीवान लगभग १८०० पृष्ठ का है, इसका संग्रह उसके भतीजे मुहम्मद कुतुब शाह ने किया था। इसमें लगभग ५०००० शेर लिखे गये हैं। इसमें मसनवी क़सीदे तरजीहबन्द फारसी मर्सिये दक्षिणी मर्सिये, फारसी गज़लें, दक्षिणी गज़लें, रूबाइयां सभी कुछ हें। इसके अनन्तर यह क्रम पीढ़ी दर पीढ़ी इन सुल्तानों तथा जनता में चलता रहा। ये सुल्तान साहित्य संगीत में अधिक दत्तचित्त रहते थे। यथा--

मुहम्मद कुतुब शाह, (१६११-१६२५ ई०), अब्दुल्ला कुतुबशाह (१६२६-१६७२ ई०), अबुल हसन कुतुबशाह (१६७२-१६८७ ई०) इसी प्रकार बीजापुर का दरबार भी साहित्य तथा कला को आश्रय देने में पीछे न था। अली आदिलशाह द्वितीय (१६५६-७२ ई०) के दरबार में नसरती उपनाम का एक प्रसिद्ध कवि था। इसका पूरा नाम मुहम्मद नसरत था। यह ब्राह्मण था पर मुसलमान हो गया था। उसने १६६५ ई० में अलीनामा नामक एक बड़ी मसनवी दक्षिणी उर्दू में अपने नायक की प्रशंसा में लिखी। इसपर इसे मलिकुश्शुअरा की पदवी मिली थी। एक संग्रह गुलदस्तए-इश्क भी इसी ने तैयार किया था। इसके अनन्तर हमारे सम्मुख बली और सिराज आते हैं। ये दोनों गुजरात अहमदाबाद के निवासी तथा समसामयिक थे। शम्स वली उल्ला उपनाम वली उत्तरी भारत में उर्दू साहित्य के संस्थापक कहे जाते हैं। इसी कारण ये बाबा-ए-रेख्ता कहलाते हैं। इनको उर्दू का चंद और चौसर भी

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कहा गया है । इनके जन्मस्थान तथा नाम के ऊपर कुछ विवाद हैं । यथा मीर तकी मीर लिखते हैं कि इनका जन्म औरंगाबाद में १६६८ ई० में हुआ था । वह लगभग २० वर्ष की अवस्था में अहमदाबाद के मौलाना वजीहुद्दीन अलवी के प्रसिद्ध मदरसा में शिक्षा प्राप्त करने गये थे । सन् १७०० के लगभग यह पहली बार दिल्ली गये । वहाँ इन्होंने प्रसिद्ध सूफी तथा फारसी के कवि शाह सादुल्ला गुलशन से सूफी धर्म की दीक्षा ली और फारसी शैली पर दीवान लिखने की आज्ञा प्राप्त की । वहाँ से पुनः ये अहमदाबाद होते हुए औरंगाबाद गये । १७४४ ई० में आप परलोक सिधार गये । इनका रेख़्ता का दीवान अहमदाबाद में तैयार किया गया था । औरंगाबाद जाकर इन्होंने रेखते की बोली में देह मजलिस एक पुस्तक लिखी ।

इसके अतिरिक्त कुछ उत्तर भारत के उर्दू कवियों का उल्लेख असंगत न होगा । शेख हिसामुद्दीन के पुत्र सिराजुद्दीन अली खां आर्ज़ू भारत के फारसी तथा उर्दू के प्रसिद्ध कवि हुए हैं । ये आगरा के निवासी थे तथा शेख मुहम्मद गौस के वंश के थे । इनके फारसी के दीवान में तीस हज़ार शेर हैं । इन्होंने सिकन्दरनामा पर टीका की है । इन्होंने फारसी का कोष सिराजुल्लोग़ात तथा हिन्दुस्तानी का ग़राबुल्लोगात लिखा है । नादिरशाह के आक्रमण पर ये दिल्ली से लखनऊ चले आये थे । दूसरे सुप्रसिद्ध कवि दिल्ली के निवासी शाह नज़्मुद्दीन अथवा आबरू ग्वालियर के प्रसिद्ध शेख मुहम्मद गौस के वंश के थे । ये ग्वालियर से दिल्ली आये और यहीं उन्होंने उर्दू का दीवान लिखा । इनका एक मसनवी **मुअजज्जए आराइशे माशूक** है । शेख जहूरूद्दीन शाह **हातिम** के पिता का नाम फतहउद्दीन था । आपका जन्म १६९९ ई० में दिल्ली में हुआ था । आप सांसारिक सुख से विरक्ति ले चुके थे । जब वली के दीवान की दिल्ली में धूम मची तो आपने भी रेखते में कविता की ओर एक दीवान लिख डाला । आपने अपने दीवान के आरम्भ में पैतालिस शिष्यों की तालिका दी है, जिसमें मुहम्मद रफी उस्सौदा सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं । आप भाषा की काट छाँट में पूरा विश्वास रखते थे । आपने फारसी में भी एक दीवान लिखा है । आप उर्दू में भी वली को अपना गुरु मानते थे । मज़हर मिर्ज़ा जान जाना के पिता मिर्जा जान औरंगजेब के दरबारी मंसबदार थे । यह तैमूर घराने के थे । इनका जन्म १६८९ ई० में मालवे के कालामऊ नामक स्थान में हुआ था । कहते हैं कि इनका नामकरण औरंगजेब ने स्वयं किया था । जब ये सोलह वर्ष के थे तभी इनके पिता की मृत्यु हो गयी । सूफियों का युग था, अतः ये भी एक सूफी की तरह घूमने लगे, पर ये सौन्दर्योपासक थे, अतः इनकी प्रेम विषयक कविता बड़ी हृदय द्रावक होती है । फारसी का एक बड़ा तथा

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

उर्दू का एक अपूर्ण दीवान इन्होंने लिखा था। मीर बाकर हज़ी, वसावन लाल (वेदार), अहसान उल्ला बयाँ तथा इनामुल्ला खां यक़ीं इनके प्रसिद्ध शिष्य थे।

बंगला साहित्य—१६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में चैतन्य ने पूर्व में तथा मीरा ने पश्चिम में(राजस्थान)कृष्ण भक्ति की लहर प्रवाहित की। चैतन्य के प्रभाव से बंगाल में एक नवीन साहित्य ही उठ खड़ा हुआ। चैतन्य के अनुयायियों ने कृष्ण के जीवन तथा उनकी लीलाओं के ऊपर अनेक ग्रंथ लिखे। कुछ ग्रंथ चैतन्य के विषय में ही लिखे गये। कृष्णदास कविराज का "चैतन्य चरितामृत" बंगला में चैतन्य की सर्वोत्तम जीवनी है। इसी प्रकार की रचनाएँ **वृन्दावन दास की चैतन्य भागवत**, जयानंद का **चैतन्य मंगल** और **नरहरि चक्रवर्ती का भक्तिरत्नाकर** बहुत प्रमुख हैं। इसी समय कुछ अपूर्व ग्रन्थ संस्कृत से बंगला में रूपान्तरित किये गये। यथा - मुकुंद राम चक्रवर्ती द्वारा कवि कंकड़ चंडी, काशीराम दास द्वारा महाभारत, तथा कृतिवास द्वारा रामायण। मुकुंद राम की पुस्तक में उस समय की बंगाली जानता की सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था भली-भाँति वर्णित है।

गुजराती साहित्य—इस युग में गुजराती साहित्य भी किसी से पीछे नहीं रहा। इस साहित्य के युगप्रवर्त्तक कवि अरवा थे। आपकी रचनाएँ इस प्रकार हैं।

(i) चित्तविचार संवाद, (ii) शत्पद, (iii) कैवल्य गीता, (iv) परमपद प्राप्ति तथा (v) पंचदशी तात्पर्य। इन ग्रंथों की भाषा बड़ी परिमार्जित नहीं है। इसके अनन्तर प्रसिद्ध गुजराती कवि जिसने गुजरात साहित्य को परिमर्जित कर दिया भट्ट प्रेमानन्द था। इसने लगभग ३६ ग्रन्थों की रचना की है। इन ग्रंथों में रस तथा अलंकारों का प्रचुर प्रयोग है। प्रेमानन्द के पुत्र बल्लभ के समकालीन लेखक सामल भट्ट ने कथा साहित्य के कई ग्रंथ लिखे। यथा - मदन मोहन सामल तथा रत्नमाल, किन्तु ये रचनाएँ औरंगजेब के पश्चात् की हैं। मुग़ल युग की गुजराती विभूतियाँ अरवा, प्रेमानन्द, तथा सामल गुजराती ही विशेष थीं।

मराठी साहित्य—मराठी का साहित्य सृजन भी इस युग की एक विशेषता है। महाराष्ट्र में श्रीधर-स्वामी ने महाभारत रामायण तथा भागवत का आधार लेकर मराठी भाषा में रचनाएँ कीं। इसी प्रकार श्रीमुक्तेश्वर ने अपनी रचनाओं का आधार रामायण और महाभारत को रखा। इसी युग में महाराष्ट्र में समर्थ गुरु रामदास का जन्म हुआ। कृष्ण भक्ति शाखा में वामन

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पण्डित की रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। मोरो-पन्त ने तो सम्पूर्ण महाभारत को ही मराठी में छन्दोबद्ध कर दिया। उनका ग्रंथ केकावली भक्ति पूर्ण काव्य है।

अकबर के नवरत्न

कहते हैं कि अकबर निरक्षर भट्टाचार्य था, पर इस विषय में अब सन्देह होने लगा है। उसे ईश्वर ने अपूर्व प्रतिभा प्रदान की थी, वह मनुष्य का बड़ा पारखी था। उसे अच्छे से अच्छे प्रतिभाशाली व्यक्तियों की सेवाएँ भी प्राप्त थीं। उसका दरबार भी गुप्तकालीन राजा विक्रमादित्य की तरह नव रत्नों से सुशोभित रहता था। उसकी सभा के नव रत्न इस प्रकार थे।

(१) मुल्ला दो प्याजा
(२) हकीम हमाम
(३) अब्दुर रहीम खानखाना
(४) अबुल फजल
(५) फैजी
(६) तानसेन
(७) मानसिंह
(८) टोडर मल
(९) बीरबल

(१) मुल्ला दो प्याजा—आप अरब के निवासी थे, तथा हुमायूं के समय भारत आये थे। आप अत्यन्त वाक् पटु थे। सम्भवतः ये प्याज के बड़े प्रेमी थे, जिसके आधार पर इन्हें यह उपाधि दी गयी। इनका चित्रण लन्दन चित्र ग्रन्थ (Album) में एक बार से अधिक आया है। आप वस्तुतः हुमायूं के एक सेनापति थे, कालान्तर में अकबर के कृपापात्र बने।

(२) हकीम हमाम—हकीम हमाम अथवा शाही भोजन का प्रबन्धक अकबर का बड़ा घनिष्ट मित्र था। यह रसोई घर का प्रधान अधिकारी था। इसी की बदौलत राज दरबार में उसका बड़ा प्रभाव था।

(३) अब्दुर रहीम खानखाना—यह अकबर के संरक्षक बैरम खां के सुपुत्र थे। आप फारसी, तुर्की तथा हिन्दी के अच्छे विद्वान थे। आपने बाबर की आत्म-कथा का तुर्की से फारसी में अनुवाद किया था। दूसरी ओर आपने हिन्दी में दोहों की रचना की थी। आप भी बड़े अनुभवी सेना नायक थे, जिन्होंने गुजरात, सिन्ध तथा दक्षिण के अभियानों में प्रमुख भाग लिया था। आपके दोहे बड़े अनुभवपूर्ण तथा सरल हिन्दी में हैं, जो रहीम के दोहों के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(४) अबुल फजल—आप शेख मुबारक के पुत्र थे। आपका जन्म आगरा में १५५१ ई० में हुआ था। आप बड़े विद्वान तो थे ही, साथ ही उदार

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

चेता थे। आपके विचारों से अकवर वहुत प्रभावित हुआ था। "आईन-ए-अकवरी" तथा "अकवर नामा" आपके अमूल्य ऐतिहासिक ग्रंथ हैं। एक बार आप दक्षिण से लौट रहे थे कि जहाँगीर के षडयन्त्र के कारण वीर सिंह बुन्देला द्वारा आपका बध कर दिया गया (१६०२ ई०)। फारसी साहित्य में आपका उच्च स्थान है।

(५) **शेख फैजी**—यह शेख मुवारक के बड़े लड़के थे। लगभग २० वर्ष की आयु में आप (१५६७ ई० में) सम्राट के सम्पर्क में आये थे। आप भी एक उच्च कोटि के कवि थे। अतः आपको राज कवि का पद प्राप्त था। पर आप भी बड़े स्वतन्त्र विचार के थे और कट्टर पंथियों से दूर रहते थे। १५९१ ई० में सम्राट ने आपको राजदूत बना कर बुरहानपुर भेजा था। आपने "लीलावती" का अनुवाद फारसी में किया था।

(६) **मिर्जा तानसेन** — मिर्ज़ा तानसेन ग्वालियर के निकट बेहट ग्राम के निवासी थे। आपके पिता का नाम मकरन्द पाण्डेय था। वे आपको प्यार में तन्नू कहा करते थे। आप जब पाँच वर्ष के थे तभी से मधुर गाया करते थे। आपके पिता ने आपको ग्वालियर के तत्कालीन बड़े गायक हज़रत मुहम्मद ग़ौस के यहाँ संगीत सीखने के लिए छोड़ दिया था। कुछ समय तो तानसेन ने यहाँ शिक्षा प्राप्त की। उसके अनन्तर आपको एक अन्य गायक मथुरा निवासी स्वामी हरिदास के पास भेजा गया। मुहम्मद ग़ौस के यहाँ रह कर ही आपका नाम तन्नू से तानसेन हो गया था। स्वामी हरिदास जी से शिक्षा ग्रहण कर आप ग्वालियर के तोमर राजा मान सिंह की संगीतशाला में शिक्षा प्राप्त करने गये।

संगीत में शिक्षित होकर आप रीवां के राजा रामचन्द्र के दरबार में रहने लगे। अकवर को जब आपकी ख्याति का ज्ञान हुआ, तो उसने जलालुद्दीन कुरेशी को आपको लाने के लिए भेजा। अकबर के दरबार में आकर आप अपनी प्रतिभा के कारण उसके नवरत्नों में गिने जाने लगे। आपके विषय में फैज़ी ने लिखा है **"आपके तुल्य गायक भारत में हजारों वर्ष से नहीं हुआ"*** । आप सूरदास के घनिष्ठ मित्र थे। बहुत सम्भव है कि अपने जीवन के उत्तर काल में आप इस्लाम को मानने लगे थे क्योंकि आपको अन्त में दफनाया गया था। संगीत रचना तथा गायन में उस समय आपका कोई प्रतिद्वन्द्वी न था।

---

* "A singer like him has not been in India for the last thousand years." V. A. Smith, *Akbar the great Mogul* p. 306.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(७) **मानसिंह**—आप जयपुर के राजा भगवान दास के दत्तक पुत्र थे। आपने १५६१ में सम्राट की सेवा स्वीकार कर ली थी। साथ ही अन्य अनेक राजपूतों को ये अकबर के समीप तक ले गये। मेवाड़ के राणा से आपकी अनबन हो गयी थी अतः आपने उनके विरुद्ध युद्धों में सक्रिय भाग लिया। आपको काबुल तदनंतर बिहार का गवर्नर बनाया गया था। अकबर को आपके ऊपर अमोघ विश्वास था। १५८९ ई० में अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् आप बंगाल के शासक भी हो गये थे। पर जहाँगीर के विद्रोह के कारण ये उसके विरोधी हो गये। जहाँगीर ने इन्हें अपने सम्राट होने पर क्षमा कर दिया। १६११ ई० में आप परलोक सिधार गये। राजपूतों में आपको हेय दृष्टि से देखा जाता है।

(८) **टोडर मल**—आप की ख्याति आपके कृषि सुधारों पर आधारित है। आपका जन्म सीतापुर जिले में लहरपुर में हुआ था। कुछ विद्वानों का मत है कि आप लाहौर निवासी थे, आपके मामा लहरपुर के थे। जो हो आप अपनी प्रतिभा के बल पर एक साधारण लिपिक के पद से लेकर वकील के पद पर पहुँच गये थे। आपने अनेक युद्धों में सक्रिय भाग लिया। आपके हाथ विजयश्री भी लगी। (१५८० ई०) आपने बंगाल के युद्धों में मुंगेर को बड़ी बहादुरी से बचाया था। आपने अनेक हिन्दुओं को फारसी पढ़ने के लिए बाध्य किया था जिससे आपका भूमि प्रबंध सही लिखा जा सके। १५८९ ई० में जब अकबर काश्मीर गया था तो लाहौर को आपके अधीन छोड़ दिया गया था। आपकी सेवाएँ साम्राज्य के लिए अपूर्व थीं। १५८९ ई० में आपका परलोकवास हो गया।

(९) **राजा बीरबल**—आपका जन्म १५२८ ई० में कालपी में हुआ था। आपके बचपन का नाम महेशदास था। आप साधारण कोटि के ब्राह्मण परिवार के थे। पहले आप राजा भगवान दास के सम्पर्क में आये, जिन्होंने आपका, अकबर के दरबार में, प्रवेश कराया। आप उच्च कोटि के कवि, संगीतज्ञ तथा विनोदी थे। आप अपनी वाक्पटुता के बल पर सभी को प्रसन्न कर देते थे। आपको २००० का मनसब प्राप्त था, पर उससे आपको कोई सरोकार न था। आपको कांगड़ा की जागीर दी गयी, उस पर भी आपने अपना स्वत्व न जमाया था। केवल आप ही एक ऐसे हिन्दू थे जिन्होंने दीनइलाही धर्म को स्वीकार किया था। १५८६ ई० में यूसुफजाइयों के कबीले से युद्ध करते समय आपकी मृत्यु हो गयी।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद (१० द)

मुगलयुग की धार्मिक भावना

मुगलों के पूर्व भारत में हिन्दुत्व का ह्रास हो रहा था, हिन्दू जनता को सहारा खोजना भी दुर्लभ था। सल्तनत युग में धर्मपरिवर्तन तथा अत्याचारों की सीमा ढूँढ़ना ही व्यर्थ है। यही कारण हुआ कि सल्तनत युग के शासक अधिक न टिक सके। मुगलों ने इस नीति को बहुत कुछ बदल दिया। कुछ मुगल सम्राट ऐसे भी हुए जैसे औरंगज़ेब जो दूसरे धर्म को मानने वाले को अपना धर्म मनवाने में सुख मानते थे, पर अधिकांश शासक इस प्रवृत्ति को लेकर नहीं चले। बाबर को तो यहाँ समय ही कितना मिला जो वह अपनी धार्मिक भावना की उत्कृष्टता दिखाता। हुमायूँ भी जीवन भर मारा-मारा फिरता रहा; वह पक्का सुन्नी था, इसमें कोई सन्देह नहीं। न वह दूसरे धर्म की चिन्ता कर सका न दूसरे धर्म वाले उसकी। अकबर ने अपने युग में राज्य को साम्राज्य में ही परिणत नहीं किया बल्कि उसके टिकाने का भी पूरा प्रयास किया। वह यह समझता था कि भारत जैसे धार्मिक देश में यहाँ के धर्म को समूल नष्ट नहीं किया जा सकता। अतः यह आवश्यक है कि भारतीयों का आदिधर्म नष्ट न किया जाय। उसने अपने को थोड़ा संयमित किया। उस पर वस्तुतः अनेक ऐसे प्रभाव भी पड़े जिनके कारण वह एक नये धर्म की खोज करने लगा। वह एक राष्ट्र की ही कल्पना करने लगा। उसमें निःसन्देह स्वार्थ था, पर न्याय भी। उसके प्रचारित धर्म को जब अधिक लोगों ने स्वीकार नहीं किया, तो उसकी सबसे बड़ी अनुभवशीलता तथा उसका सबसे प्रशंसनीय कार्य यही है कि उसने इस धर्म के लिए किसी को विवश नहीं किया। उसके हाथों में शक्ति थी, वह चाहता तो बहुत कुछ परिवर्तन कर सकता था। कुछ नहीं तो अपने विरोधियों को मिटा तो सकता ही था, पर उसने ऐसा नहीं किया। इसका मूल कारण यही था कि विरोधी के मिटने के साथ उसका राज्य भी मिट जाता। अतः उसने एक नया धर्म "दीनइलाही" चलाया।

दीन इलाही — (i) निःसन्देह **"दीन इलाही"** के प्रचलन तथा इस सूझ का श्रेय अकबर को था, पर कुछ ऐसी स्थिति भी थी जिसने उसे इस दिशा में विचारने को विवश किया। वस्तुतः यह उस युग की माँग थी।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी सुधार की लहर दौड़ रही थी। यूरोप में तो धर्म सुधार के पीछे ही रुधिर बहाया जा रहा था। हेनरी अष्टम ने पोप की प्रभुता समाप्त करने में कोई कसर न रखी थी। मार्टिन लूथर तथा नौक्स जैसे लोगों ने यरोप में धर्मान्धता का पर्दा उठा दिया था। बाइबिल के अनुवाद होने लगे थे। फिर धर्म पर आरूढ़ हो कर जो शासक अन्धे बने उनके शासन में ही आपत्तियाँ आईं, यह सब अकबर के सम्मुख था।

(ii) अकबर के सामने दूसरी प्रमुख बात यह भी थी कि उसका सम्पर्क विभिन्न सम्प्रदायों से था। उसके अधिकार क्षेत्र में हिन्दू, यवन, सिख, तथा इनकी भी शाखाएँ और प्रशाखाएं थीं, विजय करने भर से वे सभी एक न रह सकते थे, साथ ही उनकी पारस्पारिक विद्वेष की भावना उसके साम्राज्य के लिए घातक थी। उनकी कलह से उसकी शान्ति में विघ्न पड़ सकता था। उसे साम्राज्य में केवल एकता नहीं, बल्कि एक सूत्रता चाहिये थी। उसकी राजनीतिक प्रभुता की रक्षा उनके सहयोग से ही हो सकती थी।

(iii) तीसरे अकबर स्वयं एक उदारचेता मनुष्य था। उसमें अपने धर्म के प्रति कोई प्रगाढ़ प्रेम न रह गया था। इस अस्नेह का एक प्रमुख कारण भी था। वह फतहपुर सीकरी के इबादत खाने में विभिन्न सम्प्रदायों के विवाद सुना करता था। ये वादविवाद बहुधा कलह में परिणत हो जाते थे। उसे किसी भी सम्प्रदाय के पक्षपाती में सहिष्णुता की भावना न दिखायी देती थी। मुल्लाओं के कुकृत्य उसके सम्मुख थे। वे उसे यदा कदा ऐसी बातें भी सुझाने की चेष्टा करते थे जो उसकी समझ में न उतरती थीं। इसके अतिरिक्त उस पर उसकी हिन्दू पत्नियों का प्रभाव भी कम न था। वह उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस न पहुँचाना चाहता था। कुछ तो स्वभावतः परस्पर सम्पर्क से प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था।

(iv) इसके अतिरिक्त अकबर सत्य की खोज में रहता था। उसके मन में यह भावना उठा करती थी कि आखिर किस धर्म के द्वारा वह सत्य की खोज कर सकता था, ईश्वर तो एक ही है, यह सब व्यर्थ की कलह उसके पीछे चलने वालों के मस्तिष्क की उपज है। वे धर्म के अनुयायी नहीं हैं, बल्कि धर्म के अन्धे हैं, वे धर्म पर कुठाराघात करते हैं। मूल धर्म तो यह होना चाहिये कि पुजारी अपने कर्त्ता को सदा स्मरण रखे, वह उसकी किसी भी मार्ग से खोज करे, मिलने वाली वस्तु एक ही होगी। विभिन्न धर्म उसके समीप तक पहुँचने के विभिन्न मार्ग हैं। मूल तत्व एक है, एक तत्व की चाह करने वालों को परस्पर सहयोग से काम लेना है, कलह से नहीं, फिर

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सच्ची शान्ति किसी साम्राज्य विजय में न होकर उसी की खोज और प्राप्ति में होगी।

(v) इन भावनओं में डूबे उस साधक को सौभाग्य से अनेक सूफियों और सन्तों का सहारा भी मिल गया। इनमें एक सूफी शेख मुबारक भी थे। उनके दो पुत्र अबुल फजल और फैजी उनके साथ थे। ये बड़े विद्वान और उच्चविचारक थे। इनसे वार्तालाप करने के पश्चात् उसकी समझ में आया कि प्रकाश सभी धर्मों में है। प्रत्येक धर्म के संचालक तथा आदि प्रवर्त्तक सदा दिव्यविभूति थे। उन्हें ईश्वर ने दिव्य सन्देश दिये थे। उसी सन्देश का हमें अथवा धर्म विशेष के मानने वालों को पालन करना चाहिये। इसी से प्रभु भी प्रसन्न होगा।

(vi) अन्त में कहना न होगा कि उस पर कुछ पैतृक प्रभाव भी थे। उसके पिता तथा पितामह इतने कट्टर न थे। उसकी माता शिया मत को मानने वाले की पुत्री थी। जन्म से उसकी अकबर को सहनशीलता की शिक्षा थी। इसी प्रवृत्ति में अबुल फजल, फैजी तथा दिल्ली के शेख ताजुद्दीन का योग भी मिल गया। इन सबों ने मिल कर अकबर के सम्मुख पूर्णतया एक नयी विचारधारा रख दी।

इसका फल यह हुआ कि सन् १५७५ ई० में अकबर ने फतेहपुर सीकरी में इबादतखाने नाम का नया भवन बनवाया। इसी में बड़े-बड़े धार्मिकों तथा विद्वानों की सभायें होने लगीं। इनमें ब्राह्मण, जैन, पारसी, ईसाई तथा अनेक मुसलमान रहते थे।

इनमें कट्टर इस्लामधर्मी भी थे, जैसे शेख मखदूम-उल-मुल्क तथा शेख अब्दुन्नबी, तथा अन्य उदार चेता थे यथा--फैज़ी, अबुल फजल और बीरबल। पर इन विवादों में कलह के अतिरिक्त कुछ हाथ न लगता था। कट्टर पन्थियों को एक दूसरे को अपशब्द कहते देखकर उदार चित्त वाले खूब हँसा करते थे। अकबर को जब इस्लाम में शान्ति न मिली तो उसने दो हिन्दू पण्डितों को बुलाया, ये पुरुषोत्तम तथा देवी थे। इन्होंने उसे अपने धर्म की सत्यता समझाई, देवी देवताओं की पूजा बतलायी। इसी प्रकार उसने जैन, बौद्ध तथा सिख आदि धर्मों की वार्ता भी सुनी, पर उसे सन्तोष न हुआ। कुछ जैन आचार्यों† से बात करके इतना अवश्य हुआ कि उसने मांस खाना बंद कर दिया, मांस के लिए कुछ निश्चित दिनों में पशु बध बंद करा दिया। पारसियों का यह प्रभाव पड़ा कि दरबार में अग्नि के प्रज्वलन का

† हीर विजय सूरी, विजय सेन सूरी, भानुचन्द्र तथा जिन चन्द्र।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

प्रबंध करा दिया गया। सिखों के गुरु ग्रंथ का भी अकबर ने बड़ा सम्मान किया। जो हो इन सब कारणों से अकबर की कट्टर इस्लाम के प्रति श्रद्धा जाती रही।

धीरे धीरे अकबर की दृष्टि में उलेमा की श्रेष्ठता घट गयी। वह अपने को उनसे उच्च समझने लगा। १५७९ में एक दिन उसने अपने नाम का खुतवा पाठ तथा कुछ विद्वानों का निर्णय घोषित किया। यह खुतवा फतेहपुर की जामा मस्जिद में पढ़ा गया। इसका भावार्थ इस प्रकार है।

"जिस अल्लाह ने मुझे साम्राज्य दिया है, जिसने बुद्धिमान हृदय तथा शक्तिशाली बाहुदण्ड दिये हैं, जिसने धर्म और न्याय में मेरा पथ प्रदर्शन किया है तथा जिसने मेरे मन से न्याय के अतिरिक्त अन्य सभी विचार दूर कर दिये हैं उसकी प्रशंसा करना मनुष्य की बुद्धि से परे है, अल्लाहो अकबर"।†

शेख मुबारक आदि विद्वानों के निर्णय पत्र का सारांश इस प्रकार है—

"भारत आज सुरक्षा और शांति का केन्द्रस्थल तथा न्याय व दया का आगार है। इसी लिए अनेक विद्वान तथा विधिवेत्ता बाहर से आकर यहाँ बस गये हैं। उन्होंने इस देश को अपना ही घर समझ लिया है। आज प्रमुख उलमाओं ने जो केवल विधि को ही सांगोपांग नहीं समझते, अथवा विधि सिद्धान्त में ही दक्ष नहीं हैं, अथवा जो केवल बुद्धि और साक्षी पर आधारित आदेशों से परिचित नहीं, बल्कि अपनी धार्मिकता तथा सद् विचारों के लिए सुप्रसिद्ध हैं, कुरान शरीफ की इस आयत पर विचार किया है कि ईश्वर की आज्ञा का पालन करो, तथा अपने में से उन लोगों की आज्ञा मानो जिनके हाथों में सत्ता है। साथ ही हम लोगों ने इस धार्मिक परम्परा का अर्थ भी समझ लिया है, कि वस्तुतः इमामे आदिल ही वह व्यक्ति है जो ईश्वर को न्याय के दिन सबसे अधिक प्रिय होता है, जो अमीर की आज्ञा का पालन करता है, वही मेरी आज्ञा का पालन करता है, जो इसके विरुद्ध विद्रोह करता है, वह मेरे विरुद्ध विद्रोह करता है। यही नहीं हम सब ने उन प्रमाणों का अर्थ समझ लिया है, जो बुद्धि तथा साक्ष्य पर आधारित है। हम

† "In the name of Him who gave us Sovereignty, who gave us a wise heart and a strong arm, who guided us in equity and justice who put away from our heart aught but equity, His praise is beyond the range of our thoughts Exalted be His Majesty-Allah-o-Akbar"

Faizi.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सब इस बात को अंगीकार करते हैं कि सुलताने आदिल (न्याय प्रिय) का पद ईश्वर की दृष्टि में मुजतहिद के पद (धर्म शास्त्री) से ऊँचा है।"

"अतः हम घोषित करते हैं कि इस्लाम का सम्राट, मुसलमानों का अमीर, संसार में ईश्वर की छाया, अबुलफतह जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर पादशाह गाजी, जिसके राज्य को ईश्वर सदा बनाये रखे, सबसे अधिक न्याय-प्रिय, बुद्धिमान और धर्मभीरु शासक है। भविष्य में यदि कोई ऐसा धार्मिक प्रश्न उपस्थित होता है, जिसके विषय में मुजतहिदों में विभेद हो और सम्राट अपनी तीव्र तथा स्पष्ट बुद्धि से राष्ट्रहित अथवा राजनीति के औचित्य की दृष्टि से विभिन्न विरोधी मतों में से किसी एक को स्वीकार कर, उस विषय में कोई आदेश जारी करता है, तो हम इस बात की अनुमति देते हैं कि इस प्रकार का आदेशपत्र हम पर तथा समस्त राष्ट्र पर लागू होगा। साथ ही सम्राट यदि कोई अन्य नूतन आदेश जारी करना चाहे तो हम सबको मान्य होगा। यह अवश्य है कि इस प्रकार का उसका आदेश कुरान की आज्ञा के अनुकूल तथा राष्ट्र हित में होगा। यदि कोई इस प्रकार के आदेशों का विरोध करता है तो वह परलोक में तो नरक का भागी होगा ही, इस लोक में धर्म तथा संपत्ति से वंचित होगा।"

इस निर्णय पत्र के अनुसार धार्मिक विषयों में भी अकबर पूण स्वतन्त्र हो गया। उसे अब इबादत खाने के निर्णयों की आवश्यकता न रही। अतः उसने सभी मतों के समन्वय के पश्चात् जो बातें स्थिर कीं वे इस प्रकार थीं—

१. ताहुदे इलाही का मानने वाला एक दूसरे को देख कर यह रस्म करेगा। एक कहेगा अल्लाह-ओ-अकबर, दूसरा उत्तर देगा जल्ले जल्लाल हूँ। इसका अभिप्राय था कि इस धर्म का पालक सदा उस अल्लाह ताअला की स्मृति रखे।

२. मृत्यु के पश्चात् मृत्युभोज देने के स्थान पर प्रत्येक सदस्य अपने जीवन काल में ही भोज देगा, जो उसकी अन्तिम यात्रा में सहायक होगा।

३. प्रत्येक सदस्य मांस भक्षण करने से बचने का प्रयत्न करेगा। अपने जन्म के महीने में वह मांस का दर्शन भी न करेगा। न वह कसाई अथवा मछेरे के प्रयोग किये हुए बर्तनों का प्रयोग करेगा। पर वह दूसरों को मांस भक्षण से न रोकेगा।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

४. सदस्य बूढ़ी, गर्भवती, बाँझ अथवा अवयस्क स्त्री के साथ सम्भोग न करेगा।

५. इसका सदस्य ४ श्रेणियों में विभक्त था, जो सदस्य अपनी सम्पत्ति, अपना जीवन, स्वाभिमान और धर्म चारों को सम्राट के निमित्त बलिदान कर सकता था वह सर्वोत्तम होगा, जो १. २. या तीन बातों को न्यौछावर कर सकेगा, उसकी उच्चता उसी प्रकार बढ़ी होगी।

६. ईश्वर एक है और अकबर उसका सबसे बड़ा पुजारी होगा।

७. सदस्य सम्राट को साष्टांग प्रणाम करेगा, अथवा सिजदा करेगा, इससे धार्मिकता से बड़ा सम्बन्ध न था, बल्कि यह अकबर के प्रति सम्मान व श्रद्धा बढ़ाने का एक साधन था।

८. सदस्य सूर्य तथा अग्नि की उपासना करेगा, यह सिद्धान्त हिन्दू तथा पारसियों कोआकृष्ट करने के लिए था।

९. प्रत्येक अनुयायी अपनी वर्षगांठ के दिन प्रीति भोज देगा।

(१०) इस धर्म में दीक्षित होने का दिन रविवार होगा। इसी दिन सम्राट सबको दीक्षा देगा। इसमें दाढ़ी रखना अच्छा न समझा जाता था।

इसके सदस्य:— अबुल फजल के अनुसार इस धर्म के केवल १८ अनुयायी थे, जिनमें केवल बीरबल हिन्दू थे। मुसलमानों में उल्लेखनीय सदस्य शेख मुबारक, अबुल फजल, फैज़ी, मिर्ज़ा जानी तथा अजीज कोका थे। पर ये सभी नाम प्रतिष्ठित व्यक्तियों के हैं। डा० आशीर्बादी लाल के अनुसार इनके अतिरिक्त भी बहुत से व्यक्तियों ने इसमें दीक्षा ली। कहा जाता है कि भगवानदास तथा मानसिंह ने इस धर्म में दीक्षित होने से स्पष्ट मना करा दिया था।

इसकी आलोचना: – इस धर्म की बड़ी तीव्र आलोचना की जाती है। बदायूँनी का विचार है कि दीन इलाही की घोषणा के पश्चात् अकबर ने अन्य अनेक घोषणाएँ निकालीं। उसने इस्लामी ढंग से प्रार्थनाएँ बन्द करा दीं तथा अज़ान न देने की आज्ञा दी, रोजे रखना बन्द करा दिये। शेर और जंगली सुअर का मांस खाना वर्जित न रखा। लड़के का १६ वर्ष तथा लड़की का १४वर्ष से पूर्व विवाह मना कर दिया। अधिक क्या उसने मुसलमानी पर्व बन्द करा दिये। पैगम्बर के नाम पर बच्चों के नाम रखना बन्द करा दिया। अरबी का अध्ययन निरुत्साहित किया। पर ये बातें अत्युक्ति पूर्ण हैं। इनको रंग चढ़ा कर दर्शाया गया है। बदायूँनी अकबर से प्रसन्न न था,

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अतः उसने यह दीन इलाही के विरुद्ध न कहकर अकबर के विरुद्ध कहा है। बदाऊनी अबुल फजल से जलता था, वह इस प्रकार का मुसलमान था जो विश्वास करता था कि गैर मुसलमान तो नरक में जायेंगे। उसने वीरबल को दोगला कहा ह, तथा शिया मुसलमानों को, अज्ञानी, मूर्ख व शैतान का पुजारी कहा है। इस प्रकार के अन्ध-विश्वासी की राय का मूल्य और जो भी हो, पर ऐतिहासिक दृष्टि से हेय है।

डा० स्मिथ की दृष्टि में दीनइलाही कोई मज़हब न था, बल्कि एक संस्था की परिपाटी थी। आपका विचार है कि इसमें ईश्वर की एकता के नाम पर सम्राट को सर्वोच्च ठहराना था। सम्राट को ईश्वर का उपरूप ठहराना था। इस परिपाटी में सूर्य की पूजा थी (अग्निपूजा भी सम्मिलित थी), **यह उपहासास्पद अभिमान की उपज थी** आपने इसे **"अकबर की मूर्खता का प्रतीक कहा है किसी बुद्धिमत्ता का नहीं।"** †

डा० ईश्वरी प्रसाद ने इसे दूसरे दृष्टि कोण से देखा है। आपका कहना है **"कि दीनइलाही धर्मोपदेशी विश्वेश्वरवाद था। इसमें सभी धर्मों के अच्छे सिद्धान्त थे। इनमें कोई दार्शनिकता प्रकृति पूजा तथा योग का सम्मिश्रण था, इसका आधार विचार पूर्ण था इसमें कोई अन्ध विश्वास न था, न इसमें कोई देवी देवता या पैगम्बर था। सम्राट ही इसका मुख्य प्रवर्त्तक था।"***

इसी प्रकार आचार्य श्रीराम शर्मा ने इसे धर्म कहना भी भूल कहा है। आपका विचार है कि न इसमें कोई धर्म पुस्तक न धर्म-गुरु न कोई धार्मिक संस्कार न विश्वास ही था। **"यह सम्राट के राष्ट्रीय आदर्शवाद का ज्वलन्त उदाहरण है।"** आप के अनुसार योरुपीय विद्वानों की टीका असंगत है, क्योंकि वे अकबर को निज धर्म में दीक्षित करना चाहते थे। उसमें जब वे निराश हुए तो उन्होंने उसी पर कीचड़ उछालने का प्रयास किया। योरुपीय पादरियों ने अपने तर्क का समर्थन बदायूंनी के शब्दों के आधार पर

---

†"An outcome of ridiculous vainty."
"It was a monument of Akbar's folly not of his wisdom." *Dr. Smith.*

* "It was eclectic pantheism, containing the good points of all religions, a combination of mysticism, philosophy and natnre worship. Its basis was rational It upheld no dogma, recognized no gods or prophets, and the emperor was its chief exponent."

Dr. Ishwari Prasad, Muslim Rule p. 296.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कराया है। बदायूँनी कितना विश्वस्त था, इसकी चर्चा हम कर चुके हैं। शर्मा जी के अनुसार दीन इलाही मूल-भूत संगठन की ओर एक प्रयोग के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। जैसे उसकी आर्थिक व्यवस्था में करोड़ी प्रणाली का एक प्रयोग था वैसे ही धार्मिक क्षेत्र की यह महत्त्वाकांक्षा। जैसे आर्थिक क्षेत्र का प्रयोग नष्ट हो गया वैसे ही जब मूल-रूप से कार्यशील अकबर को इसकी निरर्थकता का ज्ञान हुआ तो उसने उसे लुप्त हो जाने दिया। †

इसी प्रकार इस विषय पर हर इतिहासकार ने अपनी कलम उठायी। यहाँ सभी का मत देना सम्भव नहीं, पर हैवेल, डा० त्रिपाठी और लेन-पूल अवश्य ग्राह्य है

(१) हैवल का मत --"अकबर की भी अन्य सुधारकों जैसी गति हुई, उसके भी व्यक्तिगत चरित्र पर लांछन लगाये गये, उसके मन्तव्यों को गलत समझा गया, साथ ही उसके कृत्यों को अप्रामाणिक आधारों को लेकर तोड़ा मरोड़ा गया। वह न तपस्वी था, न किसी साधारण कोटि का परम्परागत संत, फिर भी संसार के कुछ ही महान शासक उससे अधिक उत्तम न्यायपूर्ण कार्यों और उसकी तरह सम्मानपूर्वक सतत मानवता के हित में अपने धार्मिक आदर्शों को निभाने का प्रमाणित लेखा दे सकेंगे।"*

---

†2 "It was the crowning expression of the emperor's national idealism. It was nothing more than a tentative experiment in the process of fundamental synthesis It was never forced upon any man, like the krori' system in the fiscal administration this "Esparants of Religion" was simply allowed to lapse when the esentially practical Akbar realised its futility."

S. R. Shrma.

* Akbar has shared the fate of all great reformers in having his personal character assailed, his motives impunged, his actions distorted upon evidence which hardly bears judicial examination. He was neither an ascetic nor a saint of the conventional type but few of the great rulers of the earth can show better record for deeds of righteousness or more honourably and consistently maintained their ideals of religious life devoted to service of the humanity."

Havell

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(२) लेनपूल का मत -- "धर्म गुरु पर ही आधारित कोई भी धर्म लोगों पर अधिक प्रभाव नहीं डालता, इसीलिए अकबर की दार्शनिकता, प्रकृति पूजा तथा उसके योग का यह घुटाला उसके साथ ही चला गया।" †

(३) डा० त्रिपाठी के अनुसार-- "दीनइलाही कोई धर्म न था और न अकबर किसी मठ की स्थापना ही करना चाहता था। दीनइलाही सिर्फ इसलिए बना कि अकबर उन लोगों को अपने नैतिक आदर्शों के अन्तर्गत लाना चाहता था जो उसकी शुद्ध भावना के आगे सर झुकाते थे, साथ ही वह उनमें अपना शुद्ध भाव और कार्य का सिद्धान्त बिठा देना चाहता था।" ‡

(४) वूल्स्ले हेग -- "अकबर ने अपने सलाहकारों की सहायता से एक धर्म गुरु की परिपाटी का स्वांग रचा, जिससे उसको सभी की मान्यता प्राप्त हो सके, क्योंकि इस प्रकार की सार्वभौमिक मान्यता उसे न इस्लाम दे सकता था न ईसाई धर्म।" ¶

इन दृष्टिकोणों से अवश्य सिद्ध होता है कि अकबर का जो भी मन्तव्य रहा हो, वह विचारपूर्ण और सराह्य था। निःसन्देह उसने धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान करने का भरसक प्रयास किया।

अन्य धार्मिक भावनाएँ

दीनइलाही के अतिरिक्त हिन्दुओं में पृथकतः धर्म की भावना का प्रसार हुआ। वे शैव, शाक्त तथा वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। अतः जन

† "Of course an eclectic religion never takes hold of the people and Akbar's curiously interesting hotch potch of philosophy, mysticism and nature worship practically died with him."

Lanepoole.

‡ "The Din-elahi was not a religion and Akbar never intended the establishment of a church. Din-elahi came into existence on account of the desire of Akbar to bring together men who were willing to submit to the spiritual guidance and infuse into them his own catholic spirit and principles of action."

Dr. Tripathi.

¶ "With the aid of his advisers he had concocted an eclectic creed likely as his vanity persuaded him to command an assent from all men which neither Christianity nor Islam had been able to ensure."

Woolsley Haig.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

साधारण में धार्मिक भावना जग चुकी थी। इसके पूर्व धार्मिक आन्दोलन की धारा बह ही चुकी थी जिसकी चर्चा पूर्व भाग में की जा चुकी है। पर १६वीं तथा १७वीं शताब्दियों में राम तथा कृष्ण की भक्ति प्रवाहित हुई। आचार्य रामानुज ने व्यापक वैष्णव धर्म का प्रचार किया। इसी के दो मार्ग राम तथा कृष्ण की उपासना में परिणत हुए। कृष्णभक्ति के लिए १६वीं शताव्दी के प्रारम्भ में आचार्य रामानुज की शिष्य परंपरा के आचार्य वल्लभ उत्तर भारत में पधारे। उन्होंने वृन्दावन को अपनी कर्मभूमि चुना, यहीं से कृष्णभक्ति का प्रचार आरम्भ किया। गोवर्द्धन पर्वत पर उनका मन्दिर कृष्णभक्ति का प्रधान केन्द्र बन गया। आपकी शिक्षाओं का मूल यह था कि कृष्ण ही परब्रह्म हैं, उनकी लीलाओं को वार-वार देखना ही परम सुख है। वल्लभाचार्य के पश्चात् उनके पुत्र विट्ठलनाथ उनके मन्दिर के स्वामी हुए। उन्होंने कृष्णभक्ति विषयक आठ कवियों को चुनकर (जिसकी चर्चा साहित्य में की जा चुकी है) अष्टछाप की स्थापना की। इन कवियों ने कृष्णभक्ति के रस को और भी अधिक प्रवाहित किया। यहाँ तक कि उससे मुसलमान भी प्रभावित हुए। (यथा — रसखान)

रामभक्ति — रामभक्ति का संदेश गोस्वामी तुलसीदास जी ने फैलाया। यह संदेश मूलतः स्वामी रामानन्द का दिया हुआ था। तुलसी की चर्चा भी की जा चुकी है। उनकी रामायण भक्ति रस का सागर है। उन्होंने राम को स्वामी भाव से माना तथा उनकी भक्ति का इतना व्यापकरूप से प्रचार किया कि शैव वैष्णव का झगड़ा ही मिटा दिया। राम को आनन्दकन्द और मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान का रूप देकर उन्होंने निर्जीव जनता में मानों प्राण ही फूँक दिये। जन-जन रामायण को लेकर उसी के बनाये मार्ग पर चलने लगा। आज तक वह हिन्दू मात्र की बाइबिल है। उसके सम्मुख कृष्ण भक्ति भी दब गयी और मथुरा वृन्दावन के क्षेत्रों तक विशेष रूप से सीमित हो गयी। तुलसी ने रामायण में उपनिषदों का अध्यात्मवाद, पुराणों की गाथाएँ, जात पाँत का विरोध, सच्चे वर्णाश्रम का स्वरूप सभी बातों की चर्चा की है। इसमें विशेष बात यह थी कि कृष्ण की बाँसुरी के विपरीत उन्होंने समाज के सम्मुख राम के धनुष वाण को रख कर शक्ति की प्रेरणा दी। उन्होंने समाज को राजनीतिक दृष्टिकोण भी समझाया। निःसन्देह इसी से अनेक नेताओं को प्रेरणाएँ मिलीं जिन्होंने सराहनीय कृत्य किये और एक बार मुसलमानों से त्रस्त जनता को आशा का द्वार खोल दिया।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इसी समय महाराष्ट्र में कुछ महात्माओं ने धर्म आन्दोलन की धारा को अधिक प्रवाहित किया। इनमें एकनाथ, तुकाराम और रामदास के नाम उल्लेखनीय हैं। एकनाथ का कहना था कि स्त्री, शूद्र तथा अन्य सभी जन भक्ति के अधिकारी हैं। इन्होंने पद-दलित समाज को जीवन-दान दे दिया। इसी प्रकार तुकाराम ने अपने उपदेशों को महाराष्ट्र में गुँजा दिया। आपने महाराष्ट्र में धार्मिक एकता लाने का प्रयत्न किया, साथ ही धर्म के शत्रुओं का संहार प्रतिपादित किया। समर्थ रामदास बस समर्थ ही थे। उनके इष्ट ग्रंथ रामायण महाभारत थे। उन्होंने अपने उपदेश से शिवा जैसा सेनानी तैयार कर दिया था।

जिस समय महाराष्ट्र हिन्दू संतों से अधिक प्रभावित था, उसी समय पंजाब में एक नये धर्म का सृजन हुआ। यह था गुरु नानक द्वारा संचालित धर्म। आपने अपने धर्म को क्रियात्मक रूप दिया। आपने देखा कि उक्त प्रांत में जनता को ऐसे सिद्धान्तों की आवश्यकता है कि वह मुसलमानों के आघातों से बच सके अतः आपने तलवार को भी धर्म का एक अंग बना दिया। आपकी वाणी में बड़ा बल था। आपके शिष्य प्रशिष्य मुग़लकाल में ही पनपे तथा उन्होंने अनेक बलिदान भी किये। (इनकी विशेष चर्चा अलग परिच्छेद में होगी।) इन्हीं की परिपाटी के पाँचवे गुरु अर्जुनदेव ने जिनका वध खुसरो का साथ देने के लिए जहाँगीर ने करा दिया था (१६०६ ई०) सिख गुरुओं की वाणियों तथा रामानंद, कबीर, रविदास आदि संतों के वचनों को एकत्र करके सिखों की धर्म पुस्तक गुरुग्रन्थ की रचना की। आगे चल कर गुरु तेग बहादुर के औरंगज़ेब द्वारा वध ने इस ज्वाला को और भी भड़का दिया। इससे अपने को दीन-हीन समझने वाला समाज भी उठ खड़ा हुआ। धीरे-धीरे इस समाज ने राजनीति में कदम रखा और सफल संग्राम किये।

इस समय कुछ संतों ने धार्मिक कटुता को कम करने का प्रयास भी किया। इनमें से दादू, मलूक तथा रविदास आदि संत अकबर के समकालीन थे। दादू अहमदाबाद का एक धुनिया, रविदास चमार थे। इन संतों ने हिन्दू मुसलमानों के वैमनस्य को कम करना चाहा। औरंगज़ेब के समय एक सतनामियों के विद्रोह की चर्चा हम कर चुके हैं, इससे सतनामियों की स्थिति का प्रमाण मिलता है।

अन्ततः कहना न होगा कि अकबर के पश्चात् मुग़लों की धार्मिक नीति में परिवर्तन आ गया, जिसका फल राज्यवंश को भी कम न भोगना पड़ा।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद (१० ई)

मुग़लकालीन समाज

मुग़लकालीन समाज आज से बहुत भिन्न था। उस समय, यह ठीक है कि आज की भाँति वैज्ञानिक साधन समुन्नत न थे, पर वैभव की कमी न थी। उस समय आज की भाँति रेडियो और टेलीविज़न समाज के पास न थे, पर संगीत और नृत्य की कमी न थी। आज की ही भाँति समाज के निम्न तथा उच्चस्तर में आकाश-पाताल का अन्तर था, पर आज की भाँति कहीं जन-जागरण न था। यदि कभी कष्ट कंटकों से निकलने की चेष्टा की गयी तो इने-गिने व्यक्तियों द्वारा, न कि जनसाधारण द्वारा। उस समय हिन्दू हो या मुसलमान; एक शासित था दूसरा शासक। फिर इस समाज में हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, बौद्ध आदि विभिन्न मतावलम्बी थे। केवल हिन्दुओं में अनेक विभाग थे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा इन सबके भी अनेक उप-विभाग थे। उच्च जातियों के प्रमुख व्यक्ति उच्च-उच्च पदों पर आसीन थे। ब्राह्मण बहुधा अध्यापन या पौरोहित्य कार्य करते थे। क्षत्रिय युद्ध-भूमि को ही सब कुछ समझते थे, पर क्षत्रियों में वैमनस्य की जड़ कठोर हो गयी थी। कुछ तो शासकों का साथ देने लगे थे, कुछ अभी भी सर उठाये थे। क्षत्रियों के साधारण जनसमाज में अपनी मर्यादा पर मिटने की बलवती आकांक्षा रहती थी, जो यदा कदा उन्हें रण-भूमि में मर कटने को वाध्य करती थी। उनकी रमणियाँ तो हज़ारों की संख्या में सदा ज्वालाओं का आलिंगन करती रहीं। राजपूत समाज ने अपने रक्त की शुद्धता बनाये रखने का भरसक प्रयत्न किया; पर यह कहाँ तक सम्भव था यह तो पीछे का इतिहास बता चुका है। इस युग में मन्त्रित्व ब्राह्मणों के हाथ रहा। वे ही समाज के पथ-प्रदर्शक रहे। इनकी रूढ़िवादिता ने कहीं कहीं समाज के लिए दुर्गम पथ भी खड़ा कर दिया। व्यापक दृष्टि से देखा जाय तो इस समाज में गतिशीलता न थी, इसने योरुप की भाँति सार्वभौमिकता न सीखी। यह अपनी प्राचीन संस्कृति की सुरक्षा भी न कर पायी। इस समय भी वैश्य जाति अपने पूर्व से संचालित व्यापार व कृषि कार्य में संलग्न थी। इस जाति को परिश्रम के उपरांत भी

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कभी सुख शांति से खाने को न मिला। जिसने चाहा इससे धन ऐंठा और यह सदा संचय ही करती रही। इस युग में धर्म परिवर्तन के कारण समाज में उथल-पुथल रहती थी। अधिकांश निर्धन और निम्नवर्ग के लोग इसके शिकार हुए। इन अनेक परिस्थितियों के कारण, कुछ खान-पान की रूढ़िता पर चलने न चलने के कारण समाज में जातियों की उपजातियाँ बनना प्रारम्भ हो गयीं। मुसलमान स्पष्ट रूप से दो भागों में बँटे थे। एक तो वे जो सीधे अरब अथवा फारस से आये थे, दूसरे वे जो यहाँ के पूर्व आये मुसलमानों की सन्तान अथवा तत्कालीन धर्म-परिवर्तन के शिकार थे। इनमें भारतीय मुसलमानों की संख्या अधिक थी। विदेश से आये हुए मुसलमान या तो राजधानी के समीप या समुद्र तट के समीप अधिक बसे थे, क्योंकि या तो ये राजकीय सेवा में लगे थे अथवा व्यापार में लगे थे। इनमें विदेशों से सीधे आये हुए मुसलमान ही अधिक प्रतिष्ठित गिने जाते थे। इनमें रक्त की शुद्धता तथा पदों की उच्चता थी। देशी मुसलमान धीरे धीरे अपने धार्मिक मतभेदों के कारण और भी बँट गये थे, उनमें तुर्क, अफ़ग़ान, मुग़ल, पठान, शिया, सुन्नी अनेक भेद-प्रभेद हो गये थे।

इसके अतिरिक्त मुग़लों के समय तक देश का समुद्री द्वार खुल चुका था। पुर्तगाली, डच, फ्रेंच, अँग्रेज, यहूदी, सभी देश में आ चुके थे। पुर्तगालियों ने तो व्यापार के साथ धर्म की दुहाई देना तथा परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध करना प्रारम्भ कर दिया था। अंग्रेज भी इसे अपनी भूमि वनाना चाहते थे। इन योरुपीय जातियों ने अपने प्राधान्य को जमाने के लिए धीरे-धीरे समाज, धर्म तथा सभी में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था।

इस समय का समस्त समाज आर्थिक दृष्टि से तीन वर्गों में बटा था १. सामंत (धनिक समाज) २. मध्यम वर्ग, ३. निम्न वर्ग।

(१) **सामंत वर्ग**--इस वर्ग में राजवंश, धनिक तथा अन्य उच्च वर्ग के लोग थे। इनके पास धन सम्पत्ति की कमी न थी। ये कार्यक्षत्र में आगे रहते थे, साथ ही वैभव में भी आगे थे। इनको विलासिता में डूबते भी देर न लगती थी।

मोरलैंड के अनुसार एक हज़ारी मंसवदार अपने सैनिकों आदि का व्ययभार निकाल कर पाँच हज़ार हर माह बचा लेता था और पाँच हज़ारी मंसबदार लगभग अठारह हज़ार। चूंकि मुग़लकाल में अमीरों की सम्पत्ति उनके मरने पर उनके उत्तराधिकारियों की न होकर राज्य की हो जाती थी, अतः बहुधा अमीर अपना धन अपने जीवन-काल में ही व्यय कर डालते थे। उनके अन्तःपुर राजाओं की भाँति रमणियों से भरे रहते थे। उनके यहाँ

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

खान पान, नाच रंग, मद्यपान सभी कुछ स्वतंत्रता से होता था। इनकी वेश-भूषा भी विशेष थी। उनमें विशेष रूप से कढ़ाव और बनाव चुनाव रहता था। उनके सिर पर पगड़ी, शरीर में बड़े घेर की अचकन तथा अधोभाग में चूड़ीदार पायजामा, वस्त्रों में विशेष थे। उनका शिष्टाचार भारतीय तथा ईरानी पद्धतियों का सम्मिश्रण था। वे निम्नवर्ग से काम लेना जानते थे, निम्नवर्ग भी उनकी सेवा करने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझता था। इनके मकान भी बड़े भव्य होते थे। इनमें सजावट तथा सुविधा का पूरा ध्यान रखा जाता था। विवाहादि अवसरों पर अपार धनराशि व्यय की जाती थी। कुछ अमीर ऐसे दानशील तथा कलाप्रेमी होते थे कि जिनके यहाँ अनेक कवि, संगीतज्ञ तथा कलाकार उपस्थित रहते थे। निःसन्देह कला तथा कारीगरी को इस वर्ग ने बहुत प्रोत्साहन दिया। पर धीरे-धीरे इस प्रवृत्ति ने इन्हें कठिन कार्य करने से रोक दिया। ये कोमल भावनाओं के चक्कर में पड़कर वीरता के कृत्य विस्मरण करने लगे तथा परस्पर ईर्ष्याद्वेष के आगार बन गयें।

मध्यमवर्ग—समाज का मध्यम वर्ग बहुत बड़ा न था। इसमें विद्वान, वैद्य, हकीम, राजकर्मचारी, तथा कुछ व्यापारी वर्ग को समिलित किया जा सकता है। इसके पण्डित या मौलवी वर्ग का तो जनता पर विशेष प्रभाव था। व्यापारी प्रायः आय के अनुसार अधिक धनी था। यह वर्ग अपनी मित-व्ययता तथा मानमर्यादा के लिए प्रसिद्ध था। राजकर्मचारी अपने को संयमित और शांत रखते थे। उन्हें राजाज्ञा के बाहर चलने का साहस न था न वे राजाओं अथवा अमीरों से अधिक अच्छा खा, पी या पहन ही सकते थे। इस प्रकार मध्यमवर्ग निम्नवर्ग तथा उच्चवर्ग के बीच की एक कड़ी था। मुग़ल काल में यदा कदा यह भी सम्भव था कि आज जो मध्यम में है, कल वह उच्च में पहुँच जाये अथवा किसी दिन निम्न में उतर जाय।

निम्नवर्ग — निम्नवर्ग के अन्तर्गत श्रमजीवी, कृषक समाज, शिल्पी आदि आते हैं। इस वर्ग का जीवन कठिन और असन्तोष से भरा था। इस वर्ग के लिए भोजन की कमी तो न थी, पर अन्य वर्गों की भाँति वस्त्र, आदि उपयोगी सामग्री न प्राप्त थी। उसे न्याय की आशा तो रहती थी, पर यदा कदा वह उससे वंचित भी हो जाता था। वह अथक परिश्रम के उपरान्त अपने भोजन की व्यवस्था कर पाता था। उसको आज्ञा देने वाले सभी थे, वह किसी को नहीं। आज की भाँति वह कोई संघ न बनाता था। वह किसी आन्दोलन में भी भाग न लेता था। राजनीति से मानो उसे कोई

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

प्रयोजन न था। अकबर ने कृषकों के सुख की चिन्ता की थी। उसने उनकी भूमि की नाप आदि कराके मालगुजारी निश्चित करा दी थी, पर शाहजहाँ के काल में उनको फिर भी खूब दुहा गया। प्रान्तीय सूबेदार तथा अधिकारी अपना स्वत्व केन्द्र से कम न समझते थे। वे सदा मनचाही किया करते थे। उनके विपरीत आवाज उठाना मृत्यु की ओर ताकना था। श्रमिकों के लिए विदेशी यात्री फ्रांसिस्को पल्सेअर्त ने कहा है कि जहाँगीर के राज्य काल में उनकी दशा गुलामों से भिन्न न थी। उन्हें वेतन कम मिलता था, उनसे बेगार ली जाती थी। उनको अपनी इच्छा के अनुसार वेतन के निश्चय करने का अधिकार न था। वे राज-कर्मचारियों से कम मूल्य पाकर भी भय के कारण कुछ कहते न थे।

स्त्रियों की दशा — मुग़ल काल में बाल विवाह का प्रचलन था। दहेज की प्रथा बड़े ज़ोर से चलती थी। इस विषय में भी अकबर ने कुछ सुधार करना चाहा था, पर उसे कोई सफलता न मिली थी। विधवा विवाह को अच्छी दृष्टि से न देखा जाता था। सती प्रथा विद्यमान थी। पर्दे की प्रथा का प्रचार था। स्त्रियों को विशेष स्वातन्त्र्य न था। उनके बाहर निकलने का अर्थ समाज में बुरा समझा जाता था। उनके पीछे परस्पर कलह भी कम न हुए। अन्तर्विवाह भी हुए, उनका अपहरण भी, पर ये समाज की दृष्टि में महत्त्वहीन थे। इन बातों का समाज में आदर न था। पीछे संकेत किया जा चुका है कि सम्राट व उनके अमीर मनचाही संख्या में पत्नियाँ रखते थे। सामान्य समाज की एक बात निश्चित थी कि साधारण पुरुष अपनी पत्नी से ही अनुरक्त रहता था और पत्नी भी अपने पति की स्वामी-भाव से सदा सेवा करती थी।

सामाजिक रूढ़ियाँ — हिन्दू मुसलमान दोनों फलित ज्योतिष में विश्वास रखते थे। प्रत्येक कार्य के आरम्भ के पहले शकुन का विचार किया जाता था। भूत प्रेत आदि में भी बहुत विश्वास था। साधु-सन्तों की पूजा, कब्रों तथा स्मारकों की पूजा प्रचलित थी। शिया तथा सुन्नी मतभेद ऐसा था कि एक दूसरे को काफिर समझते थे। बड़े-बड़े नगरों में तो दासों का क्रय-विक्रय भी सम्भव था। हिन्दू मुसलमान दोनों अपने-अपने उत्सव ज़ोरों से मनाते थे। सामान्य हिन्दू समाज की नैतिक अवस्था उन्नत थी। वैवाहिक जीवन सुखी था। इस रूप में कहीं अनैतिकता न थी।

शिक्षा — यद्यपि सभी मुग़ल सम्राट विद्या प्रेमी थे, पर प्रजा की शिक्षा का भार उन्होंने न सँभाल पाया। अतः शिक्षा अपने स्वरूप को संयमित

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

और केन्द्रित न कर सकी। वैसे हिन्दुओं के बच्चों के लिए पाठशाले थे, तथा मुसलमानों के लिए मकतब। इनमें से कुछ संस्थाओं को सम्राट की ओर से आर्थिक सहायता मिलती थी। मकतबों की शिक्षा का माध्यम अरबी था। क्योंकि धर्म ग्रंथ तथा विज्ञान की पुस्तकें इसी भाषा में उपलब्ध थीं। पाठशालाओं में संस्कृत की शिक्षा होती थी, और ये पाठशाले या तो गुरु के गृह से सम्बद्ध रहते थे अथवा किसी देव स्थान से। पर्दाप्रथा के कारण स्त्री शिक्षा व्यापकता से न थी। पर राज-घराने की स्त्रियों की शिक्षा का समुचित प्रवन्ध रहता था। मुसलमानों में विशेषकर शिक्षा के लिए ईरान निवासी स्त्रियाँ रहती थीं, जो फारसी का अध्ययन अच्छा करा देती थीं। इस प्रकार की महिलाओं में बाबर की पुत्री **गुल बदन-बेगम** और नूरजहाँ के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार हुमायूँ की भतीजी सलीमा सुल्ताना, जहाँगीर की पत्नी नूरजहाँ, शाहजहाँ की पत्नी मुमताज-महल तथा पुत्रियाँ रोशनारा जहाँनारा सभी पढ़ी लिखी स्त्रियाँ थी। औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा का तो अरबी और फारसी पर अच्छा अधिकार था। जेबुन्निसा सुन्दर लेख के लिए भी प्रसिद्ध थी।

इस समय की शिक्षा प्रदान करने में मुग़लों का उद्देश्य धार्मिक अधिक था। वे पुण्य कमाने के लिए शिक्षा का प्रबन्ध करते थे, न कि जन-साधारण के स्तर को समुन्नत करने के लिए। वस्तुतः जनता अपने बच्चों की शिक्षा का ध्यान स्वयं रखती थी और वह उनकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध कर लेती थी। हिन्दू बालक ५ वर्ष की आयु में विद्यालय में प्रवेश करता था, जब कि मुसलमान बालक ४ वर्ष, ४ महीने तथा ४ दिन का होने पर मकतब में भेजा जाता था। मुसलमान बच्चे के लिए तो कुरान रटना ही अनिवार्य था पर हिन्दू बच्चों के लिए रामायण-महाभारत का अध्ययन होता था। हर ग्राम तथा नगर में मकतब और पाठशाले थे। इसकी पुष्टि यूरोपीय यात्रियों के वर्णनों से होती है। इन पाठशालाओं तथा मकतबों में सुलेख और गणित पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इन विद्यालयों में शिक्षा निःशुल्क थी। शिष्य वर्ग तथा उनके अभिभावक गुरु का बहुत सम्मान करते थे, उनकी आर्थिक सहायता करते थे। इस काल में कुछ उच्च कोटि के विद्यापीठ भी थे, जैसे काशी तथा नदिया में। वर्नियर लिखता है। **"बनारस विश्वविद्यालय के समान है, किन्तु वह तत्कालीन योरोपीय विश्वविद्यालय के समान नहीं है जिनमें नियमित कक्षाएँ होती हैं।"**† इनके अतिरिक्त मिथिला, तिरहुत, मथुरा, प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन, अयोध्या आदि

† Bernier's Travels p. 341.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

हिन्दू शिक्षा के बड़े-बड़े केन्द्र थे। मुस्लिम शिक्षा के केन्द्र दिल्ली, आगरा, फतेहपुर सीकरी और लाहौर आदि थे। इनके अतिरिक्त जौनपुर, स्यालकोट, अम्बाला, थानेश्वर, बीजापुर, आदि विद्वानों के बड़े आश्रय थे।

बाबर के मंत्री सय्यद मकबर अली की तवारीख से विदित होता है कि सार्वजनिक निर्माण विभाग (शुहरत-ए-आम) का कार्य स्कूल तथा कालिज बनवाना था। हुमायूँ यद्यपि अफीम का आदी था पर अध्ययन से विशेष अभिरुचि रखता था। उसे भूगोल और ज्योतिष प्रिय थे। वह अपने साथ कुछ पुस्तकें अवश्य ले चलता था। उसने दिल्ली में एक मदरसा बनवाया था, और पुराने किले में शेरशाह के बनाये हुए मनोरम भवन (Pleasure house) को उसने पुस्तकालय में बदल दिया था। अकबर ने फतेहपुर सीकरी आगरा, आदि स्थानों में मकतब बनवाये थे। अपने शासन के उत्तर काल में उसने मदरसों में हिन्दुओं की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया था। जहाँगीर तुर्की तथा फारसी का विद्वान था। उसने एक फरमान निकाला था कि यदि कोई यात्री या धनी आदमी बिना बारिस के मर जाता है, तो उसकी सम्पत्ति सम्राट की होगी, जिससे मदरसों तथा मठों की मरम्मत होगी अथवा उनका निर्माण होगा। तारीख-ए-जान-जहाँ से विदित होता है कि जहाँगीर ने गद्दी पर बैठते ही उन मदरसों का पुनरुद्धार किया जिनमें पशु पक्षी निवास करने लगे थे। शाहजहाँ भी अध्ययन में व्यस्त रहता था। वह रात्रि के निश्चित समय में अध्ययन करता था। वह तुर्की अच्छी जानता था। उसने पठन-पाठन के लिए अनेक छात्र-वृत्तियाँ दी थीं। उसने दिल्ली में एक कालिज की नींव डाली थी, साथ ही दारुल वका (शाश्वत शान्ति स्थल) का जीर्णोद्धार कराया था। उसका पुत्र दारा अरबी, फारसी और संस्कृत का विद्वान था। वह स्वयं लेखक भी था। उसने उपनिषदों, भगवद्गीता, योग वाशिष्ठ्य तथा रामायण का फारसी में अनुवाद कराया था। उसने कई पुस्तकें सूफी धर्म पर लिखी थीं। सर विलियम स्लीमैंन का कहना है कि औरंगजेब के स्थान पर यदि वह गद्दी पर बैठता तो शिक्षा की दशा बहुत कुछ भिन्न होती। औरंगजेब तो कुरान के अतिरिक्त और कुछ न सोच सका।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद (१० फ)

मुग़लकालीन आर्थिक व्यवस्था

मुग़लकालीन आर्थिक व्यवस्था का ज्ञान हमें अनेक सूत्रों से प्राप्त होता है। यथा—बाबर की आत्म कथा, गुलबदन बेगम का हुमायूँ नामा, शेरशाह का प्रबन्ध, टोडरमल का प्रबन्ध, अबुल-फजल द्वारा लिखित आईन-इ-अकबरी, तथा योरुपीय यात्रियों के विवरण। इनमें सबसे अधिक विस्तृत वृत्त आईन अकबरी का है। बाबर की आत्म-कथा तथा हुमायूँ-नामा को इतिहासकार बहुत श्रेय नहीं देते।

नगर—इस युग में अमीर, सामंत तथा अन्य उच्च वर्ग के लोग गाँवों में रहना पसन्द न करते थे। उनको अपनी विलासिता की सामग्री नगरों में अधिक सुविधा से प्राप्त हो जाती थी। अतः इस युग में नगरों की वृद्धि हुई। बड़े बड़े नगरों की ख्याति संसार में दूर दूर तक फैली थी। लाहौर और आगरा दोनों समृद्ध नगर थे। अकबर के राज्य-काल में फिच नाम के एक योरुपीय यात्री ने लिखा है।

"आगरा तथा फतेहपुर दो बहुत बड़े नगर हैं। प्रत्येक विशालता और जनसंख्या के विचार से लंदन से भी बहुत बड़ा है। इन दोनों के बीच बारह मील की दूरी है, पर सड़क के दोनों ओर बहुत सी दूकानें हैं। सड़क पर चलते हुए रास्ते में इतने मनुष्य मिलते हैं कि मानों बाज़ार में चल रहे हैं। †

इसी प्रकार टैरी ने पंजाब के लिए लिखा है,

"यह प्रान्त बहुत बड़ा और उपजाऊ है। लाहौर इसका प्रमुख नगर है। वह बहुत बड़ा है, तथा जन संख्या और धन-धान्य के अनुसार बहुत ही समृद्ध है।"

भारत में इस प्रकार के अन्य नगर भी थे। यथा—बुरहानपुर, अहमदाबाद, बनारस, पटना, ढाका, चटगाँव। **बाबर से जहाँगीर तक के सम्राटों ने आगरा में अपनी राजधानी रखी,** पर शाहजहाँ उसे दिल्ली ले गया। जहाँ **राजधानी होती है, वह नगर तो स्वभावतः ही बढ़ जाता है।**

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

यातायात--यातायात के लिए मुग़ल युग में सड़कों तथा नदियों से काम लिया जाता था। सभी प्रमुख नगर सड़कों से जुड़े थे। सड़कों पर सुरक्षा का प्रबंध था, साथ ही पेड़, सराएँ, कुएँ आदि सभी सुविधा की चीजें उन पर थीं। मुग़ल युग का सूरत प्रमुख बन्दरगाह था। इसे देश के भीतर अहमदाबाद तथा आगरा से जोड़ दिया गया था। सड़कों की कमी तथा अन्य यातायात के साधनों की कमी होने के कारण नदियों की बड़ी उपयोगिता थी। भारत के अधिकांश बड़े २ नगर इसीलिए नदी के किनारे बसे हैं।

कृषि--वैसे तो भारत एक कृषि प्रधान देश है, पर मुग़लों के प्रारंभिक काल में राज्य संस्थापन काल रहा। युद्ध और राजनीति से सम्राटों को अवकाश ही न मिला, पर अकबर ने इस पर पूरा २ ध्यान दिया। उसके पूर्व अफ़ग़ान शासक शेरशाह ने भी इस ओर सराहनीय कार्य किया था। इन दो सम्राटों के प्रयत्नों के फलस्वरूप किसानों की दशा सुधर गयी। गेहूँ, चावल, गन्ना, नील, तिलहन, ज्वार बाजरा, मक्का, कपास खेती की प्रमुख चीजें थीं। बंगाल चावल के लिए, पंजाब गेहूँ के लिए तथा मध्यप्रदेश नील के लिए सदा से प्रसिद्ध रहे हैं। कपास भी अपने देश की एक प्रमुख उपज है। सत्रहवीं शताब्दी में तम्बाकू भी भारत आ चुकी थी। इसकी खेती भी प्रारम्भ हो गयी थी। यह भारत को पुर्तगाल की देन है। उत्तर कालीन समय में कृषि की दशा अच्छी न रही। इसके लिए कुछ तो सम्राटों की नीति तथा कुछ उनके युद्ध उत्तरदायी थे। औरंगज़ेब ने अपनी सूबेदारी के काल में दक्षिण की दशा बहुत कुछ सुधार दी थी, पर वही औरंगज़ेब अपने शासनकाल में उसे ठीक न रख सका।

दुर्भिक्ष—मुग़ल काल में आज की भांति यातायात साधनों की सुविधा न थी, अतः दुर्भिक्ष आदि का प्रभाव बहुत ही भयानक होता था। अकबर तथा शाहजहाँ दोनों के शासनकालों में दुर्भिक्ष पड़े, दोनों सम्राटों ने प्रजा के कष्ट को कम करने का प्रयत्न किया, पर उससे कोई विशेष अन्तर न पड़ा।

उद्योग-धंधे--इस काल में औद्योगिक दृष्टि से भारत बहुत समुन्नत था। संसार में इसकी चर्चा थी। इस देश के सूती व रेशमी वस्त्रों की विदेशों में बड़ी मांग थी। इस समय तक योरुपीय देशों की औद्योगिक क्रान्ति न हुई थी, अतः ये भी अनेक वस्तुओं के लिए भारत पर ही निर्भर थे। वर्नियर ने बंगाल के वस्त्र-निर्माण की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि बंगाल में सूती और रेशमी कपड़े इतनी अधिक मात्रा में बनते हैं, कि उस सूबे को न केवल मुग़ल साम्राज्य का ही बल्कि समस्त पड़ोसी देशों के लिए वस्त्रों का भाण्डार

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

समझना चाहिये। टैवर्नियर के आधार पर बताया जाता है कि केवल बंगाल में पच्चीस लाख पौंड वजन का रेशम तैयार होता है। इसके अतिरिक्त भारत में वस्त्रों की छपाई का कार्य भी विशेष सराहनीय रहा है। नूरजहाँ आदि रमणियाँ मुग़ल काल में नित्य नये फैशन निकालती थीं। अमीर, उमरा भी कढ़े हुए ही कपड़े पहनते थे। सूती और रेशमी की अपेक्षा ऊनी वस्त्र कम बनते थे, पर अकबर ने कम्बल और गलीचों के निर्माण को बहुत प्रोत्साहन दिया।

भारत का दूसरा उद्योग पोतनिर्माण था। मुग़ल काल में जहाजों और नौकाओं का निर्माण बहुतायत से हुआ, क्योंकि इनके बग़ैर न तो युद्ध में नदियों को पार किया जा सकता था और न यहाँ से विदेश में व्यापार ही सम्भव था। अनेक यात्री प्रतिवर्ष मक्का और मदीना जाया करते थे। इसके विपरीत अराकान तट पर जल डकैतों से रक्षा के लिए नौकाओं की आवश्यकता थी। अतः इस उद्योग की दिन प्रतिदिन उन्नति होती रही, पर इस ओर भारतीय पोत निर्माण योरुपीय पोत निर्माण से अधिक न था।

भारत में तीसरा प्रमुख उद्योग **शोरे** का था। मुग़लों ने आग्नेय अस्त्रों का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया उनको इसकी बड़ी आवश्यकता हुई। हस्त कौशल में यहाँ हाथी दाँत तथा लकड़ी का काम बहुत होता था। साथ ही अनेक प्रकार के आभूषण बनते थे। मुग़ल सम्राट तथा तत्कालीन अमीर विलास प्रिय रहे, अतः अनेक विलास प्रियता की वस्तुएँ बनती थीं। ढाके तथा सुनार गाँव में मलमल का भारी केन्द्र था।

व्यापार—मुग़ल युग में भारत का पश्चिमी देशों से व्यापार स्थल तथा जल दोनों ही मार्गों से हुआ करता था। स्थल मार्गों में एक प्रमुख मार्ग लाहौर से पेशावर होकर काबुल की ओर जाता था तथा दूसरा मार्ग मुल्तान होकर कन्धार जाता था। कन्धार उस समय व्यापार का एक भारी केन्द्र था। जल मार्गों के लिए हमारे कुछ प्रमुख बन्दरगाह थे। यथा—सिन्ध में लाहौरी बन्दर, गुजरात में सूरत तथा भड़ोच, बंगाल में सोनारगाँव, चटगाँव और गोलकुंडा में मछलीपटम थे। इनके अतिरिक्त कालीकट, कोचीन, बम्बई, पश्चिमी तट पर और मद्रास, पांडचेरी, पुलीकट, तथा नेगापट्टम पूर्वी तट पर विदेशी व्यापार के बन्दर थे।

विदेशी लोग भारत से रेशमी व सूती कपड़े, मसाले, नील, अफीम, शोरा तथा औषधियाँ ले जाते थे। वे बाहर से सोना चाँदी, हाथीदाँत, घोड़े, मूंगे, जवाहरात आदि लाते थे। व्यापार का नियंत्रण चुंगी आदि से होता

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

था। मुग़लों की नीति थी कि यथा सम्भव भारत का सोना चाँदी बाहर न जाय। सत्रहवीं शताब्दी में विदेशियों की कोठियां भारत में बनने लगी थीं. तथा भारत का आन्तरिक और बाहरी व्यापार खूब ज़ोरों से चलता था। इस विदेशी व्यापार मण्डल ने ही भारत की सत्ता धीरे-धीरे बदल दी थी, जो आज पुनः अपने स्थान पर है।

मुद्रापद्धति—इस समय तक मुद्रा पद्धति भारत के लिए कोई नयी चीज़ तो न रह गयी थी। मुग़लों के पहले शेरशाह ने भी मुद्रा प्रणाली में सुधार किये थे। मुग़लों में अकबर तथा जहाँगीर ने मुद्रापद्धति में कलात्मकता उत्पन्न कर दी। अभी भी मुग़ल युग के अनेक सिक्के अजायबघरों में सुरक्षित हैं। अकबर के सिक्के सोने चाँदी व तांबे तीनों के थे। उन पर एक ओर इस्लाम का कलमा लिखा होता था, अथवा अकबर का अपना वाक्य। एक सिक्के में कलमे के स्थान पर **अल्लाह उ-अकबर जल्ल** ए-जलालहु, तथा दूसरी ओर उसी पर **जर्बे आगरा अमरदाद इलाही ५०** अंकित है। अकबर ने अपनी हिन्दू प्रजा का ध्यान रख कर एक चाँदी के सिक्के पर **धनुर्धारी राम तथा सीता** की प्रतिमाएँ, तथा देवनागरी में **राम सिय** अंकित कराया है।

जहाँगीर अकबर से भी अधिक कलाप्रिय था। उसके सिक्कों पर कलमा का प्रयोग तथा खलीफा का नाम तक मिलता है। उसके कई सिक्कों पर हिन्दू राशि के चिह्न हैं। एक सिक्के पर जहाँगीर स्वयं हाथ में प्याला लिये पद्मासन लगाये बैठा है। यह सिक्का अजमेर की टकसाल का है। कुछ सिक्कों पर उसने नूरजहाँ का नाम तथा ललित वाक्य भी मुद्रित कराये थे। यथा १०३६ हिजरी के सूरत की टकसाल के सिक्के पर इस प्रकार का अंकन है।

चित्त भाग — **जी हुक्म-इ-शाह-जहाँगीर याफ्त सद्‌जेवर।**

पट भाग — **बनाम-इ-नूरजहाँ बादशाह बेगम जर।**

जहाँगीर के उपरांत शाहजहाँ ने कुछ मुद्राएँ जिन्हें **निसार** कहते हैं दान व उपहार आदि के लिए बनवायी थीं।

चित्त भाग — **निसार-इ-साहिब-इ-किरानसानी।**

पट भाग — **जर्बे दारूल खिलाफत शाहजहाँ नाबाद १०६९।**

यह सिक्का दिल्ली की एक टकसाल का है। मुगल युग में कई स्थानों पर टकसालें थीं। यथा — दिल्ली, लाहौर, जौनपुर, अहमदाबाद, आगरा, पटना। ये धातु की शुद्धता, नाम तथा आकार का विशेष ध्यान रखती थीं।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

अकबर के **सिक्कों में दाम** और **रुपया** अधिक लोक प्रिय रहे, आईन-इ-अकबरी में यद्यपि वेतन क्रम तथा वस्तुओं की दर दामों में दी गयी है। दाम एक ताँबे का भारी सिक्का था, जबकि रुपया चाँदी का था। स्वर्ण के सिक्के को मोहर कहते थे। ४० दाम का एक रुपया तथा १० रुपये की एक मोहर होती थी। मोहरें दो प्रकार की थीं, गोल व चौकोर। गोल को इलाही और चौकोर को जलाली कहते थे। दाम से भी छोटा सिक्का जीतल था। यह मूल्य के हिसाब से दाम का २५वाँ हिस्सा था। तौल माप के लिए आज की भाँति रत्ती, माशा, तोला, सेर और मन का प्रचलन था, पर एक मन में २७ सेर ही होते थे। उस समय के मूल्य आज़ के अनुपात में सस्ते कहे जायेंगे। उदाहरणार्थ --

१२	दाम	का	१	मन	गेहूँ
८	,,	,,	१	,,	चना
२०	,,	,,	१	,,	मोटा चावल
१०५	,,	,,	१	,,	घी
२५	,,	,,	१	,,	दूध
१२८	,,	की	१	,,	चीनी,

इसी प्रकार साधारण श्रमिक का वेतन २ दाम, तथा राज को ७ दाम मिलता था। इससे स्पष्ट है कि उस समय साधारण से साधारण स्थिति का मनुष्य भूखा न रह सकता था। पर यह स्थिति औरंगज़ेब के काल में गिर गयी थी, बल्कि उस समय से फिर वह गिरती ही गयी। श्री यदुनाथ सरकार के अनुसार भी भारत की आर्थिक दरिद्रता औरंगज़ेब के समय प्रारम्भ हो गयी थी।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

परिच्छेद—११

अन्तिम मुग़ल सम्राट

औरंगज़ेब के पश्चात् मुग़ल साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा। उसके उत्तराधिकारी दुर्बल सिद्ध हुए। समय ने भी उनका साथ न दिया। अतः इतिहास का घटना चक्र बहुत शीघ्र बदल गया।

बहादुरशाह अथवा शाह आलम प्रथम (१७०७-१७१२ ई०)

औरंगज़ेब ने अपने साम्राज्य को शेष तीन पुत्रों में बाँटने की वसीयत की थी क्योंकि चौथा अकबर देश के बाहर जा चुका था और पाँचवाँ मुहम्मद सुल्तान १६७६ ई० में ही मर चुका था। इस वसीयत का सम्मान किसी ने न किया, भाइयों में परस्पर कलह हुआ। ये भाई मुअज्ज़म, आज़म और कामबख्श थे। **मुअज्ज़म** औरंगज़ेब का सबसे बड़ा पुत्र था। वह काबुल और पंजाब का शासक था। दूसरा पुत्र **मुहम्मद आज़म** मालवा और गुजरात का शासक था। तीसरा कामबख्श दक्षिण में राज्य करता था। ६३ वर्ष का राजकुमार मुअज्ज़म जिस समय अफ़ग़ानिस्तान में जमरूद नामक स्थान पर था, उसने पिता की मृत्यु का समाचार सुना। वह शीघ्र ही वहाँ से दिल्ली के लिए रवाना हो गया। लाहौर के समीप आकर उसने अपने को बहादुरशाह के नाम से सम्राट घोषित कर दिया। इस समय उसका सबसे बड़ा सहायक उसका साथी मुनीम खां था। इसके अतिरिक्त उसका पुत्र अज़ीम भी दक्षिण की ओर से लौट आया था। उसने पहले ही आकर आगरा का घेरा डाल दिया था। १२ जून को मुअज्ज़म ने स्वयं आगरा दुर्ग पर जाकर अधिकार किया और २४ करोड़ के कोष का स्वामी बना। उसने बहादुरशाह की उपाधि धारण की।

आज़म पिता की मृत्यु के समय अहमदनगर के समीप था। वह भी वहाँ से राज्य के लोभ से आगरा के लिए चल पड़ा। उसने भी अपने को सम्राट घोषित किया, तथा अपने सिक्के चलाने लगा। आगरा के समीप आने पर उसे विदित हुआ कि शाही कोष पर तो बहादुरशाह जम चुका। वह फिर भी हताश न हुआ। बहादुरशाह ने उससे राज्य का बटवारा करने का अनुरोध किया, पर उसने एक न सुनी। आखिर दोनों में सामूगढ़ के निकट युद्ध हुआ। युद्ध में आज़म अपने पुत्रों सहित मारा गया। (१८ जून १७०७ ई०)

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

कामबख्श बीजापुर का सूबेदार था। उसने भी अपनी भाग्यरेखा की परीक्षा करनी चाही। जैसे ही उसने पिता की मृत्यु का समाचार सुना, वह भी राज्य पाने की तैयारी करने लगा। बहादुरशाह ने नर्मदा पार जाकर उससे समझौता करना चाहा, पर वह हठी था। उसने बहादुरशाह की बातों पर ध्यान न दिया। आखिर हैदराबाद के समीप दोनों का युद्ध हुआ जिसमें कामबख्श बुरी तरह घायल हुआ और शीघ्र ही चल बसा। अतः बहादुरशाह साम्राज्य का निष्कंटक स्वामी बन गया।

बहादुरशाह सचमुच नम्र, शान्त और क्षमाशील था। सरकार के अनुसार **"बहादुरशाह का स्वभाव शान्त था, उसमें सद्व्यवहार की प्रतिष्ठा तथा असीम उदारता थी। वह विद्वान तथा धार्मिक था। उसमें धार्मिक अन्धापन न था, वह संयुत बुद्धि था। वह जरा भी महत्वाकांक्षी न था, जिसके कारण उसके प्रतिद्वन्द्वी आजम ने उसे भीरु कहा है। किसी से इनकार करना तो उसने सीखा ही न था। उसकी सबसे बड़ी नीति हर चीज को यथावत् चलने देने की थी, वह तो प्रत्येक को प्रसन्न करके क्षणिक शान्ति चाहता था, कभी किसी समस्या का सामना ही न करता था, न वह कभी किसी आने वाली आपत्ति को ही साहस के साथ समझता, सोचता था।**†

बहादुर शाह के शासन काल में दरबार में तीन दल बन गये। तूरानी, फारसी तथा भारतीय। बहादुरशाह ने अपने परम सहायक मुनीम खाँ को प्रधान मंत्री बनाने का वचन दिया था, पर औरंगजेब का प्रधान मंत्री इस पद को न छोड़ना चाहता था, अतः बहादुरशाह ने उसे ही प्रधान मंत्री रखकर मुनीम खां को राजस्व मंत्री बनाया। इस तरह से बहादुरशाह ने दोनों दल प्रसन्न करने चाहे पर एक भी प्रसन्न न रहा।

---

† "Bahadur Shah had a mild and calm temper, a great dignity of behaviour and excessive and inconsiderate generosity of disposition. He was learned and pious, without any bigotry and possessed of a power of self-control and profound dissimulation which was styled personal cowardice by his rival Azam Shah. He was incapable of saying no to anybody and his only idea of statesmanship was to let matters drift and patch up a temporary peace by humouring everybody without facing issues and saving future trouble by making decisions promptly and courageously.

J. N. Sarkar,

C. H. of India V. IV p. 324.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

बहादुर शाह ने एक कार्य में बड़ी कूटनीति का परिचय दिया। उसने बहुत समय से बन्दी-गृह में पड़े शाहू को मुक्त कर दिया साथ ही उसे ६ प्रान्तों से राजस्व वसूलने का अधिकार दे दिया। इस समय मरहठा राज्य का भार राजाराम की विधवा पत्नी ताराबाई पर था। ताराबाई मुग़लों में पले हुए बच्चे को राज्य का अंश भी देने को प्रस्तुत न थीं। इससे मरहठों में फूट पड़ गयी। वे बहादुरशाह के शासन काल में अपने गृह कलह से ही मुक्त न हो सके। अतः बहादुरशाह को उनसे निश्चिन्तता रही। फिर भी बहादुरशाह को तंग करने को अन्य अनेक तत्व थे। यथा राजपूत और सिख। इस समय जोधपुर में अजीत सिंह अपने को स्वतंत्र घोषित कर चुका था। आमेर में उत्तराधिकार प्रश्न को लेकर संघर्ष चल रहा था। बहादुर-शाह ने आमेर जाकर विजयसिंह को कछवाहा राज्य का उत्तराधिकारी मान लिया। इसके बाद वह जोधपुर गया। उसने मेरठा में अजीत सिंह को हरा कर उसे क्षमा कर दिया। इसके अनन्तर वह कामबख्स से युद्ध करने दक्षिण की ओर चला। राजपूतों ने यह अवसर पाकर पुनः मंत्रणा की और अजीत सिंह, दुर्गा दास तथा जयसिंह सभी अमर सिंह से जा मिले। उन्होंने मिलकर मुग़लों का सामना करने की प्रतिज्ञा की, तथा जोधपुर के मुग़ल किलेदार को निकाल दिया। यही नहीं उन्होंने आमेर भी छीन लिया, और मेवात के सरदार हुसेन खां को स्वर्गधाम पहुँचा दिया। यह सब ज्ञात कर बहादुर शाह दक्षिण से लौटा, पर एक तो वह स्वस्थ न था, दूसरे पंजाब में सिख उपद्रव कर रहे थे अतः उसे राजपूतों से सन्धि करनी पड़ी। फलतः सभी राजपूत राजा अपनी अपनी रियासत के स्वामी बने रहे।

सिखों ने गुरु गोविन्द की मृत्यु के पश्चात् बन्दा बहादुर को अपना नेता चुना। उन्होंने घोषित किया कि गुरु जी पुनः जीवित हो गये हैं। जो हो, सभी सिख बन्दा के साथ हो लिये। उन्होंने उनसे मुसलमानों के विरुद्ध लड़ने को कहा, युद्ध भी किये जिसकी चर्चा की जा चुकी है। सिखों ने सरहिन्द के मुसलमानों का बध किया, यमुना से सतलज तक का भूभाग उनके हाथ आगया। लोहगढ़ के दुर्ग पर घेरा डाला गया, १७१० ई० में उस पर मुग़लों का अधिकार हो गया। पर बन्दा निकल कर पर्वतों की ओर चला गया। सम्राट भी वहाँ से लाहौर गया जहाँ वह १७१२ ई० में परलोक चल बसा।

(२) **जहाँदार शाह (१६१२-१३ ई०)** बहादुरशाह के चार पुत्र थे। जहाँ-दारशाह, अजीम-उश-शान, रफी-उल-शान और जहाँ-शाह। बहादुरशाह प्रथम की मृत्यु के पश्चात् चारों पुत्रों में उत्ताराधिकार के लिए युद्ध हुआ। ये चारों उस समय लाहौर में थे। पहले तो प्रधान मंत्री असद खां के पुत्र जुल्फिकार खां

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ने अजीम-उश-शान के विरुद्ध षड़यन्त्र रचा, और शेष तीन भाइयों में मेल करा दिया। तीनों ने मिलकर अज़ीम-उश-शान पर आक्रमण किया तथा उसे हरा दिया। पर अभी भी तीन शेष थे, अतः पुनः संघर्ष हुआ। इसमें रफी-उश-शान और जहांशाह मारे गये, अतः जहाँदारशाह गद्दी पर बैठा (२९ मार्च १७१२ ई०)। उस समय जहाँदार शाह की आयु ५१ वर्ष की थी। उसने जुल्फिकार को अपना मंत्री बनाया।

जहाँदार शाह मुग़ल वंश का सबसे दुर्बल शासक था। उसने अपना जीवन विलासिता में बिताया, कभी राजकाज से अपना सरोकार ही न रखा। राज्य का भार ऐसे कर्मचारियों पर पड़ गया जो प्रजा के हित की कभी चिन्ता न कर सके। उसके शासन के प्रति खाफी खां ने लिखा है।

"हर ओर विप्लव था। गवैये, गायकों, तथा नृत्यकों और अभिनेताओं सभी के लिए यह आनन्द का अमूल्य अवसर था"†

इसका फल यह हुआ कि अज़ीम-उश-शान के द्वितीय पुत्र फरुखसियर ने उसके विरुद्ध गद्दी का दावा किया। उस समय यह राजकुमार ३० वर्ष का था और बंगाल का सहायक सूबेदार था। उसने अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् ही अपने को सम्राट घोषित कर दिया। उसने पटना के सहायक सूबेदार सैय्यद हुसेन अली खाँ तथा इलाहाबाद के सूबेदार (हसन अली खाँ) अब्दुल्ला खाँ से सहायता की प्रार्थना की। इन सभी की सहायता से उसने जहाँदार के पुत्र पर आक्रमण किया तथा उसे हरा दिया। पुत्र के हारने का समाचार पाकर जहाँदार चिन्तित हुआ और स्वयं आगरा की ओर उसका सामना करने चला। जनवरी १७१३ ई० में वह स्वयं भी हार गया। उसने भागने की चेष्टा की। वह दिल्ली तक लौट कर गया, पर उसके अन्तिम दिन आ गये थे, उसे शरणस्थल में ही (असद खां) वन्दी बना लिया गया। फरुखसियर की आज्ञा से उसे शीघ्र ही स्वर्गधाम का मार्ग दिखाया गया।

(३) फरुखसियर (१७१३–१९ ई०)—जैसा कहा जा चुका है फरुखसियर ने हुसेन अली और हसन अली की सहायता से सिंहासन पाया था। हुसेन अली तथा हसन अली इतिहास में सैय्यद बन्धुओं के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी सहायता के आभार में फरुखसियर ने हसन अली को (जो बाद

* "Violence had full sway. It was a fine time for minstrels and singers and all the tribes of dancers and actors."

Khafi Khan.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

में अब्दुल्ला के नाम से विख्यात हुआ) अपना वजीर बनाया और हुसेन अली को मीरवख्शी (मुख्य सेनानायक) नियुक्त किया। इन पदों के अतिरिक्त इन वन्धुओं ने अपने लिए दो सूबों का शासन, तथा अपने चचा के लिए एक सूबे का शासन प्राप्त किया। ये वन्धु भारतीय मुसलमान थे। अतः इन से ईरानी तथा तूरानी मुसलमान श्रद्धा न करते थे। इस कारण दल-बन्दी प्रारम्भ हो गयी। यह दलबन्दी वस्तुतः औरंगज़ेब के समय से ही प्रारम्भ हो गयी थी। उसको ये निर्बल उत्तराधिकारी कैसे मिटा सकते थे। सैय्यद बन्धुओं की सहानुभूति हिन्दुओं के प्रति भी रहती थी। उन्होंने फरुखसियर से कह कर जजिया हटवा दिया था, जिससे इस दलबन्दी को और भी प्रोत्साहन मिला।

गद्दी पर बैठने के समय फरुखसियर ३० वर्ष का युवक था। **"वह दुर्बल, घृणास्पद और डरपोक शासक था। न उससे किसी भलाई की आशा थी न बुराई की।**† जब उसने अपनी शक्ति संचय की कोशिश की तो एक महान दुःखद काण्ड उपस्थित हो गया, क्योंकि वह सर्वथा विचार-हीन तथा साहस-हीन था। वह कभी एक संकल्प करके उस पर टिक न सका। वह अपने पुराने सलाहकारों को भी भूल जाता था। उसे उन पर भरोसा न रह गया था। कोई भी नया सलाहकार उसे बहका सकता था। वह उन्हीं सैय्यद बन्धुओं को पदच्युत करना चाहता था, जिनके वल पर वह गद्दी पर बैठा था।

प्रमुख घटनाएँ—फरुखसियर के समय निजी दलबन्दी के अतिरिक्त राजपूत तथा सिखों के विद्रोह भी उल्लेखनीय हैं। इनमें से राजपूतों का विद्रोह तो बहुत कुछ कृत्रिम था। फरुखसियर सैय्यद बन्धुओं को निर्बल करना चाहता था। इस दृष्टि से उसने मारवाड़ के राजा अजीत सिंह को भड़का दिया। जब अजीत सिंह ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया तो उसने सैय्यद हुसेन अली को उसके विरुद्ध भेजा, जिससे हुसेन अली का ठिकाना लग जाय।

हुसेन अली के पहुँचते ही अजीत सिंह ने आत्मसमपर्ण कर दिया और फरुखसियर की मंत्रणा विफल हो गयी। अजीतसिंह ने अपने पुत्र अभयसिंह को दरबार में भेजना स्वीकार किया। हुसेन अली के लौटने पर

---

† "Feeble, cowardly and contemptible, and strong neither for evil nor for good."
An Advanced History of India p. 528.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सम्राट स्वयं भयभीत हो गया, उसने हुसेन अली को दक्षिण की सूबेदारी दे दी।

फरुखसियर के समय की दूसरी घटना सिखों का विद्रोह तथा दमन था। सिखों के गुरु बन्दा ने सधौरा के समीप एक दुर्ग बनाकर आस-पास के प्रदेश पर शासन प्रारम्भ कर दिया था। फरुखसियर बड़ा कट्टर मुसलमान था। उसे यह सह्य न था। उसने लाहौर के सूबेदार अब्दुलसमद खाँ को उसे दण्ड देने का आदेश दिया। अब्दुल समद खां ने सिखों को (१७१४ में) जा घेरा। सिखों ने उसका कड़ा प्रतिरोध किया। अन्ततः सिखों को सिधौरा का दुर्ग छोड़ना पड़ा और लोहगढ़ में शरण लेनी पड़ी। कुछ ही समय में लोहगढ़ का भी घेरा डाला गया। सिखों के साथ यहाँ अमानुषिक अत्याचार हुआ। इस दुर्ग को त्याग कर बन्दा तो पहाड़ियों की ओर चला गया किन्तु दुर्ग मुग़लों के अधिकार में आ गया। १७१५ ई० में पुनः वे गुरुदास-पुर में घेरे गये, जहाँ बन्दा को भी आत्मसमर्पण करना पड़ा। इसके अनन्तर उसकी जो दशा हुई उसकी चर्चा की जा चुकी है।

तीसरे इस समय जाटों का नेता चूड़ामन मथुरा के समीप प्रबल हो गया था। उसका प्रभाव दिल्ली से चम्बल तक फैला था। उसने सम्राट को कर देना भी बन्द कर दिया था। फरुखसियर ने उसके विरुद्ध राजा जयसिंह को भेजा। इस समय वज़ीर अब्दुल्ला ने चूड़ामन का पक्ष लिया। अतः युद्ध होने से पूर्व ही उसने चूड़ामन से सन्धि करा दी (१७१८ ई०)। इस प्रकार सैय्यद बन्धु तथा फरुखसियर एक दूसरे के विरोधी थे। फरुख-सियर ने मराठों को भी उनके विरुद्ध भिड़ाना चाहा, किन्तु हुसेनअली बहुत चतुर था। उसने मराठों की माँग स्वयं मान कर फरुखसियर का सारा किया कराया मिटा दिया। सैय्यद बन्धु फरुखसियर के षडयन्त्रों से ऊब चुके थे, अतः एक दिन उन्होंने उसे सिंहासन से बुरी तरह घसीटकर खींच लिया। उन्होंने उसे बन्दी ही न बनाया, बल्कि भूखों मारा और अन्त में विष-पान कराके दूसरी दुनियाँ पहुँचा दिया। यह व्यवहार कहाँ तक न्याय-संगत था, इसका उत्तर सैय्यद बन्धुओं के पास आत्म-रक्षा के अतिरिक्त और कुछ न था।

(४) रफी-उद्-दाराजत १७१९ ई० — सैय्यद बन्धुओं ने १७१९ ई० में रफी-उद्-दाराज़त को सिंहासन पर बिठाया। रफी-उद्-दरज़ात रफी-उश-शान का पुत्र था। राज्यारोहण के समय वह एक २० वर्ष का युवक था, किन्तु यक्ष्मा से पीड़ित रहता था। वह सैयद बन्धुओं के हाथ कठपुतली

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

की भाँति रहता था, वे उसके नाम से राज्य करते थे। फिर भी वह बहुत समय शासन का भार न सम्हाल सका। उसे रोगी देखकर ही राज्यच्युत कर कर दिया गया (४ जून १७१९ ई०)। कुछ समय पश्चात् उसका देहावसान भी हो गया।

(५) **रफी-उद्-दौला अथवा शाहजहाँ द्वितीय १७१९ ई०** —— रफी-उद्-दौला अपने पूर्ववर्ती सम्राट का ही बड़ा भाई था। उसका शासनकाल भी अपने भाई के समान ही अल्प रहा, तथा वह भी सैय्यद भाइयों के हाथ कठपुतली बना रहा। उसने जून १७१९ ई० से सितम्बर १७१९ तक शासन कर पाया था कि १७ सितम्बर को संसार से ही चल बसा।

सय्यद बन्धु —— इन बन्धुओं के विषय में पहले संकेत किया जा चुका है। ये दो भाई थे जिनका नाम हुसेन अली और (हसन अली) अब्दुल्ला था। हुसेनअली बिहार का तथा अब्दुल्ला इलाहाबाद का सूबेदार था। ये दोनों भाई बड़े वीर थे। ये फरुखसियर के समय अधिक शक्तिशाली हो गये थे, किन्तु इनकी नीति अधिक दिन तक काम न दे सकी। चूँकि ये शिया थे, अतः सुन्नियों के कृपापात्र न बन सके। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि ये धार्मिक विषयों में सहिष्णु थे। इन्हें जजिया हटाने तथा राजपूतों के प्रति समझौते की नीति अपनाने का श्रेय है। यही कारण था कि राजपूत इनके बड़े समर्थक थे। इन्होंने राजा रतनचन्द को दीवान नियुक्त किया था और हिन्दुस्तानी दल बनाने की चेष्टा की थी। मुहम्मदशाह को सिंहासन देने वाले भी ये ही बन्धु थे, किन्तु मुहम्मदशाह इनके अनुसार न चला। उसने इन्हीं को ठिकाने लगा दिया।

(६) **मुहम्मदशाह (१७१९-१७४८ ई०)** —— सय्यद भाइयों की इच्छा थी कि गद्दी पर कोई ऐसा दुर्बल सम्राट बैठे, जो उनके संकेत पर चलता रहे। थोड़े ही समय में उसके हाथ जहाँदारशाह का पुत्र रोशन अख्तर आ गया, जिसे उन्होंने मुहम्मदशाह के नाम से गद्दी पर बिठा दिया, पर मुहम्मद शाह उनकी कठपुतली न बना और सैय्यद भाइयों के मन के संकल्प स्वप्न सिद्ध होने लगे।

मंत्रियों के पिछले सात वर्षों के शासन ने उनके लिए अनेक शत्रु उत्पन्न कर दिये थे। मुहम्मदशाह का सबसे बड़ा सहायक प्रसिद्ध निजाम-उल-मुल्क था। अतः निज़ाम-उल-मुल्क से हुसेन अली की न बन सकती थी। जब हुसेन अली निज़ाम-उल-मुल्क को दण्ड देने के लिए मालवा जा रहा था, तो मुहम्मद शाह ने षडयन्त्र करके उसे स्वर्गधाम पहुँचवा दिया। यह देखकर अब्दुल्ला ने अपनी शक्ति सम्हालनी चाही और रफी-उश-शान के दूसरे पुत्र

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

इब्राहीम को सम्राट बनाने की चेष्टा की, किन्तु वह इसमें सफल न हुआ। अपनी आशाओं के विपरीत वह स्वयं पकड़ा गया और उसे विषपान कराया गया (१७२२ ई०)। इधर नया मंत्री मुहम्मद अमीन खां भी १७२१ ई० में चल बसा था। अतः निज़ाम-उल-मुल्क को वजारत के लिए बुलाया गया। निजाम-उल-मुल्क को दिल्ली दरबार का रंग-ढंग समझ में न आया, अतः वह पुनः दक्षिण चला गया, जहां उसने अपने लिए एक नये राज्य की स्थापना की तथा मुग़ल सम्राट को नाम मात्र के लिए मानता रहा। इस प्रकार सैय्यद भाइयों के हटने से तथा निज़ाम-उल-मुल्क के दक्षिण जाने से भी मुहम्मदशाह का भला न हुआ। इसका सबसे भारी कारण यह था कि सम्राट स्वयं विलासी था, उसे अपना ही बल न था। उसके लिए गुलाम हुसेन महोदय लिखते हैं **"मुहम्मदशाह जैसे सुन्दर नवयुवक की हर आनन्द में रुचि थी, वह सदा विलासिता में डूबा रहता था, जिससे उसकी शक्ति क्षीण हो गयी थी।"**†

यद्यपि मुहम्मदशाह का शासनकाल बहुत दिन न चला, किन्तु उसके शासन भार ठीक न संभालने के कारण उसकी दशा शोचनीय थी। इसका फल यह हुआ कि धीरे-धीरे मुग़ल प्रान्त मुग़ल सम्राट के हाथ से निकलने लगे। मराठों की शक्ति का प्रसार होने लगा। अलीवर्दी खां उड़ीसा, बिहार और बंगाल का शासक बन बैठा। दक्षिण में निज़ाम-उल-मुल्क स्वतन्त्र बन बैठा। सआदत खां बुरहान-उल-मुल्क अवध में स्वतन्त्र हो गया। नादिरशाह ने १७३९ ई० में भयंकर आक्रमण किया।

नादिरशाह का आक्रमण १७३९ ई०

१. ईरान का नेपोलियन "नादिरशाह"
२. खुराशान का लुटेरा।
३. ईरान के शाह हुसेन सफवी का सहायक तथा उसके यहाँ नौकरी।

ऊपर दिये गये विवरण से यह स्पष्ट है कि १८वीं शती में भारत के सम्राट इतने दुर्बल हुए कि वे विदेशियों से अपने साम्राज्य की रक्षा न कर सकते थे। इसी समय फारस के सफवी वंश का पतन हुआ। उसे अफगानियों ने दुखी कर रखा था। उसने मुग़ल सम्राट से सहायता की याचना की; पर कौन सुनता था। सन् १७२२ ई० में

† "Young and handsome and fond of all kinds of pleasures he addicted himself to an inactive life which entirely enervated the energy of the emperor."

Ghulam Husain, the author of Siyar.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

४.	१७३२ में स्वयं शक्ति का संचालक।
५.	१७३६ में नादिर सच्चा शासक।
६.	१७३८-३९ भारत आक्रमण।
७.	दिल्ली का प्रसिद्ध कत्ल-ग्राम और अपार धनराशि लूट कर वापस।

एक तुर्क सैनिक का अभ्युदय हुआ। उसने अपना बचपन बड़ी कठिनाइयों में व्यतीत किया था। प्रारम्भ से ही उसने लूट-खसोट में भाग लिया था। उसने शाह की सहायता की। सन् १७२७ ई० में शाह हुसेन का पुत्र शाह तहमाष्य ईरान का सम्राट बना। उसने नादिरशाह को अपनी सैनिक सेवा में रख लिया। ५ वर्ष बाद उसने अपने स्वामी की शक्ति अपने हाथ कर ली, क्योंकि शाह तहमाष्य स्वयं एक दुर्बल शासक था। नादिरशाह ने अपनी बचत के लिए सम्राट के पुत्र को नामधारी राजा बना दिया, किन्तु वह अल्पवयस्क पुत्र सन् १७३६ ई० में चल बसा, अतः नादिरशाह नाम से भी सम्राट बन बैठा। धीरे-धीरे उसने अपनी शक्ति का प्रसार किया। इसके फलस्वरूप ईरानी और अफ़ग़ानी भाग कर भारत में शरण पाने लगे। नादिरशाह ने यह देखकर मुग़ल सम्राट को लिखा कि वह उसके राज्य से भागे हुओं को शरण न दे। मुहम्मदशाह ने इसकी चिन्ता न की। भारत की समृद्धि नादिरशाह को पहले से ही ललचा रही थी। अतः उसे तो बहाने की खोज थी। वहाना मिलते ही उसने १७३८ ई० में काबुल पर आक्रमण कर दिया। काबुल के मुग़ल गवर्नर नासिर खां तथा ज़करियाँ खां उसका कुछ भी न बिगाड़ सके। अतः नादिर ने गज़नी तथा काबुल पर सरलता से अधिकार कर लिया। जनवरी १७३९ ई० तक उसने लाहौर पर भी अधिकार कर लिया। नादिरशाह का आक्रमण साधारण आक्रमण न होता था। जो भी उसका सामना करता धूल में मिल जाता था। नगर के नगर वीरान हो जाते। वजीराबाद, इनामावाद आदि नगर धूल में मिला दिये गये थे। नादिरशाह मानों अत्याचार तथा निर्दयता का अवतार था।

आखिर मुग़लों ने नादिरशाह के प्रतिरोध का उपाय सोचा। उन्होंने पानीपत के मैदान में उसे रोकना चाहा। मुहम्मदशाह ने अपनी सहायता के लिए राजपूतों और मराठों से विनय की। जयसिंह ने तो इसकी चिन्ता न की, पर वाजीराव ने कहला भेजा कि मैं शिंदे, होल्कर, और पवार जैसे सेनानायकों को भेज रहा हूँ। उधर नादिरशाह ५०,००० सवार लेकर करनाल तक चढ़ आया। वहाँ शाही फौज ने अवध के सआदत खाँ के सेनापतित्व में उससे युद्ध किया। सआदत खां युद्ध में घायल

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

हुआ, तथा पकड़ लिया गया। साथ ही दिल्ली सम्राट का मीर वख्शी घायल होकर मर गया। अन्ततः सन्धि हुई और निश्चय किया गया कि ईरानी ५०,००००० रु० लेकर लौट जायेंगे। इसी बीच सआदतखां को ज्ञात हुआ कि मुग़ल सम्राट के मीर वख्शी का पद (जो खान दौरान की मृत्यु के कारण खाली हुआ था) निजाम-उल-मुल्क को दिया जा रहा है अतः उसने आपसी ईर्ष्यावश नादिरशाह को पुनः भड़का दिया। उसने उसे बताया कि यदि वह दिल्ली तक जाये तो करोड़ों की सम्पत्ति उसके हाथ लगेगी। नादिरशाह की धन लालसा बढ़ गयी। उसने निज़ाम को बन्दी किया और मुहम्मदशाह से कहला दिया कि वह अधिक धन के लिए दिल्ली आ रहा है। मुहम्मदशाह भी आगे २ चला और आक्रमणकारी के स्वागत की तैयारी करने लगा।

कुछ ही समय में नादिरशाह दिल्ली पहुँच गया, यहाँ मस्जिदों में उसके नाम का खुतवा पढ़ा गया। नादिरशाह ने शाहजहाँ के महल में अपना आसन जमाया और सब ओर शान्ति छा गयी, किन्तु दिल्ली के दुर्दिन अभी शेष थे। एकाएक एक दिन प्रवाद फैल गया कि नादिरशाह मर गया। यह सुनते ही दिल्ली में उपद्रव प्रारम्भ हो गया। गली कूचों में घूमते ईरानी मार डाले गये। उपद्रव का समाचार पाकर नादिरशाह सैनिक वेश में रोशनुद्दौला मस्जिद तक गया। वहाँ ईरानियों के मरने के समाचार की पुष्टि होते ही उसने म्यान से तलवार खींच ली। यह कत्ल आम का संकेत था। १७३९ ई० को ११ मार्च रविवार का दिवस था, प्रातः के ९ बजे थे। बस ईरानी सैनिक हाहाकार मचाते चारों ओर निकल पड़े। जो भी सामने आया उसी को यमपुर पहुँचा दिया गया। क्षणभर में मानो यमराज स्वयं संहार करने लगे। चाँदनी चौक, सब्जीमण्डी, दरीबा बाज़ार, जामामस्जिद के पड़ोसी भवनों में आग लगा दी गयी। स्त्री, बच्चों का भी संहार होने लगा। कपड़े, गहने तथा स्वर्ण आदि के बर्तन लूट लिये गये। सारे शाही जवाहरात, सम्पत्ति, खज़ाने की अमूल्य वस्तुएँ विजेता के हाथ पहुँच गयीं। इस प्रकार उसके अधिकार में ६० लाख रुपये का कोष, कई हज़ार अशरफियाँ, १ करोड़ रुपये के सोने के बर्तन, और जगत प्रसिद्ध हीरे जवाहरात जो ५० करोड़ की लागत के थे, सभी आ गये। कहाँ तक कहा जाय लगभग २०० वर्ष में जुटाई गयी सम्पत्ति का स्वामी क्षणभर में बदल गया। एक सम-सामयिक लेखक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है। **"उन हतभाग्य क्षेत्रों में घर लूटे गये, बिना आयु के भेदभाव के सभी मनुष्य**

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मौत के घाट उतारे गये। तमाम स्त्रियां दासी बनायीं गयीं। विनाशकों ने घरों में आग लगा दी और उनके द्वारा मारे गये अनेक हिन्दू, मुसलमान, जो घायल हुए अथवा मरे, बिना किसी भेद-भाव के एक साथ जला दिये गये।†

यह भीषण हत्याकाण्ड आखिर ३ बजे दिन तक चला। इसको समाप्त करने का श्रेय मुहम्मदशाह के वज़ीर को दिया जाता है। कहा जाता है कि कोई नादिरशाह के सामने जाने का साहस न करता था। अतः वज़ीर ने एक शेर लिखकर भेज दिया।

> "कसे न माद कि दीगर व तेगे नाज़ कुशी।
> मगर कि ज़िन्दा खल्क रा व बाज़ कुशी।।"

अर्थात् आपकी आज्ञा से सभी मारे जा चुके। यदि अब भी आप चाहते हैं कि आज्ञा का पालन हो तो मरे हुए को जीवित करिये जिससे कत्लेआम जारी रहे।

आखिर नादिरशाह का हुक्म हुआ कि कत्लेआम बन्द हो। कत्लेआम बन्द हुआ। नादिरशाह ५७ दिन दिल्ली में रहा। लौटते समय नादिरशाह ने बड़े नाटकीय ढंग से मुहम्मदशाह का प्राणस्वरूप कोहनूर हीरा† भी छीन लिया (अमामा बदलकर) और अपने साथ १५ करोड़ नगद, ७० करोड़ का सामान, ३०० हाथी, तख्त-ताऊस तथा १०,००० घोड़े ले गया। चलते समय वह अपने आप मुहम्मदशाह को पुनः सम्राट घोषित कर गया। मुहम्मदशाह ने भी इस खुशी में सिन्धु के उत्तर पश्चिम का काश्मीर से कराची तक का सारा भू-भाग नादिरशाह को भेंट कर दिया। इस प्रकार मुग़ल सम्राट की प्रतिष्ठा धूल में मिल गयी। यही नहीं, इस आक्रमण ने मुग़ल

---

† "Within the doomed areas the houses were looted, all the men killed without regard for age and all the women dragged into slavery. The destroyers set fire to many houses and several of their victims both dead and wounded, Hindus and Musalmans were indiscriminately burnt together."

Advance History of India p. 533.

† कहते हैं मुहम्मदशाह कोहनूर हीरा न देना चाहता था, पर छिपाने की जगह भी न ढूंढ़ पा रहा था। उसके वज़ीर ने उसे पढ़ा दिया कि आप अपनी पगड़ी में रख लें। चलते समय पगड़ी बदल दी गयी, और हीरा नादिरशाह के पास पहुंच गया। वज़ीर इस बात के लिए वचनबद्ध था, क्योंकि उसने कत्ले आम रुकवाया था।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

सम्राट की निर्बलता दूसरों की दृष्टि में भी सिद्ध कर दी। देश में अराजकता को प्रोत्साहन मिलने लगा। १७४७ ई० में नादिरशाह तो अपने देश में जाकर मार डाला गया, पर वह अपने भारत आक्रमण से दूसरों को आने का पाठ पढ़ा गया। नादिरशाह के पश्चात् उसका प्रमुख सेनापति अहमद शाह अब्दाली एक नहीं, अनेक बार भारत आया, भारत की कड़ी कड़ी तोड़ गया जिसका विशेष विवरण तीसरे भाग में होगा।

मुहम्मदशाह सन् १७४८ ई० तक भारत का सम्राट रहा। उसके उपरान्त उसके उत्तराधिकारी उससे भी अधिक दुर्बल हुए। दैवयोग से इस समय तक योरोपीय जातियाँ भारत में फैल चुकी थीं। वे अपना अपना स्थान बनाने के लिए प्रयत्नशील थीं। ऐसी विषम परिस्थिति में भारत को अधिक शक्तिशाली नायकों की आवश्यकता थी, पर जो नायक इस देश के रङ्गमंच पर आये वे सर्वथा अयोग्य थे। वे नाममात्र के सम्राट थे।

(७) अहमदशाह (१७४८-५४ ई०)—मुहम्मदशाह के पश्चात् उसका पुत्र अहमदशाह गद्दी पर बैठा। इस समय वह २१ वर्ष का नवयुवक था। उसे शासनकार्य का कोई अनुभव न था। वस्तुतः वह अपनी विलासिता में डूबा रहता था। उसका एक सेवक जाविदखां उसका परम हितैषी था, वही स्त्रियों और गुलामों के दल का नेता था। जाविदखां नवाब बहादुर के नाम से प्रसिद्ध था। इसका फल यह हुआ कि उसका साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा। उसके समय में अहमदशाह अब्दाली का भीषण आक्रमण हुआ। अहमदशाह अब्दाली पहली बार धन लेकर लौट गया, तदनन्तर पंजाब तथा मुल्तान का भू-भाग हड़प कर गया।

सम्राट अहमदशाह को १७५४ में अन्धा कर दिया गया। इस कृत्य का उत्तरदायित्व दक्षिण के निज़ाम-उल-मुल्क के पुत्र और सम्राट के वज़ीर गाज़ीउद्दीन इमादुलमुल्क पर था। इमादुलमुल्क ने सय्यद भाइयों की भाँति सम्राट को अपनी कठपुतली बनाने की चेष्टा की। उसने अहमदशाह को गद्दी से उतार कर १७५४ ई० में जहाँदारशाह के पुत्र अज़ीजउद्दीन को जो उस समय तक बन्दी गृह में था, सम्राट घोषित किया।

(८) आलमगीर द्वितीय† (१७५४-५९ ई०) अज़ीजउद्दीन ने गद्दी पर बैठते ही आलमगीर द्वितीय की उपाधि धारण की। गद्दी पर बैठने के समय वह ५५ वर्ष का हो चुका था। उसे कारागार में पड़े पड़े पढ़ने से रुचि उत्पन्न हो गयी थी। वह शासनकार्य भार न वहन कर सकता था। अतः

† पहला आलमगीर औरंगज़ेब था।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

शासन कार्य उसका वज़ीर इमादुलमुल्क करता था। इमादुलमुल्क उसे अपनी मुट्ठी में रखता था। न वह स्वयं कुछ करता था न सम्राट को ही करने देता था।

इस आलमगीर का समय भारत के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण हुआ। इसके समय अब्दाली का चौथा भयंकर आक्रमण (१७५६ ई०), इसी के समय जगत प्रसिद्ध प्लासी का युद्ध (१७५७ ई०) हुग्रा। इन दोनों घटनाओं ने मुग़लों की रही सही प्रतिष्ठा धूल में मिला दी। इन घटनाओं का विशेष विवरण तृतीय भाग में होगा।

आखिर १७५६ में इमादुलमुल्क ने आलमगीर की हत्या करा दी। पहले तो कामबख्श के पौत्र मुहीउल-मिल्लत को **शाहजहाँ तृतीय**† की उपाधि देकर सिंहासन पर बिठा दिया गया, किन्तु उसी समय आलमगीर द्वितीय के पुत्र **अली गौहर** ने शाहआलम द्वितीय की उपाधि धारण कर ग्रपने को सम्राट घोषित कर दिया, अतः शाहआलम ही सम्राट रहा।

(९) **शाह आलम द्वितीय (१७५९-१८०६ ई०)**—शाह आलम द्वितीय तथा उसके अनन्तर के दो सम्राट वस्तुतः सम्राट ही न थे, ये तो तत्कालीन परिस्थितियों के दर्शक मात्र थे। इनमें न अपना बल था, न पौरुष, न नीति थी, न सूझ, जब जिस ओर चला दिये गये, चल दिये। शाह आलम द्वितीय को १२ वर्ष अपने सिंहासन पर बैठने का भी साहस न हुआ। जिस समय उसके पिता की मृत्यु हुई वह बिहार में था। सन् १७७२ ई० में वह मरहठों की सहायता से दिल्ली तक पहुँच सका था। इस बीच ग्रंग्रेज भारत के रंग मंच पर जम चुके थे। शाह आलम ने एक बार उनसे टक्कर भी ली (बक्सर का युद्ध १७६५ ई०) पर उसे अपने मुँह की खानी पड़ी। इस हार से अँग्रेज और भी निर्भीक हो गये और १७७२ ई० में उनका नियमित शासन बंगाल, बंबई तथा मद्रास में आरम्भ हो गया। मुग़ल सम्राट उन्हीं की सहायता का मुहताज रहने लगा।

पहले मुग़ल सम्राट पर मरहठों का प्रभुत्व छाया रहा, पर १७६१ ई० के तृतीय पानीपत युद्ध ने उनकी शक्ति को भी ध्वस्त कर दिया, अतः शाह आलम को नाम मात्र का सम्मान मिलता रहा। अपने समस्त शासन काल

---

* शाहजहाँ द्वितीय रफी-उस्-शान का (बहादुर प्रथम का पुत्र था) पुत्र था जो १७१९ में कुछ दिनों के लिए नाम मात्र का सम्राट बना था।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

में वह या तो मरहठों का अथवा अपने मंत्रियों के हाथ का खिलौना बना रहा। १७८८ ई० में उसे अन्धा कर दिया गया। लार्ड वेलेजली के समय १८०३ में जनरल लेक ने दिल्ली विजय की तथा शाह आलम को अँग्रेज़ों का पेंशन भोक्ता बना दिया गया। कुछ ही समय में शाह आलम स्वयं चल बसा।

(१०) **अकबर द्वितीय**—(१८०६-३७ ई०) शाह आलम द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र अकबर द्वितीय गद्दी पर बैठा। अपने पिता की भाँति वह भी अँग्रेज़ों का पेंशन भोक्ता बना। इसके शासनकाल में लार्ड हेस्टिंग्स, ऐम्हर्स्ट, बैंटिक-ब्रिटिश कम्पनी के प्रमुख गवर्नर जनरल आये। इन्होंने भारत की कड़ी कड़ी हिला दी। लार्ड हेस्टिंग्स ने मराठों की शक्ति नष्ट की, एम्हर्स्ट ने ब्रह्मा की ओर कदम बढ़ाया, और बैंटिंक ने आन्तरिक व्यवस्था ठीक की। संस्कृत, उर्दू, फारसी, अरबी आदि भाषाओं को ही मिटा दिया गया। मुग़ल सम्राट अपने किले भर का नेता बना रहा। इसका फल यह हुआ कि अँग्रेज़ों के पैर भारत में जम गये। १८३७ ई० में अकबर की मृत्यु हो गई।

(११) **बहादुरशाह द्वितीय**—(१८३७-५७ ई०) अकबर द्वितीय की मृत्यु पर शासन सूत्र बहुत कुछ अंग्रेज़ों के हाथ आ चुका था। मुग़ल सम्राट केवल नामधारी था। बहादुरशाह को इतना भी अधिकार न था कि वह अंग्रेज़ अधिकारियों की आज्ञा के बिना अपना उत्तराधिकार भी पा सकता। उसको सम्राट की उपाधि धारण करने की आज्ञा दे दी गयी। २० वर्ष तक उसने यह पद धारण किया। इस बीच अंग्रेज़ों ने दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति की। इस युग तक सिखों की सत्ता भारत में अवशेष थी, तथा अफगानिस्तानी अपने को स्वतंत्र समझते थे। पर लार्ड आकलैंड व एलनबरो ने अफगानों की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी, और लार्ड हार्डिञ्ज व डैलहाउज़ी ने सिखों को मिटा दिया। १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में में बहादुरशाह के भाग लेने पर अँग्रेज़ों ने उसका नाम भी छीन लिया और उसे देश निकाला देकर रंगून भेज दिया जहाँ सन् १८६२ में उसकी मृत्यु के साथ मुग़लों के शासन का नाम ही उठ गया।

—:०:—

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

मुग़ल साम्राज्य के पतन के कारण

१. औरंगज़ेब की धार्मिक-असहिष्णुता तथा उसके फलस्वरूप
  (अ) जाटों का विद्रोह
  (ब) राजपूतों का वैमनस्य
  (स) सिखों की शत्रुता
  (द) मराठों का उत्कर्ष
  (ई) शिया राज्यों का वैमनस्य
२. दक्षिण में उसके दीर्घ कालीन युद्ध
३. औरंगज़ेब का अविश्वास
४. उसका दीर्घकालीन शासन
५. उसके दुर्बल अधिकारी
६. सैनिक कुव्यवस्था
७. आर्थिक दुर्बलता
८. मुग़ल सरदार भी चरित्रहीन
९. पटु राजनीतिज्ञ का अभाव
१०. दरबार में दलबन्दी
११. वैदेशिक शासन
१२. एक केन्द्र से शासन

भारत के इतिहास में मुग़ल साम्राज्य का सूर्य लगभग २०० वर्ष अपनी प्रतिभा तथा प्रतिष्ठा को रख सका। अर्थात् १५२६ ई० से लेकर १७३९ ई० तक के सम्राट रहे, किन्तु इसके अनन्तर नामधारी नृपति हुए जिनकी निजी शक्ति न रही, बल्कि जो दूसरों के बल पर जीवित रहे। इन दो सौ वर्षों में मुग़लों ने निःसन्देह भारत की काया पलट दी, उन्होंने शासन ही नहीं किया वरन् यहाँ तुर्की और मंगोल सभ्यता का सूत्रपात किया। वे अपने साथ अपनी पद्धति लेकर चले तथा उन्होंने इसी देश को अपना घर बनाया। उन्होंने खूब वैभव कमाया। इनके परवर्ती उत्तराधिकारी इस वैभव को न सम्हाल सके। इस पतन की अवस्था के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हुए। कुछ बातें ऐसी हुईं जो उनके वश की न थीं जिन पर उनका कोई नियंत्रण न हो सकता था, यथा योरुपीय जातियों का प्रवेश, तथा वैज्ञानिक उन्नति, और भारत पर योरुपीय उल्कापात, कुछ बातें ऐसी थीं जो सर्वथा इन्हीं के वश की थीं, पर उन्हें अपनी विलासिता और दुर्बलताओं से इतना अवकाश न मिलता था कि वे किसी दूसरी ओर देखते, उन्होंने कभी भी राष्ट्र की दृष्टि से शासन न किया बल्कि अपने स्वार्थ के लिए, इसी का परिणाम यह हुआ कि वे एक दिन इसके नायक न रहे। लेनपूल का कथन है—

"जैसे किसी सम्राट के मृत शरीर को युग-युगान्तर तक एकान्त में मुकुट पहिनाकर, शस्त्रों से सजाकर तथा पूर्ण रूप से प्रभावशाली बनाकर रखा जाता है, किन्तु फिर भी प्रकृति के तनिक स्वास लेने पर वह धूल में मिल जाता है, वैसे ही मुग़ल साम्राज्य अपने रक्षक स्वरूप महान यश के

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

लुप्त होते ही समाप्त हो गया।"*

डा० स्मिथ के अनुसार --†**"मुग़ल साम्राज्य का पतन इतनी शीघ्रता से हुआ कि एकाएक महान आश्चर्य-जनक लगता है, किन्तु जिसने ज़रा भी ऐतिहासिक ज्ञान का मनन किया होगा, उसे बजाय इस बात के कि पतन इतनी शीघ्रता से हुआ, इस तथ्य से अधिक आश्चर्य होगा कि वह इतने दिन टिका कैसे ?"**

इन कारणों पर कुछ विवेचन करना यहाँ असंगत न होगा।

सबसे प्रमुख बात तो यह है कि अधिकतर इसका उत्तरदायित्व औरंगज़ेब पर रख दिया जाता है। औरंगज़ेब इस पतन को शीघ्र लाने के लिए निश्चित रूप से उत्तरदायी भी था, पर केवल वही सब कुछ न था। बस, वह पतनावस्था के रंगमंच का एक नायक था किन्तु इस अभिनय में भाग लेने वाले अन्य अनेक पात्र थे।

१. प्रकृति का यह शाश्वत नियम है कि उत्थान के बाद पतन आता है, जो शिखर पर पहुँचता है, उसके आगे बढ़ने का अर्थ उतरना होगा। मुग़ल साम्राज्य शाहजहाँ के समय ही अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। औरंगज़ेब के शासन काल में इसका उतार प्रारम्भ हो गया क्योंकि औरंगज़ेब की कुछ निजी दुर्बलताओं ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी था। यथा--

२. (अ) **उसकी धार्मिक असहिष्णुता** — निःसन्देह औरंगज़ेब की धार्मिक कट्टरता पतन का एक प्रमुख कारण थी। साम्राज्य का वह प्रासाद जिसे अकबर ने अपनी सहन-शीलता की शिला पर खड़ा किया, जिसे जहाँगीर तथा शाहजहाँ जैसे सम्राटों ने सजाया, जिसके वैभव को देखकर विदेशी भी चकित हो गये थे, औरंगज़ेब ने अपने धोखे तथा अविश्वास से उसमें बारूद

* "As some imperial corpse, preserved for ages in its dread seclusion crowned and armed and still majestic, yet falls to dust at the mere breath of heaven so fell the empire of the Mughal when the great name that guarded it was no more."

Lanepoole

† "The collapse of the empire came with a suddenness which at first sight may seem surprising. But the student who has acquired even a moderately sound knowledge of history will be surprised that the empire lasted so long rather than because it collapsed suddenly."

V. A. Smith.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

रख दी। औरंगज़ेब ने जशवन्त सिह जैसे वीर और स्वामि-भक्त राजपूत का कोई ध्यान न रखा, उसने उसके बच्चों को इस्लाम की शिक्षा देनी चाही। उसने अनेक हिन्दू मन्दिर धराशायी कराये, जिसका फल हुआ कि हिन्दुओं की सहानुभूति उसके साथ न रही। यही नहीं वह कट्टर सुन्नी था, अतः उसने दक्षिण की शिया रियासतों को तबाह किया और अपने विरुद्ध एक नया झंडा खड़ा कर लिया।

(आ) **जाटों का विद्रोह** — जाटों के विद्रोह का कारण भी औरंगज़ेब की धार्मिक असहिष्णुता ही थी। यद्यपि कुछ समय के लिए वह विद्रोह शान्त कर दिया गया था, पर कुछ ही समय पश्चात् पुनः उठ खड़ा हुआ। इससे साम्राज्य के धन जन की बहुत हानि हुई थी।

(ई) **जजिया कर लगाना** — उसने देश भर के हिन्दुओं पर जजिया लगा दिया। इससे ब्राह्मण और राजपूत भी मुक्त नहीं हुए। उसने राज्य के कार्यालयों से हिन्दू पदाधिकारियों को निकाल दिया। इन अधिकारियों में यदि किसी ने इस्लाम स्वीकार कर लिया तो उसे पदस्थ रहने दिया गया।

(उ) **राजपूतों का वैमनस्य** — अकबर ने मुग़ल साम्राज्य का निर्माण राजपूतों की सहायता तथा सद्भावना से किया था। उसने राजपूतों को उन्हीं की तलवार से अपने वश में कर लिया था। औरंगज़ेब ने इस नीति को बदल कर उन्हें अपूर्व सहायक से भयानक शत्रु बना लिया। अतः उसे अपनी ही सेना का एक अंश उनके दमन के लिए अलग करना पड़ा।

(ऊ) **सिखों की शत्रुता** — जैसा पिछले परिच्छेद में कहा जा चुका है कि सिखों के गुरु की हत्या करके औरंगज़ेब ने उन्हें सदैव के लिए अपना घातक शत्रु बना लिया, ठीक ही है। औरंगज़ेब की असहिष्णुता ने ही सिखों को धार्मिक दृष्टिकोण से राजनीतिक दृष्टिकोण की ओर बरबस मोड़ दिया।

(ए) **मरहठों का उत्कर्ष** — इसी समय मरहठा जाति का संगठन हुआ। उनमें शिवाजी जैसे वीर शिरोमणि तथा राजनीतिज्ञ का जन्म हुआ। औरंगज़ेब तथा दक्षिण की रियासतों ने मिलकर भी उसका विनाश न कर पाया। मरहठों की सहानुभूति लेकर औरंगज़ेब का राज्य निष्कंटक हो सकता था, पर ठीक उसके विपरीत वह कंटकाकीर्ण हो गया, क्योंकि अन्ततः शिवाजी के पुत्र सम्भाजी को कैद किया गया, मारा गया, शाहू को बन्दी किया गया, जो सर्वथा निंद्य था।

(ऐ) **शिया राज्यों के साथ वैमनस्य** — दक्षिण की प्रभुता दो के ही हाथ थी, शिवाजी तथा शिया राज्य। औरंगज़ेब को शिवाजी का विनाश अभिप्रेत था, तो उसे शिया राज्यों को अपनी ओर मिलाये रखना था। शिया

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

रियासत वाले बल्कि ऐसा ही चाहते भी रहे, पर औरंगज़ेब की समझ में न आया। उसने अपनी निष्ठा इस्लाम तक ही सीमित न रखी, बल्कि उससे भी संकीर्ण कर उसे केवल सुन्नी इस्लाम तक रखा। अतः उसके लिए शिया तथा हिन्दू दोनों ही ग़ैर हो गये। उसने बीजापुर और गोलकुण्डा को श्रीहीन कर दिया। मुग़ल साम्राज्य पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा। वस्तुतः उसे इन रियासतों के सम्बन्ध में राजनीतिक महत्त्व देखना चाहिये था, धार्मिक दृष्टि का दमन करना था। इन युद्धों के चक्कर में औरंगज़ेब को २५ वर्ष तक राजधानी से दूर रहना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि सारा शासन सूत्र भी नियंत्रित न रहा।

२. **दक्षिण में उसके दीर्घकालीन युद्ध**—इन युद्धों में समय ही नहीं, धन, जन सभी की हानि हुई। इन युद्धों के कारण मुग़ल राजकोष रिक्त हो गया। दक्षिण की आर्थिक व्यवस्था भी विनष्ट हो गयी। वहाँ की जनता भी इनसे ऊब गयी थी, क्योंकि उससे आये दिन कर वसूल किये जाते थे। यहाँ भेजे गये सैनिक भी युद्ध से थक चुके थे। प्रो० सरकार ने यहाँ तक कहा है कि दक्षिण में एक ऐसी साम्राज्यवादी पीढ़ी का उदय हुआ जिसने ईंट पत्थर के मकान ही न देखे थे, बल्कि अपना जीवन शिविर में ही देखा था। सर वूल्जले हेग ने लिखा है कि—

"दक्षिण में औरंगज़ेब की सर्वोत्तम सैनिक शक्ति लग गयी तथा कुछ अयोग्य अधिकारी शेष शक्ति तथा धन से उत्तर के बड़े-बड़े नगरों तथा बहुसंख्यक सूबों को न सम्हाल सके।"*

३. **औरंगज़ेब का अविश्वास**—औरंगज़ेब का किसी पर विश्वास न था, यहाँ तक कि वह अपने पुत्रों पर भी भरोसा न करता था। जब कभी वह उन्हें सेनापतित्व का भार सौंपता तो दो व्यक्ति नियुक्त करता था, जिससे एक दूसरे के लिए रोक का कार्य करे किन्तु इसका फल उलटा ही होता। उनका उत्तरदायित्व बट जाता था। इस प्रकार प्रबन्ध-कुशलता, तथा युद्ध निपुणता में कमी आ जाती थी। अकबर तो स्वयं उसके विरुद्ध हो गया था।

---

† "The Deccan absorbed all his best troops and incompetent officers with insufficient forces and funds were unable to maintain order in the great cities and firtile and populous provinces of North."

Sir Wolseey Haig

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

४. **औरंगज़ेब का दीर्घकालीन शासन**--औरंगज़ेब का जीवन-चरित्र लिखते समय यह संकेत किया जा चुका है, कि उसका शासन काल आधी शताब्दी का भारतीय इतिहास है। इतने दीर्घ शासन में (१६५८-१७०७ ई०) वह अपनी जड़ को मज़बूत न कर सका, बल्कि और खोखला करता गया। इस काल में मुग़लों के लगभग सभी योग्य सेनापति चल बसे। अतः उसके बिदा लेते ही शासन-सूत्र एकाएक ढीले पड़ गये।

४. **दुर्बल उत्तराधिकारी**--मुग़लों में जो कुछ रही सही जान थी वह औरंगज़ेब के उत्तराधिकारियों ने निकाल दी। वे इतने बिलासप्रिय और दुर्बल सिद्ध हुए कि बढ़ते हुए संसार के लिए अयोग्य सिद्ध हुए। उनमें बाबर तथा अकबर की भाँति न शारीरिक बल ही था और न मानसिक। उनके चरित्र का कोई ठीक ठिकाना ही न रह गया था। उन्हीं के शासनकाल में विदेशियों ने आकर अपने पैर जमा लिये और अन्ततः एक दिन मुग़लों का सूर्य सदा के लिए अस्त हो गया। इन में परस्पर कलह और वैमनस्य भी घर किये रहा। मुग़लों का कोई निश्चित उत्तराधिकार नियम भी न था, अतः वे इस के शिकार से अपने को न बचा सके। साथ ही साम्राज्य की सीमाएँ इतनी फैल चुकी थीं, जिसे सम्हालना सरल न था। उसका नियंत्रण एक केन्द्र से होता था, अतः केन्द्र के दुर्बल पड़ते ही वह अपने दूर में स्थित अंगों को न सम्हाल सका। धीरे-धीरे इसका विकेन्द्रीकरण प्रारम्भ हो गया और उसकी अबाधगति को कोई रोक न सका।

(६) **सैनिक कुव्यवस्था**—उस युग में जब सैन्यबल ही किसी शासक का प्राण था, मुग़ल सैन्य बल क्षीण हो चुका था। उनकी मंसबदारी प्रथा दोष पूर्ण थी। उनकी सेनाओं में अनेक तत्व ऐसे थे, जो परस्पर एक न हो सकते थे। सबसे बड़ा दोष इसमें यह था कि सैनिकों का केन्द्रीय सरकार से सीधा सम्बन्ध न रहता था। यदि उनके घोड़े युद्ध भूमि में मर जाते थे, तो उन्हें अपने पैसे से खरीदने पड़ते थे। अतः थोड़े से ही आतंक से वे मैदान से भाग खड़े होते थे। इसके अतिरिक्त उनके अस्त्र-शस्त्र भी समय के अनुकूल न रह गये थे। औरंगज़ेब के समय में मन्सबदार केन्द्र के नियंत्रण में पूर्णरूप से न रह गये थे। वे अपने सैनिकों तथा अश्वों की निश्चित संख्या न रखते थे। मंसबदारों में परस्पर न बनती थी, अतः सैनिक अनुशासन न रह गया था। उनकी निर्बलता नादिरशाह ने खुले आम सिद्ध कर दी।

(७) **आर्थिक दुर्बलता**—औरंगज़ेब के शासनकाल में तथा उसके पश्चात् साम्राज्य में जो आर्थिक दुर्बलता आ गयी थी वह भी साम्राज्य के

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

पतन का कारण बनी। कुप्रबन्ध तथा अशान्ति के कारण उद्योग-धन्धों का भी ह्रास हुआ।

सम्राटों तथा अमीरों के विलासमय जीवन का सारा भार दीन काश्तकारों पर पड़ा, और उनके लिए यह असह्य हो गया। करों की दरें बढ़ने से उनमें बड़ा असन्तोष फैल गया। औरंगज़ेब के अधिक समय तक दक्षिण में व्यस्त रहने के कारण प्रान्तीय शासकों ने धन देना बन्द ही कर दिया था। अतः बहादुरशाह को राज्यकोष खाली मिला था। इसके अनन्तर पुनः कभी कोष भरा-पूरा न हो सका।

(८) **चरित्रहीन मुग़ल अधिकारी** — केवल मुग़ल सम्राट ही नहीं बल्कि मुग़ल सरदार भी चरित्रहीन हो गये। जिस समय ये भारत आये थे बड़े कष्टसहिष्णु थे, पर यहाँ की धन-दौलत और विलासिता ने उन्हें निकम्मा बना दिया था। वे खूब मदिरा-पान करते थे और रनिवासों में पड़े रहते थे। उनके रनिवासों में भीड़ लगी रहती थी। अतः अब वे मरहठे, राजपूत तथा सिखों से लोहा न ले सकते थे। साथ ही मुग़ल सामन्त तुर्क, अफ़ग़ान अथवा फारसी थे, जिन्हें यहाँ की जलवायु अनुकूल न पड़ती थी। सरकार के अनुसार सुकाल में खेती की पैदावार सामन्तों की जेबों में जाती थी और वह धन उन्हें ऐसी विलासिता की ओर ही प्रेरित करता था जिसकी फारस अथवा मध्य एशिया का कोई राजा कल्पना भी न कर सकता था। सबसे अधिक शोचनीय बात यह थी कि इन सामन्तों के कुकृत्यों पर कोई रोक-थाम न थी। प्रजा से कर्मचारियों का नज़राना, भेंट और रिश्वत लेना एक नियम बन गया था। स्वयं सम्राट इनसे अछूते न थे। कहते हैं औरंगज़ेब का अंगरक्षक रहने के कारण काबुली खां ने ढाई वर्ष में १२ लाख रुपया नकद, एक नई हवेली, और अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ एकत्र कर ली थीं। सरकारी दफ्तर केवल पुराने मुंशियों और मुनीमों के परिवार के लिए रह गये थे। इस प्रकार छोटे से लेकर बड़े वर्ग तक सभी अपने-अपने को देखते थे।

(९) **पटु राजनीतिज्ञ का अभाव** — धीरे-धीरे समय की गति वीरता से चल कर राजनीति की ओर आ गयी थी। मुग़लों के उत्तराधिकारियों में कोई ऐसा पटु राजनीतिज्ञ न हुआ जो देश-विदेश की स्थिति का उचित ज्ञान रखता तथा उसी के आधार पर अपनी सुरक्षा और शासन की बात सोचता। यदुनाथ सरकार का कथन है कि मुग़ल सामन्तों की सन्तति की शिक्षा भी भली प्रकार न होती थी। वे जन्म से युवावस्था तक हिजड़ों और

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

दासियों के बीच पलते थे। उनको कठिन जीवन और उसका सामना करने की क्षमता का कोई ज्ञान न रहता था।

† श्री शर्मा के अनुसार "कामबख्श ने बन्दीगृह में मृत्यु शय्या पर इस बात पर पश्चात्ताप किया कि तैमूर बंश का वंशज जीवित ही पकड़ गया, किन्तु जहाँदारशाह और अहमदशाह को अपनी अनेक उपपत्नियों के बाहुपाश में जकड़े हुए भी कर्त्तव्यविमुख अवस्था में बन्दी बनाये जाने पर तनिक भी लाज न आयी थी।"

जीवन के आरम्भ से ही वे पाप से परिचित हो जाते थे। वे अपने पद तथा झूठी सम्पत्ति में थोथा गर्व करना सीख जाते थे। उनके घरेलू शिक्षक उन पर लाड़ करते थे। वे कभी उन्हें कठोर अनुशासन न सिखा सके।

(१०) **दरबार में दलबन्दी**—मुग़ल दरबार में धीरे-धीरे भीषण दलबन्दी पैदा हो गयी थी, जिसके भयंकर परिणाम हुए। सम्राट अपने-अपने स्वार्थ को सम्मुख रखते थे, देश की किसी समस्या को नहीं। एक दूसरे को सदा नीचा दिखाने की चेष्टा की जाती थी। प्रत्येक दल अपने विरोधी के विरुद्ध सम्राट के कान भरता था।

(११) **वैदेशिक शासन**—यह निर्विवाद है कि मुग़ल शासन भी भारत में वैदेशिक शासन था। इस भूमि में उसकी जड़ें स्वभावतः न जम सकती थीं और न जम सकीं। शासन अधिकारियों का जनता से अलगाव था। वे प्रजा की भावनाओं की कभी रक्षा न कर सके अतः इस प्रकार का साम्राज्य केवल शक्ति पर टिक सकता था, यदि शक्ति में कहीं भी कमी आती तो उसका टिकना सम्भव न था। ठीक भी है, कट्टर पन्थी मुसलमानों की यह धारणा थी, कि वे इस देश में रहते अवश्य हैं पर यह देश उनका नहीं है। अतः इस देश की भाषा, परम्परा, तथा वेश-भूषा में उनका मन बहुत न लग सका। उन्होंने शासन के लिए अनेक विदेशी कानून यहाँ लागू किये। इससे प्रजा में उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न न हो सकी।

(१२) **एक केन्द्र से शासन**—मुग़लकाल में भारत आज की भाँति यातायात आदि के साधनों से भरपूर न था। सूचना तथा सामग्री पहुँचने में उस समय आज की अपेक्षा कई गुना समय लगता था, अतः इतने विशाल-साम्राज्य का एक केन्द्र से संचालन व नियन्त्रण सरल न था, सरल इसलिए कहा गया कि उससे सदियों पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य ने इससे बड़े साम्राज्य को ठीक से सम्हाला था।

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

(१३) समुद्री बेड़े की दुर्बलता--मुग़लों पर सबसे सबल आघात उन जातियों ने किया जिनका समुद्री बेड़ा मज़बूत था। मुग़लों के बेड़े की शक्ति उनके सम्मुख नगण्य थी।

(१४) मंसबदारी प्रथा का पतन--औरंगज़ेब तथा उसके उत्तराधिकारियों के समय मंसबदारी प्रथा में पतन आ गया था। सब ओर भ्रष्टाचार तथा पक्षपात था। विलियम नोरिस के शब्दों में "**औरंगज़ेब के शासन के अन्तिम दिनों में कोष रिक्त था। युद्ध की गति बन्द न थी, सैन्यबल सर्वथा अनियन्त्रित था, अधिकारी असन्तुष्ट तथा भक्तिहीन थे।**"† बर्नियर के अनुसार "**अनेक बड़े २ मंत्री तथा सेनापति थे, पर साधारण जनता एक भेड़ों का समूह समझी जाती थी।**"* ऐसी जनता के बल पर कहीं साम्राज्य टिक सकता है।

(१५) राष्ट्रीयता का अभाव—अकबर के अतिरिक्त किसी अन्य सम्राट ने भारत को राष्ट्रीयता का पाठ न पढ़ा पाया। हिन्दू यवन, यवन यवन, वैदिक जैन आदि संघर्ष होने लगे। न सम्राट में ही यह अणु था, न जनता ही में; अतः ऐसी असहाय और दुर्बल अवस्था में यदि विदेशी लाभ उठा लें तो क्या आश्चर्य था। वस्तुतः दास होने में चरित्र गिर जाता है, जिसका निर्माण बड़ी ही कठिनता से सम्भव है। उसके लिए या तो शताब्दियों का प्रजातन्त्र हो अथवा अल्प-कालीन कमालपाशा।

(१६) विदेशी आक्रमण--ऐसी दयनीय अवस्था में भारत की कोई सहायता करता तो किसलिए? इसका फल यह था कि एक के पश्चात् दूसरे विदेशी आक्रमण हुए और भारत उठ-उठ कर भी सदा गिरता रहा। ऐतिहासिक सत्य यह है कि राष्ट्र और जाति के उत्थान व पतन सामयिक होते हैं, उन्हें यदा-कदा चेतना आती है। ऐसी चेतना आने पर सबल तथा सच्चरित्र जनता तो उठ सकती है, पर निर्जीव और विलासमय एक

---

† "In the later years of Aurangzeb's reign, the treasury was empty, army was disorganised, and officers were discontented and disloyal."

William Norris.

* "There were great ministers and generals but the mass of the people were human sheep."

Bernier.

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

ही ठोकर में धराशायी हो जाती है। इसके लिए बड़े संयमी, दृढ़व्रती तथा त्यागशील उन्नायकों की परम आवश्यकता पड़ती है। इनके अभाव में किसी का उत्थान सम्भव नहीं होता। अन्त में कहना न होगा कि श्रीराम शर्मा के अनुसार मुग़ल शासनव्यवस्था मुग़ल सम्राटों द्वारा प्रचलित की गयी थी और वह मूलतः उन्हीं के चरित्र पर निर्भर थी, अतः जैसे ही आधार शक्तिहीन हुआ, उसका सारा ढाँचा भी हिल गया।

इति

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow

CC-O. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

UP State Museum, Lucknow